समाप्तेयं मनुस्मृतिस्थविषयसूची ।

ॐ

मनुस्मृति

प्रथमोऽध्यायः

मनुमेकाग्रमासीनमभिगम्य महर्षयः ।
प्रतिपूज्य यथान्याय मिदं वचनमब्रुवन् ॥१॥

(१) मनुजी एकाग्रचित्त बैठे हुए थे, उसी समय उनके पास बड़े-बड़े ऋषि आये और परस्पर के अभिवादनादि के पश्चात् उन्होंने यह बात कही कि—

भगवन् सर्ववर्णानां यथावदनुपूर्वशः ।
अन्तरप्रभवाणां च धर्मान्नो वक्तुमर्हसि ॥२॥

(२) हे भगवन्! सब वर्णों और वर्णसङ्करों के धर्म हम से ठीक-ठीक कहिये, क्योंकि—

त्वमेको ह्यस्य सर्वस्य विधानस्य स्वयंभुवः ।
अचिन्त्यस्याप्रमेयस्य कार्य्यतत्त्वार्थवित्प्रभो ॥३॥

(३) प्रभो! अचिन्त्य, अप्रमेय और अनादि-वेद में जो कर्म वर्णन किये गये हैं, उनके यथार्थ भाव को जानने वाले एक आप ही हैं।

स तैः पृष्टस्तथा सम्यगमितौजा महात्मभिः ।
प्रत्युवाचार्च्य तान्सर्वान्महर्षीञ्छ्रूयतामिति ॥४॥

(४) जब इन महात्माओं ने इस प्रकार उन तेजस्वी महात्मा से पूछा, तब श्री मनुजी ने उन सब महर्षियों की पूजा करके कहा कि सुनिये— ॐ

आसीदिदं तमोभूतमप्रज्ञातमलक्षणम् ।
अप्रतर्क्यमविज्ञेयं प्रसुप्तमिव सर्वतः ॥ ५ ॥

(५) यह सब जगत्—पहिले प्रकृति की दशा में छिपा हुआ था, और इसका कुछ ज्ञान और लक्षण न था और न तर्क से मालूम हो सकता था—स्वप्न की सी दशा में था ।

ततः स्वयंभूर्भगवानव्यक्तोऽव्यञ्जयन्निदम् ।
महाभूतादिवृत्तौजाः प्रादुरासीत्तमोनुदः ॥६॥

(६) इसके पश्चात् अव्यक्त और अचिन्त्य शक्ति रखने वाले और अन्धकार का नाश करने वाले परमेश्वर ने महत् तत्त्व आकाश वायु आदि साकल्पिक अर्थात् माँ—बाप के बिना उत्पन्न होने वाले लोगों को पैदा किया ।

योऽसावतीन्द्रियग्राह्यः सूक्ष्मोऽव्यक्तः सनातनः ।
सर्वभूतमयोऽचिन्त्यः स एव स्वयमुद्बभौ ॥७॥

(७) जो मुक्त जीव इन्द्रियों से अलग, सूक्ष्म और सदा निश्चिन्त और सब सृष्टि के प्राण हैं, वे स्वय ही सांकल्पिक शरीरों में प्रविष्ट हुए ।

ॐ मनुजी के ऋषि पूजन से ज्ञात होता है कि घर पर आए हुए छोटे का भी पूजन होता है ।

सोऽभिध्याय शरीरात्स्वात्सिसृक्षुर्विविधाः प्रजाः ।
अप एव ससर्जादौ तासु बीजमवासृजत् ॥ ८ ॥

(८) और जब उनके मनमें यह इच्छा उत्पन्न हुई कि अपने रीर से एक प्रकार की सृष्टि पैदा करनी चाहिए तो उन्होंने बसे प्रथम पानी अर्थात् रज को उत्पन्न किया। फिर इस पानी में बीज डाला।

तदण्डमभवद्धैमं सहस्रांशुसमप्रभम् ।
तस्मिञ्जज्ञे स्वयं ब्रह्मा सर्वलोक पितामहः ॥ ९ ॥

(९) तब वह बीज स्वर्ण और सूर्य्य के समान अण्डाकार बन गया, फिर उससे ब्रह्माजी अर्थात् वेदों के ज्ञाता अयोनिज ऋषि जो समग्र सृष्टि के उत्पन्न करने वाले हैं, अपने आप उत्पन्न हुए।

आपोनारा इति प्रोक्ता आपो वै नरसूनवः ।
तापदस्यायनं पूर्वं तेन नारायणः स्मृतः ॥ १० ॥

(१०) संस्कृत मे 'अप' मनुष्य की संतान को कहते हैं और मनुष्य की सन्तान के हृदय में परमात्मा का प्रकाश होता है, इसलिए परमात्मा को नारायण कहते हैं।

यत्तत्कारणमव्यक्तं नित्यं सदसदात्मकम् ।
तद्विसृष्टः स पुरुषो लोके ब्रह्मेति कीर्त्यते ॥ ११ ॥

(११) जो परमात्मा जगत् का उपादान है और छिपा हुआ है और नित्य सत्-असत् का कर्त्ता है, उसने जिस मनुष्य को संसार में सबसे पहिले चारों वेदों का ज्ञाता उत्पन्न किया, उसी को सब लोग 'ब्रह्मा' कहते हैं।

तस्मिन्नण्डे स भगवानुषित्वापरिवत्सरम् ।
स्वयमेवात्मनोध्यानात्तदंडमकरोद्द्विधा ॥१२॥

(१२) ब्रह्मा अर्थात् वेद के जानने वाले ने उस अण्डे अर्थात् विराट् मे एक वर्ष तक रह कर और परमात्मा का ध्यान करके उस अण्डे अर्थात् विराट् को दो भागों में विभक्त किया। +

ताभ्यां स शकलाभ्याञ्चदिवंभूमिञ्चनिर्ममे ।
मध्ये व्योमदिशश्चाष्टावपांस्थानं च शाश्वतम् ॥१३॥

(१३) उन दो टुकड़ों से ब्रह्म ने सतोगुण और पृथ्वी अर्थात् तमोगुण को बनाया, फिर उन दोनों के बीच में आकाश अर्थात् रजोगुण और आठों दिशायें—जीवों के रहने का स्थान—बनाया।

उद्ववर्हात्मनश्चैव मनः सदसदात्मकम् ।
मनसश्चाप्यहङ्कारमभिमन्तारमीश्वरम् ॥१४॥

(१४) फिर ब्रह्म ने परमात्मा से संकल्प—विकल्प रूप मन को उत्पन्न किया, और मन से सामर्थ्य और अभिमान करने वाले अहंकार को बनाया।

महान्तमेव चात्मानं सर्वाणि त्रिगुणानि च ।
विषयाणांगृहीतॄणि शनैः पञ्चेन्द्रियाणि च ॥१५॥

+ यहाँ पर एक वर्ष अण्डे मे रहने से यह तात्पर्य है कि ब्रह्माजी ने वेदों के ज्ञान और सृष्टि के नियम की तुलना की और उस तुलना के पश्चात् तम (अन्धकार) और प्रकाश (अग्नि और पृथ्वी) दोनों के गुणों का ज्ञान संसार में फैलाया ।

(१५) और अहंकार से पहले आत्मा का उपकार करने वाले महत्तत्त्व अर्थात् बुद्धि को पैदा किया, तथा विषय को भोग करने वाले—पाँच ज्ञानेन्द्रिय,पाँच कर्मेन्द्रिय एवं तन्मात्रा को बनाया ।*

तेषान्त्ववयवान्सूक्ष्मान्षण्णामप्यमितौजसाम् ।
सन्निवेश्यात्ममात्रासु सर्वभूतानि निर्ममे ॥ १६ ॥

(१६) और इन बड़े शक्तिमानों के सूक्ष्म अवयवों को अपने विकार में मिलाकर समस्त सृष्टि को बनाया । प्रकृति और परमात्मा के सम्बन्ध से सब तन्मात्रा अहङ्कार इन्द्रिय पैदा हुए हैं, अर्थात् परमात्मा और प्रकृति के योग से पैदा हुए हैं । +

यन्मूर्त्यवयवाः सूक्ष्मास्तस्येमान्याश्रयन्तिषट् ।
तस्माच्छरीरमित्याहुस्तस्यमूर्त्तिं मनीषिणः ॥ १७ ॥

(१७) प्रकृति महत्‌ब्रह्म के शरीर के छः सूक्ष्म अवयव अर्थात् तन्मात्रा और अहंकार और इन्द्रियों के पैदा करने वाली है ।

---

*पांच ज्ञानेन्द्रिय—आँख, नाक, कान, जिह्वा और त्वचा और पांच कर्मेन्द्रिय हाथ, पाँव, वाणी, मूत्रेन्द्रिय और मलद्वार ।

+ जब परमात्मा ने प्रकृति को संचालित किया, तब वस्तुओं के एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाने से आकाश उत्पन्न हुआ, क्योंकि इसके बिना आकाश नहीं हो सकता । जब आकाश हुआ तब उसमें वायु संचालित हुई । वायु के संचालन के कारण अग्नि परमाणु एकत्रित हो गये । अग्नि-परमाणुओं के एकत्रित होने से जल-परमाणुओं के मध्य की रुकावट दूर हुई । जल-परमाणुओं के एकत्रित होने से पृथ्वी के परमाणु एकत्रित हो गए, इसी प्रकार सृष्टि की रचना हुई ।

तदाविशन्ति भूतानि महान्ति सहकर्मभिः ।
मनश्चावयवैः सूक्ष्मैः सर्वभूत कृदव्ययम् ॥१८॥

(१८) फिर उस अविनाशी और जगत् को रचने वाले परब्रह्म ने अपने-अपने कामों के साथ आकाश आदि सृष्टि तथा सूक्ष्म अवयवों के साथ मन को उत्पन्न किया।

तेषामिदन्तु सप्तानां पुरुषाणां महौजसाम् ।
सूक्ष्माभ्यो मूर्त्तिमात्राभ्यः संभवत्यव्ययाद्व्ययम् ॥१९॥

(१९) इसके पश्चात् अविनाशी ब्रह्म ने उन सात बड़े पराक्रम रखने वाले महत्तत्त्व, अहङ्कार और पांच तन्मात्राओं के सूक्ष्म भाग से इस नाश होने वाले जगत् को बनाया।

अद्यादस्यगुणन्त्वेषामवाप्नोति परः परः ।
यो यो यावतिथश्चैषां स स तावद्गुणःस्मृतः ॥२०॥

(२०) इन महाभूतों में पूर्व-पूर्व के गुणों को अगला-अगला ग्रहण करता है। जिसकी जैसी योग्यता है, उसमें वैसा गुण होता है।

सर्वेषां तु स नामानि कर्माणि च पृथक्-पृथक् ,
वेदशब्देभ्य एवादौ पृथक्संस्थांश्च निर्ममे ॥२१॥

(२१) फिर परमात्मा ने सब चीजों के नाम और कर्म पृथक्-पृथक्, जैसे पहिली सृष्टि में थे वैसे ही, वेद के द्वारा संसार में प्रकट किये। ❀

❀ इससे यह प्रकट होता है कि यह संसार अब की ही बार नहीं बना, वरन् पहिले भी कई बार बन चुका है। जैसे दिन के

कर्मात्मनां च देवानां सोऽसृजत्प्राणिनां प्रभुः ।
साध्यानां च गणं सूक्ष्मं यज्ञश्चैव सनातनम् ॥२२॥

(२२) वेद की उत्पत्ति के पश्चात् परमात्मा ने वेद के ता देवऋषि और उनके सूक्ष्म अवयव शरीर और यज्ञ को ाया।

अग्निवायुरविभ्यस्तु त्रयं ब्रह्मसनातनम् ।
दुदोह यज्ञसिद्ध्यर्थमृग्यजुःसामलक्षणम् ॥२३॥

(२३) फिर यज्ञ को पूरा कराने के लिये अग्नि, वायु ादि देवऋषियों के मन में वेद का प्रकाश किया।

कालं कालविभक्तींश्च नक्षत्राणि ग्रहांस्तथा ।
सरितःसागरान् शैलान् समानिविषमाणि च ॥२४॥

(२४) फिर काल और काल के भाग अर्थात् वर्ष-हीने, नक्षत्र और सूर्य आदि नवग्रह और नदी और समुद्र, सम-षम स्थल उत्पन्न किये।

तपो वाच रतिं चैव कामं च क्रोधमेव च ।
सृष्टिं संसर्ज चैवेमां स्रष्टुमिच्छन्निमाः प्रजाः ॥२५॥

(२५) इसके बनाने के बाद तप अर्थात् प्रजापति इत्यादि ौर वाणी, रति अर्थात् चित्तों का सन्तोष, इच्छा, काम, क्रोध ादि प्रजा इन सब को बनाया।

कर्मणाञ्च विवेकार्थं धर्माधर्मौ व्यवेचयत् ।
द्वंद्वैरयोजयच्चेमाः सुखदुःखादिभिः प्रजाः ॥२६॥

ेचात् रात और रात के पश्चात् दिन होता है, वैसे ही सृष्टि के चात् प्रलय और प्रलय के पश्चात् सृष्टि होती है।

(२६) कर्मों के विवेक के लिये यज्ञ इत्यादि धर्म और ब्रह्महत्या आदि अधर्म अलग करके उनके सुख-दुःख देने वाले फल को प्रजा के पीछे बनाया।

अरण्व्यो मात्राविनाशिन्यो दशार्द्धानांतु याः स्मृताः।
ताभिः सार्द्धमिदं सर्वं सम्भवत्यनुपूर्वशः ॥२७॥

(२७) क्रमशः सूक्ष्म अविनाशी तन्मात्रा पाँच हैं, उनके साथ इस सम्पूर्ण सृष्टि को उत्पन्न किया।

यन्तु कर्मणि यस्मिन् सन्ययुङ्क्त प्रथमं प्रभुः।
स तदेव स्वयं भेजे सृज्यमानः पुनः पुनः॥२८॥

(२८) परमात्मा ने जिस-जिस प्राणी को सृष्टि के आदि में जिस-जिस कर्म में लगाया, वह आज तक वैसे ही कर्म करता है, मनुष्य के अतिरिक्त सब भोग योनि कहलाते हैं। +

हिंस्राहिंस्रे मृदुक्रूरे धर्माधर्मावृतानृते।
यद्यस्य सोऽदधात्सर्गे तत्तस्य स्वयमाविशत् ॥२९॥

(२९) हिंस्र और अहिंस्र, मृदु और कठोर आदि गुण वाले पशुओं में ये गुण अनादि काल से चले आते हैं; केवल कर्मों का परिवर्तन मनुष्य को दिया है।

+ यथा इस संसार में प्राणी परतंत्र अथवा स्वतन्त्र है और स्वतन्त्र मनुष्य अपनी इच्छानुसार कार्य करता है और उन कर्मों के हानि-लाभ का भोक्ता होता है। परतंत्र न अपनी इच्छानुसार कर्म करता है और न उनके हानि लाभ का उत्तरदाता है। वैसे ही स्वतन्त्र मनुष्य अपनी इच्छानुसार कर्म करता है और उनके फलको भोगता है जबकि पशु आदि न अपनी इच्छासे कर्म करते हैं और न उनके फल भोगते हैं। अर्थात् पशु आदि शरीर जीवों के लिये बन्दीगृह हैं।

यथर्तु लिङ्गान्यृतवः स्वयमेवर्तुपर्यये ।
स्वानि स्वान्यभिपद्यन्ते तथा कर्माणि देहिनः ॥३०॥

(३०) जैसे बसन्त आदि ऋतु अपने-अपने समय पर अपने गुणों को प्रकट करती हैं, उसी प्रकार सब प्राणी अपने अपने कर्मों में प्रवृत्त होते हैं।

लोकानां तु विवृद्ध्यर्थं मुखबाहूरुपादतः ।
ब्राह्मणं क्षत्रियं वैश्यं शूद्रञ्च निरवर्त्तयत् ॥३१॥

(३१) जिस प्रकार एक मनुष्य के शरीर के चार हिस्से गुण–कर्म से अलग-अलग हैं, ऐसे ही सारे जगत् में मनुष्य जाति के चार विभाग गुण-कर्म से अलग-अलग हैं। जिस तरह मुख वाले हिस्से में पाँचों ज्ञानेन्द्रिय और उपदेश करने के लिए वाणी कर्मेन्द्रिय है,ऐसे ही ब्राह्मणको उपदेश का काम दिया गया, बाहु अर्थात् क्षत्रिय को रक्षा का काम दिया गया, उरु अर्थात् वैश्य को व्यापार का एवं पाद अर्थात शूद्र को सेवा का काम दिया गया।

द्विधा कृत्वात्मनो देहमर्धेन पुरुषोऽभवत् ।
अर्धेन नारी तस्यां स विराजमसृजत्प्रभुः ॥३२॥

(३२) फिर परमात्मा ने मनुष्य जाति को स्त्री और पुरुष के रूप में, दो भागों में विभक्त किया। दोनों को मिलाकर विराट् अर्थात् मनुष्य जाति भी कह सकते हैं।

तपस्तप्त्वासृजद्यं तु स स्वयं पुरुषो विराट् ।
तं मां वित्तास्य सर्वस्य स्रष्टारं द्विजसत्तमाः ॥३३॥

(३३) मनुजी कहते हैं कि हे ऋषियो ! उस विराट् ने तपस्या करके जिसको बनाया, वह मैं हूँ और मैं सबका पैदा करने वाला हूँ, यह बात आप लोग जानिये।

अहं प्रजाः सिसृक्षुस्तु तपस्तप्त्वा सुदुस्तरम् ।
पतीन्प्रजानामसृजं महर्षीनादितो दश ॥३४॥

(३४) फिर मैंने सृष्टि को पैदा करने की इच्छा से घोर तपस्या करके दस ऋषियों को, जो प्रजा के पति हैं, पैदा किया।

मरीचिमत्र्यङ्गिरसौ पुलस्त्यं पुलहं क्रतुम् ।
प्रचेतसं वशिष्ठं च भृगुं नारदमेव च ॥३५॥

(३५ मरीचि, अत्रि, आंगिरा, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, प्रचेता, वशिष्ठ, भृगु और नारद।

एते मनूंस्तु सप्तान्यानसृजन्भूरितेजसः ।
देवान्देवनिकायांश्च महर्षींश्चामितौजसः ॥३६॥

(३६) इन ऋषियों ने सात बड़े तेजस्वी मनु और देवताओं और देवताओं के स्थान अर्थात् स्वर्ग और महाप्रतापी बड़े-बड़े ऋषियों को उत्पन्न किया। ×

यक्षरक्षः पिशाचांश्च गन्धर्वाप्सरसोऽसुरान् ।
नागान्सर्पान्सुपर्णांश्च पितॄणां च पृथग्गणान् ॥३७॥

(३७) और यक्ष, राक्षस, पिशाच, गन्धर्व, अप्सरा, असुर, साँप, गरुड़ और पितरों के वर्ग बनाये।

विद्युतोऽशनिमेघांश्च रोहितेन्द्रधनूंषि च ।
उल्कानिर्घातकेतूंश्च ज्योतींष्युच्चावचानि च ॥३८॥

× मनु से तात्पर्य मन्वन्तर अर्थात् जगत के चौदहवें भाग से है और उसमें जो सबसे बड़ा और बुद्धिमान् उत्पन्न होता है, वह मनु कहलाता है।

(३८) तत्पश्चात विद्युत् (बिजली) मेघ (बादल), रोहित, धनुष, उल्का (लूक का टूटना), स्थिति और परिभ्रमण करने वाले नक्षत्र, केतु और ध्रुव आदि को बनाया।

किन्नरान्वा नरान्मत्स्यान्विविधांश्च विहङ्गमान्।
पशून्मृगान्मनुष्यांश्च व्यालांश्चोभयतोदतः ॥३९॥

(३९) फिर किन्नर, वानर, मत्स्य (मछली,) भाँति-भाँति के पक्षी, पशु, मृग, मनुष्य और दो दांत वाले व्याल (साँप) को रचा।

कृमिकीटपतङ्गांश्च यूकामक्षिकमत्कुणम्।
सर्वं च दंशमशकं स्थावरं च पृथग्विधम् ॥४०॥

(४०) कृमि व कीट (बड़े २ और २ कीड़े), पतंग (शलभ), खटमल, मक्षिक (मक्खी), दंश, मशक (डाँस) और भाँति-भाँति के स्थावरों (अचल वृक्षों) को बनाया।

एवमेतैरिदं सर्वं मन्नियोगान्महात्मभिः।
यथा कर्म तपोयोगात्सृष्टं स्थावरजङ्गमम् ॥४१॥

(४१) मनुजी कहते हैं कि इस प्रकार बड़े २ ऋषियों* ने अपने तप और योग के प्रभाव से हमारी आज्ञा पाकर जीवों को कर्मानुसार स्थावर (अचर) और जङ्गम (चर) बनाया।

येषान्तु यादृशं कर्म भूतानामिह कीर्तितम्।
तत्तथावोऽभिधास्यामि क्रमयोगञ्च जन्मनि ॥४२॥

(४२) जिन जीवों को जैसा कर्म इस संसार में पहिले आचार्यों ने कहा है उन जीवों का वैसा ही कर्म और जन्म-मरण का भी कर्म हम आप सबसे कहेंगे।

---

*यहां बड़े २ ऋषियों से तात्पर्य सांकल्पिक सृष्टि के दो ऋषियों से है।

पशवश्च मृगाश्चैव व्यालाश्चोभयतोदतः ।
रक्षांसि च पिशाचाश्च मनुष्याश्च जरायुजाः ॥ ४३ ॥

(४३) पशु, मृग [हिरन], दो दाँत धारी व्याल (साँप), राक्षस, पिशाच, मनुष्य यह सब जरायुज (गर्भ से उत्पन्न होने वाले) हैं।

अण्डजाः पक्षिणः सर्पा नक्रा मत्स्याश्च कच्छपाः ।
यानि चैवं प्रकाराणि स्थलजान्यौदकानि च ॥ ४४ ॥

(४४) पक्षी, साँप, मछली, कछुवा यह सब अण्डज (अंडे से उत्पन्न होने वाले) हैं। इसी प्रकार जो स्थल [पृथ्वी] तथा उदक (जल) से उत्पन्न होते हैं। वे भी सब अण्डज हैं।

स्वेदजं दंशमशकं यूकामक्षिकमत्कुणम् ।
ऊष्मणश्चोपजायन्ते यच्चान्यत्किञ्चिदीदृशम् ॥ ४५ ।

(४५) डंश (दंश), मशक (मच्छर), जुँआ (ढील, यूक), मक्खी व खटमल, यह सब स्वेद (पसीना) से उत्पन्न होते हैं। अतः इन्हें स्वेदज कहते हैं और जो ऐसे ही गर्मी से उत्पन्न होते हैं, वह भी स्वेदज कहलाते हैं।

उद्भिज्जाः स्थावराः सर्वे बीजकाण्डप्ररोहिणः ।
ओषध्यः फलपाकान्ता बहुपुष्पफलोपगाः ॥ ४६ ॥

(४६) सब स्थावर उद्भिज* कहाते हैं। कोई बीज से उत्पन्न होता कोई कलम लगाने से होता है।

अपुष्पाः फलवन्तो ये ते वनस्पतयः स्मृताः ।
पुष्पिणः फलिनश्चैव वृक्षास्तूभयतः स्मृताः ॥ ४७ ॥

---

* जो पृथ्वी फोड़कर निकलते हैं।

(४७) फल-फूल वाले जो पकने पर नाश होते हैं, औषध कहलाते हैं। जिनमें फूल नहीं लगता, केवल फल ही लगता है उन्हें वनस्पति कहते हैं। जिनमें फल-फूल दोनों लगते हैं, उन्हें वृक्ष कहते हैं।

गुच्छं गुल्मं तु विविधं तथैव तृणजातयः।
बीजकाण्डरुहाण्येव प्रताना वल्ल्य एव च ॥४८॥

(४८) गुच्छ * और गुल्म + बहुत प्रकार के होते हैं और तृण कोई तो बीज लगाने से होते हैं, कोई शाखा लगाने से होते हैं जैसे प्रताना × वल्ली आदि।

तमसा बहुरूपेण वेष्टिताः कर्महेतुना।
अन्तः संज्ञा भवन्त्येते सुखदुःखसमन्विताः ॥४९॥

(४९) इस सब में तमोगुण की अधिकता है, अतएव सुख-दुःख का ज्ञान भीतर ही रहता है।

एतदन्तास्तु गतयो ब्रह्माद्याः समुदाहृताः।
घोरेऽस्मिन्भूतसंसारे नित्यं सततयायिनी ॥५०॥

(५०) इस नाशवान् संसार में ब्रह्मा से चींटी पर्य्यन्त जीवों की जो दशा है, वह हमने आप लोगों से वर्णन कर दी।

एवं सर्वं स सृष्ट्वेदं मां चाचिन्त्यपराक्रमः।
आत्मन्यन्तर्दधे भूयः कालं कालेन पीडयन् ॥५१॥

(५१) इस प्रकार ब्रह्माजी अचिन्त्य पराक्रमी मुझको

---

*जिनमें जड़ लता से निकलती है और शाखा बड़ी नहीं होती।
+जिनमें जड़ एक है परन्तु रेशे (जड़ के डोरे) बहुत निकलते हैं।
×जिनमें सोत होता है यथा लौकी, कुम्हड़ा आदि।

और सृष्टि को रच कर प्रलय के समय सब को नाश करके ब्रह्म में मिल जाते हैं।

यदा स देवो जागर्त्ति तदेदं चेष्टते जगत्।
यदा स्वपिति शान्तात्मा तदा सर्वं निमीलति ॥५२॥

(५२) जब तक जीवात्मा जाग्रत रहता है, तबतक यह जगत् दृष्टिगोचर होता है और जब वह शान्त पुरुष अर्थात् जीवात्मा निद्रा के वशीभूत होजाता है तब *प्रलय हो जाता है।

तस्मिन्स्वपिति सुस्थे तु कर्मात्मानः शरीरिणः।
स्वकर्मभ्यो निवर्त्तन्ते मनश्चग्लानिमृच्छति ॥५३॥

(५३) जीवात्मा जब प्रगाढ़ निद्रा में अचिन्त्य दशाको प्राप्त होजाता है, तब इन्द्रिय और मन अपने कर्म से मुक्त हो जाते हैं।

युगपत्तु प्रलीयन्ते यदा तस्मिन्महात्मनि।
तदायं सर्वभूतात्मा सुखं स्वपिति निर्वृतः ॥५४॥

(५४) जब सब इन्द्रियाँ और मन जीवात्मा में लय हो जाते हैं, तब यह पचभूतों का आत्मा आनन्द से सोता है अर्थात् तब महाप्रलय होता है।

तमोऽयं तु समाश्रित्य चिरं तिष्ठ त सेन्द्रियः।
न च स्वं कुरुते कर्म तदात्क्रामति मूर्त्तितः॥५५॥

(५५) अब मृत की दशा लिखते हैं कि यह जीव चिरकाल के इन्द्रियों के संसर्ग से मूढ़ दशा में रहता है और जब प्राण निकल जाता है तो जीव एक शरीर से दूसरे शरीर में चला जाता है।

* यह नित्य प्रलय कहलाता है।

यदाणुमात्रिको भूत्वा बीजं स्थास्नु चरिष्णु च ।
समाविशति संसृष्टस्तदा मूर्तिं विमुञ्चति ॥५६॥

(५६) और जब वह पंचभूत (पंचतत्त्व), इन्द्रियों, हृदय, बुद्धि, इच्छा, कर्म और मूढ़ता इन आठ वस्तुओं के संसर्ग से अचल बीज में जाता है, तब वृक्षादि की योनि पाता है और जब चल बीज में जाता है, तब मनुष्यादि की योनि अर्थात् शरीर पाता है ।

एवं स जाग्रत्स्वप्नाभ्यामिदं सर्वं चराचरम् ।
सञ्जीवयति चाजस्रं प्रमापयति चाव्ययः ॥५७॥

(५७) इसी प्रकार ब्रह्माजी जाग्रत् और निद्रित दशा में होने से सब चर और अचर जीवधारियों को बार बार उत्पन्न करते और नाश करते हैं ।

इदं शास्त्रं तु कृत्वाऽसौ मामेव स्वयमादितः ।
विधिवद् ग्राहयामास मरीच्यादींस्त्वहं मुनीन् ॥५८॥

(५८) ब्रह्मा ने इस शास्त्र को बनाकर पहले हमको बुद्धि के अनुसार बतलाया । फिर हमने मरीचि आदि ऋषियों को सिखलाया ।

(६०) जब इस प्रकार मनुजी ने भृगु ऋषि से कहा, तब भृगु ऋषि ने प्रसन्न हो प्रीतिपूर्वक सब ऋषियों से कहा कि सुनिये—

स्वायंभुवस्यास्य मनोः षड्वंश्या मनवोऽपरे ।
सृष्टवन्तः प्रजाः स्वाःस्वा महात्मानो महौजसः ॥६१॥

(६१) ब्रह्माजी से जो मुनि उत्पन्न हुए, उनके वंश में छह मुनि और भी हैं, इन महातेजस्वी महात्माओं ने अपने-अपने तपोबल से अपनी-अपनी सन्तानें उत्पन्न की ।

स्वारोचिषश्चोत्तमश्च तामसो रैवतस्तथा ।
चाक्षुषश्च महातेजा विवस्वत्सुत एव च ॥६२॥

(६२) उन महातेजस्वियों के नाम यह हैं–१–स्वारोचिष, २–उत्तम, ३–तामस, ४–रैवत, ५–चाक्षुष ६–वैवस्वत ।

स्वायंभुवाद्याः सप्तैते मनवो भूरितेजसः ।
स्वे स्वेऽन्तरे सर्वमिदमुत्पाद्यापुश्चराचरम् ॥६३॥

(६३) स्वायम्भू आदि सातों मुनि जो बड़े तेजवान् हैं, अपने तपोबल से सारे चर और अचर प्राणियों (जीवधारियों) को उत्पन्न करके पालने लगे ।

निमेषा दश चाष्टौ च काष्ठा त्रिंशत्तु ताः कला ।
त्रिंशत्कला मुहूर्तः स्यादहोरात्रं तु तावतः ॥६४॥

(६४) अठारह पल का एक काष्ठा, ३० काष्ठा की एक कला, ३० कला का एक मुहूर्त और ३० मुहूर्त का एक दिन-रात होता है ।

अहो रात्रे विभजते सूर्यो मानुषदैविके ।
रात्रिः स्वप्नाय भूतानां चेष्टायै कर्मणामहः ॥

(६५) मनुष्य और देवताओं के रात्रि दिवस की पहिचान सूर्य्य के कारण से होती है। सब जीवधारियों के विश्राम के हेतु रात्रि और कार्य्य के हेतु दिवस नियत हुआ।

पित्र्ये रात्र्यहनी मासः प्रविभागस्तु पक्षयोः।
कर्मचेष्टास्वहः कृष्णः शुक्लःस्वप्नाय शर्वरी ॥६६॥

(६६) मनुष्यों के एक मास के तुल्य पितरों का एक-रात्रि दिवस होता है। इसमें कृष्णपक्ष कार्य्य करने के हेतु दिन है और शुक्लपक्ष सोने के हेतु रात्रि है।

दैवे रात्र्यहनी वर्ष प्रविभागस्तयो पुनः।
अहस्तत्रोदगयनं रात्रिः स्याद्दक्षिणायनम् ॥६७॥

(६७) मनुष्यों के एक वर्ष के तुल्य देवताओं का एक रात्रि-दिन होता है। जब तक सूर्य्य * उत्तरायण रहते हैं तब तक दिन रहता है और जब तक सूर्य्य + दक्षिणायन रहते हैं तब रात्रि होती है।

ब्राह्मस्य तु क्षपाहस्य यत्प्रमाणं समासतः।
एकैकशो युगानां तु क्रमशस्तन्निबोधत ॥ ६८ ॥

(६८) ब्रह्मा के रात्रि-दिन की संख्या और प्रत्येक युग की संख्या क्रम से स्पष्ट सुनिये—

चत्वार्याहुः सहस्राणि वर्षाणां तु कृतं युगम्।
तस्य तावच्छती संध्या संध्यांशश्च तथाविधः ॥६९॥

(६९) देवताओं के चार सहस्र (हजार) वर्ष का सतयुग होता है। युग के प्रथम चार सौ वर्ष की देवताओं की

*माघकी संक्रांति से सावनकी संक्रांति तक उत्तरायण होता है।
+सावनकी संक्रांति से माघकी संक्रांति तक दक्षिणायन होताहै।

सन्ध्या कहलाती है, और युग के अन्त पर उतना ही सन्ध्यांश कहलाता है।

इतरेषु ससन्ध्येषु ससन्ध्यांशेषु च त्रिषु।
एकापायेन वर्तन्ते सहस्राणि शतानि च ॥ ७० ॥

(७०) तीनों युगों अर्थात् त्रेता, द्वापर, कलियुग की संध्या और सन्ध्यांश की संख्या एक सहस्र (हजार) और एक सौ वर्ष के * घटाने से होती है।

यदेतत्परिसंख्यातमादावेव चतुर्युगम्।
एतद्द्वादशसाहस्रं देवानां युगमुच्यते ॥ ७१ ॥

(७१) यह जो चार युगों की संख्या कही है, इसका बारह सहस्र गुणा अधिक देवताओं का युग होता है।

दैविकानां युगानां तु सहस्रं परिसंख्यया।
ब्राह्ममेकमहर्ज्ञेयं तावतीं रात्रिमेव च ॥ ७२ ॥

(७२) देवताओं के सहस्र (हजार) युग के तुल्य ब्रह्माजी का एक दिन होता है और इतनी ही रात्रि होती है।

तद्वै युगसहस्रान्तं ब्राह्मं पुण्यमहर्विदुः।
रात्रिञ्च तावतीमेव तेऽहोरात्रविदो जनाः ॥ ७३ ॥

(७३) ब्रह्मा के सहस्र युग के तुल्य परब्रह्म का एक दिन होता है। सो वह दिन बड़ा पवित्र है और उतनी ही रात्रि भी होती है इसे रात्रि दिन के ज्ञाताओं ने कहा।

---

* ३००० वर्ष का त्रेता युग और ३०० वर्ष की सन्ध्या और ३०० वर्ष का सन्ध्यांश, २००० वर्ष का द्वापर २०० वर्ष की सन्ध्या और २०० वर्ष का सन्ध्यांश, १००० वर्ष का कलियुग, १०० वर्ष की सन्ध्या और १०० वर्ष का सन्ध्यांश।

तस्य सोऽहर्निशस्यान्ते प्रसुप्तः प्रतिबुध्यते ।
प्रतिबुद्धश्च सृजति मनः सदसदात्मकम् ॥ ७४ ॥

(७४) यह ब्रह्मा अपने दिन में कार्य्य करते हैं और रात्रि में विश्राम करते हैं। जब जाग्रत होते हैं तो सङ्कल्प-विकल्प रूप मन को सृष्टि रचने की आज्ञा देते है।

मनः सृष्टिं विकुरुते चोद्यमानं सिसृक्षया ।
आकाशं जायते तस्मात्तस्य शब्दं गुणं विदुः ॥ ७५॥

(७५) मन ने ब्रह्माजी की आज्ञा पाकर आप से आप आकाश को बनाया, इसका गुण शब्द है।

आकाशात्तु विकुर्वाणात्सर्वगन्धवहः शुचिः ।
बलवाञ्जायते वायुः स वै स्पर्श गुणो मतः ॥ ७६ ॥

(७६) आकाश के पश्चात् सब गन्धों को ज्ञाता (पहिचानने वाली), पवित्र और बलवान वायु की उत्पत्ति हुई। इस का गुण स्पर्श है।

वायोरपि विकुर्वाणाद्विरोचिष्णु तमोनुदम् ।
ज्योतिरुत्पद्यते भास्वत्तद्रूपगुणमुच्यते ॥ ७७ ॥

(७७) वायु के पश्चात् तम का नाश करने वाली और प्रकाश फैलाने वाली ज्योति उत्पन्न की। इसका गुण रूप है।

ज्योतिषश्च विकुर्वाणादापो रसगुणाः स्मृताः ।
अद्भ्यो गन्धगुणा भूमिरित्येषा सृष्टिरादितः ॥७८॥

(७८) अग्नि के पश्चात् जल बनाया, जिसका गुण रस है। और जल से पृथ्वी को रचा, जिसका गुण गन्ध है। संसार के आरम्भ से यही स्वभाव रहता है।

यत्प्राग्द्वादशसाहस्रमुदितं दैविकं युगम् ।
तदेकसप्ततिगुणं मन्वन्तरमिहोच्यते ॥ ७९ ॥

(७९) बारह सहस्र वर्ष का देवताओं का एक युग होताहै। और उसका एकहत्तर गुणा एक मन्वन्तर होता है । यह बारह सहस्र देवताओं के वर्ष हैं, न कि मनुष्यों के।

मन्वन्तराण्यसंख्यानि सर्गः संहार एव च ।
क्रीडन्निवैतत्कुरुते परमेष्ठी पुनः पुनः ॥ ८० ॥

(८०) परमात्मा सृष्टि की उत्पत्ति, नाश और मन्वन्तर आदि असंख्य बार अपनी स्वाभाविक शक्ति से रचते हैं।

चतुष्पात्सकलोधर्मः सत्यं चैव कृते युगे ।
नाधर्मेणागमः कश्चिन्मनुष्यान्प्रति वर्त्तते ॥ ८१ ॥

(८१) सतयुग में धर्म चारों चरण से स्थित था। इस युग के मनुष्य सत्य बोला करते थे और कोई अधर्म का कार्य्य नहीं करते थे।

इतरेष्वागमाद्धर्मः पादशस्त्ववरोपितः ।
चौरिकानृतमायाभिर्धर्मश्चापैति पादशः ॥ ८२ ॥

(८२) त्रेता आदि तीनों युगोंमें लोग अधर्म अर्थात् चोरी, झूँठ और छल से कार्य करने लगे अतएव धर्म का एक-एक चरण घटता गया अर्थात् त्रेता में एक चौथाई, द्वापर में दो चौथाई (आधा) कलियुगमें तीन चौथाई(पौन)धर्म न्यून होगया।

अरोगाः सर्वसिद्धार्थाश्चतुर्वर्षशतायुषः ।
कृते त्रेतादिषु ह्येषामायुर्ह्रसति पादशः ॥ ८३ ॥

(८३) सतयुग में कोई बीमार न होता था और जो इच्छा

घरते थे, वही पूर्ण हो जाती थी। चारसौ वर्ष की आयु होती थी। त्रेता आदि तीनों युगों में मनुष्य की आयु एक एक चरण घट गई अर्थात् त्रेता में ३०० वर्ष द्वापर में २०० वर्ष, कलियुग में १०० वर्ष।

वेदोक्तमायुर्मर्त्यानामाशिषश्चैव कर्मणाम्।
फलन्त्यनुयुगं लोके प्रभावश्चशरीरिणाम् ॥ ८४ ॥

(८४) वेद में मनुष्यों की जो आयु निर्धारित की है, और इच्छापूर्त्ति के लिए जो आशिष और शाप है, और मनुष्यों की प्रकृति (स्वभाव)-यह सब बातें युगानुसार फल देती हैं।

अन्ये कृतयुगे धर्मास्त्रेतायां द्वापरेऽपरे।
अन्ये कलियुगे नृणां युगाह्रसानुरूपतः ॥ ८५ ॥

(८५) युग के अनुसार मनुष्यों का धर्म सब युगों में पृथक् पृथक् होता है अर्थात् सतयुग, त्रेता, द्वापर, कलियुग में अलग २ धर्म होता है। ❀

तप परं कृतयुगे त्रेतायां ज्ञानमुच्यते।
द्वापरे यज्ञमेवाहुर्दानमेकं कलौयुगे ॥ ८६ ॥

❀ (८६) सतयुग में केवल तप, त्रेता में ज्ञान,द्वापर में यज्ञ, और कलियुग में दान ही मुख्य रक्खा गया।

सर्वस्यास्य तु सर्गस्य गुप्त्यर्थं स महाद्युति।
मुखबाहूरुपाज्जानां पृथक्कर्माण्यकल्पयत् ॥ ८७ ॥

(८७) इस सारे ससार का कार्य चलाने के हेतु ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र चारों वर्ण शरीर के चार भाग मुख,

---

❀ यह श्लोक स्वार्थियों के मिलाए हुए ज्ञात होते हैं,क्योंकि धर्म चारों युगों में एक समान रहता है।

बाहु, उरु और पाँव के अनुसार बनाये। और चारों वर्णों के कर्म पृथक्-पृथक् निर्धारित किये।

अध्यापनमध्ययनं यजनं याजनं तथा।
दानं प्रतिग्रहञ्चैव ब्राह्मणानामकल्पयत् ॥ ८८ ॥

(८८) वेद पढ़ना, वेद पढ़ाना, यज्ञ करना, यज्ञ कराना, दान देना और दान लेना, यह छह कर्म ब्राह्मण के लिये बनाये।

प्रजानां रक्षणं दानमिज्याऽध्ययनमेव च।
विषयेष्वप्रसक्तिश्च क्षत्रियस्य समासतः ॥ ८९ ॥

(८९) प्रजा की रक्षा करना, वेद पढ़ना, दान देना, यज्ञ करना और सांसारिक विषयों में चित्त न लगाना अर्थात् आसक्त न होना, ये पांच कर्म क्षत्रियों के लिये नियत किये।

पशूनां रक्षणं दानमिज्याऽध्ययनमेव च।
वणिक्पथं कुसीदञ्च वैश्यस्य कृषिमेव च ॥ ९० ॥

(९०) चौपायों की रक्षा करना, दान देना, यज्ञ करना, वेद पढ़ना, व्यापार करना, ब्याज लेना, खेती (कृषि) करना, ये सात कर्म वैश्यों के लिये नियत किये हैं।

एकमेव तु शूद्रस्य प्रभुः कर्म समादिशत्।
एतेषामेव वर्णानां शुश्रूषामनसूयया ॥ ९१ ॥

(९१) शूद्र के लिये एक ही कर्म प्रभु ने नियत किया अर्थात् तन और मन से तीनों वर्णों (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य) की सेवा करना।

ऊर्ध्वं नाभेर्मेध्यतरः पुरुषः परिकीर्त्तितः।
तस्मान्मेध्यतमन्त्वस्य मुखमुक्तं स्वयम्भुवा ॥ ९२ ॥

(९२) पुरुष के सब अङ्ग नाभि से शिखा पर्य्यन्त पवित्र

हैं। विशेषकर मुख और भी अधिक पवित्र है। यह ब्रह्माजी ने कहा है।

उत्तमाङ्गोद्भवाज्ज्यैष्ठ्याद्ब्रह्मणश्चैव धारणात्।
सर्वस्यैवास्य सर्गस्य धर्मतो ब्राह्मणः प्रभुः॥ ९३॥

(९३) संसार में ब्राह्मण धर्म के कारण सर्वश्रेष्ठ हैं, इस हेतु कि सबसे पवित्र अंग अर्थात् मुँह का कार्य करते हैं और वेदानुसार कर्म करते हैं।

तं हि स्वयम्भूः स्वादास्यात्तपस्तप्त्वादितोऽसृजत्।
हव्यकव्याभिवाह्याय सर्वस्याऽस्य च गुप्तये॥ ९४॥

(९४) ब्रह्माजी ने अपने तपोबल से पहले ब्राह्मण को अपने मुँह से उपदेश देकर उत्पन्न किया जिससे कि सारे संसार की रक्षा करे और मन्त्रबल से देवताओं को हव्य और पितरों को कव्य पहुँचावें।

यस्यास्येन सदाश्नन्ति हव्यानि त्रिदिवौकसः।
कव्यानि चैव पितरः किं भूतमधिकन्ततः॥ ९५॥

(९५) उस ब्राह्मण से बढ़ कर और कौन है कि जिसके मुख से देवतागण हव्य और पितरगण कव्य खाते हैं।

भूतानां प्राणिनः श्रेष्ठाः प्राणिनां बुद्धिजीविनः।
बुद्धिमत्सु नराः श्रेष्ठाः नराणां ब्राह्मणाः स्मृताः॥९६॥

(९६) चर-अचर प्राणियों में कीड़ा श्रेष्ठ है, उससे श्रेष्ठ चौपाया, उससे श्रेष्ठ मनुष्य और उससे श्रेष्ठ ब्राह्मण हैं।

ब्राह्मणेषु च विद्वांसो विद्वत्सु कृतबुद्धयः।
कृतबुद्धिषु कर्तारः कर्तृषु ब्रह्मवेदिनः॥ ९७॥

(९७) ब्राह्मणों में वेदशास्त्र के पढ़ने वाले, उनसे

वेदशास्त्र के अनुसार कार्य्य करने की इच्छा रखने वाले, उनसे वेदशास्त्रानुसार कर्म करने वाले, और उनसे अधिक ब्रह्मज्ञानी श्रेष्ठ हैं।

उत्पत्तिरेव विप्रस्य मूर्त्तिर्धर्मस्य शाश्वती।
स हि धर्मार्थमुत्पन्नो ब्रह्मभूयाय कल्पते॥ ९८॥

(९८) ब्राह्मण धर्म की मूर्ति है, और धर्म करने के लिये उत्पन्न किया गया है, अतएव मुक्ति पाने के योग्य होता है।

ब्राह्मणो जायमानो हि पृथिव्यामधि जायते।
ईश्वरः सर्वभूतानां धर्मकोशस्य गुप्तये॥ ९९॥

(९९) परमेश्वर ने धर्मकोष (खजाना) की रक्षा के हेतु वेदवान् (वेदज्ञाता) ब्राह्मणों को उत्पन्न किया।

सर्वं स्वं ब्राह्मणस्येदं यत्किञ्चिज्जगतीगतम्।
श्रैष्ठ्येनाभिजनेनेदं सर्वं वै ब्राह्मणोऽर्हति॥१००॥

* (१००) जो कुछ इस संसार में है वह सब ब्राह्मण के हेतु है, क्योंकि ब्राह्मण अपने ज्ञानबल से उनका ठीक ठीक लाभ भोग सकता है और दूसरे वर्ण ज्ञान की न्यूनता के कारण लाभ नहीं भोग सकते। इस हेतु सब कुछ ब्राह्मण ही का है, क्योंकि वह ब्रह्माजी के उपदेश से सबको धर्म की शिक्षा देने (सिखलाने) के हेतु उत्पन्न हुआ है। अतएव सबसे श्रेष्ठ हैं।

स्वमेव ब्राह्मणो भुङ्क्ते स्वं वस्ते स्वं ददाति च।
आनृशंस्याद्ब्राह्मणस्य भुञ्जते हीतरे जनाः॥ १०१॥

(१०१) ब्राह्मण अपनी ही वस्तुओं को खाता, पहिनता

---

* इस श्लोक से ज्ञान की श्रेष्ठता दर्शाती है। और शेष के समान यह श्लोक मिलाया हुआ है।

और देता है। उसकी कृपा से क्षत्रिय लोग अर्थात् दूसरे मनुष्य आनंद करते हैं।

तस्य कर्म विवेकार्थं शेषाणामनुपूर्वशः ।
स्वायम्भुवो मनुर्धीमानिदं शास्त्रमकल्पयत् ॥ १०२ ॥

(१०२) उस ब्राह्मण के कर्म और क्षत्रिय आदि के कर्म के ज्ञानार्थ ब्रह्मा के पुत्र मनुजी ने इस शास्त्र को बनाया।

विदुषा ब्राह्मणेनेदमध्येतव्यं प्रयत्नतः ।
शिष्येभ्यश्च प्रवक्तव्यं सम्यङ् नान्येन केनचित्॥१०३॥

(१०३) जो ब्राह्मण पण्डित हैं, वे इस शास्त्र को यत्न से पढ़े और शिष्यों (चेलों विद्यार्थियों) को भी पढ़ावें और क्षत्रिय आदि भी पढ़े, किन्तु पढ़ावें नहीं।

इदं शास्त्रमधीयानो ब्राह्मणः शसितव्रत ।
मनोवाग्देहजैर्नित्यं कर्मदोषैर्न लिप्यते ॥१०४॥

(१०४) जो ब्राह्मण इस शास्त्र को पढ़ता है और व्रत करता है, वह मन, वाणी और शरीर से उत्पन्न हुए कर्म दोष से लिप्त नहीं होता।

पुनाति पंक्ति वश्यांश्च सप्त सप्त परावरान् ।
पृथिवीमपि चैवेमां कृत्स्नामेकोऽपि सोर्हति ॥१०५॥

(१०५) पापियों की पंक्ति को ब्राह्मण पवित्र करता है। वह अपनी सात पुश्त ऊपर और सात पुश्त नीचे की पवित्र करता है वह सारी पृथ्वी को अकेला धारण कर सकता है।

इदं स्वस्त्ययनं श्रेष्ठमिदं बुद्धिविवर्धनम् ।
इदं यशस्यमायुष्यमिदं निःश्रेयसं परम् ॥१०६॥

(१०६) यह शास्त्र कल्याण, बुद्धि, यश, आयु और दाता है।

अस्मिन्धर्मोऽखिलेनोक्तो गुणदोषौ च कर्मणाम्।
चतुर्णामपि वर्णानामाचारश्चैव शाश्वतः ॥१०७॥

(१०७) इस शास्त्र में सारे धर्म कर्मों के गुण-दोष और चारों वर्णों के आचार कहे हैं।

आचारः परमो धर्मः श्रुत्युक्तः स्मार्त्त एव च।
तस्मादस्मिन्सदायुक्तो नित्यं स्यादात्मवान् द्विजः ॥१०८॥

(१०८) जो आचार वेदशास्त्र में कहे हैं, वह परमधर्म हैं। इस हेतु जो ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य अपना भला चाहें,वह इस शास्त्रानुसार कर्म करें।

आचाराद्विच्युतो विप्रो न वेदफलमश्नुते।
आचारेण तु संयुक्तः सम्पूर्णफल भाग्भवेत् ॥१०९॥

(१०९) आचार-रहित ब्राह्मण वेद के फल का भोग नहीं कर सकता। और आचार-सहित ब्राह्मण वेदों के फल का भोग कर सकता है।

एवमाचारतो दृष्ट्वा धर्मस्य मुनयो गतिम्।
सर्वस्य तपसो मूलमाचारं जगृहुः परम् ॥११०॥

(११०) जब मनुजीने देखा कि आचार से ही धर्म प्राप्त होता है, तब सब तपों का मूल जो आचार है, उसीको अपनाया।

जगतश्च समुत्पत्तिं संस्कारं विधिमेव च।
व्रतचर्योपचारं च स्नानस्य च परंविधिम् ॥१११॥

(१११) तनी बातें इस शास्त्र में कही गई हैं, सृष्टि

उत्पत्ति, संस्कार ❀ करने की विधि, व्रत की आवश्यकता, स्नान की विधि।

दाराधिगमनं चैव विवाहानां च लक्षणम् ।
महायज्ञविधानं च श्राद्धकल्पश्च शाश्वतः ॥११२॥

(११२) स्त्री प्रसंग, विवाहों का लक्षण, महायज्ञ विधान, श्राद्ध की विधि।

वृत्तिनां लक्षणं चैव स्नातकस्य व्रतानि च ।
भक्ष्याभक्ष्यं च शौचं च द्रव्याणां शुद्धिमेव च ॥११३॥

(११३) वृत्ति (जीविका) का लक्षण, स्नातक (ब्रह्मचारी) का व्रत, भक्ष्य और अभक्ष्य (खाने वाले और न खाने वाले) पदार्थ, शौच (पवित्रता), द्रव्यों को शुद्ध करने की विधि।

स्त्रीधर्मयोगं तापस्यं मोक्षं संन्यासमेव च ।
राज्ञश्च धर्ममखिलं कार्याणां च विनिर्णयम् ॥११४॥

(११४) स्त्रियों का धर्म-योग, तप, मोक्ष और सन्यास धर्म, राजाओं का धर्म, और सब कामों का विचार।

साक्षीप्रश्नविधानं च धर्मं स्त्रीपुंसयोरपि ।
विभागधर्मं द्यूतं च कण्टकानां चशोधनम् ॥११५॥

(११५) साक्षी के प्रश्न का विधान अर्थात् गवाह की गवाही की विधि, पुरुष और स्त्री का धर्म, धर्म के विभाग, द्यूत (जुआ) के विषय में, अपराधियों के दण्ड।

❀ सस्कार १६ हैं:-१-गर्भाधान, २-पुंसवन, ३-सीमन्तोन्नयन, ४-जातकर्म, ५-नामकरण, ६-निष्क्रमण, ७-अन्नप्राशन, ८-चूड़ाकर्म, ९—कर्णवेध, १०—उपनयन, ११—वेदारम्भ, १२—समावर्तन, १३-विवाह, १४-गृहस्थाश्रम, १५-वाणप्रस्थाश्रम, १६-संन्यास।

वैश्यशूद्रोपचारं च संकीर्णानां च संभवम् ।
आपद्धर्मं च वर्णानां प्रायश्चित्तविधिं तथा ॥११६॥

(११६) वैश्य और शूद्रों का धर्म, वर्णसङ्करों की उत्पत्ति सङ्कट के समय में वर्णों का धर्म, प्रायश्चित (पाप से मुक्त होने की विधि ।

संसारगमनं चैव त्रिविधं कर्मसंभवम् ।
निःश्रेयसं कर्मणां च गुणदोषपरीक्षणम् ॥११७॥

(११७) शुभ और अशुभ कर्मों से उत्तम, मध्यम व अधम शरीर में जन्म पाना, उत्तम ज्ञान अर्थात् आत्मज्ञान से शुभाशुभ कर्मों का फल ।

देशधर्माञ्जातिधर्मान्कुलधर्मांश्च शाश्वतान् ।
पाखण्डगणधर्मांश्च शास्त्रेऽस्मिन्नुक्तवान्मनुः॥११८॥

(११८) देशधर्म, जातिधर्म, कुलधर्म और पाखण्डी धर्म अर्थात् देश, जाति, कुल और पाखण्डी इन सबों के धर्म, इतनी बातें मनुजी ने इस शास्त्र में कही हैं।

यथेदमुक्तवाञ्छास्त्रं पुरापृष्टोमनुर्मया ।
तथेदंयूयमप्यद्य मत्सकाशन्निबोधत ॥ ११९ ॥

(११९) भृगुजी कहते हैं कि जिस प्रकार हमने इस शास्त्र को मनुजी से पूछा और उन्होंने कहा, उसी तरह आप लोग भी हमसे सुनिये—

मनुजी का धर्मशास्त्र, भृगुजी की संहिता का प्रथम अध्याय समाप्त हुआ ।

—०—

अथ द्वितीयोऽध्यायः ।

विद्वद्भिः सेवितः सद्भिर्नित्यमद्वेषरागिभिः ।
हृदयेनाभ्यनुज्ञातो यो धर्मस्तं निबोधत ॥१॥

(१) राग-द्वेष (शत्रुता-मित्रता) रहित उत्तम पण्डित लोगों ने धर्म का पक्ष लिया है और वह धर्म कल्याणदाता है। उस धर्म को हम से सुनिये—

कामात्मता न प्रशस्ता न चैवेहास्त्यकामता ।
काम्यो हि वेदाधिगमः कर्मयोगश्च वैदिकः ॥२॥

(२) फलेच्छा से कोई कर्म करना अच्छा नहीं है, क्योंकि उसके फल को भोगने के हेतु जन्म लेना पड़ता है और जो नित्यकर्म * और नैमित्तिक है, वह आत्मज्ञान प्राप्त करने में सहायक होकर मुक्तिदाता है, परन्तु इस वर्णन से साधारण इच्छा करना वर्जित नहीं है; क्योंकि यह सब वर्णन वेदशास्त्र में लिखित धर्म के विषय में इच्छानुकूल ही है ।

सङ्कल्पमूलः कामो वै यज्ञाः सङ्कल्पसंभवाः ।
व्रतानि यमधर्माश्च सर्वे सङ्कल्पजाः स्मृताः ॥३॥

(३) इच्छा, यज्ञ, व्रत, नियम, धर्म यह सब संकल्प अर्थात् 'इस काम से यह फल हमको मिले'—ऐसी बुद्धि से उत्पन्न होते हैं।

अकामस्य क्रिया काचिद्दृश्यते नेह कर्हिचित् ।
यद्यद्धि कुरुते किञ्चित्तत्तत्कामस्य चेष्टितम् ॥४॥

* नित्य का पंचमहायज्ञ ।

(४) इच्छा के बिना कोई कार्य नहीं होता। जो कुछ होता है, सब इच्छा ही से होता है।

तेषु सम्यग्वर्त्तमानो गच्छत्यमरलोकताम् ।
यथा सङ्कल्पितांश्चेह सर्वान्कामान्समश्नुते ॥५॥

(५) यदि इच्छा रहित कोई कार्य करे तो मुक्ति प्राप्त हो और सांसारिक इच्छा की भी पूर्ति होवे।

वेदोऽखिलो धर्ममूलं स्मृतिशीले च तद्विदाम् ।
आचारश्चैव साधूनामात्मनस्तुष्टिरेव च ॥ ६ ॥

(६) वेद का वचन, वेदज्ञाताओं का वचन, कर्म, साधारण लोगों का कर्म और वह कर्म जिसके करने से चित्त शान्त हो, यह सब धर्म के मूल हैं।

यः कश्चित्कस्यचिद्धर्मो मनुना परिकीर्तितः ।
स सर्वोऽभिहितो वेदे सर्वज्ञानमयो हि सः ॥७॥

(७) सब बातों के ज्ञाता मनुजी ने जिसका जो धर्म इस शास्त्र में कहा है, वह सब वेद में है।

सर्वं तु समवेक्ष्येदं निखिलं ज्ञानचक्षुषा ।
श्रुतिप्रामाण्यतो विद्वान्स्वधर्मे निविशेत वै ॥८॥

(८) प्रत्येक पुरुष को वेद और शास्त्र को ज्ञान दृष्टि से देखना और उन पर विश्वास रखना चाहिए तथा अपने धर्म पर दृढ़व्रत रखना चाहिये।

श्रुतिस्मृत्युदितं धर्ममनुतिष्ठन्हि मानवः ।
इह कीर्तिमवाप्नोति प्रेत्य चानुत्तमं सुखम् ॥९॥

(९) जो पुरुष वेद तथा शास्त्रों में वर्णित धर्म पर चलता

है, वह संसार में यश प्राप्त करता है और अन्त (मृत्यु के उपरान्त) मे सर्वदा आनन्द भोग करता है।

श्रुतिस्तु वेदो विज्ञेयो धर्मशास्त्रं तु वै स्मृतिः ।
ते सर्वार्थेष्वमीमांस्ये ताभ्यां धर्मो हि निर्बभौ ॥१०॥

(१०) वेद-शास्त्रों पर व्यर्थ तर्क करके उनके उल्टे अर्थ नहीं लगाने चाहिये, क्योंकि इन्हीं दोनों से धर्म निकला है।

योऽवमन्येत ते मूले हेतुशास्त्राश्रयाद्द्विजः ।
स साधुभिर्बहिष्कार्यो नास्तिको वेदनिन्दकः ॥११॥

(११) जो मनुष्य झूँठे और अनुचित तर्क द्वारा वेद और शास्त्रों का अनादर करता है, वह नास्तिक है, उसको साधु लोग अपनी मण्डली से बाहर करदें।

वेदः स्मृतिः सदाचारः स्वस्य च प्रियमात्मनः ।
एतच्चतुर्विधं प्राहुः साक्षाद्धर्मस्य लक्षणम् ॥१२॥

(१२) वेद, शास्त्र, सदाचार और अच्छे पुरुषों की कार्य्य-प्रणाली, जिससे अपने चित्त को सत्य तथा पूर्ण विश्वास हो, यह चारों धर्म के लक्षण हैं।

अर्थकामेष्वसक्तानां धर्मज्ञानं विधीयते ।
धर्मं जिज्ञासमानानां प्रमाणं परमं श्रुतिः ॥१३॥

(१३) अर्थ और काम की जिसको इच्छा नहीं है, उसको धर्म और ज्ञान का अधिकार है। जिसको धर्म जानने की इच्छा है, उसको केवल वेद ही प्रमाण है।

श्रुतिद्वैधं तु यत्र स्यात्तत्र धर्मावुभौ स्मृतौ ।
उभावपि हि तौ धर्म्मौ सम्यगुक्तौ मनीषिभिः ॥१४॥

(१४) जिस कार्य के करने में वेद की दो प्रकार की

आज्ञायें हैं, उसमे दोनो आज्ञायें मान्य हैं। इस बात को पंडितों ने भले प्रकार (उत्तम रीति) से कहा है।

उदितेऽनुदिते चैव समयाध्युषिते तथा ।
सर्वथा वर्त्तते यज्ञं इतीयं वैदिकी श्रुतिः ॥१५॥

(१५) सूर्य्योदय मे, सूर्य्यास्त में और सूर्य और नक्षत्र के न होने में, इन तीनों समयों में हवन करने को वेद की आज्ञा है। प्रातः का यज्ञ सूर्योदय से प्रथम और सायंकाल का हवन सूर्य की उपस्थिति में करे, यदि विलम्ब हो जावे तो नक्षत्रोदय से प्रथम करना चाहिये।

निषेकादिश्मशानान्तो मन्त्रैर्यस्योदितो विधिः ।
तस्य शास्त्रेऽधिकारोऽस्मिन्ज्ञेयो नान्यस्य कस्यचित्१६

(१६) जन्म से मरण पर्यन्त जिसका संस्कार मन्त्र से होता है अर्थात् ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य इन्हीं तीनों वर्णों का अधिकार इस शास्त्र में जानना और किसी का अधिकार न जानना।

सरस्वती दृषद्वीत्योर्देवनद्योर्यदन्तरम् ।
तं देवनिर्मितं देशं ब्रह्मावर्त्तं प्रचक्षते ॥१७॥

(१७) देवताओं की नदी जो सरस्वती और दृशद्वती हैं उनके मध्य के देश को ब्रह्मावर्त कहते हैं।

तस्मिन्देशे य आचारः पारम्पर्य्यक्रमागतः
वर्णानां सान्तरालानां स सदाचार उच्यते ॥१८॥

(१८) इस देश में सब वर्णों और आश्रमों का आचार जो परम्परा से क्रमानुसार चला आता है और जिसे वर्णसङ्करों से आचार निषेध कहा है, वह सदाचार कहलाता है।

कुरुक्षेत्रं च मत्स्याश्च पाञ्चाला शूरसेनका: ।
एष ब्रह्मर्षि देशो वै ब्रह्मावर्त्तादनन्तरः ॥ १६ ॥

(१६) ब्रह्मावर्त के समीप कुरुक्षेत्र, मत्स्य ❀, पाञ्चाल, शूरसेनक यह सब देश ब्रह्मर्षियों के हैं।

एतद्देशप्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः ।
स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्वमानवाः ॥२०॥

(२०) सारी पृथ्वी के सब मनुष्य अपनी उत्पत्ति तथा आचार इस देश के वासी ब्राह्मणों से जानें।

हिमवद्विन्ध्ययोर्मध्ये यत्प्राग्विनशनादपि ।
प्रत्यगेव प्रयागाच्च मध्यदेशः प्रकीर्त्तितः ॥२१॥

(२१) हिमाञ्चल और विन्ध्याचल के मध्य + वश के पूर्व और प्रयाग के पश्चिम मध्यदेश कहलाता है।

आसमुद्रात्तु वै पूर्वादासमुद्रात्तु पश्चिमात् ।
तयोरेवान्तरं गिर्योरार्य्यावर्त्तं विदुर्बुधाः ॥२२॥

(२२) पूर्वी समुद्र से पश्चिमी समुद्र पर्यन्त और हिमाञ्चल और विन्ध्याचल का मध्य आर्य्यावर्त कहलाता है।

कृष्णसारस्तु चरति मृगो यत्र स्वभावत ।
स ज्ञेयो यज्ञियो देशो म्लेच्छदेशस्त्वतः पर. ॥२३॥

❀ भदावर।
❀ थानेश्वर के उत्तर पश्चिम हिमालय पहाड़ और चम्बल नदी के मध्य का देश।
+ हिसार के समीप।

(२३) काला मृग (हिरन) अपने स्वभाव से जिस देश में रहे वह देश यज्ञ करने के योग्य है। उसके आगे म्लेच्छ देश है।

एतान् द्विजातयो देशान् संश्रयेरन् प्रयत्नतः।
शूद्रस्तु यस्मिन्कस्मिन्वा निवसेद्वृत्तिकर्षितः ॥२४॥

(२४) ब्राह्मण, क्षत्रिय व वैश्य प्रयत्न सहित इस देश मे रहें और शूद्र वृत्ति की कठिनता के कारण चाहे जिस देश में रहे।

एषा धर्मस्य वो योनि समासेन प्रकीर्तिता।
संभवश्चास्य सर्वस्य वर्णधर्मान्निबोधत ॥२५॥

(२५) भृगुजी कहते हैं कि हे ऋषि लोगों! आप से सब की उत्पत्ति और धर्म को वर्णन किया। अब वर्णों का धर्म कहते हैं—

वैदिकैः कर्मभिः पुण्यैर्निषेकादिर्द्विजन्मनाम्।
कार्यः शरीरसंस्कारः पावनः प्रेत्य चेह च ॥२६॥

(२६) ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य को गर्भाधान आदि शारीरिक संस्कार लोक और परलोक में पवित्र करने वाले हैं। इस हेतु इन सस्कारों को करना चाहिये।

गार्भैर्होमैर्जातकर्म चौडमौञ्जीनिबन्धनैः।
बैजिकं गार्भिकं चैनो द्विजानामपमृज्यते ॥२७॥

(२७) गर्भसंस्कार, जातकर्म, मुण्डन, उपनयन इन सस्कारों से ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्य के बीज का दोष और गर्भ का दोष छूट जाता है।

स्वाध्यायेन व्रतैर्होमैस्त्रैविद्येनेज्यया सुतैः।
महायज्ञैश्च यज्ञैश्च ब्राह्मीयं क्रियते तनुः ॥२८॥

(२८) वेद पढ़ना, व्रत, हवन, त्रैविध, नाग व्रत, देवर्षि, पितरों का तर्पण, पुत्रोत्पत्ति, महायज्ञ, यज्ञ इन सब कर्मों से शरीर मोक्ष पाने के योग्य होता है।

प्राङ्नाभिवर्धनात्पुंसो जातकर्म विधीयते ।
मन्त्रवत्प्राशनं चास्य हिरण्यमधुसर्पिषाम् ॥२९॥

(२९) नाक छेदन से पहले जातकर्म होता है उसमें मन्त्र पढ़कर सोने के वर्क व शहद तथा घी बालक को खिलाना चाहिये।

नामधेयं दशम्यां तु द्वादश्यां वाऽस्य कारयेत् ।
पुण्ये तिथौ मुहूर्ते वा नक्षत्रे वा गुणान्विते ॥३०॥

(३०) जन्म से ग्यारहवें या बारहवें दिन नामकरण करना चाहिये। यदि इन दिनों में न हो सके तो और किसी उत्तम तिथि, नक्षत्र तथा दिन में करना चाहिये।

मङ्गल्यं ब्राह्मणस्य स्यात्क्षत्रियस्य बलान्वितम् ।
वैश्यस्य धनसंयुक्तं शूद्रस्य तु जुगुप्सितम् ॥३१॥

(३१) ब्राह्मण के नाम में मंगल शब्द (अर्थात् प्रसन्नता, आनन्द) और क्षत्रिय के नाम में बल शब्द (अर्थात् शक्ति) और वैश्य के नाम में धन शब्द (अर्थात् सम्पत्ति) और शूद्र के नाम में नन्द शब्द (अर्थात् सेवक) संयुक्त करना चाहिये।

शर्मवद्ब्राह्मणस्य स्याद्राज्ञो रक्षा समन्वितम् ।
वैश्यस्य पुष्टिसंयुक्तं शूद्रस्य प्रेष्यसंयुतम् ॥३२॥

(३२) ब्राह्मण, क्षत्रिय, शूद्र इनके नाम के अन्त में शर्म्मा, रक्षा पुष्टि और प्रेष्य क्रमानुसार संयुक्त करना चाहिये।

स्त्रीणां सुखोद्यमक्रूरं विस्पष्टार्थं मनोहरम् ।
मङ्गल्यं दीर्घवर्णान्तमाशीर्वादाभिधानवत् ॥ ३३ ॥

(३३) स्त्री का नाम ऐसा रखना चाहिए कि जो मनोहर हो और कोमल, सरल, प्रिय, मङ्गल (आनन्द) और आशीर्वाद के अर्थ रखता हो और अन्त का वर्ण (अक्षर) दीर्घ हो ।

चतुर्थेमासि कर्त्तव्यं शिशोर्निष्क्रमणं गृहात् ।
षष्ठेऽन्नप्राशनं मासितद्वेष्टं मंगलं कुले ॥ ३४ ॥

(३४) चौथे मास (महीने) लड़के को घर से बाहर निकालना चाहिए और छठे मास में या जिस महीने में अपने कुल की रीति हो अन्नप्राशन करना चाहिए।

चूडाकर्म द्विजातीनां सर्वेषामेव धर्मतः ।
प्रथमेऽब्दे तृतीये वा कर्त्तव्यं श्रुतिचोदनात् ॥३५॥

(३५) ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य इन सबका चूड़ाकर्म अर्थात् मुण्डन पहले या तीसरे वर्ष करना चाहिए यह वेदाज्ञा है ।

गर्भाष्टमेऽब्दे कुर्वीत ब्राह्मणस्योपनायनम् ।
गर्भादेकादशे राज्ञो गर्भात्तु द्वादशे विशः ॥३६॥

(३६) गर्भाधान-तिथि, अथवा जन्म तिथि से आठवें, ग्यारहवें, वा बारहवें वर्ष क्रमानुसार ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य का उपनयन (जनेऊ) करना चाहिए और जिसका जनेऊ न हो वह शूद्र कह लावेगा क्योंकि द्विज बनाने वाला संस्कार यही है ।

ब्रह्मवर्चसकामस्य कार्यं विप्रस्य पञ्चमे ।
राज्ञो बलार्थिनः षष्ठे वैश्यस्येहार्थिनोऽष्टमे ॥३७॥

(३७) ब्रह्मतेज, बल, और धन की इच्छा हो तो ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य क्रमानुसार पाँचवें, छठे और आठवें वर्ष जनेऊ करें

आषोडशाद्ब्राह्मणस्य सावित्री नातिवर्तते ।
आद्वाविंशात्क्षत्रबन्धोराचतुर्विंशतेर्विशः ॥ ३८ ॥

(३८) सोलह, बाइस, चौबीस वर्ष पर्य्यन्त क्रमानुसार ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य गायत्री (सावित्री) के अधिकारी रहते हैं।

अत ऊर्ध्वं त्रयोऽप्येते यथाकालमसंस्कृताः ।
सावित्री पतिता व्रात्या भवन्त्यार्यविगर्हिताः ॥३९॥

(३९) इसके पश्चात् तीनों वर्ण उसके अधिकारी नहीं रहते। तब उनका नाम व्रात्य कहलाता है। और आर्य्य लोग उनको विगर्हित (बुरा) कहते हैं।

नैतैरपूतैर्विधिवदापद्यपि हि कर्हिचित् ।
ब्राह्मान्यौनांश्च संबन्धानाचरेद्ब्राह्मणः सह ॥ ४० ॥

(४०) जब तक ऐसे ब्राह्मण प्रायश्चित्त (अर्थात् विधिवत् पाप से मुक्त होने का पश्चाताप या दण्ड) न करें तब तक उनके साथ पढ़ने पढ़ाने विवाहादि का व्यवहार न करे।

कार्ष्णरौरवबास्तानि चर्माणि ब्रह्मचारिणः ।
वसीरन्नानुपूर्व्येण शाणक्षौमाविकानि च ॥ ४१ ॥

(४१) अब तीनों वर्णों के ब्रह्मचारियों का चमड़ा आदि पहनना कहते हैं। कृष्णमृग कालाहिरन) रुरुनामक मृग (हिरन) बकरे का चमड़ा ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य क्रमानुसार शरीर के ऊपरी भाग में और सन, तीसी और भेड़ के सूत का कपड़ा निम्न शरीर (शरीर के नीचे के भाग) में धारण करे।

मौञ्जी त्रिवृत्समा श्लक्ष्णा कार्या विप्रस्य मेखला ।
क्षत्रियस्यतु मौर्वी ज्या वैश्यस्य शणतान्तवी ॥४२॥

(४२) ब्राह्मण को मूंज की तीन लड़की मेखला, क्षत्रिय

को मूर्वा की दो लड़ की मेखला, और वैश्य को सन की तीन लड़ की मेखला धारण करना चाहिये।

मुञ्जालाभे तु कर्तव्याः कुशाश्मन्तकबल्वजैः।
त्रिवृता ग्रन्थिनैकेन त्रिभिः पञ्चभिरेव वा ॥ ४३ ॥

(४३) यदि मूंज और मूर्वा और सन न मिले तो कुश, मेढ़ और वल्वज की तीन लड़ की मेखला करना चाहिये और एक वा तीन वा पांच गांठ की करना चाहिये। कुल की रीत्यानुसार करे। यह नहीं कि ब्राह्मण एक, क्षत्रिय तीन और वैश्य पांच गांठ की रक्खे।

कार्पासमुपवीतं स्याद्विप्रस्योर्ध्ववृतं त्रिवृत्।
शणसूत्र मयं राज्ञो वैश्यस्याविकसौत्रिकम् ॥४४॥

(४४) ब्राह्मण को कपास का (जनेऊ) उपवीत, क्षत्रिय को सन का उपवीत (जनेऊ) और वैश्य को भेड़ के बालों का जनेऊ पहनना चाहिये। सो इस प्रकार कि तिगुना करके फिर तिगुना करना।

ब्राह्मणो बैल्वपालाशौ क्षत्रियो वाटखादिरौ।
पैलवोदुम्बरौ वैश्यो दण्डानर्हन्ति धर्मतः ॥४५॥

(४५) ब्राह्मण बेल या पलाश (ढाक) का दण्ड धारण करे, क्षत्रिय बड़ (बरगद) या खैर का दण्ड धारण करे और वैश्य उदुम्बर (गूलर) वा पैलू का दण्ड धारण करे।

केशान्तिको ब्राह्मणस्य दण्डः कार्यः प्रमाणतः।
ललाटसमितो राज्ञः स्यात्तु नासान्तिको विशः ॥४६॥

(४६) शिर के बालों तक का ब्राह्मण, ललाट (पेशानी, मत्था) तक का क्षत्रिय, वैश्य नाक तक के दण्ड को धारण करे।

अप्रवस्ते तु सर्वे स्युरव्रणाः सौम्यदर्शनाः ।
अनुद्वेगकरा नृणां सत्वचो नाग्निदूषिताः ॥ ४७ ॥

(४७) सब दण्ड कोमल, शुद्ध, छिद्र-रहित (बिना छेद का) और सौम्य दर्शन (देखने में सुन्दर) हों, भद्दे (कुरूप) और अग्नि से जले के दाग वाले न हों।

प्रतिगृह्योप्सितं दण्डमुपस्थाय च भास्करम् ।
प्रदक्षिणं परीत्याग्निं चरेद्भैक्षं यथाविधि ॥ ४८ ॥

(४८) दण्ड धारण करके सूर्य के सम्मुख होकर अग्नि की प्रदक्षिणा (परिक्रमा) करके निम्नलिखित शास्त्र की विधि से भिक्षा माँगे।

भवत्पूर्वं चरेद्भैक्षमुपनीतो द्विजोत्तमः ।
भवन्मध्यं तु राजन्यो वैश्यस्तु भवदुत्तरम् ॥ ४९ ॥

(४९) ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तीनों वर्ण के ब्रह्मचारी भिक्षा मांगने के वाक्य में क्रमानुसार आदि, मध्य और अन्त में भवत् शब्द को कहेंगे।

मातरं वा स्वसारं वा मातुर्वा भगिनीं निजाम् ।
भिक्षेत भिक्षां प्रथमं या चैनं नावमानयेत् ॥ ५० ॥

(५०) पहले माता, बहन, मौसी से भिक्षा माँगे, और जो ब्रह्मचारी का अपमान न करे उससे भी भिक्षा मांगे।

समाहृत्य तु तद्भैक्षं यावदन्नममायया ।
निवेद्य गुरवेऽश्नीयादाचम्य प्राङ्मुखः शुचिः ॥५१॥

(५१) निश्चय होकर भिक्षा (भीख) माँगकर गुरुजी के सम्मुख (पास) रखे। तत्पश्चात् उनकी आज्ञा पर आचमन करके पवित्र होकर पूर्वाभिमुख (पूर्व की ओर मुँह करके) बैठ कर भोजन करे।

आयुष्यं प्राङ्मुखो भुङ्क्ते यशस्यं दक्षिणामुखः ।
श्रियं प्रत्यङ्मुखो भुङ्क्ते ऋतं भुङ्क्ते ह्युदङ्मुखः॥५

(५२) पूर्व, दक्षिण, पश्चिम, उत्तर की ओर मुँह कर भोजन करने से क्रमानुसार आयु, यश, लक्ष्मी, सत्यता की वृद्धि होती है।

उपस्पृश्य द्विजो नित्यमन्नमद्यात्समाहितः ।
भुक्त्वा चोपस्पृशेत्सम्यगद्भिः खानि च संस्पृशेत्॥५४॥

(५३) नित्य चित्त को एकाग्र करके आचमन करने के पश्चात् भोजन करे। भोजनोपरान्त (भोजन के पश्चात्) आचमन करे और इन्द्रियों को पानी से प्रक्षाले (छुए, धोए)।

पूजयेदशनं नित्यमद्याच्चैतदकुत्सयन् ।
दृष्ट्वा हृष्येत्प्रसीदेच्च प्रतिनन्देच्च सर्वशः ॥ ५४ ॥

(५४) नित्य अन्न की पूजा करे और अन्न का अपमान न करे और अन्न को देखकर प्रसन्न चित्त हो यह कह कर कि हमको सदैव ऐसा अन्न मिले, भोजन करे।

पूजितं ह्यशनं नित्यं बलमूर्जं च यच्छति ।
अपूजितं तु तद्भुक्तमुभयं नाशयेदिदम् ॥ ५५ ॥

(५५) अन्न की पूजा करने से तेज और इन्द्रिय शक्ति दोनों की वृद्धि होती है । और पूजा न करने से इन्हीं दोनों का नाश हो जाता है।

नोच्छिष्टं कस्यचिद्दद्यान्नाद्याच्चैव तथान्तरा ।
न चैवात्यशनं कुर्यान्नचोच्छिष्टःक्वचिद्व्रजेत् ॥५६॥

(५६) जूठा किसी को न दे, सन्धि समय (दिन रात

के मध्य के समय भोजन न करे, बहुत भोजन न करे, झूँठे मुँह कहीं न जाये।

अनारोग्यमनायुष्यमस्वर्ग्यं चाति भोजनम् ।
अपुण्यं लोकविद्विष्टं तस्मात्तत्परिवर्जयेत् ॥ ५७ ॥

(५७) बहुत भोजन करना, आयु, आरोग्यता, स्वर्ग और पुण्य के हेतु नहीं हैं और संसार में अपयश का कारण है।

ब्राह्मेण विप्रस्तीर्थेन नित्यकालमुपस्पृशेत् ।
कायत्रैदशिकाभ्यां वा न पित्र्येण कदाचन ॥ ५८ ॥

(५८) ब्राह्मणसदैव ब्रह्मतीर्थ से आचमन करे। देवतीर्थ, पित्रतीर्थ और प्रजापत्-तीर्थ से आचमन न करे।

अङ्गुष्ठमूलस्य तले ब्राह्मं तीर्थं प्रचक्षते ।
कायमङ्गुलिमूलऽग्रे दैवं पित्र्यं तयोरधः ॥ ५९ ॥

(५९) १—अँगूठा, २—तर्जनी, ३—कनिष्ठा इन तीनों का मूल क्रम से ब्रह्म, देव, पितर, और प्रजापति तीर्थ कहलाता है

त्रिराचामेदपः पूर्वं द्विः प्रमृज्यात्ततो मुखम् ।
खानि चैव स्पृशेदद्भिरात्मानं शिर एव च ॥ ६० ॥

(६०) पहले तीन बार आचमन करे, पश्चात् दो बार मुँह धोवे और नाक, कान, आँख, मुँह, छाती, सर को पानी से छुये।

अनुष्णाभिरफेनाभिरद्भिस्तीर्थेन धर्मवित् ।
शौचेप्सुः सर्वदाचामेदेकान्ते प्रागुदङ्मुखः ॥ ६१॥

(६१) पूर्व मुँह या उत्तर मुँह होकर फेन रहित शोपण जल से जलशून्य स्थान में पवित्रता और शुद्धता से आचमन करे।

आयुष्यं प्राङ्मुखो भुङ्क्ते यशस्यं दक्षिणामुखः ।
श्रियं प्रत्यङ्मुखो भुङ्क्ते ऋतं भुङ्क्ते ह्युदङ्मुखः॥५२॥

(५२) पूर्व, दक्षिण, पश्चिम, उत्तर की ओर मुँह करके भोजन करने से क्रमानुसार आयु, यश, लक्ष्मी, सत्यता की वृद्धि होती है।

उपस्पृश्य द्विजो नित्यमन्नमद्यात्समाहितः ।
भुक्त्वा चोपस्पृशेत्सम्यगद्भिः खानि च संस्पृशेत्॥५३॥

(५३) नित्य चित्त को एकाग्र करके आचमन करने के पश्चात् भोजन करे। भोजनोपरान्त (भोजन के पश्चात्) आचमन करे और इन्द्रियों को पानी से प्रक्षाले (धुए, धोए)।

पूजयेदशनं नित्यमद्याच्चैतदकुत्सयन् ।
दृष्ट्वा हृष्येत्प्रसीदेच्च प्रतिनन्देच्च सर्वशः ॥ ५४ ॥

(५४) नित्य अन्न की पूजा करे और अन्न का अपमान न करे और अन्न को देखकर प्रसन्न चित्त हो यह कह कर कि हमको सदैव ऐसा अन्न मिले, भोजन करे।

पूजितं ह्यशनं नित्यं बलमूर्जं च यच्छति ।
अपूजितं तु तद्भुक्तमुभयं नाशयेदिदम् ॥ ५५ ॥

(५५) अन्न की पूजा करने से तेज और इन्द्रिय शक्ति दोनों की वृद्धि होती है। और पूजा न करने से इन्हीं दोनों का नाश हो जाता है।

नोच्छिष्टं कस्यचिद्दद्यान्नाद्याच्चैव तथान्तरा ।
न चैवात्यशनं कुर्यान्नचोच्छिष्टःक्वचिद्व्रजेत् ॥५६॥

(५६) जूठा किसी को न दे, सन्धि समय (दिन रात

के मध्य के समय भोजन न करे, बहुत भोजन न करे, झूँठे मुँह कहीं न जावे।

अनारोग्यमनायुष्यमस्वर्ग्यं चाति भोजनम् ।
अपुण्यं लोकविद्विष्टं तस्मात्तत्परिवर्जयेत् ॥ ५७ ॥

(५७) बहुत भोजन करना, आयु, आरोग्यता, स्वर्ग और पुण्य के हेतु नहीं हैं और ससार मे अपयश का कारण है।

ब्राह्मेण विप्रस्तीर्थेन नित्यकालमुपस्पृशेत् ।
कायत्रैदशिकाभ्यां वा न पित्र्येण कदाचन ॥ ५८ ॥

(५८) ब्राह्मणसदैव ब्रह्मतीर्थ से आचमन करे। देवतीर्थ, पित्रतीर्थ और प्रजापत्-तीर्थ से आचमन न करे।

अङ्गुष्ठमूलस्य तले ब्राह्मं तीर्थं प्रचक्षते ।
कायमङ्गुलिमूलेऽग्रे दैवं पित्र्यं तयोरधः ॥ ५९ ॥

(५९) १—अँगूठा, २—तर्जनी, ३—कनिष्ठा इन तीनों का मूल क्रम से ब्रह्म, देव, पितर, और प्रजापति तीर्थ कहलाता है

त्रिराचामेदपः पूर्वं द्विः प्रमृज्यात्ततो मुखम् ।
खानि चैव स्पृशेदद्भिरात्मानं शिर एव च ॥ ६० ॥

(६०) पहले तीन वार आचमन करे, पश्चात् दो वार मुँह धोवे और नाक, कान, आँख, मुँह, छाती, सर को पानी से छुवे।

अनुष्णाभिरफेनाभिरद्भिस्तीर्थेन धर्मवित् ।
शौचेप्सुः सर्वदाचामेदेकान्ते प्रागुदङ्मुखः ॥ ६१॥

(६१) पूर्व मुँह या उत्तर मुँह होकर फेन रहित शोषण जल से जलशून्य स्थान में पवित्रता और शुद्धता से आचमन करे।

ह्रद्गाभिः पूयते विप्रः कण्ठगाभिस्तु भूमिपः ।
वैश्योऽद्भिःप्राशिताभिस्तु शूद्रः स्पृष्टाभिरन्ततः ॥६२॥

(६२) आचमन करने में ब्राह्मण छाती तक, क्षत्रिय गले तक, वैश्य जिह्वा (जीभ) तक और शूद्र ओंठ तक जल पहुँचावें।

उद्धृते दक्षिणे पाणावुपवीत्युच्यते द्विजः ।
सव्ये प्राचीनआवीती निवीती कण्ठसज्जने ॥ ६३ ॥

(६३) वाम (बायें) कन्धे पर जनेऊ रहने से उपवीती अर्थात् सव्य कहलाता है और दक्षिण (दाहिने) कन्धे पर रहने से प्राचीन आवीती अर्थात् अपसव्य कहलाता है और कण्ठ (गले) में रहने से निवीती कहलाता है।

मेखलामजिनं दण्डमुपवीतं कमण्डलुम् ।
अप्सु प्रास्य विनष्टानि गृह्णीतान्यानि मन्त्रवत् ॥६४॥

(६४) मेखला, चमड़ा, दण्ड, जनेऊ, कुण्डल ये सब टूट जावें तो जल में दे और मन्त्र द्वारा नया धारण करले।

केशान्तः षोडशे वर्षे ब्राह्मणस्य विधीयते ।
राजन्यबन्धोर्द्वाविंशे वैश्यस्य द्व्यधिके ततः ॥ ६५ ॥

(६५) ब्राह्मण को केशान्त कर्म गर्भ से सोलहवें वर्ष, क्षत्रिय को बाइसवें वर्ष और वैश्य को चौबीसवें वर्ष करना चाहिए।

"अमन्त्रिका तु कार्येयं स्त्रीणामावृदशेषतः ।
संस्कारार्थं शरीरस्य यथाकाल यथाक्रमम" ॥ ६६ ॥

(६६) + स्त्रियों के यह सब संस्कार बिना मन्त्र के

+ यह श्लोक बहुत थोड़े दिन का मिलाया हुआ है। क्यों कि ऋद्धिविकार है।

(७१) नित्य पाठारम्भ और पाठान्त पर दोनों हाथों से गुरु के चरण छुए और गुरु की आज्ञा का पालन करे।

व्यत्यस्तपाणिना कार्यमुपसंग्रहणं गुरोः।
सव्येन सव्यः स्प्रष्टव्यो दक्षिणेन च दक्षिणः ॥७२॥

(७२) गुरु के सम्मुख जाकर दाहिने हाथ से दाहिने पाँव और बायें हाथ से बायें पाँव को छुए।

अध्येष्यमाणं तु गुरुर्नित्यकालमतन्द्रितः।
अधीष्व भो इति ब्रूयाद्विरामोऽस्त्विति चारमेत् ॥७३॥

(७३) गुरु आज्ञा दे तब शिष्य पढ़े और जब चुप रहने को कहे तब चुप रहे। तात्पर्य यह है कि गुरु-आज्ञा से पढ़े और चुप रहे अर्थात् गुरु की आज्ञा बिना कोई कार्य न करे।

ब्रह्मणः प्रणवं कुर्यादादावन्ते च सर्वदा।
स्रवत्यनोंकृते पूर्वं पुरस्ताच्च विशीर्यति ॥ ७४ ॥

(७४) पाठ के आरम्भ और अन्त में प्रणव (ओंकार) कहे। यदि न कहे तो पढ़ा हुआ विस्मृत (भूल) हो जाता है।

प्राक्कूलान्पर्युपासीनः पवित्रैश्चैव पावितः।
प्राणायामैस्त्रिभिः पूतस्तत ओङ्कारमर्हति ॥ ७५ ॥

(७५) पूर्वाभिमुख कुशासन पर बैठकर पवित्र मन्त्र से पवित्र होकर तीन बार प्राणायाम करे तब ओंकार जपने (कहने) योग्य होता है।

त्रिभ्य एव तु वेदेभ्य पादं पादमदूदुहत् ।
तदित्यृचाऽस्याः सावित्र्या परमेष्ठी प्रजापति ॥७७॥

(७७) इन्हीं ※ तीन वेदों से ब्रह्माजी ने गायत्री मन्त्र के तीन पाद निकाले हैं।

एतदक्षरमेतां च जपन्व्याहृति पूर्विकाम् ।
सन्ध्ययोर्वेदविद्विप्रो वेदपुण्येन युज्यते ॥७८॥

(७८) ॐ भूर्भुवः स्वः इसको और गायत्री के तीनों चरणों को दोनों समय की संध्या में वेद पढ़ने वाला ब्राह्मण जप ले तो सब धर्म के फल को प्राप्त कर लेता है।

सहस्रकृत्वस्त्वभ्यस्य बहिरेतत्त्रिकंद्विजः ।
महतोऽप्येनसो मासात्त्वचेवाहिर्विमुच्यते ॥७९॥

(७९) बाहर जाकर इन्हीं तीनों को अर्थ सहित एक हजार बार एक मास तक जप करे [पढ़े] तो बड़े पाप अर्थात् अज्ञान से छूट जाता है—जैसे सांप कैंचुली से छूटता है।

एतयर्चा विसंयुक्तः काले च क्रियया स्वया ।
ब्रह्मक्षत्रियविश्योनिर्गर्हणां याति साधुषु ॥८०॥

(८०) जो ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य इन तीनों को अपने समय पर नहीं जपता है उसको साधु लोग निन्दा करते हैं। क्योंकि वह उस ज्ञान से शून्य है जो जीव का धर्म है।

ओंकारपूर्विकास्तिस्रो महाव्याहृतयोऽव्ययाः ।
त्रिपदा चैव सावित्री विज्ञेयं ब्रह्मणोमुखम् ॥८१॥

※ ऋग्वेद से अर्थ सतवती अर्थात् पदार्थ प्रशंसा वर्णनसे है, और यजुर्वेद में यज्ञ अर्थात् पदार्थों के संयुक्त करने की विध और सामवेद में यज्ञों की उच्चता को बताने वाली गायत्री है।

(७१) नित्य पाठारम्भ और पाठान्त पर दोनों हाथों से गुरु के चरण छुए और गुरु की आज्ञा का पालन करे।

व्यत्यस्तपाणिना कार्यमुपसंग्रहणं गुरोः।

सव्येन सव्यः स्पृष्टव्यो दक्षिणेन च दक्षिणः ।७२।

(७२) गुरु के सम्मुख जाकर दाहिने हाथ से दाहिने पाँव और बायें हाथ से बायें पाँव को छुए।

अध्येष्यमाणं तु गुरुर्नित्यकालमतन्द्रितः।

अधीष्व भो इति ब्रूयाद्विरामोऽस्त्वतिचारमेत् ॥७३॥

(७३) गुरु आज्ञा दे तब शिष्य पढ़े और जब चुप रहने को कहे तब चुप रहे। तात्पर्य यह है कि गुरु-आज्ञा से पढ़े और चुप रहे अर्थात् गुरु की आज्ञा बिना कोई कार्य न करे।

ब्रह्मणः प्रणवं कुर्यादादावन्ते च सर्वदा।

स्रवत्यनोंकृते पूर्वं पुरस्ताच्च विशीर्यति ॥ ७४ ॥

(७४) पाठ के आरम्भ और अन्त में प्रणव (ओंकार) कहे। यदि न कहे तो पढ़ा हुआ विस्मृत (भूल) हो जाता है।

प्राक्कूलान्पर्युपासीनः पवित्रैश्चैव पावितः।

प्राणायामैस्त्रिभिः पूतस्तत ओङ्कारमर्हति ॥ ७५ ॥

(७५) पूर्वाभिमुख कुशासन पर बैठकर पवित्र मन्त्र से पवित्र होकर तीन बार प्राणायाम करे तब ओंकार जपने (कहने) योग्य होता है।

अकारं चाप्युकारं च मकारं च प्रजापतिः।

वेदत्रयान्निरदुहद् भूर्भुवःस्वरितीति च ॥ ७६ ॥

(७६) अकार, उकार, मकार, तीनों अक्षरों को और भूर्भुवःस्वः इनको भी ब्रह्माजी ने तीनों वेदों से निकाला है।

त्रिभ्य एव तु वेदेभ्य पादं पादमदूदुहत् ।
तदित्य चाऽस्याः साविन्याःपरमेष्ठी प्रजापति ॥७७॥

(७७) इन्हीं ❀ तीन वेदों से ब्रह्माजी ने गायत्री मन्त्र के तीन पाद निकाले हैं।

एतदक्षरमेतां च जपन्व्याहृति पूर्विकाम् ।
सन्ध्ययोर्वेदविद्विप्रो वेदपुण्येन युज्यते ॥७८॥

(७८) ॐ भूर्भुवः स्वः इसको और गायत्री के तीनों चरणों को दोनों समय की संध्या में वेद पढ़ने वाला ब्राह्मण जप ले तो सब धर्म के फल को प्राप्त कर लेता है।

सहस्रकृत्वस्त्वभ्यस्य बहिरेतत्त्रिकंद्विजः ।
महतोऽप्येनसो मासात्त्वचेवाहिर्विमुच्यते ॥७९॥

(७९) बाहर जाकर इन्हीं तीनों को अर्थ सहित एक हजार बार एक मास तक जप करे [पढ़े] तो बड़े पाप अर्थात् अज्ञान से छूट जाता है—जैसे साँप कैंचुली से छूटता है।

एतयर्चा विसंयुक्तः काले च क्रियया स्वया ।
ब्रह्मक्षत्रियविश्योनिर्गर्हणां याति साधुषु ॥८०॥

(८०) जो ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य इन तीनों को अपने समय पर नहीं जपता है उसको साधु लोग निन्दा करते हैं। क्योंकि वह उस ज्ञान से शून्य है जो जीव का धर्म है।

ओंकारपूर्विकास्तिस्रो महाव्याहृतयोऽव्ययाः ।
त्रिपदा चैव सावित्री विज्ञेयं ब्रह्मणोमुखम् ॥८१॥

❀ ऋग्वेद से अर्थ सतवती अर्थात् पदार्थ प्रशंसा वर्णनसे है, और यजुर्वेद में यज्ञ अर्थात् पदार्थों के संयुक्त करने की विध और सामवेद में यज्ञों की उच्चता को बताने वाली गायत्री है।

(८१) यही तीनो अर्थात् 'ॐ भूर्भुव स्व' गायत्री वेदका सार है और परमात्मा की प्राप्ति का द्वार है। क्योंकि शुद्धबुद्धि बिना ज्ञान नहीं हो सकता और इस गायत्री से ज्ञान होता है।

योऽधीतेऽहन्यहन्येतांस्त्रीणि वर्षाण्यतन्द्रितः।
स ब्रह्मपरमभ्येति वायुभूतः स्वमूर्त्तिमान् ॥ ८२ ॥

(८२) जो मनुष्य आलस्य त्याग तीन वर्ष पर्यंत इन तीनो को जपे वह देवर्षि की नाईं यज्ञ के सत्य २ ज्ञान को प्राप्त होता है।

एकाक्षर परं ब्रह्म प्राणायामः परं तपः।
सावित्र्यास्तु परं नास्ति मौनात्सत्यं विशिष्यते ॥८३॥

(८३) ॐ यह परब्रह्म है, प्राणायाम परतप, गायत्री से कोई उच्च नहीं है। मूक (चुप) रहने से सत्य बोलना अच्छा है।

क्षरन्ति सर्वा वैदिक्यो जुहोतियजतिक्रियाः।
अक्षरं दुष्कर ज्ञेग ब्रह्मचैव प्रजापतिः ॥ ८४ ॥

(८४) वेद मे लिखित सब क्रिया नाशवान् है। क्योंकि जब तक शरीर है तब तक क्रिया और उसका फल रहता है। केवल ॐ द्वारा उत्पन्न ज्ञान ही सदैव स्थिर है।

विधियज्ञाज्जपयज्ञो विशिष्टो दशभिर्गुणैः।
उपांशु स्याच्छतगुण साहस्रो मानस स्मृतः ॥ ८५ ॥

(८५) यज्ञ से दश गुणा अधिक फल जप मे है और जप से दश गुणा अधिक न्यून शब्द से जिसको कोई न सुन सके इस प्रकार के जप मे है और मन मे किया हुआ जप सहस्र गुणा अधिक फल देने वाला है।

ये पाकयज्ञाश्चत्वारो विधियज्ञ समन्विताः ।
सर्वे ते जपयज्ञस्य कलां नार्हन्ति षोडशीम् ॥८६॥

(८६) और जो चार पाकयज्ञ हैं और विधियज्ञ यह सब जप-यज्ञ के सोलहवें भाग को भी नहीं पहुँचते ।

जप्येनैव तु संसिद्ध्येद्ब्राह्मणो नात्रसंशयः ।
कुर्यादन्यन्नवा कुर्यान्मैत्रो ब्राह्मण उच्यते ॥८७॥

(८७) ब्राह्मण सब जीवों से प्रेम [प्रीति] रक्खे और केवल जप ही को करे तो सब सिद्धि प्राप्त हो सकती है। क्योंकि सब सिद्धियों का मूल मन की एकाग्रता और ज्ञान है।

इन्द्रियाणां विचरतां विषयेष्वपहारिषु ।
संयमे यत्नमातिष्ठेद्विद्वान्यन्तेव वाजिनाम् ॥८८॥

(८८) जिस प्रकार सारथी रथ के घोड़ों को अपने अधिकार से इच्छानुसार चलाता है उसी प्रकार संसार के मनुष्यों को चाहिये कि वह परिश्रम और प्रयत्न करके विषयों से इन्द्रियों का संयम करें [रोकें]—अर्थात् आँख को रूप से, कान को सुनने से और नाक को सुगन्ध से और इसी प्रकार और इन्द्रियों को।

एकादशेन्द्रियाण्याहुर्यानि पूर्वे मनीषिणः ।
तानि सम्यक्प्रवक्ष्यामि यथावदनुपूर्वशः ॥८९॥

(८९) प्राचीन विद्वानों ने जो ग्यारह इन्द्रियाँ बतलाई हैं अब उनको विस्तार-पूर्वक कहता हूं तुम उनको ध्यान से सुनो।

श्रोत्रं त्वक्चक्षुषी जिव्हा नासिका चैव पञ्चमी ।
पायूपस्थं हस्तपादं वाक् चैव दशमी स्मृता ॥९०॥

(९०) १—श्रोत्र (कान), २—त्वक् (खाल), ३—चक्षु (नेत्र, आँखें), ४—जिह्वा (जीभ), ५—नासिका (नाक), ६—६

(हाथ), ७—पाद (पाँव), ८—मूत्रेन्द्रिय, ९—मलेन्द्रिय, १०—वाक् (वाणी) यह दस हैं।

बुद्धीन्द्रियाणि पञ्चैषां श्रोत्रादीन्यनुपूर्वशः।
कर्मेन्द्रियाणि पञ्चैषां पाय्वादीनि प्रचक्षते ॥ ९१ ॥

(९१) इन दस मे से प्रथम की पाँच ज्ञानेन्द्रिय कहलाती हैं और अन्त की पाँच कर्मेन्द्रिय कहलाती हैं।

एकादशं मनो ज्ञेयं स्वगुणेनोभयात्मकम्।
यस्मिन् जिते जितावेतौ भवतः पञ्चकौ गणौ ॥९२॥

(९२) ग्यारहवाँ मन है जो अपने गुणों के कारण द्वारा ज्ञानेन्द्रिय और कर्मेन्द्रिय के नाम से बोला जाता है। मन के जीतने [वश में करने] से शेष दशों इन्द्रियाँ जीती जाती हैं।

इन्द्रियाणां प्रसङ्गेन दोषमृच्छत्यसंशयम्।
सन्नियम्य तु तान्येव ततः सिद्धिं नियच्छति ॥९३॥

(९३) इन्द्रियों के संसर्ग से जीव दुःखी होता है और इन्द्रियों के सम्बन्ध के परित्याग से जीव सिद्धि प्राप्त करता है।

न जातु कामः कामानामुपभोगेन शाम्यति।
हविषा कृष्णवर्त्मेव भूय एवाऽभिवर्धते ॥९४॥

(९४) मनको जिस वस्तु की इच्छा होती है उसके प्राप्त हो जाने पर भी तृप्त नहीं होता किन्तु इच्छा में वृद्धि होती है। जैसे अग्नि में घी पड़ने से वह उत्तरोत्तर प्रदीप्त होती (बढ़ती) है।

यश्चैतान्प्राप्नुयात्सर्वान्यश्चैतान्केवलांस्त्यजेत्।
प्रापणात्सर्वकामानां परित्यागो विशिष्यते ॥९५॥

(९५) जिसके समीप प्रत्येक आवश्यकीय [इच्छित] वस्तु

उपस्थित हैं और जो मनुष्य प्राप्त वस्तुओं को परित्याग कर देता है इन दोनों में से परित्याग कर देने वाला बड़ा है।

न तथैतानि शक्यन्ते संनियन्तुमसेवया ।
विषयेषु प्रजुष्टानि यथा ज्ञानेन नित्यशः ॥९६॥

(९६) इन्छित आवश्यकीय पदार्थों का परित्याग भोग किये विना नहीं होता । क्योंकि भोग करने से जब उनके दोष ज्ञात हो जाते हैं तब उनके परित्याग करने की इच्छा करता है।

वेदास्त्यागश्च यज्ञाश्च नियमाश्च तपांसि च ।
नविप्रदुष्टभावस्य सिद्धिंगच्छन्तिकर्हिचित् ॥९७॥

(९७) दुष्ट और दुराचारी मनुष्य वेद पढ़ने त्याग, नित्य यज्ञ, तप आदि और धर्म के कर्म करने से शुद्ध नहीं होता।

श्रुत्वा स्पृष्ट्वा चदृष्ट्वाच भुक्त्वाघ्रात्वाचयोनरः ।
न हृष्यति ग्लायति वा सविज्ञेयो जितेन्द्रियः ॥९८॥

(९८) जो मनुष्य सुनने, छूने, देखने, भोगने, और सूंघने से न प्रसन्न होता है और न इनके विना अप्रसन्न होता है, वह जितेन्द्रिय कहलाता है।

इन्द्रियाणां तु सर्वेषां यद्येकं क्षरतीन्द्रियम् ।
तेनास्य क्षरतिप्रज्ञाद्दृतेः पात्रादिवोदकम् ॥९९॥

(९९) इन्द्रियों में से यदि एक भी इन्द्रिय अपने विषय में लगी कि बुद्धि नाश हो जाती है जैसे चलनी से जल छन जाता है।

वशे कृत्वेन्द्रियग्रामं संयम्य च मनस्तथा ।
सर्वान्संसाधयेदर्थानक्षिण्वन्योगतस्तनुम् ॥१००॥

(१००) उत्तम रीति से प्रयत्न करके मन आदि इन्द्रियों को वश में करके मुक्ति मार्ग और सांसारिक कार्यों को प्राप्त करना चाहिये और इस मध्य शरीर को भी नाश न होने दे।

पूर्वां संध्यांजपं स्तिष्ठेत्सावित्रीमार्कदर्शनात् ।
पश्चिमां तु समासीनः सम्यगृक्षविभावनात् ॥१०१॥

(१०१) प्रातःकाल सूर्य्योदय से पहिले सन्ध्या के पश्चात् गायत्री का जप तब तक करता रहे जब तक सूर्य्य का दर्शन न हो और इसी प्रकार संध्या समय जब तक नक्षत्र दिखलाई न दें।

पूर्वां संध्यां जपंस्तिष्ठेन्नैशमेनो व्यपोहति ।
पश्चिमांतुसमासीनोमलंहन्तिदिवाकृतम् ॥१०२॥

(१०२) प्रातःकाल की संध्या करने से रात्रि के पापों से मुक्त हो जाता है। और सायंकाल की संध्या करने से दिन के पापों से मुक्त हो जाता है।

न तिष्ठति तु यः पूर्वां नोपास्तेयश्चपश्चिमाम् ।
स शूद्रवद्बहिष्कार्यः सर्वस्माद्द्विजकर्मणः ॥१०३॥

(१०३) जो मनुष्य दोनों समय की संध्या नहीं करता है वह शूद्रवत् द्विज कर्मों से बहिष्कार [बाहर] करने योग्य है। क्योंकि उसमें द्विजों का धर्म उपस्थित नहीं।

अपांसमीपे नियतो नैत्यकं विधिमास्थितः ।
सावित्रीमप्यधीयीत गत्वारण्यं समाहितः ॥१०४॥

(१०४) अरण्य [जंगल] में पानी के समीप यथाविधि बैठकर सावित्री [गायत्री] का जप करे।

वेदोपकरणे चैव स्वाध्याये चैव नैत्यके ।
नानुरोधोऽस्त्यनध्याये होममन्त्रेषु चैव हि ॥१०५॥

(१०५) वेद के ६ अङ्ग हैं—शिक्षा, काव्य, व्याकरण, निरुक्त, छन्द ज्योतिष इनके पढ़ने और नित्यकर्म के करने में अनध्याय अर्थात् त्रुटि न करे।

नैत्यके नास्त्यनध्यायो ब्रह्मसत्रं हि तत्स्मृतम् ।

ब्रह्माहु तिहुतं पुण्यमनध्यायवषट्कृतम् ॥ १०६ ॥

(१०६) नित्यकर्म में जो मन्त्र पढ़े जाते हैं वह अनध्याय के दिन भी पुण्य से रिक्त नहीं हैं अर्थात् पुण्य देने वाले हैं।

यः स्वाध्यायमधीतेऽब्दं विधिना नियतः शुचिः ।

तस्य नित्यं क्षरत्येष पयोदधिघृतं मधु ॥१०७॥

(१०७) जो मनुष्य एक वर्ष तक यथाविधि नियम से वेद का स्वाध्याय करता है उसको वेद कामधेनु की नाईं ※ दूध घी देता है।

अग्नीन्धनं भैक्ष चर्यामधः शय्यांगुरोर्हितम् ।

आसमावर्तनात्कुर्यात्कृतोपनयनोद्विजः ॥१०८॥

(१०८) जिसका जनेऊ हो गया हो वह जब तक वेद को आँद्योपान्त न पढ़ ले तब तक हवन करता रहे, भिक्षा माँगे, पृथ्वी पर सोवे और गुरु के हित में रत [लगा] रहे।

आचार्यपुत्रः शुश्रूषुर्ज्ञानदोधार्मिकः शुचिः ।

आप्तः शक्तोऽर्थदः साधुः स्वोध्याप्यादश धर्मतः॥१०९॥

(१०९) १-आचार्यपुत्र, २-सेवक, ३-ज्ञानदाता, ४-धर्म करने वाला, ५-पवित्र रहने वाला, ६-आप्त, ७-सामर्थ्यवान [समर्थ], ८-साधु, ९-धनदाता और १०-स्वजाति वाला यह दस पढ़ाने योग्य हैं।

※ दूध घी से तात्पर्य सुख, यश और निर्भयता से है।

ना पृष्टः कस्यचिद्ब्रूयान्न चाऽन्यायेन पृच्छतः ।
जानन्नपिहि मेधावी जड़वल्लोक आचरेत् ॥११०॥

(११०) बिना पूछे किसी से कोई बात न कहे, छल से पूछे तो भी न कहे । बुद्धिमान् पुरुष प्रत्येक विषय से जानकार होने पर भी संसार में जड़वत् रहे ।

अधर्मेण च यःप्राह यश्चाधर्मेण पृच्छति ।
तयोरन्यतरः प्रैति विद्वेषं वाधिगच्छति ॥१११॥

(१११) जो मनुष्य अधर्म से पूछता है, और जो अधर्म से कहता है उन दोनों मे से एक मर जाता है अथवा शत्रुता उत्पन्न हो जाती है ।

धर्मार्थौ यत्र न स्यातां शुश्रूषा वाऽपि तद्विधा ।
तत्र विद्या न वक्तव्याः शुभं बीजमिवोषरे ॥११२॥

(११२) जहाँ धर्म, अर्थ और सेवा शास्त्रानुसार नहीं है वहाँ विद्या न सिखाना । क्योंकि उत्तम और उपजाऊ बीज ऊसर भूमि में नहीं बोया जाता ।

विद्ययैव समं कामं कर्तव्यं ब्रह्मवादिना ।
आपद्यपि हि घोरायां नत्वेनामिरिणे वपेत् ॥११३॥

(११३) विद्वान् मनुष्यों को चाहिये कि उनकी विद्या चाहे उनके साथ ही चली जाय किन्तु कुपात्र तथा दुराचारी मनुष्य को विद्या न पढ़ावे ।

विद्याब्राह्मणमेत्याह शेवधिस्तेऽस्मि रक्ष माम् ।
असूयकाय मां मादास्तथा स्यां वीर्यवत्तमा ॥११४॥

(११४) विद्या ब्राह्मणों से कहती है कि मैं तुम्हारी

सम्पत्ति हूँ, मेरी रक्षा करो और जो लोग वेद की इच्छा नहीं रखते उनको मुझे न दो तो मैं पूर्ण कला से तुम्हारे पास रहूँगी।

यमेव तु शुचिं विद्यान्नियतब्रह्मचारिणम् ।
तस्मै मां ब्रूहि विप्राय निधिपायाऽप्रमादिने ॥११५॥

(११५) जिस ब्राह्मण को पवित्र ब्रह्मचारी, सम्पत्ति की रक्षा करने वाला, और बुद्धिमान जानो उस ब्राह्मण को मुझे दो।

ब्रह्म यस्त्वननुज्ञातमधीयानादवाप्नुयात् ।
स ब्रह्मस्तेयसंयुक्तो नरकं प्रति पद्यते ॥११६॥

(११६) जो लोग विना गुरु के वेद को सुन सुना कर सीखते हैं वह वेद के चोर हैं । क्योंकि वेद का सत्य अर्थ गुरु विना नहीं जाना जा सकता है। और वेद का अशुद्ध अर्थ करने वाला नरक गामी होता है।

लौकिकं वैदिकं वापि तथाध्यात्मिकमेव च ।
आददीत यतो ज्ञानं तं पूर्वमभिवादयेत् ॥११७॥

(११७) जिससे लौकिक ज्ञान, वैदिक ज्ञान व ब्रह्मज्ञान सीखे उसको पहिले अभिवादन (प्रणाम) करे।

सावित्री मात्रसारोऽपि वर विप्रः सुयन्त्रितः ।
नायन्त्रितस्त्रिवेदोऽपि सर्वाशी सर्वविक्रयी ॥११८॥

(११८) जो पुरुष केवल सावित्री (गायत्री) को पढ़ा हो और शास्त्रानुसार नियम से रहता हो वह मान्य और आदरणीय है । और तीनों वेदों को पढ़ा हो परन्तु सब वस्तुओं को बेचने वाला, अपवित्र पदार्थ भक्षी और शास्त्र प्रतिकूल कर्म करने वाला हो वह मान्य तथा आदरणीय नहीं है।

शय्यासनेऽध्याचरिते श्रेयसा न समाविशेत् ।
शय्यासनस्थश्चैवैनं प्रत्युत्थायाभिवादयेत् ॥११९॥

(११९) वृद्ध पुरुष जिस आसन (गद्दी) पर बैठते हों उस पर आप न बैठें और यदि बैठा हो तो उठकर प्रणाम करे।

ऊर्ध्वं प्राणा ह्युत्क्रामन्ति यूनः स्थविर आयति ।
प्रत्युत्थानाभिवादाभ्यां पुनस्तान् प्रतिपद्यते ॥१२०॥

(१२०) वृद्ध पुरुषों के आते से छोटों के प्राण ऊपर को उठते हैं और छोटे लोग जब उठकर प्रणाम करते हैं तो उससे वे प्राण स्थिर हो जाते हैं।

अभिवादनशीलस्य नित्यं वृद्धोपसेविनः ।
चत्वारि तस्य वर्द्धन्ते आयुर्विद्यायशोबलम् ॥१२१॥

(१२१) जो मनुष्य बड़े लोगों को सदैव प्रणाम करता है। उसकी आयु यश, विद्या, और बलचारों की वृद्धि होती है।

अभिवादात्परं विप्रो ज्यायांसमभिवादयन् ।
असौनामाहमस्मीति स्वं नामपरिकीर्त्तयेत् ॥१२२॥

(१२२) प्रणाम करने के पश्चात वृद्धों से यह कहे कि मैं अमुक नाम का मनुष्य हूँ।

नामधेयस्य ये केचिदभिवादं न जानते ।
तान्प्राज्ञोऽहमितिब्रूयात्स्त्रियः सर्वास्तथैव च ॥१२३॥

(१२३) जो मनुष्य प्रणाम करने के शब्द वा वाक्य न नहीं जानता है वह केवल अपने ही नाम को कहे और स्त्रियाँ भ ऐसा ही कहें।

भोः शब्द कीर्त्तयेदन्ते स्वस्य नाम्नोऽभिवादने ।
नाम्नो स्वरूपभावो हि भोभाव ऋषिभिः स्मृतः ॥१२४

(१२४) प्रणाम करने के समय अपने नाम के अन्त में 'भोः' शब्द को कहें। 'भोः' शब्द का नाम का बताने वाला है यह ऋषियों ने कहा है।

आयुष्मान्भव सौम्येति वाच्यो विप्रोऽभिवादने ।
अकारश्चास्य नाम्नोऽन्ते वाच्यःपूर्वाक्षरःप्लुतः ।१२५।

(१२५) आशीर्वाद देने में 'आयुष्मान भव' ऐसा कहना चाहिये। नाम के अन्त में अकारादि स्वर को स्वर प्लुत अर्थात् त्रिमात्रात्मक कहना चाहिये।

यो न वेत्यभिवादस्य विप्रः प्रत्यभिवादनम् ।
नाभिवाद्यः स विदुषा यथाशूद्रस्तथैवसः ॥ १२६ ॥

(१२६) जो मनुष्य आशीर्वाद देने के वाक्य को नहीं जानता है उसको प्रणाम न करना चाहिये क्योंकि वह शूद्रवत है,

ब्राह्मणं कुशलं पृच्छेत्क्षत्रबन्धुमनामयम् ।
वैश्यं क्षेमं समागम्यशूद्रमारोग्यमेव च ॥१२७॥

(१२६) ब्राह्मण से कुशल, क्षत्रिय से अनामय, वैश्य से क्षेम और शूद्र से आरोग्यता पूछना चाहिये।

अवाच्यो दीक्षितो नाम्ना यवीयानपियो भवेत् ।
भोभवत्पूर्वकं त्वेनमभिभाषेत धर्मवित् ॥१२८॥

(१२८) जो पुरुष अपने से छोटा है और यज्ञ करता है उसको यज्ञ में भो भवत् शब्द से बोलना (पुकारना) चाहिये नाम लेना अनुचित है।

परपत्नी तु या स्त्री स्यादसंबन्धा च योनितः ।
तां ब्रूयाद्भवतीत्येवं सुभगे भगिनीति च ॥१२९॥

(१२६) जिस स्त्री से किसी प्रकार का सम्बन्ध नहीं है उसको सुभगे, भवती, भगिनी कह के पुकारना चाहिये।

मातुलांश्च पितृव्यांश्च श्वशुरानृत्विजो गुरून् ।
असावहमिति ब्रूयात्प्रत्युत्थाय यवीयसः ॥१३०॥

(१३०) मातुलों (मामाओं), चचा, श्वसुर (ससुर) यज्ञ करने वाला गुरु यह सब अपनी आयु से छोटे भी हो तो भी उनको यह कह कर कि मैं अमुक हूँ उठ कर प्रणाम करना चाहिये।

भ्रातृष्वसा मातुलानी श्वश्रूश्च पितृष्वसा ।
संपूज्या गुरुपत्नीवत् समस्ता गुरुभार्यया ॥१३१॥

(१३१) मौसी, मातुलानी (माई), सासु, फूफी (फुआ), यह सब गुरु पत्नी के समान हैं। अतएव इनकी पूजा व आदर गुरु-पत्नी की नाईं करना चाहिये।

भ्रातुर्भार्योपसंग्राह्या सवर्णाऽहन्यहन्यपि ।
विप्रोष्य तूपसंग्राह्या ज्ञातिसम्बन्धियोषितः ॥१३२॥

(१३२) बड़े भ्राता की भार्या (स्त्री, पत्नी) वा जो स्वजाति (बड़े) भाई की स्त्री हो सदैव उसका पाँव छू कर प्रणाम करे और स्वजाति की सम्बन्धिनी (नातेदार, रिश्तेदार) स्त्री का भी पाँव छू कर प्रणाम करे। परन्तु जब विदेश से आकर अपने देश में निवास करे तब पाँव न छुए केवल प्रणाम करे।

पितुर्भगिन्यांमातुश्चज्यायस्यांचस्वसर्यपि ।
मातृवद्वृत्तिमातिष्ठेन्माताताभ्यांगरीयसी ॥१३३॥

(१३३) फूफी, मौसी, बड़ी बहन इन सब को माता के तुल्य जाने, किंतु माता उन सब से बड़ी अर्थात् मान्य व आदरणीय है।

दशाब्दाख्य पौरसख्यं पश्चाब्दाख्यं कलाभृताम् ।
त्र्यब्दपूर्व श्रोत्रियाणां स्वल्पेनापि स्वयोनिषु ॥१३४॥

(१३४) एक गाव अथवा एक शहर के निवासी गुण से रहित हों और दश वर्ष बडे हों तो उनके साथ मित्रता का व्यवहार होता है, और गुणी हों और पाच वर्ष बडे हों तो उनके साथ भी मित्रता का व्यवहार होता है और वेद पढे हों और तीन वर्ष बडे हों तो भी मित्रता का व्यवहार होता है। सबधी हों तो अल्प समय ही में मित्रता होती है। यदि ऊपर लिखे आयु से अधिक अवस्था वाला हो तो वृद्ध और मान्य है ।

ब्राह्मणं दशवर्षं तु शतवर्षं तु भूमिपम् ।
पितापुत्रौ विजानीयाद्ब्राह्मणस्तु तयोः पिता ॥१३५॥

(१३५) ※ दस वर्ष का ब्राह्मण और सौ वर्ष का क्षत्रिय दोनों आपस म बाप बेटे की तरह रहें । उनमें ब्राह्मण पितावत् और क्षत्रिय पुत्रवत् रहे ।

वित्त बन्धुर्वयः कर्म विद्या भवति पञ्चमी ।
एतानि मान्यस्थानानि गरीयो यद्यदुत्तरम् ॥१३६॥

(१३६) १-धन, २-बन्धु (सम्बन्धी), ३-आयु, ४-कर्म, ५-विद्या यह पॉचों मान्य तथा आदरणीय हैं । इनमें पहले से दूसरा, दूसरे से तीसरा इस ही प्रकार एक दूसरे से पूज्य (उत्तम) हैं।

※ यह श्लोक का मिलाया हुआ है क्योंकि जब तक ब्रह्मचर्य आश्रम पूर्ण नहीं होता तब तक ब्राह्मण हो नहीं सकता। और दस वर्ष में ब्रह्मचर्य किसी प्रकार भी पूर्ण नहीं हो सकता।

पञ्चानां त्रिषु वर्णेषु भूयांसि गुणवन्ति च ।
यत्र स्युः सोऽत्र मानार्हः शूद्रोऽपि दशमीं गतः॥१३७॥

(१३७) ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य इनमें से जिसके पास पाँच वस्तुओं में से कोई भी वस्तु अधिक हो वही आदरणीय है और ९० वर्ष से अधिक शूद्र भी आदरणीय है।

चक्रिणो दशमीस्थस्य रोगिणो भारिणः स्त्रियाः ।
स्नातकस्य च राज्ञश्च पन्था देयो वरस्य च ॥१३८॥

(१३८) रथारूढ़, ९० वर्ष से अधिक आयु वाला, रोगी, भार (बोझ) वाला, स्त्री, स्नातक (ब्रह्मचारी) राजा, और वर (दूल्हा) इनमें से कोई एक आता हो तो उसको पथ (रास्ता) दे अर्थात् आप एक ओर हो जावे।

तेषां तु समवेतानां मान्यौ स्नातकपार्थिवौ ।
राजस्नातकयोश्चैव स्नातको नृपमानभाक् ॥१३९॥

(१३९) उपरोक्त मनुष्य राजा को रास्ता देवें और राजा ब्रह्मचारी को आता देखकर रास्ते से हट जावें।

उपनीय तु यः शिष्यं वेदमध्यापयेद्द्विजः ।
सकल्पं सरहस्यं च तमाचार्यं प्रचक्षते ॥ १४० ॥

(१४०) जो यज्ञोपवीत पहना कर वेद वेदांग और उसके व्याख्यान को सत्योचित रीति से पढ़ाता है वह आचार्य कहलाता है।

एकदेशं तु वेदस्य वेदाङ्गान्यपि वा पुनः ।
योऽध्यापयति वृत्त्यर्थमुपाध्यायः स उच्यते ॥१४१॥

(१४१) वेद का एक देश और वेद के छः अंग इन सब

की जीविका के लिए जो पढ़ाता है वह उपाध्याय कहलाता है।

निषकादीनि कर्माणि यः करोति यथाविधि ।
संभावयति चान्नेन स विप्रो गुरुरुच्यते ॥१४२॥

(१४२) जो गर्भाधानादि संस्कारों को यथा विधि करता है वह ब्राह्मण गुरु कहलाता है।

अग्न्याधेयं पाकयज्ञानग्निष्टोमादिकान्मखान् ।
यः करोति वृतो यस्य स तस्यर्त्विगिहोच्यते ॥१४३॥

(१४३) जो मनुष्य अग्निहोत्र कर्म, पाक यज्ञ (अष्टका श्राद्ध अग्निष्टोम आदि मखों (यज्ञों) को कराता है वह ऋत्विज कहलाता है।

य आवृणोत्यवितथं ब्राह्मणः श्रवणावुभौ ।
स माता स पिता ज्ञेयस्तं न द्रुह्येत्कदाचन ॥१४४॥

(१४४) जो दोनों कानों को वेद से भरता है वह माता पिता वत् है। उससे कभी शत्रुता न करनी चाहिए।

उपाध्यायान्दशाचार्य आचार्याणां शतं पिता ।
सहस्रं तु पितॄन्माता गौरवेणातिरिच्यते ॥ १४५ ॥

(१४५ उपाध्याय से दशगुणा आचार्य मान्य है, आचार्य से सौ गुणा पिता मान्य है और पिता से सहस्र गुणी अधिक माता मान्य है।

उत्पादकब्रह्मदात्रोर्गरीयान्ब्रह्मदः पिता ।
ब्रह्म जन्म हि विप्रस्य प्रेत्य चेह च शाश्वतम् ॥१४६॥

(१४६) जन्म दाता और वेद पढ़ाने वाला दोनों में से वेद पढ़ाने वाला बड़ा है। वेद पढ़ने से जो जन्म होता है वह जन्म अविनाशी है।

कामान्माता पिताचैनं यदुत्पादयतो मिथः ।
संभूतिं तस्य तां विद्याद्योनावभिजायते ॥१४७॥

(१४७) माता, पिता, काम वश होकर पुत्र उत्पन्न करते हैं। अतएव उत्पत्ति स्थान हैं।

आचार्यस्त्वस्य यां जातिं विधिवद्वेदपारगः ।
उत्पादयति सावित्र्या सा सत्या साजरामरा ॥१४८॥

(१४८) जो जन्म गायत्री करके (द्वारा) आचार्य करता है वह जन्म सत्य (ठीक) और अजर अमर (अविनाशी) है।

अल्पं वा बहु वा तस्य श्रुतस्योपकरोति यः ।
तमपीह गुरुं विद्याच्छ्रुतोपक्रियया तया ॥१४९॥

(१४९) अल्प वा बहुत वेद के पढ़ाने से जो उपकार करता है उसको भी गुरु समझना चाहिये।

ब्राह्मस्य जन्मनः कर्ता स्वधर्मस्य च शासिता ।
बालोऽपि विप्रो वृद्धस्य पिता भवति धर्मतः ॥१५०॥

(१५०) वेद पढ़ाने वाला ब्राह्मण आयु में चाहे जितना छोटा हो परन्तु वह गुरु ही कहलाता है। क्योंकि ज्ञान से ही जीवात्मा का (वृद्धत्व) बड़प्पन है, आयु से नहीं।

अध्यापयामास पितॄन्शिशुराङ्गिरसः कविः ।
पुत्रका इति होवाच ज्ञानेन परिगृह्य तान् ॥१५१॥

(१५१) 'अंगिरा के बेटे ने अपने चचा को पढ़ाया और बेटा कहा इस कारण से कि वह ज्ञान में बड़ा था।

ते तमर्थमपृच्छन्त देवानागतमन्यवः ।
देवाश्चैतान्समेत्योचुर्न्याय्यं वः शिशुरुक्तवान् ॥१५२॥

(१५२) इस कारण से चचा क्रुद्ध होकर देवताओं से पूछने गया। देवताओं ने उत्तर दिया कि उस बालक (शिशु) ने अच्छा कहा।

अज्ञो भवति वै बालः पिता भवति मन्त्रदः।
अज्ञं हि बालमित्याहुः पितेत्येव तु मन्त्रदम् ॥१५३॥

(१५३) क्योंकि जो कुछ नहीं जानता वह बालक कहलाता है और जो मन्त्र देता है वह पिता कहलाता है।

न हायनैर्न पलितैर्न वित्तेन न बन्धुभिः।
ऋषयश्चक्रिरे धर्मं योऽनूचानः स नो महान् ॥१५४॥

(१५४) वयोवृद्धि, धनवान्, और बहुत बान्धवों वाला होने से बड़ा नहीं कहलाता। वरन् सांगोपांग वेद पढ़ने वाला बड़ा है यह ऋषियों का वचन है।

विप्राणां ज्ञानतो ज्यैष्ठ्यं क्षत्रियाणां तु वीर्यतः।
वैश्यानां धान्यधनतः शूद्राणामेव जन्मतः ॥१५५॥

(१५५) ब्राह्मणों में ज्ञान से ज्येष्ठता है, क्षत्रियों में बल से, वैश्यों से धन से और शूद्रों में आयु से ज्येष्ठता (बड़प्पन) मानी जाती है।

न तेन वृद्धो भवति येनास्य पलितं शिरः।
यो वै युवाप्यधीयानस्तं देवाः स्थविरं विदुः ॥१५६॥

(१५६) केशों के श्वेत होने से बड़ा नहीं कहलाता, वरन् जो कोई युवा है और विद्वान् है उसी को देवताओं ने बड़ा कहा है।

यथा काष्ठमयो हस्ती यथा चर्ममयो मृगः।
यश्च विप्रोऽनधीयानस्त्रयस्ते नाम बिभ्रति ॥१५७॥

(१५७) काठ का हाथी चमड़े का मृग (हिरन), मूर्ख ब्राह्मण यह तीनों नाम मात्र को हैं। कुछ कार्य नहीं कर सकते।

यथा पण्ढोऽफलः स्त्रीषु यथा गौर्गवि चाफला।
तथा चाज्ञेऽफलं दानं तथा विप्रोऽनृचोऽफलः॥१५८॥

(१५८) जिस प्रकार नपुंसक पुरुष स्त्रियों में और (बांझ) गऊ गउओं में निष्फल है और जिस प्रकार मूर्ख ब्राह्मण को दान देना निष्फल है उसही प्रकार कुपढ़ ब्राह्मण निष्फल है।

अहिंसयैव भूतानां कार्यं श्रेयोऽनुशासनम्।
वाक्चैव मधुरा श्लक्ष्णा प्रयोज्या धर्ममिच्छता॥१५९॥

(१५९) ऐसे काम की आज्ञा देनी चाहिये जिसमें किसी जीव को कष्ट न हो। और धर्मात्मा पुरुष को मीठी वाणी बोलनी चाहिए।

यस्य वाङ्मनसी शुद्धे सम्यग्गुप्ते च सर्वदा।
स वै सर्वमवाप्नोति वेदान्तोपगतः फलम्॥१६०॥

(१६०) जिसकी वाणी और मन शुद्ध है सर्वदा माया से बचा हुआ है। वह वेदान्त के फल को पाता है।

नारुंतुदः स्यादार्तोऽपि न परद्रोहकर्मधीः।
ययास्योद्विजते वाचा नालोक्यां तामुदीरयेत्॥१६१॥

(१६१) दुःखी होने पर भी ऐसी वात न कहे कि जिससे किसी के चित्त पर घाव लगे (दुखोहो) और कभी डाह न करे।

संमानाद्ब्राह्मणो नित्यमुद्विजेत विषादिव।
अमृतस्येव चाकांक्षेदवमानस्य सर्वदा॥ १६२ ॥

(१६७) सबसे शिखा पर्य्यन्त परम तप वह करता है जो माला पहने हुए बलानुसार नित्य वेद को पढ़ता है (अर्थात् ब्रह्मचारी को माला पहनाना वर्जित है, अतः वर्जित कार्य करने पर भी यदि वेद को पढ़ा करे तो वह भी तप ही है)।

यऽनधीत्य द्विजो वेदमन्यत्र कुरुते श्रमम् ।
स जीवन्नेव शूद्रत्वमाशु गच्छति सान्वय ।१६८।

(१६८) जो ब्राह्मण वेद का पढ़ना त्याग कर शास्त्रों के अध्ययन में परिश्रम करता है वह जीवन पर्यन्त अपने कुल सहित शूद्र भाव को प्राप्त होता है ।

मातुरग्रेऽधिजननं द्वितीयं मौञ्जिबन्धने ।
तृतीयं यज्ञदीक्षायां द्विजस्य श्रुतिचोदनात् ।१६९।

(१६९) वेद में ब्राह्मण के तीन जन्म लिखे हैं पहला जन्म माता से, दूसरा जनेऊ होने से और तीसरा यज्ञ करने से।

तत्र यद्ब्रह्मजन्मास्य मौञ्जीबन्धनचिन्हितम् ।
तत्रास्य माता सावित्री पिता त्वाचार्य उच्यते ।१७०।

(१७०) जिसमें जनेऊ होने से जो जन्म होता है उसमें गायत्री माता है और आचार्य पिता है।

वेदप्रदानाचार्यं पितरं परिचक्षते ।
नह्यस्मिन्युज्यते कर्म किंचिदामौञ्जिबन्धनात् ।१७१।

(१७१) वेद के पढ़ाने से आचार्य पिता कहलाता है । जब तक जनेऊ नहीं होता । तब तक मनुष्य का उद्धार किसी द्विज कर्म में नहीं होता क्योंकि जनेऊ बिना प्रत्येक मनुष्य शूद्र है

नाभिव्याहारयेद्ब्रह्म स्वधानिनयनादृते ।
शूद्रेण हि समस्तावद्यावद्वेदेन जायते ॥१७२॥

(१७२) बिना जनेऊ हुए पुत्र का अधिकार श्राद्ध करने में नहीं होता है। किन्तु शूद्र तुल्य होता है।

कृतोपनयनस्यास्य व्रतादेशनमिष्यते ।
ब्रह्मणो ग्रहणं चैव क्रमेण विधिपूर्वम् ॥१७३॥

(१७३) जनेऊ के पश्चात् व्रत करना चाहिये और यथा विधि वेद पढ़ना चाहिये। यही मनुष्य का जीवन फल है।

यद्यस्य विहितं चर्म यत्सूत्रं या च मेखला ।
यो दण्डो यच्च वसनं तत्तदस्य व्रतेष्वपि ॥१७४॥

(१७४) जिसकी जो मेखला, जो चर्म, जो सूत, जो दण्ड, जो कपड़ा है वही व्रत मे भी रहे।

सेवतेमांस्तु नियमान्ब्रह्मचारी गुरौ वसन् ।
सन्नियम्येन्द्रियग्रामं तपोवृद्ध्यर्थमात्मनः ॥१७५॥

(१७५) ब्रह्मचारी गुरुकुल पास कर इन्द्रिय-निग्रह (इन्द्रियों को वश में) करके अपने तप की उन्नति के हेतु निम्नलिखित विधि से कार्य करे।

नित्यं स्नात्वा शुचिः कुर्याद्देवर्षिपितृतर्पणम् ।
देवताभ्यर्चनं चैव समिदाधानमेव च ॥१७६॥

(१७६) नित्य स्नान कर शुचि (शुद्ध पवित्र) हो देवर्षि पितृ-तपर्ण करके देवताओं का पूजन करे और अग्नि मे हवन करे।

वर्जयेन्मधुमांसं च गन्धं माल्यं रसान्स्त्रियः ।
शुक्तानि यानि सर्वाणि प्राणिनां चैव हिंसनम् ॥१७७॥

(१७७) शराब, मांस, गन्ध, माला, रस, स्त्री, जीव-हत्या ब्रह्मचारी को सदैव वर्जित है (कभी न करना चाहिये)।

अभ्यंगमञ्जनं चाक्ष्णोरुपानच्छत्रधारणम् ।
कामं क्रोधं च लोभं च नर्तनं गीतवादनम् ॥१७८॥

(१७८) उबटन का जल, जूता, छतरी, काम, क्रोध, लोभ, नाचना, गाना बजाना ।

द्यूतं च जनवादं च परिवादं तथानृतम् ।
स्त्रीणां प्रेक्षणालम्भमुपघातं परस्य च ॥ १७९ ॥

(१७९) द्यूत (जुआ), किसी का मिथ्या दोष वर्णन करना, स्त्री दर्शन, स्त्री सम्भाषण, दूसरे की कुचेष्टा, इन सब बातों से दूर रहे ।

एकः शयीत सर्वत्र न रेतः स्कन्दयेत्क्वचित् ।
कामाद्धि स्कन्दयन्रेतो हिनस्ति व्रतमात्मनः ॥१८०॥

(१८०) अकेला सोवे, वीर्य को न गिरावे, और जो कोई वीर्य को गिराता है वह अपना व्रत नाश कर देता है ।

स्वप्ने सिक्त्वा ब्रह्मचारी द्विजः शुक्रमकामतः ।
स्नात्वार्कमर्चयित्वात्रिः पुनर्मामित्यृचं जपेत् ॥१८१॥

(१८१) यदि स्वप्न में बिना इच्छा शुक्र (वीर्य) गिर जाए तो स्नान करके सूर्य की पूजा करके 'पुनर्माम्' इस मन्त्र का तीन बार जप करे।

उदकुम्भं सुमनसो गोशकृन्मृत्तिकाकुशान् ।
आहरेद्यावदर्थानि भैक्षं चाहरहश्चरेत् ॥ १८२ ॥

(१८२) जल का घड़ा, फूल, गोबर मिट्टी, कुश इन सब को आवश्यकतानुसार लावे। और नित्य भीख माँगकर भोजनकरे

वेदयज्ञैरहीनानां प्रशस्तानां स्वकर्मसु ।
ब्रह्मचार्याहरेद्भैक्ष्यं गृहेभ्यः प्रयतोऽन्वहम् ॥१८३॥

(१८३) जो मनुष्य वेद, यज्ञ, और अपने शुभ कर्मों
रके युक्त हो उसके गृह (घर) से भिक्षा (भीख) लावे ।

गुरोः कुले न भिक्षेत न ज्ञातिकुलबन्धुषु ।
अलाभे त्वन्यगेहानां पूर्वं पूर्वं विवर्जयेत् ॥१८४॥

(१८४) गुरु के कुल में, जाति के कुल में, भाई के कुल
में भिक्षा न माँगे । यदि कहीं भिक्षा न मिले तो पूर्व पूर्व (प्रथम
प्रथम) को त्याग कर दूसरे दूसरे से मागे ।

सर्वं वापि चरेद्ग्रामं पूर्वोक्तानामसंभवे ।
नियम्य प्रयतो वाचमभिशस्तांस्तु वर्जयेत् ॥१८५॥

(१८५) जो ऐसे घर न हों तो सारे गाँव में मौन धारण
कर और इन्द्रियों को वश कर भिक्षा मागे । किन्तु पापियों का
घर त्याग दे ।

दूरादाहृत्य समिधः संनिदध्याद्विहायसि ।
सायंप्रातश्च जुहुयात्ताभिरग्निमतन्द्रितः ॥१८६॥

(१८६) दूर से लकड़ी लाकर पृथ्वी से ऊपर आकाश
में (ऊँचे पर) रक्खे उसीसे प्रात साय हवन करे । आलस्य न करे ।

अकृत्वा भैक्षचरणमसमिध्य च पावकम् ।
अनातुरः सप्तरात्रमवकीर्णिव्रतं चरेत् ॥१८७॥

(१८७) यदि सामर्थ्य हो तो सात दिवस तक भीख न
मागे और अग्नि में हवन न करे । अवकीर्णि नाम व्रत (जो
आगे कहेंगे) करे ।

भैक्षेण वर्तयेन्नित्यं नैकान्नादी भवेद्व्रती।
भैक्षेण व्रतिनो वृत्तिरुपवाससमा स्मृता ॥१८८॥

(१८८) नित्य भिक्षा माग कर भोजन करे। परन्तु ए ही गृह का अन्न न खाये। भिक्षा माँगकर भोजन करना उ तुल्य है। और एक गृह का अन्न खाने से व्रत खण्डित जाता है।

व्रतवद्देवदैवत्ये पित्र्ये कर्मण्यथर्षिवत्।
काममभ्यर्थितोऽश्नीयाद्व्रतमस्य न लुप्यते ॥१८९॥

(१८९) यदि किसी मनुष्य ने विश्वदेव वा पितृकर्म के निमित्त नेवता दिया हो तो इच्छानुसार श्राद्ध में भोजन करे। परन्तु दोनो कर्मो म क्रमानुसार व्रती और ऋषि की नाईं सुन्यन्नो को भोजन करे। ऐसा करने से व्रत नहीं टूटता।

ब्राह्मणस्यैव कर्मैतदुपदिष्टं मनीषिभिः।
राजन्यवैश्ययोस्त्वेवं नैतत्कर्म विधीयते ॥१९०॥

(१९०) श्राद्ध में भोजन करना ब्राह्मण ही का काम है। क्षत्रिय, वैश्य और ब्रह्मचारियों का नहीं।

चोदितो गुरुणा नित्यमप्रचोदित एव वा।
कुर्यादध्ययने यत्नमाचार्यस्य हितेषु च ॥१९१॥

(१९१) गुरु आज्ञा हो या न हो परन्तु वेद पढ़ने और गुरु की भलाई करने का प्रयत्न करे।

शरीरं चैव वाचं च बुद्धीन्द्रियमनांसि च।
निशम्य प्राञ्जलिस्तिष्ठेद्वीक्षमाणो गुरोर्मुखम् ॥१९२॥

(१९२) शरीर, वाणी, बुद्धि, इन्द्रिय, मन सब को वश

, कर जोड़, गुरु को देखता हुआ गुरु के सामने स्थिर खड़ा) रहे।

नित्यमुद्धृतपाणिः स्यात्साध्वाचारः सुसंयतः।
आस्यतामिति चोक्तःसन्नासीताभिमुखं गुरोः ॥१६३॥

(१६३) दक्षिण कर को चादर (वस्त्र) से सदैव बाहर रक्खे, साधु की नाईं आचार से रहे, चंचलता-विहीन रहे, और गुरु जब बैठने की आज्ञा दें तब उनके सम्मुख बैठे।

हीनान्नवस्त्रवेषः स्यात्सर्वदा गुरुसन्निधौ।
उत्तिष्ठेत्प्रथमं चास्य चरमं चैव संविशेत् ॥१६४॥

(१६४) गुरु के समीप इस विधि से रहना चाहिए कि जैसा गुरु भोजन करे उससे हीन दशा का आप भोजन करे, जैसा वस्त्र गुरु पहिनें उससे हीन (घटका) वस्त्र आप पहिने, जैसे वेष मे गुरु रहें उससे हीन वेष में आप रहे, और गुरु के जागने से प्रथम जागे और गुरु के सोने के पश्चात् सोवे।

प्रतिश्रवणसंभाषे शयानो न समाचरेत्।
नासीनो न च भुञ्जानो न तिष्ठन्नो पराङ्मुखः॥१६५॥

(१६५) सोता हुआ, आसन पर बैठा हुआ, भोजन करता हुआ और मुख फेरे हुए गुरु से बात चीत न करे और न सुने।

आसीनस्य स्थितः कुर्यादभिगच्छंस्तु तिष्ठतः।
प्रत्युद्गम्य त्वाव्रजतः पश्चाद्धावंस्तु धावतः ॥१६६॥

(१६६) गुरु बैठे हों तो आप खड़ा होकर, गुरु खड़े हों तो आप चलकर, गुरु चलते हों तो आप सम्मुख जाकर और गुरु दौड़ते हों तो आप भी पीछे दौड़कर बात करे और सुने।

पराङ्मुखस्याभि मुखो दूरस्थस्यैत्य चांतिकम् ।
प्रणम्य तु शयानस्य निदेशे चैव तिष्ठतः ॥१९७॥

(१९७) गुरु मुख फेरे खड़े हों तो सम्मुख जाकर, दूर हों तो समीप जाकर, और सोते हों तो प्रणाम करके गुरु आदेश (आज्ञा) को सुने।

नीचं शय्यासनं चास्य सर्वदा गुरुसन्निधौ ।
गुरोस्तु चक्षुर्विषये न यथेष्टासनो भवेत् ॥१९८॥

(१९८) गुरु के समीप अपना शय्यासन नीचा रक्खे अपने इच्छानुसार न रक्खे। क्योंकि ऐसा न करने से गुरु व अपमान होता है और विद्या नहीं आती।

नोदाहरेदस्य नाम परोक्षमपि केवलम् ।
न चैवास्यानुकुर्वीत गतिभाषितचेष्टितम् ॥१९९॥

(१९९) गुरु के पीछे भी केवल उनके नाम को न ले और गुरु की जैसी चाल, ढाल, बोली, चेष्टा हो वैसी अपनी न रक्खे। वरन् गुरु की आज्ञा पालन करे, उनकी चाल की (रीति की) नकल न करे।

गुरोर्यत्र परीवादो निन्दा वापि प्रवर्तते ।
कर्णौ तत्र पिधातव्यौ गन्तव्यं वा ततोऽन्यतः॥२००॥

(२००) जहाँ गुरु को सत्य या अनत दोषारोपण होता हो वा निन्दा होती हो वहाँ अपने कान बन्द करले अथवा वहाँ से उठ जावे।

परीवादात्खरो भवति श्वा वै भवति निन्दकः ।
परिभोक्ता कृमिर्भवति कीटो भवति मत्सरी ॥२०१॥

(२०१) गुरु का सत्य अनृत दोष कहने से गधा

और निन्दा करने से कुत्ता होता है। गुरु का अनुचित धन भोजन करने से कृमि (छोटा कीड़ा) और मत्सर (गुरु की बड़ाई न सह सकने) से कीट (बड़ा कीड़ा) होता है।

दूरस्थो नार्चयेदेनं क्रुद्धो नांतिके स्त्रियाः।
या चासनस्थश्चैवैनमवरुह्याभिवादयेत् ॥२०२॥

(२०२) गुरु की पूजा दूर से (अर्थात् किसी के द्वारा सामिग्री भेजकर) न करे और क्रोध भी न करे। यदि अपनी स्त्री के समीप बैठा हो वा सवारी या आसन पर बैठा हो तो सवारी से उतर कर वा आसन को त्याग कर वा स्त्री के समीप से उठ कर प्रणाम करे।

प्रतिवातेऽनुवाते च नासीत गुरुणा सह।
असंश्रवे चैव गुरोर्न किंचिदपि कीर्तयेत् ॥२०३॥

(२०३) जो मनुष्य गुरु के देश से शिष्य के देश को आया हो अथवा शिष्य के देश से गुरु के देश को आया हो इन दोनों के सम्मुख शिष्य गुरु के साथ न रहे। जो बात गुरु के सुनने में न आवे ऐसी कोई बात गुरु की वा और किसी की न कहे अर्थात् गुरु से छिपा कर कोई बात न कहे।

गोऽश्वोष्ट्रयानप्रासादस्रास्तरेषु कटेषु च।
आसीत गुरुणा सार्धं शिलाफलकनौषु च ॥२०४॥

(२०४) बैल, घोड़ा, ऊँट वाले रथ, गाड़ी पर अथवा चटाई, पत्थर, लकड़ी और नाव पर गुरु के साथ बैठे।

गुरोर्गुरौ सन्निहिते गुरुवद्वृत्तिमाचरेत्।
न चानसृष्टो गुरुणा स्वान्गुरूनभिवादयेत् ॥२०५॥

(२०५) गुरु के गुरु को भी अपने गुरु का नाईं जाने और गुरु की आज्ञा के बिना अपने देश से आये हुए चचा आदि को प्रणाम न करे।

विद्यागुरुष्वेतदेव नित्यावृत्तिः स्वयोनिषु ।
प्रतिषेधत्सु चाधर्मान्हितं चोपदिशत्स्वपि ॥२०६॥

(२०६) इसी प्रकार आचार्य के अतिरिक्त उपाध्याय आदि सम्बन्धी, अधर्म से रक्षा करने वाले, उत्तम-शिक्षा-दाता भी गुरु समान हैं।

श्रेयःसु गुरुवद्वृत्तिं नित्यमेव समाचरेत् ।
गुरुपुत्रेषु चार्येषु गुरोश्चैव स्वबन्धुषु ॥२०७॥

(२०७) जो वृद्ध जन हैं, गुरु का बड़ा पुत्र और गुरु के बान्धव इन सब को भी गुरु समान जाने और सदैव उनका आदर करे।

बालः समानजन्मा वा शिष्यो वा यज्ञकर्मणि ।
अध्यापयन्गुरुसुतो गुरुवन्मानमर्हति ॥२०८॥

(२०८) गुरुपुत्र अपनी आयु से छोटा हो वा बड़ा हो, जो पढ़ाने की सामर्थ रखता हो और अपना यज्ञ देखने को आवे तो उसका भी आदर गुरु की नाईं करना चाहिये।

उत्सादनं च गात्राणां स्नापनोच्छिष्टभोजनम् ।
न कुर्याद्गुरुपुत्रस्य पादयोश्चावनेजनम् ॥२०९॥

(२०९) स्नान कराना, उबटन लगाना, जूठा भोजन करना, पांव धोना यह सब काम गुरुपुत्र के न करे।

गुरुवत्प्रतिपूज्याः स्युः सवर्णा गुरुयोषितः ।
असवर्णास्तु संपूज्या प्रत्युत्थानाभिवादनैः ॥२१०॥

(२१०) गुरु के सवर्ण स्त्री की पूजा गुरु की नाईं करे। और जो स्वजाति की नहीं है तो उसकी पूजा यही है कि उठ कर केवल प्रणाम करे।

अभ्यंञ्जनं स्नापनं च गात्रोत्सादनमेव च ।
गुरुपत्न्या न कार्याणि केशानां च प्रसाधनम् ।२११।

(२११) गुरु पत्नी के शरीर में तेल व उबटन न लगावे, और न स्नान करावे, न बाल सुरावे।

गुरुपत्नी तु युवतिर्नाभिवाद्येह पादयोः ।
पूर्णविंशतिवर्षेण गुणदोषौ विजानता ॥२१२॥

(२१२) जो शिष्य पूर्ण २० वर्ष की आयु वाला और गुण दोषों का ज्ञाता हो वह युवा गुरु पत्नी के पाँव पकड़ कर प्रणाम न करे।

स्वभाव एप नारीणां नराणामिह दूषणम् ।
अतोऽर्थान्न प्रमाद्यन्ति प्रमदासु विपश्चितः ॥२१३॥

(२१३) मनुष्यों को दोष लगाना स्त्रियों का स्वभाव है इस हेतु पण्डित जनों को स्त्रियों से चैतन्य रहना चाहिये।

अविद्वांसमलं लोके विद्वांसमपि वा पुनः ।
प्रमदा ह्युत्पथं नेतुं कामक्रोधवशानुगम् ॥२१४॥

(२१४) काम क्रोध के वश हुआ पुरुष बहुत पण्डित हो वा मूर्ख हो उसको बुरे रास्ते पर ले जाने के हेतु स्त्रियां सामर्थ्य रखती हैं।

मात्रा स्वस्रा दुहित्रा वा न विविक्तासनो भवेत् ।
बलवानिन्द्रियग्रामो विद्वांसमपि कर्षति । २१५ ।

(२१५) माता, भगिनी व कन्या इनके साथ जनशून्य घर (स्थान) में न रहे । क्योंकि इन्द्रियां बहुत बलवान् हैं-पण्डितों को भी कुमार्ग पर खींच ले जाती हैं ।

कामं तु गुरुपत्नीनां युवतीनां युवा भुवि ।
विधिवद्वन्दनं कुर्यादसावहमिति ब्रुवन् । २१६ ।

(२१६) युवा गुरुपत्नी को शिष्य विधिवत् (भली भांति) यह कह कर कि मैं अमुक हूँ पृथ्वी पर गिर कर दण्डवत् करे ।

विप्रोष्य पादग्रहणमन्वहं चाभिवादनम् ।
गुरुदारेषु कुर्वीत सतां धर्ममनुस्मरन् । २१७ ।

(२१७) यात्रा से आकर भले मनुष्यों के धर्म को स्मरण करके गुरुपत्नी के पांव पकड़े और प्रणाम को नित्य ही करे ।

यथा खनन्खनित्रेण नरो वार्यधिगच्छति ।
तथा गुरुगतां विद्यां शुश्रूषुरधिगच्छति । २१८ ।

(२१८) जैसे कुदाली से खोदते खोदते मनुष्य जल पाता है उसी प्रकार गुरु की सेवा-शुश्रूषा करते करते शिष्य गुरु की सम्पूर्ण विद्या को पाता है ।

मुण्डो वा जटिलो वा स्यादथवा स्याच्छिखाजटः ।
नैनं ग्रामेऽभिनिम्लोचेत्सूर्योनाभ्युदियात्क्वचित् २१९

(२१९) यद्यपि ब्रह्मचारी मूँड़ मुड़ाये, जटाधारी व चोटी को जटा के तुल्य बनाये हो तथापि कभी भी सूर्योदय वा सूर्यास्त समय ग्राम में न रहे अर्थात् ब्रह्मचारी यह दोनों समय शहर वा ग्राम से बाहर व्यतीत करे ।

तं चेदभ्युदिया त्सूर्यः शयानं.कामचारतः ।
निम्लोचेद्वाप्यविज्ञानाज्जपन्नुपवसेद्दिनम् ॥२२०॥

(२२०) यदि सूर्योदय और सूर्यास्त समय ब्रह्मचारी घर से उपस्थित हो तो प्रायश्चित स्वरूप उस दिन जप करता हुआ उपवास करे।

सूर्येण ह्यभिनिर्मुक्तः शयानोऽभ्युदितश्च यः ।
प्रायश्चित्तमकुर्वाणो युक्तःस्यान्महतैनसा ॥२२१॥

(२२१) यदि उपरोक्त लिखित अथवा कथित प्रायश्चित न करे तो बड़ा पाप होता है।

आचम्य प्रयतो नित्यमुभे संध्ये समाहितः ।
शुचौ देशे जपञ्जप्यमुपासीत यथाविधि ॥२२२॥

(२२२) आचमन कर नित्य दोनों संध्याओं में एकाग्र चित्त से उत्तम और पवित्र स्थानमें यथाविधि गायत्रीका जप करे

यदि स्त्री यद्यवरजः श्रेयः किंचित्समाचरेत् ।
तत्सर्वमाचरेद्युक्तो यत्र वास्य रमेन्मनः ॥२२३॥

(२२३) स्त्री व छोटा पुरुष कोई उत्तम बात करता हो तो उसको आप भी करे अथवा शास्त्रानुसार जिस कर्म में मन को विश्वास हो वह कार्य्य करे।

धर्मार्थावुच्यते श्रेयः कामार्थौ धर्म एव च ।
अर्थ एवेह वा श्रेयस्त्रिवर्ग इति तु स्थितिः ॥२२४॥

(२२४) किसी के मत मे धर्म और अर्थ और किसी के मत में अर्थ और काम, और किसी के मत में केवल धर्म कल्याणकारी है। अब अपने मत को कहते हैं कि धर्म, अर्थ

और काम तीनों एकत्र हैं और इन्हीं तीनों से सब कुछ प्राप्त होता है।

आचार्यश्च पिता चैव माता भ्राता च पूर्वजः।
नार्तेनाप्यवमन्तव्या ब्राह्मणेन विशेषतः ॥२२५॥

(२२५) आचार्य ब्रह्ममूर्ति (परमात्मा की मूर्ति), माता पृथ्वी की मूर्ति, पिता ब्रह्मा की मूर्ति और सगा बड़ा भाई गुरु की मूर्ति है।

आचार्यो ब्रह्मणो मूर्तिः पिता मूर्तिःप्रजापते।
माता पृथिव्या मूर्तिस्तु भ्राता स्वोमूर्तिरात्मनः॥२२६॥

(२२६) आचार्य, पिता और सगा बड़ा भाई इन तीनों का अपमान दुःखी चित्त होने पर भी न करे। इस कार्य की पूर्ति ब्राह्मण को विशेष आवश्यकीय है।

यन्मातापितरौ क्लेशं सहेते संभवे नृणाम्।
न तस्य निष्कृतिः शक्या कर्तुं वर्षशतैरपि ॥२२७॥

(२२७) मनुष्य के उत्पन्न होने में जो क्लेश माता पिता सहन करते हैं उसका प्रतिफल (बदला) सौ वर्ष के उपकार करने से भी नहीं हो सकता। यह सब देवता स्वरूप हैं इनका अपमान कभी न करना चाहिये।

तयोर्नित्यं प्रियं कुर्यादाचार्यस्य च सर्वदा।
तेष्वेव त्रिषु तुष्टेषु तपः सर्वं समाप्यते ॥२२८॥

(२२८) माता, पिता और आचार्य इन तीनों की सेवा शुश्रूषा सदैव करनी चाहिये। इनके प्रसन्न रहने से सब तप सम्पूर्ण होते हैं।

तेषां त्रयाणां शुश्रूषा परमं तपं उच्यते ।
न तैरभ्यननुज्ञातो धर्मं मन्यं समाचरेत् ॥२२६॥

(२२६) इन तीनों की सेवा परम तप है । इनकी आज्ञा के बिना कोई अन्य धर्म न करना चाहिये।

त एव हि त्रयो लोकास्तएव त्रय आश्रमाः ।
त एव हि त्रयो वेदास्तएवोक्तास्त्रयोऽग्नयः ॥२३०॥

(२३०) ❀ यही तीनों पुरुष तीनों लोक, तीनों आश्रम, तीनों वेद और तीनों अग्नि हैं।

पिता वै गार्हपत्योऽग्निर्माताग्निर्दक्षिणः स्मृतः ।
गुरुराहवनी यस्तु साग्निन्त्रेता गरीयसी ॥२३१॥

(२३१) गार्हस्थ्य अग्नि पिता है, दक्षिण अग्नि माता हैं, आहवनीय अग्नि गुरु है, यही तीनों अग्नि सर्वमान्य (बहुत बड़ी) हैं।

त्रिष्वप्रमाद्यन्नेतेषु त्रींल्लोकान्विजयेद्गृही ।
दीप्यमानः स्ववपुषादेववद्दिवि मोदता ॥१३२॥

(२३२) इन तीनों शुश्रूषा में रत रहने से मनुष्य तीनो लोकों को जीत कर और तेजवान होकर देवताओं की नाईं स्वर्ग में आनन्द करता है।

इमं लोकं मातृभक्त्या पितृभक्त्या तु मध्यमम् ।
गुरुशुश्रूषयात्वेवं ब्रह्मलोकं समश्नुते ॥ २३३ ॥

(२३३) माता की भक्ति करने से भूलोक पिता की

❀ (१) माता (२) पिता (३) गुरु।

भक्ति करने से अन्तरिक्ष लोक, और गुरु की भक्ति करने से ब्रह्मलोक प्राप्त होता है।

सर्वे तस्यादृता धर्मा यस्यैते त्रय आदृताः ।
अनादृतास्तु यस्यैते सर्वास्तस्याफलाः क्रियाः ।२३४।

(२३४) जिस मनुष्य ने इन तीनों का आदर किया उसने मानों सब धर्मों का आदर कर लिया और जिसने इनका अनादर किया उसकी सब क्रिया निष्फल है।

यावत्त्रयस्ते जीवेयुस्तावन्नान्यं समाचरेत् ।
तेष्वेव नित्यं शुश्रूषां कुर्यात्प्रियहिते रतः ।२३५।

(२३५) जब तक वह तीनों जीवित रहें तब तक स्वतन्त्र होकर कोई दूसरा धर्म न करे। उन्हीं की सेवा, भलाई करे और उनका ही अनुगामी रहे।

तेषामनुपरोधेन पारत्र्यं यद्यदाचरेत् ।
तत्तन्निवेदयेत्तेभ्यो मनोवचन कर्मभिः ।२३६।

(२३६) उनकी सेवा करता हुआ दूसरा धर्म भी करे (मन वाणी कर्म करके द्वारा) उनसे कह देवे।

त्रिष्वेतेष्विति कृत्यं हि पुरुषस्य समाप्यते ।
एक धर्मः परः साक्षादुपधर्मोऽन्य उच्यते ।२३७।

(२३७) उन्ही तीनों में मनुष्य के वश की जो वात है वह हो जाती है। अतः उनकी सेवा के अतिरिक्त और धर्म जो हैं वह उपधर्म हैं।

श्रद्दधानः शुभां विद्यामाददीतावरादपि ।
अन्त्यादपि परं धर्मं स्त्रीरत्नं दुष्कुलादपि ।२३८।

(२३८) उत्तम विद्या श्रद्धा सहित नीच वंश से भी लेवे

परम धर्म चाण्डाल से भी लेवे, और सुन्दर स्त्री को दुष्ट कुल से भी ले लेना चाहिये।

विषादप्यमृतं ग्राह्यं बालादपि सुभाषितम्।
अमित्रादपि सद्वृत्तममेध्यादपि कांचनम्।२३६।

(२३६) विष, बालक, शत्रु इन तीनों से क्रमानुसार अमृत, सुभाषण (प्रिय बोलना), सद्वृत्त (उत्तम रीति) और कांचन को लेना चाहिये।

स्त्रियो रत्नान्यथो विद्या धर्मः शौचं सुभाषितम्।
विविधानि च शिल्पानि समादेयानि सर्वतः।२४०।

(२४०) स्त्री, रत्न, विद्या, धर्म, शौच (पवित्रता व उज्वलता) सुभाषण, विविध शिल्प इन सब को जहां से मिले लेना चाहिये।

अब्राह्मणादध्ययनमापत्काले विधीयते।
अनुव्रज्या च शुश्रूषा यावदध्ययनं गुरोः।२४१।

(२४१) यदि विपत्ति आ पड़े तो ब्राह्मण क्षत्रिय आदि से पढ़े और जब तक पढ़े तब तक उस गुरु का अनुगामी रहे और सेवा करे।

नाब्राह्मणे गुरौ शिष्यो वासमात्यन्तिकं वसेत्।
ब्राह्मणे चाननूचाने काङ्क्षन्गतिमनुत्तमाम्।२४२।

(२४२) उत्तम गति के इच्छुक क्षत्रिय आदि गुरु और मूर्ख ब्राह्मण के समीप अधिक वास न करे।

यदि त्वात्यन्तिकं वासं रोचयेत गुरोः कुले।
युक्तः परिचरेदेनमाशरीरविमोक्षणात्।२४३।

(२४३) यदि गुरु के समीप अधिक वास करने का इच्छुक हो तो चतुरता से जीवन पर्यन्त सेवा करता हुआ वास करे, परन्तु ब्राह्मण गुरु के समीप।

आसमाप्तेः शरीरस्य यस्तु शुश्रूषते गुरुम्।
स गच्छत्यञ्जसा विप्रो ब्रह्मणः सद्म शाश्वतम् ॥२४४॥

(२४४) जो ब्रह्मचारी शरीर का त्याग करने पर्यन्त गुरु की सेवा करता है वह बिना परिश्रम अविनाशी ब्रह्मलोक को प्राप्त करता है।

न पूर्वं गुरवे किंचिदुपकुर्वीत धर्मवित्।
स्नास्यंस्तु गुरुणाज्ञप्तः शक्त्या गुर्वर्थमाहरेत् ॥२४५॥

(२४५) धर्मज्ञाता ब्रह्मचारी विद्याध्ययन पर्यन्त गुरु सेवा के अतिरिक्त दूसरा उपकार गुरु का न करे, विद्याध्ययन समाप्त करने पश्चात् * समावर्तन के निमित्त स्नान कर गुरु आज्ञा ग्रहण कर यथा-शक्ति दक्षिणा (गुरु दक्षिणा) दे।

क्षेत्रं हिरण्यं गामश्वं छत्रोपानहमासनम्।
धान्यं शाकं च वासांसि गुरवे प्रीतिमावहेत् ॥२४६॥

(२४६) अर्थात् पृथ्वी, सोना, गऊ अश्व, छतरी, जूता, आसन, अन्न, शाक, वस्त्र आदि प्रीति पूर्वक गुरु को देवे।

आचार्ये तु खलु प्रेते गुरुपुत्रे गुणान्विते।
गुरुदारे सपिण्डे वा गुरुवद्वृत्तिमाचरेत् ॥२४७॥

(२४७) गुरु की मृत्यु के पश्चात् यदि गुरुपुत्र विद्वान् या गुणवान् हो और गुरु पत्नी व उसके दूसरे कुल के अन्य विद्वानों को भी गुरुतुल्य जानता रहे।

---

* समावर्तन अर्थात् पितृकुल में आने के हेतु विवाहादि।

एतेष्वविद्यमानेषु स्नानासनविहारवान् ।
प्रयुञ्जानोऽग्निशुश्रूषां साधयेद्देहमात्मनः ॥२४८॥

(२४८) जो ब्रह्मचारी इन्द्रियनिग्रह है वह गुरु, व गुरु पुत्रादि की अविद्यमानता में (न होने पर) उनके घर और आसन में रहकर अग्नि सेवा करता हुआ अपने को ब्रह्म में लीन हो जाने योग्य बनावे।

एवं चरति यो विप्रोब्रह्मचर्यमविप्लुतः ।
स गच्छत्युत्तमस्थानं न चेहाजायते पुनः ॥२४९॥

(२४९) उस प्रकार जो ब्रह्मचारी अखण्ड ब्रह्मचर्य को करता है वह उत्तम स्थान को लाभ करता है और संसार के आवागमन से मुक्त हो जाता है।

मनुजी के धर्मशास्त्र भृगुजी का संहिता का दूसरा अध्याय समाप्त हुआ।

❀ अथ तृतीयोऽध्यायः ❀

षट्त्रिंशदाब्दिकं चर्यंगुरौत्रैवेदिकं व्रतम् ।
तदर्धिकं पादिकं वा ग्रहणान्तिकमेव वा ॥ १ ॥

(१) छत्तीस, व अठारह या नौ वर्ष पर्यन्त तीनों वेदों के अध्ययनार्थ व्रत (इच्छा) से कार्य करना चाहिये। यहाँ पर तीनों वेदों के अर्थ कर्म, उपासना, ज्ञान भी बहुतसे विद्वान् लेते हैं

वेदानधीत्य वेदौ वा वेदं वापि यथाक्रमम् ।
अविप्लुतब्रह्मचर्यो गृहस्थाश्रममाविशेत् ॥ २ ॥

(२) तीनों विद्या, दो वेद विद्या, एक वेद क्रम से पढ़कर अखण्ड व्रती मनुष्य गृहस्थाश्रम में आवे। क्योंकि विना वेदाध्ययन किए और ब्रह्मचर्याश्रम के गृहस्थाश्रम नहीं कहला सकता।

तं प्रतीतं स्वधर्मेण ब्रह्मदायहरं पितुः।
स्रग्विणं तल्प आसीनमर्हयेत्प्रथमं गवा ॥ ३ ॥

(३) धर्म-कार्यों में प्रसिद्ध ब्रह्मचारी जिसने गुरु द्वारा वेदाध्ययन किया हो जब घर में आवे तो पिता को प्रथम आसन (गद्दी) पर बैठाकर पानी से पूजा करे। क्योंकि ब्रह्मचारी के पास पिता को देने योग्य कोई धन नहीं है।

गुरुणानुमतः स्नात्वा समावृत्तो यथाविधि।
उद्वहेत द्विजो भार्यां सवर्णां लक्षणान्विताम् ॥ ४ ॥

(४) गुरु आज्ञा से यथा विधि (स्नानादि करके) समावर्तन संस्कार करे। और उसके पश्चात् अपने वर्ण के समान लक्षणों युक्त कन्या से विवाह करे।

असपिण्डा च या मातुरसगोत्रा च या पितुः।
सा प्रशस्ता द्विजातीनां दारकर्मणि मैथुने ॥ ५ ॥

(५) जो कन्या माता के सपिण्ड में न हो और पिता के गोत्र में न हो ऐसी कन्या तीनों वर्णों को भार्या बनाने के हेतु अच्छी है।

महान्त्यपि समृद्धानि गोजाविधनधान्यतः।
स्त्रीसंबन्धे दशैतानि कुलानि परिवर्जयेत् ॥ ६ ॥

(६) यद्यपि गऊ, बकरी, धन धान्यादि की बहुलता (अधिकता) हो तथापि जो दश कुल, जिन्हें आगे कहेंगे, वर्जित किये हैं उनमें स्त्री सम्बन्ध (विवाह) कदापि न करे।

हीनक्रियं निष्पुरुषं निश्छन्दो रोमशार्शसम्।
क्षय्यामयाव्यपस्मारिश्वित्रिकुष्ठिकुलानि च ॥ ७ ॥

(७) जिस कुल में वेदोक्त संस्कार तथा नित्यकर्म न होते हों, जिस कुल में केवल स्त्रियाँ ही स्त्रियाँ हों पुरुष न हों, जिस कुल में पुरुषों के शरीर पर अधिक लोम हो, जिस कुल में वेदपाठ न होता हो, जिस कुल में क्षयी, अपस्मार, कुष्ठ, मृगी, अग्निमांद्य आदि शारीरिक दूषित रोग हों, यदि ऐसे कुल धनी भी हों तो उनमें विवाह न करे।

नोद्वहेत्कपिलां कन्यां नाधिकाङ्गी न रोगिणीम्।
नालोमिकां नातिलोमां न वाचाटां न पिङ्गलाम् ॥८॥

(८) कपिल रङ्ग, अधिक अङ्ग वाली, रोगिणी, लोमरहिता, अधिक लोम वाली, अधिक बोलने वाली, पिंगला रङ्गकी

नर्क्षवृक्षनदीनाम्नीं नान्त्यपर्वतनामिकाम्।
न पक्ष्यहिप्रेष्यनाम्नी न च भीषणनामिकाम् ॥ ९ ॥

(९) नक्षत्र, वृक्ष, नदी, पक्षी, सांप, म्लेच्छ, पर्वत, दास के नामों पर जिसका नाम हो वा भीषण नाम वाली हो ऐसी कन्या को न वरे।

अव्यङ्गाङ्गीं सौम्यनाम्नीं हंसवारणगामिनीम्।
तनुलोमकेशदशनां मृद्वङ्गीमुद्वहेत्स्त्रियम् ॥ १० ॥

(१०) सर्वाङ्ग वाली, सुन्दर नाम वाली, हंसगामिनी तथा हाथी के समान चाल वाली हो और तनु के लोम, केश और दांत छोटे हों ऐसी स्त्री का पाणिग्रहण करे।

यस्यास्तु न भवेद्भ्राता न विज्ञायेत वा पिता।
नोपयच्छेत् तां प्राज्ञः पुत्रिकाधर्मशङ्कया ॥ ११ ॥

(११) जिस कन्या के भ्राता न हो, जिसके पिता का नाम अज्ञात हो, ऐसी कन्या को न वरे, क्योंकि पुत्रिका धर्म की शंका रहेगी। पिता विवाह समय यह अभिलाषा रहे कि कन्या का पुत्र मेरा होगा उसको पुत्रिका करण कहते हैं, अतः वह बालक (पुत्र) नाना का पुत्र होगा।

सवर्णाग्रे द्विजातीनां प्रशस्ता दारकर्मणि ।
कामतस्तु प्रवृत्तानामिमाः स्युः क्रमशोवराः ॥१२॥

(१२) तीनों वर्णों को स्वजाति की कन्या ही से विवाह करना सर्वोत्तम है। और यदि कामवश अन्य जाति की कन्या को वरे तो निम्नाकित रीति से पाणिग्रहण करना उत्तम होगा।

शूद्रैव भार्या शूद्रस्य सा च स्वा च विशः स्मृते।
ते च स्वा चैव राज्ञश्च ताश्च स्वा चाग्रजन्मनः ॥१३॥

(१३) 'शूद्र केवल स्व जाति की कन्या का, वैश्य स्वजाति और शूद्र की कन्या का, क्षत्रिय स्वजाति वैश्य और शूद्र की कन्या का ब्राह्मण चारों वर्ण की कन्या का, पाणिग्रहण करें'।

न ब्राह्मण क्षत्रिययोरापद्यपि हि तिष्ठतोः ।
कस्मिंश्चदपि वृत्तान्ते शूद्रा भार्योपदिश्यते ॥१४॥

(१४) किसी इतिहास मे यह नहीं पाया जाता कि विपत्ति समय में भी ब्राह्मण वा क्षत्रिय ने शूद्र की कन्या वरी हो

हीनजातिस्त्रियं मोहादुद्व.न्तो द्विजातयः ।
कुलान्येव नयन्त्याशु ससंतानानि शूद्रताम् ॥१५॥

(१५) ब्राह्मण, क्षत्रिय वैश्य तीनों वर्ण यदि मोहवश हीन जाति की कन्या से विवाह करे तो संतान और स्वकुल को शीघ्र नाश कर देते हैं।

शूद्रावेदी पतत्यत्रेरुतथ्यतनयस्य च ।
शौनकस्य सुतोत्पत्त्या तदपत्यतया भृगोः ॥१६॥

(१६) ❀ 'अत्रि और उतथ्य ऋषि का यह मत है कि शूद्र का कन्या का वरने से तीनों वर्ण पतित (वेधम) हो जाते हैं, और शौनक ऋषि का यह मत है कि शूद्र कन्या से उत्पन्न पुत्र पतित होता है। और भृगु ऋषि का यह मत है कि पौत्र (पोता) होने से पतित होता है।

शूद्रां शयनमारोप्य ब्राह्मणो यात्यधोगतिम् ।
जनयित्वा सुतं तस्यां ब्राह्मण्यादेव हीयते ॥१७॥

(१७) शूद्र कन्या को अपने पलङ्ग पर बिठाने से ब्राह्मण अधोगति पाता है (नरकवास करता है) और उससे पुत्रोत्पत्ति होने से धर्म कर्म से रहित हो जाता है। अर्थात् धर्म कर्म का अधिकार नहीं रहता है।

दैवपित्र्यातिथेयानि यत्प्रधानानि यस्य तु ।
नाश्नन्ति पितृदेवास्तन्नच स्वर्गं स गच्छति ॥१८॥

(१८) जिस ब्राह्मण के गृह पर शूद्र कन्या देवकर्म और पितृ कर्म करती है उसके दिये हुये हव्य और कव्य को देवता और पितर नहीं लेते और ब्राह्मण स्वर्ग नहीं पाता है।

वृषलीफेनपीतस्य निःश्वासोपहतस्य च ।
तस्यां चैव प्रसूतस्य निष्कृतिर्न विधीयते ॥१९॥

(१९) जो ब्राह्मण शूद्रकन्या के ओठ से ओठ स्पर्श करे वा मुँह से मुँह अथवा उसके निश्वास (वायु) को अपने शरीर

❀ अत्रि आदि ऋषि मनु के हजारों वर्ष पीछे हुए हैं, अत इससे यह स्पष्ट प्रकट होता है कि यह स्मृति धर्म शास्त्र के पीछे भृगुजी ने रची है।

से स्पर्श होने दे, वा उससे सन्तानोत्पत्ति करे उसका प्रायश्चित्त नहीं है क्योंकि यह सब कार्य सत्संग से होते हैं।

चतुर्णामपि वर्णानां प्रेत्य चेह हिताऽहितान्।
अष्टाविमान्समासेन स्त्रीविवाहन्निबोधत ॥ २० ॥

(२०) इहलोक और परलोक में चारों वर्णों का हिताहित करने वाले आठ प्रकार के विवाह हैं। इसको हमसे सुनिये। यह बात भृगुजी कहते हैं।

ब्राह्मो दैवस्तथैवार्षः प्राजापत्यस्तथासुरः।
गान्धर्वो राक्षसश्चैव पैशाचश्चाष्टमोऽधमः ॥ २१ ॥

(२१) १—ब्राह्म, २—दैव, ३—आर्ष, ४—प्राजापत्य, ५—आसुर, ६—गान्धर्व, ७—राक्षस, ८—पैशाच। इनमें से आठवाँ विवाह अधम है।

यो यस्य धर्म्यो वर्णस्य गुणदोषौ च यस्य यौ।
तद्वः सर्वं प्रवक्ष्यामि प्रसवे च गुणागुणान् ॥ २२ ॥

(२२) 'जो विवाह जिस वर्ण का धर्म है, जिस विवाह का जो गुणदोष है, जिस विवाह से पुत्रोत्पत्ति होती है, जो गुणागुण है, सो सब आप लोगों से कहेंगे।

षडानुपूर्व्या विप्रस्य क्षत्रस्य चतुरोऽवरान्।
विट्शूद्रयोस्तु तानेव विद्याद्धर्म्यानराक्षसान् ॥२३॥

(२३) 'पूर्व के छः विवाह ब्राह्मण को, चार विवाह क्षत्रिय को और वैश्य शूद्रों को भी वही चारों हैं पर राक्षस विवाह किसी को नहीं।

चतुरो ब्राह्मणस्याद्यान्प्रशस्तान्कवयो विदुः।
राक्षसं क्षत्रियस्यैकमासुरं वैश्यशूद्रयोः ॥ २४ ॥

(२४) 'पूर्व के चार विवाह ब्राह्मण को, राक्षस विवाह क्षत्रिय को और आसुर विवाह वैश्यों व शूद्रों के लिये किसी किसी ने निर्धारित किया है।'

पञ्चानां तु त्रयो धर्म्या द्वावधर्म्यौ स्मृताविह ।
पैशाचश्चासुरश्चैव न कर्तव्या कदाचन ॥ २५ ॥

(२५) 'अन्त के पांच विवाहों में से तीन धर्म विवाह और दो अधर्म विवाह हैं अतः आसुर और पैशाच विवाह कदापि न करना चाहिये।'

पृथक्पृथग्वा मिश्रौ वा विवाहौ पूर्वचोदितौ ।
गान्धर्वो राक्षसश्चैवधर्म्यौ क्षत्रस्य तौ स्मृतौ ॥२६॥

(२६) गान्धर्व और राक्षस विवाह दोनों पृथक् २ हों वा एकत्र हों केवल क्षत्रिय के योग्य कहे हैं।

आच्छाद्य चार्चयित्वा च श्रुतिशीलवते स्वयम् ।
आहूय दानं कन्याया ब्राह्मो धर्मःप्रकीर्तितः ॥२७॥

(२७) (अब आठों लक्षण कहते हैं) वर और कन्या को वस्त्रालङ्कार देकर वर को बुलाकर कन्यादान देवे वह ब्रह्म विवाह कहलाता है।

यज्ञे तु वितते सम्यगृत्विजे कर्म कुर्वते ।
अलंकृत्य सुतादानं दैवं धर्मं प्रचक्षते ॥ २८ ॥

(२८) यज्ञ में ऋत्विजों को अलङ्कार सहित कन्यादान देवे वह दैव विवाह कहलाता है।

एकं गोमिथुनं द्वे वा वरादादाय धर्मतः ।
कन्याप्रदानं विधिवदार्षो धर्मःस उच्यते ॥ २९ ॥

(२९) एक व दो गऊ अथवा बैल वर से लेकर कन्या प्रदान करे वह आर्ष विवाह कहलाता है।

सहनौ चरतां धर्ममिति वाचानुभाष्य च।
कन्याप्रदानमभ्यर्च्य प्राजापत्यो विधिःस्मृतः ॥३०॥

(३०) वर और कन्या दोनों धर्म को करें यह बात कह कर वर कन्या की पूजा करके कन्या देवे, यह प्राजापत्य विवाह कहलाता है।

ज्ञातिभ्यो द्रविणं दत्वा कन्यायै चैव शक्तितः।
कन्याप्रदानं स्वाच्छन्द्यादासुरो धर्म उच्यते ॥३१॥

(३१) कन्या अथवा कन्या की जाति वालों को धन देकर कन्या लेना आसुर विवाह कहलाता है।

इच्छयान्योन्यसंयोगः कन्यायाश्च वरस्य च।
गान्धर्वः स तु विज्ञेयो मैथुन्यःकामसंभवः ॥३२॥

(३२) वर और कन्या परस्पर स्वेच्छापूर्वक जो सयोग करें वह गान्धर्व विवाह कहलाता है। यह विवाह भोगके अर्थ है।

हत्वा छित्वा च भित्वा च क्रोशन्तीं रुदतीं गृहात्।
प्रसह्य कन्याहरणं राक्षसो विधिरुच्यते ॥३३॥

(३३) रोती पुकारती हुई कन्या को मार पीट बलात् गृह से हरण करना राक्षस विवाह कहलाता है।

सुप्तां मत्तां प्रमत्तां वा रहो यत्रोपगच्छति।
स पापिष्ठो विवाहानां पैशाचश्चाष्टमोऽधमः ॥३४॥

(३४) सोती स्त्री, धन वा भोग मद से प्रमत्त (मस्त), रोगिणी वा अज्ञान हो ऐसी स्त्री से एकान्त में सहवास करना

पिशाच विवाह कहलाता है। यह आठवाँ विवाह और सबसे अधम है।

अद्भिरेव द्विजाग्र्याणां कन्यादानं विशिष्यते।
इतरेषां तु वर्णानामितरेतरकाम्यया ॥ ३५ ॥

(३५) ब्राह्मण को जल से कन्यादान करना उत्तम है और क्षत्रिय आदि का बिना जल के पारस्परिक * इच्छामात्र से केवल वाणी द्वारा कहने से विवाह हो सकता है।

यो यस्यैषां विवाहानां मनुना कीर्तितो गुणः।
सर्वं शृणुत तं विप्राः सर्वं कीर्तयतो मम ॥३६॥

(३६) जिस विवाह का जो गुण मनुजी ने कहा है हे ब्राह्मणो! वह हम भली प्रकार कहते हैं आप सब सुनें।' (यह श्लोक स्पष्टरूप से जतलाता है कि यह स्मृति मनुस्मृति नहीं)।

दश पूर्वान्परान्वंश्यानात्मानं चैकविंशकम्।
ब्राह्मीपुत्रः सुकृतकृन्मोचयेदेनसः पितॄन् ॥३७॥

(३७) यदि ब्राह्म विवाह से पुत्रोत्पत्ति हो और शुभ कर्मों को करे तो दस पुरषा ऊपर के और दस पुश्त नीचे के और इक्कीसवाँ अपने आपको आप से छुड़ाता है।

दैवोढजः सुतश्चैव सप्त सप्त परावरान्।
आर्षोढजः सुतस्त्रींस्त्रीन्षट्षट् कायोढजः सुतः ॥३८॥

(३८) देव विवाह से पुत्र उत्पन्न होकर यदि शुभ

---

*इस विवाह के विषय में बड़ी गड़बड़ी है। क्योंकि बिना वेदोक्त संस्कार के विवाह मान्य नहीं है। यदि इसे मान लें तो संस्कार पन्द्रह ही रह जाते हैं।

कर्मों वाला हो तो सात पुश्त (पीढ़ी) ऊपर और सात पीढ़ी नीचे की और पन्द्रहवाँ अपने आपको पापों से विमुक्त करता है और आर्ष विवाह से उत्पन्न पुत्र तीन पीढ़ी ऊपर और तीन पीढ़ी नीचे की और प्राजापत्य विवाह से उत्पन्न पुत्र छः छः पीढ़ी ऊपर और नीचे की पापों से मुक्त करता है यदि शुभ कर्म हो।

ब्राह्मादिषु विवाहेषु चतुर्ष्वेवानुपूर्वशः ।
ब्रह्मवर्चस्विनः पुत्रा जायन्ते शिष्टसम्मताः ॥३९॥

(३९) ब्राह्म विवाहादि पूर्व के चारों विवाहों से उत्पन्न पुत्र बड़ा तेजस्वी और शिष्ट (उत्तम पुरुष) मनुष्यों के समान होता है।

रूपसत्वगुणोपेता धनवन्तो यशस्विनः ।
पर्याप्तभोगा धर्मिष्ठा जीवन्ति च शतं समाः ॥४०॥

(४०) रूप और उत्तम गुण, यश, भाग्य, धन और धर्म वाला होता है और सौ वर्ष पर्यन्त जीवित रह सकता है।

इतरेषु तु शिष्टेषु नृशंसानृतवादिनः ।
जायन्ते दुर्विवाहेषु ब्रह्मधर्मद्विषः सुताः ॥४१॥

(४१) और शेष चारों विवाहों से उत्पन्न पुत्र घातक होता है मिथ्याभाषी, और ब्रह्मधर्म का शत्रु होता है।

अनिन्दितैः स्त्रीविवाहैरनिन्द्या भवति प्रजा ।
निन्दितैर्निन्दिता नृणां तस्मान्निन्द्यान्विवर्जयेत् ॥४२॥

(४२) (१) अनिन्दित विवाह से अनिन्दित सन्तान उत्पन्न होती है और (२) निन्दित विवाह से निन्दित सन्तान होती है। इस हेतु निन्दित विवाह सदैव वर्जित है।

१–निर्दोषी २–दूषिता ३–रजोदर्शन अर्थात् मासिक धर्म के

पाणिग्रहणसंस्कारः सवर्णासूपदिश्यते ।
असवर्णास्वयज्ञेयो विधिरुद्वाहकर्मणि ॥ ४३ ॥

(४३) 'स्वजाति की कन्या से पाणिग्रहण संस्कार जानना और दूसरी जाति की कन्या से विवाह करने की जो विधि है उसे आगे कहेंगे ।

शरः क्षत्रियया ग्राह्यः प्रतोदो वैश्यकन्यया ।
वसनस्य दशा ग्राह्या शूद्रयोत्कृष्टवेदने ॥ ४४ ॥

(४४) 'क्षत्रिय की कन्या तीर को ग्रहण करे, वैश्य की कन्या चौपाया (घोड़ा बैल आदि) के हाँकने के अस्त्र को, और शूद्र की कन्या कपड़े के कौने को ग्रहण करे (पकड़े) जब उसका विवाह उच्च जाति के पुरुष से होता हो ।'

ऋतुकालाभिगामी स्यात्स्वदारनिरतः सदा ।
पर्ववर्जं व्रजेच्चैनां यद्व्रतो रतिकाम्यया ॥ ४५ ॥

(४५) (३) ऋतुकाल में स्त्री से भोग करे किन्तु परस्त्री से भोग न करे । परन्तु अपनी स्त्री से (४) पर्व के दिन ऋतुकाल में भोग न करे । यदि स्त्री की इच्छा हो तो विना ऋतुकाल के भी रति करे, यह नियम है । ऋतुकाल में स्त्री के समीप सोवे और यदि सामर्थ्य हो तो भोग अवश्य करे, अन्यथा बड़ा दोष है ।

ऋतुःस्वाभाविकः स्त्रीणां रात्रयः षोडशः स्मृताः ।
चतुर्भिरितरैः सार्धमहोभिः सद्विगर्हितैः ॥ ४६ ॥

स्नान के पश्चात् । ४—अकृष्ण पक्ष की अष्टमी, चतुर्दशी अमावस्या, पौर्णमासी, संक्रान्ति ।

(४६) ऋतुकाल अर्थात् गर्भधारण करने की स्त्रियों की स्वाभाविक सोलह रात्रि हैं, इनमें से प्रथम चार दूषित व वर्जित हैं शेष बारह रात्रि रहीं।

तासामाद्याश्चतस्रस्तु निन्दितैकादशी च या।
त्रयोदशीं च शेषास्तु प्रशस्ता दश रात्रयः॥ ४७॥

(४७) इनमें प्रथम की चार, ग्यारहवीं, और तेरहवीं रात्रि दूषित निन्दित हैं, शेष उत्तम हैं।

युग्मासु पुत्रा जायन्ते स्त्रियोऽयुग्मासु रात्रिषु।
तस्माद्युग्मासु पुत्रार्थी संविशेदार्तवे स्त्रियम्॥ ४८॥

(४८) सम्भवतः + सम रात्रि में भोग करने से पुत्र और × विषम रात्रि में भोग करने से कन्या उत्पन्न होती है। इस हेतु पुत्रार्थी (पुत्रोत्पत्तिकी इच्छा रखने वाले) सम रात्रि में भोग करें।

पुमान्पुंसोऽधिके शुक्रे स्त्री भवत्यधिके स्त्रियाः।
समेऽपुमान्पुंस्त्रियौ वा क्षीणेऽल्पे च विपर्ययः॥४९॥

(४९) पुरुष का शुक्र (वीर्य) अधिक (बलवान) होने से विषम रात्रि में भी पुत्र उत्पन्न होता है और स्त्री का रज अधिक होने से समरात्रि में भी कन्या उत्पन्न होती है। यदि स्त्री पुरुष दोनों का शुक्र तथा रज समान हो तो नपुंसक कन्या व पुत्र उत्पन्न होता है। यदि दोनों का शुक्र तथा रज न्यून हो तो गर्भ नहीं ठहरता।

+ सम अर्थात् जो दो से विभाजित हो सके यथा छठवीं आठवीं इत्यादि।

× विषम जो दो से विभाजित न हो सके यथा पांचवीं, सातवीं इत्यादि।

निन्द्यास्वष्टासु चान्यासु स्त्रियो रात्रिषु वर्जयन् ।
ब्रह्मचार्यें व भवति यत्रतत्राश्रमे वसन् ॥ ५० ॥

(५०) वर्जित आठ रात्रियों में भोग करना परित्यक्त कर देने से प्रत्येक आश्रम म भी ब्रह्मचारी ही रहता है।

न कन्यायाः पिता विद्वा.गृह्णीयाच्छुल्कमण्वपि ।
गृह्ण श्छुल्कं हि लोभेन स्यान्नरोऽपत्यविक्रयी ॥५१॥

(५१) कन्या का पिता तनिक भी शुल्क (बदला, मुआवजा) न लेवे लोभ से कुछ भी शुल्क ग्रहण करने वाला कन्या का विक्रय करने वाला कहलाता है।

स्त्री धनानि तु ये मोहादुपजीवन्ति बान्धवाः ।
नारी यानानि वस्त्र वा ते पापा यान्त्यधोगतिम्॥५२॥

(५२) पत्नी (स्त्री) के धन, वस्त्र अथवा सवारी को लेकर जो बान्धव अपना कालयापन करते हैं वह बड़े पापी होते हैं और नरकवास करते हैं।

आर्षे गोमिथुन शुल्क कचिदाहुर्मृषैव तत् ।
अल्पोऽप्येव महान्वापि विक्रयस्तावदेव स. ॥५३॥

(५३) किसी ऋषि ने आर्ष विवाह में दो गऊ लेना नियत वा योग्य ठहराया है पर तु थाड़ा वा बहुत लेना कन्या विक्रय (बेचना) ही कहलाता है।

यासा नाददते शुल्कं ज्ञातयो न स विक्रयः ।
अर्हण तत्कुमारीणामानृशस्य च केवलम् ॥ ५४ ॥

(५४) जिस कन्या का शुल्क (पलटा) जाति वाले नहीं लेते वह कन्या विक्रय नहीं कहलाता। शुल्क न लेना कन्या-पूजन है। और अनृशस्य (दया) है।

पितृभिर्भ्रातृभिश्चैताः पतिभिर्देवरैस्तथा ।
पूज्या भूषयितव्याश्च बहुकल्याणमीप्सुभिः ॥५५॥

(५५) बहुत कल्याण के इच्छुक पिता, भाई, पति और देवर भूषण (गहने) और वस्त्रों से स्त्री की पूजा करें अर्थात् स्त्री को सन्तुष्ट करें।

यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः ।
यत्रैतास्तु न पूज्यन्ते सर्वास्तत्राऽफलाः क्रियाः॥५६॥

(५६) जिस कुल में स्त्रियों की पूजा होती है उस कुल में देवता रमते (विहार करते) हैं। और जहाँ नारियों की पूजा नहीं होती वहाँ सब क्रियायें निष्फल होती हैं।

शोचन्ति जामयो यत्र विनश्यत्याशु तत्कुलम् ।
न शोचन्ति तु यत्रैता वर्धते तद्धि सर्वदा ॥५७॥

(५७) जिस कुल में स्त्रियों को कष्ट होता है वह कुल शीघ्र ही नाश हो जाता है। और जहा नारियों को सुख होता है वह कुल सदैव फलता फूलता है।

जामयोयानि गेहानि शपन्त्यप्रतिपूजिताः ।
तानि कृत्याहतानीव विनश्यन्ति समन्ततः ॥ ५८ ॥

(५८) आवश्यकीय सुख और मान न पाकर जिस कुल की स्त्रिया शाप दे देती हैं। वह कुल शीघ्र ही नाश हो जाता है क्योंकि वह निर्बल है।

तस्मादेताः सदा पूज्या भूषणाच्छादनाशनैः ।
भूतिकामैर्नरैर्नित्यं सत्कारेषूत्सवेषु च ॥ ५९ ॥

(५९) इस हेतु धनेच्छुक मनुष्यों को चाहिये कि वह

अपनी स्त्रियों को आवश्यकता से सन्तुष्ट रक्खें जिससे वे उत्तम सन्तान सुप्रसव करें ।

संतुष्टो भार्यया भर्त्ता भर्त्रा भार्या तथैव च ।
यस्मिन्नेव कुले नित्यं कल्याणं तत्र वै ध्रुवम् ॥६०॥

(६०) जिस कुल में पति पत्नी परस्पर प्रसन्न रहते हैं वहाँ कलह के न होने से सुख मिलता है।

यदि हि स्त्री न रोचेत पुमांसं न प्रमोदयेत् ।
अप्रमोदात्पुनः पुंसः प्रजनं न प्रवर्तते ॥ ६१ ॥

(६१) यदि पति पत्नी परस्पर प्रीति न करें तो किसी प्रकार सन्तान उत्पन्न नहीं हो सकती और विवाह का प्रयोजन ही निरर्थक हो जायेगा।

स्त्रियां तु रोचमानायां सर्वं तद्रोचते कुलम् ।
तस्यां त्वरोचमानायां सर्वमेव न रोचते ॥ ६२ ॥

(६२) स्त्री के प्रसन्न रहने से सब कुल प्रसन्न रहता है और स्त्री के अप्रसन्न रहने से सब कुल अप्रसन्न रहता है।

कुविवाहैः क्रियालोपैर्वेदानध्ययनेन च ।
कुलान्यकुलतां यान्ति ब्राह्मणातिक्रमेण च ॥ ६३ ॥

(६३) वर्जित विवाह, धर्म कार्य न करने, वेदाध्ययन न करने, ब्राह्मण अपमान, इन निन्दित बातों के करने से कुल नाश हो जाता है।

शिल्पेन व्यवहारेण शूद्रापत्यैश्च केवलैः ।
गोभिरश्वैश्च यानैश्च कृष्या राजोपसेवया ॥ ६४ ॥

(६४) शिल्प वेद, व्यवहार, शूद्रकन्या से विवाह

सन्तान उत्पन्न करने, गऊ आदि जीवों का क्रय-विक्रय (मोल लेना और बेचना) करने से ब्राह्मण सकुल नाश हो जाता है।

अयाज्ययाजनैश्चैव नास्तिक्येन च कर्मणा।
कुलान्याशु विनश्यन्ति यानि हीनानि मन्त्रतः ॥६५॥

(६५) जो यज्ञ कराने के योग्य नहीं उसे लोभवश यज्ञ कराना, बिना वेदमन्त्रों के + केवल दुर्गा आदि के श्लोकों से कर्म कराना, इनसे भी कुल नाश हो जाता है।

मन्त्रतस्तु समृद्धानि कुलान्यल्पधनान्यपि।
कुलसंख्यां च गच्छन्ति कर्षन्ति च महद्यशः ॥६६॥

(६६) जो कुल धनवान न हो किंतु मन्त्र से सब कर्म होते हों वह कुल बड़ा कहलाता है और यश पाता है।

वैवाहिकेऽग्नौ कुर्वीत गृह्यं कर्म यथाविधि।
पञ्चयज्ञविधानं च पक्तिं चान्वाहिकीं गृही ॥६७॥

(६७) गृह्यसूत्र में वर्णित कर्म पंचयज्ञ और नित्य भोजन पाक इन सबको विवाह समय की अग्नि में यथाविधि करना चाहिये।

पञ्च सूना गृहस्थस्य चुल्ली पेषण्युपस्करः।
कण्डनी चोदकुम्भश्च बध्यते यास्तु वाहयन् ॥६८॥

(६८) गृहस्थ के घर में चूल्हा, सिल, बट्टा, झाड़ू, ओखली, मूसल, पानी का घड़ा इनसे काम लेने में जीव मरते हैं किन्तु जीव-हत्या की इच्छा न होने से यह हिंसा नहीं कहलाती। परन्तु जीवों को हानि अवश्य पहुँचती है, इस हेतु उसका प्रायश्चित आवश्यक है।

+ यह केवल ब्राह्मणों के लिये है और वर्णों के लिये नहीं।

तासां क्रमेण सर्वासां निष्कृत्यर्थं महर्षिभिः।
पञ्च क्लृप्ता महायज्ञाः प्रत्यहं गृहमेधिनाम् ॥६९॥

(६९) इन कर्मों के प्रायश्चित्त के निमित्त नित्य पञ्चयज्ञ करना चाहिये जिससे जितनी हानि संसार को पहुँची है उतना ही लाभ पहुँच जावे।

अध्यापनं ब्रह्मयज्ञः पितृयज्ञस्तु तर्पणम्।
होमो दैवो बलिर्भौतो नृयज्ञोऽतिथिपूजनम् ॥७०॥

(७०) पञ्च महायज्ञ हैं कि १-वेद का स्वाध्याय करना और संध्या करना, २-पितृतर्पण ३-हवन करना ४-बलि देना, ५-अतिथि पूजन, इन सबको क्रमानुसार ब्रह्मयज्ञ, जप तृयज्ञ, भूतयज्ञ, और मनुष्य-यज्ञ (नरमेध) कहते हैं।

पञ्चैतान्यो महायज्ञान्नहापयति शक्तितः।
स गृहेऽपि वसन्नित्यं सूनादोषैर्न लिप्यते ॥ ७१ ॥

(७१) जो कोई सामर्थ्यानुसार इन पाँचों महायज्ञों को करता है वह नित्य ही हिंसा (जीवहत्या) के पाप से मुक्त होता रहता है।

देवतातिथिभृत्यानां पितॄणामात्मनश्च यः।
न निर्वपति पञ्चानामुच्छ्वसन्न स जीवति ॥ ७२ ॥

(७२) जो मनुष्य देवता, अतिथि, भृत्य और पितरों (वृद्धों) को भोजन नहीं देता वह जीवित दशा में भी मरे के तुल्य है।

अहुतं च हुतं चैव तथा प्रहुतमेव च।
ब्राह्म्यं हुतं प्राशितं च पञ्चयज्ञान्प्रचक्षते ॥ ७३ ॥

(७३) १—आहुत २—हुत ३—प्रहुत ४—ब्राह्महुत, ५—प्राशित यह पाँच यज्ञ हैं।

जपोऽहुतो हुतो होमः प्रहुतो भौतिको वलिः ।
ब्राह्मं हुतंद्विजाग्र्यार्चा प्राशितं पितृतर्पणम् ॥ ७४ ॥

(७४) इन पाँचों को क्रम से १—जप, २—यज्ञ, (हवन) ३-भूतवलि, ४-अतिथि-पूजा, और ५—पितृतर्पण कहते हैं।

स्वाध्याये नित्ययुक्तः स्याद्दैवे चैवेह कर्मणि ।
दैवे कर्मणि युक्तो हि विभर्तीदं चराचरम् ॥ ७५ ॥

(७५) अनध्याय किये विना वेद का स्वाध्यायी और अग्निहोत्री ब्राह्मण सारे ससार को अपने उपदेश और सदाचार से वश में कर सकता है जैसाकि शङ्कराचार्य और स्वामी दयानद के उदाहरण से प्रकट है।

अग्नौ प्रास्ताहुतिः सम्यगादित्यमुपतिष्ठते ।
आदित्याज्जायते वृष्टिर्वृष्टेरन्नं ततः प्रजाः ॥ ७६ ॥

(७६) अग्नि में जो आहुति पड़ती है वह सूर्य के समीप जाती है और सूर्य द्वारा जल बरसता है, जल से अनाज होता है, अनाज से प्रजा उत्पन्न होती है।

यथा वायुं समाश्रित्य वर्तन्ते सर्वजन्तवः ।
तथा गृहस्थमाश्रित्य वर्तन्ते सर्व आश्रमाः ॥ ७७ ॥

(७७) जिस प्रकार वायु के आश्रय से सब जीव जीते हैं उसी प्रकार गृहस्थ आश्रम के आश्रय से सब आश्रय वाले रहते हैं।

यस्मात्त्रयोऽप्याश्रमिणो ज्ञानेनान्नेन चान्वहम् ।
गृहस्थेनैव धार्यन्ते तस्माज्ज्येष्ठाश्रमो गृही ॥७८॥

(७८) वेद के स्वाध्याय और अन्नदान देने से तीनों आश्रमों को गृहस्थाश्रमी नित्य धारण करता है। इस हेतु गृहस्थाश्रम ही बड़ा है।

स संधार्यः प्रयत्नेन स्वर्गमक्षयमिच्छता।
सुखं चेहेच्छता नित्यं योऽधार्यो दुर्बलेन्द्रियैः॥७९॥

(७९) आगामी जन्म में अमिट सुख और यहाँ पर आनन्दित रहने का इच्छुक सदैव गृहस्थाश्रम को धारण करता है, जिस गृहस्थ आश्रम को दुर्बलेन्द्रिय धारण नहीं कर सकते।

ऋषयः पितरो देवा भूतान्यतिथयस्तथा।
आशासते कुटुम्बिभ्यस्तेभ्यः कार्यं विजानता॥८०॥

(८०) ऋषि, पितर, देवता, अतिथि यह सब गृहस्थों से भोजन की आशा रखते हैं। इस हेतु इन सबको अन्न-जल देना चाहिये। क्योंकि वानप्रस्थी और संन्यासी, विद्यादाता, विद्वान इनकी जीविका का द्वार गृहस्थ के अतिरिक्त अन्य नहीं है।

स्वाध्यायेनार्चयेतर्षीन्होमैर्देवान्यथाविधि।
पितॄन्श्राद्धैश्च नानान्नैर्भूतानि बलिकर्मणा॥८१॥

(८१) ऋषियों की पूजा स्वाध्याय (वेद पढ़ने) से, देवतों की पूजा अग्निहोत्र करने से, पितरों की पूजा श्रद्धा से उनकी सेवा करने से, मनुष्य की पूजा अन्नदान से, जीवों की पूजा बलिवैश्वदेव कर्म से करनी चाहिये।

कुर्यादहरहः श्राद्धमन्नाद्येनोदकेन वा।
पयोमूलफलैर्वापि पितृभ्यः प्रीतिमावहन्॥८२॥

(८२) अपने बड़ों (वृद्धों, पितरों) से प्रीति रखे और

भोजन, दूध, घी, फल आदि से नित्य उनका श्राद्ध किया करे। क्योंकि यह बड़ा यज्ञ है।

एकमप्याशयेद्विप्रं पित्रर्थे पाञ्चयज्ञिके।
न चैवात्राशयेत्किंचिद्वैश्वदेवं प्रतिद्विजम्॥ ८३॥

(८३) पच महायज्ञ में पितरों के निमित्त जो वलि कर्म कहा है वह यदि न हो सके तो एक या बहुत ब्राह्मणों को भोजन करावे, पर वैश्वदेव निमित्त ब्राह्मण भोजन न करावे।

वैश्वदेवस्य सिद्धस्य गृह्येऽग्नौ विधिपूर्वकम्।
आभ्यः कुर्याद्देवताभ्यो ब्राह्मणो होममन्वहम्॥८४॥

(८४) संस्कार सहित अवस्था नाम अग्नि में जो आगे देवता कहेंगे उनको नित्य यथाविधि आहुति देवे।

अग्नेः सोमस्य चैवादौ तयोश्चैव समस्तयोः।
विश्वेभ्यश्चैव देवेभ्यो धन्वन्तरय एव च॥ ८५॥

(८५) अग्नि सोम—अग्निसोम वैश्वदेव धन्वन्तरि।

कुह्वै चैवानुमत्यै च प्रजापतय एव च।
सहद्यावापृथिव्योश्च तथा स्विष्टकृतेऽन्ततः॥ ८६॥

(८६) कुहै, अनुमत्यै, प्रजापतये, द्यावापृथिवी, स्विष्टकृते इन सब के साथ स्वाहा लगाकर आहुति देवे।

एवं सम्यग्घविर्हुत्वा सर्वदिक्षु प्रदक्षिणम्।
इन्द्रान्तकाप्पतीन्दुभ्यः सानुगेभ्यो वलिं हरेत्॥८७॥

(८७) उत्तम विधि से अग्निहोत्र करके प्रदक्षिणा करने से इन्द्र, वरुण, यम, चन्द्र आदि, और उनके सेवकों को वलिदान देवे।

मरुद्भ्य इति तु द्वारि क्षिपेदप्स्वद्भ्य इत्यपि।
वनस्पतिभ्य इत्येवं मुसलोलूखले हरेत् ॥ ८८ ॥

(८८) * द्वारदेश में मारुत को, जलस्थान में जल को, मूसल ओखली के स्थान में वनस्पति को।

उच्छीर्षके श्रियै कुर्याद्भद्रकाल्यै च पादतः।
ब्रह्मवास्तोष्पतिभ्यां तु वास्तुमध्ये बलिं हरेत् ॥८९॥

(८९) वास्तु के सर, पाद, मध्य में क्रम से श्री, भद्रकाली, वास्तोष्पति इन सब को देवे।

विश्वेभ्यश्चैव देवेभ्यो बलिमाकाश उत्क्षिपेत्।
दिवाचरेभ्यो भूतेभ्यो नक्तंचारिभ्य एव च ॥९०॥

(९०) विश्वदेव निमित्त आकाश में छोड़ दे और रात्रि दिन परिभ्रमण करने वाले भूतों को आकाश में देवे।

पृष्ठवास्तुनि कुर्वीत बलिं सर्वात्मभूतये।
पितृभ्यो बलिशेषं तु सर्वं दक्षिणतो हरेत् ॥९१॥

(९१) वास्तुपृष्ठ (वस्तु की पीठ) में सर्वात्म भूत को बलि देवे। बलि देने पश्चात जो अन्न बचे उसे दक्षिण दिशा में पितरों को देवे।

शुनां च पतितानां च श्वपचां पापरोगिणाम्।
वायसानां कृमीणां च शनकैर्निक्षिपेद्भुवि ॥९२॥

(९२) कुत्ता, पतित, डोम, पाप रोगी, कौआ, कृमि इन सब को धीरे से पृथ्वी में देवे।

---

* श्लोक ८८ से ९१ तक मिलावट ज्ञात होती है।

एवं यः सर्वभूतानि ब्राह्मणो नित्यमर्चति ।
स गच्छति परं स्थानं तेजोमूर्ति पथर्जुना ॥९३॥

(९३) जो ब्राह्मण सदैव इस विधि से सब भूतों को लाभ पहुँचाता है वह ज्ञानी होकर सरल पथ द्वारा मुक्ति प्राप्त करता है।

कृत्वैतद्बलिकर्मैवमतिथिं पूर्वमाशयेत् ।
भिक्षां च भिक्षवे दद्याद्विधिवद्ब्रह्मचारिणे ॥ ९४ ॥

(९४) बलि-वैश्व-कर्म के पश्चात् घर वालों के भोजन करने से प्रथम अतिथि और ब्रह्मचारी को भोजन खिलाकर अतिथि-यज्ञ करे।

यत्पुण्यफलमाप्नोति गां दत्वां विधिवद्गुरोः ।
तत्पुण्यफलमाप्नोति भिक्षां दत्वा द्विजो गृही ॥९५॥

(९५) अपने गुरु को यथाविधि गोदान देने से जो फल होता है वही फल गृहस्थ को * भिक्षुक को भिक्षा देने से प्राप्त होता है।

भिक्षामप्युदपात्रं वा सत्कृत्य विधिपूर्वकम् ।
वेदतत्त्वार्थविदुषे ब्राह्मणायोपपादयेत् ॥ ९६ ॥

(९६) जो ब्राह्मण वेदों के सिद्धान्त व तत्वार्थ का ज्ञाता हो उसे यथाविधि प्रीतिपूर्वक भोजन और जल देवें।

---

* यह छः भिक्षुक कहलाते हैंः—१-संन्यासी, २—ब्रह्मचारी, ३-विद्यार्थी, ४-गुरुपालक, ५-बटोही, और ६-जिसका धन नाश हो गया हो। इनके अतिरिक्त जो माँगते हैं वह भिक्षा (भीख) के अधिकारी नहीं।

नश्यन्ति हव्यकव्यानि नराणामविजानताम् ।
भस्मीभूतेषु विप्रेषु मोहाद्दत्तानि दातृभिः ॥९७॥

(९७) जो मूर्खता के कारण देवता और पितर के अर्थ मूर्ख ब्राह्मण को भोजनादि देते हैं वह सब निष्फल जाता है।

विद्यातपःसमृद्धेषु हुतं विप्रमुखाग्निषु ।
निस्तारयति दुर्गाच्च महतश्चैव किल्बिषात् ॥ ९८ ॥

(९८) विद्वान् तपस्वी ब्राह्मण को भोजन दिया जाता है वह भोजनदाता (अर्थात् ब्राह्मण के मुख की अग्नि में हवन करने वाला) बड़े पापों से विमुक्त हो जाता है।

संप्राप्ताय त्वतिथये प्रदद्यादासनोदके ।
अन्नंचैव यथाशक्ति सत्कृत्य विधिपूर्वकम् ॥ ९९ ॥

(९९) जो स्वयं ही अचानक आगया हो उसको अपनी सामर्थ्यानुसार विश्रामहेतु आसन और अन्न (भोजन) जल देकर उसकी पूजा करे।

शिलानप्युञ्छतो नित्यं पञ्चाग्नीनपि जुह्वतः ।
सर्वं सुकृतमादत्ते ब्राह्मणोऽनर्चितो वसन् ॥ १००॥

(१००) * जो ब्राह्मण अतिथि बिना पूजा पाये घर में रहता है तो उस गृहस्थ का—चाहे वह कितना ही नित्य पंच महायज्ञ और तप व जप का करने वाला हो तथा नित्य जङ्गल से चावल चुन कर निर्वाह करता हो—सब धर्म नाश हो जाता है।

---

* आचार्यगण इसी प्रकार अपने यज्ञ के व्यसनी थे कि यदि एक बार भी उनके गृह में अतिथि (बटोही) को कष्ट हो तो वह अपना सारा धर्म नाश हुआ समझते थे। प्रत्येक जाति को अतिथि सत्कार आर्यों से सीखना चाहिये।

तृणानि भूमिरुदकं वाक्चतुर्थी च सूनृता ।
एतान्यपि सतां गेहे नोच्छिद्यन्ते कदाचन ॥१०१॥

(१०१) तृण (घास , पृथिवी, जल, वाक्चातुर्य (मिष्ठ-भाषण) से उत्तम पुरुषों का घर कभी शून्य नहीं रहता ।

एकरात्रं तु निवसन्नतिथिर्ब्राह्मणः स्मृतः ।
अनित्यं हि स्थितो यस्मात्तस्मादतिथिरुच्यते ॥१०२॥

(१०२) एक रात्रि के रहने वाले को अतिथि (पाहुना) कहते हैं। अतः अतिथि को एक रात्रि से अधिक न रहना चाहिये

नैकग्रामीणमतिथिं विप्रं सांगतिकं तथा ।
उपस्थितं गृहे विद्याद्भार्या यत्राग्नयोऽपि वा ॥१०३॥

(१०३) जिस गृहस्थ के गृह में स्त्री और अग्नि उपस्थित हो उनके घर विश्वदेव के समय अतिथि आया हो तो अतिथि है। परन्तु एक ग्रामवासी और विचित्र हँसी कथा कहने वाला अतिथि नहीं कहाता है।

उपासते ये गृहस्थाः परपाकमबुद्धयः ।
तेन ते प्रेत्य पशुतां व्रजन्त्यन्नादिदायिनाम् ॥१०४॥

(१०४) जो गृहस्थ मूर्खतावश बिना उद्यम किये दूसरों का भोजन खाते हैं वह आगामी जन्म में उस अन्न दाता के पशु होते हैं।

अप्रणोद्योऽतिथिः सायं सूर्योढो गृहमेधिना ।
काले प्राप्तस्त्वकाले वा नास्यानश्नन्गृहेवसन् ॥१०५॥

(१०५) सायंकाल को जब अतिथि घर में आवे तो -

उसे भोजनादि अवश्य देना चाहिये। अथवा समय असमय चाहे जब अतिथि आवे किन्तु भूखा न रहने देना चाहिए।

न वै स्वयं तदश्नीयादतिथिं यन्न भोजयेत्।
धन्यं यशस्यमायुष्यं स्वर्ग्यं वाऽतिथिपूजनम् ॥१०६॥

(१०६) जो वस्तु अतिथि को न खिलावे वह आप भी न खावे। अतिथि को भोजन देना धन, यश और स्वर्ग के हेतु (अर्थ) है।

आसनावसथौ शय्यामनुव्रज्यामुपासनाम्।
उत्तमेषूत्तमं कुर्याद्धीने हीनं समे समम् ॥१०७॥

(१०७) सेवा-शुश्रूषा, आज्ञा मानना, आसन, गृह और पूजा उत्तम पुरुषों की उत्तम, मध्यम पुरुषों की मध्यम, और अधम (नीच) पुरुषों की अधम करनी चाहिये।

वैश्वदेवे तु निर्वृत्ते यद्यन्योऽतिथिराव्रजेत्।
तस्याप्यन्नं यथाशक्ति प्रदद्यान्न बलिं हरेत् ॥१०८॥

(१०८) वैश्वदेव कर्म करने के पश्चात् दूसरा अतिथि आवे तो उसको यथाशक्ति अन्न देवे, बलि-कर्म न करे।

न भोजनार्थं स्वे विप्रः कुलगोत्रे निवेदयेत्।
भोजनार्थं हि ते शंसन्वान्ताशीत्युच्यते बुधैः ॥१०९॥

(१०९) भोजनार्थ ब्राह्मण को अपना कुल और गोत्र न कहना चाहिये। यदि कहे तो वमन करके खाने वाला कहला है।

न ब्राह्मणस्य त्वतिथिर्गृहे राजन्य उच्यते।
वैश्यशूद्रौ सखा चैव ज्ञातयो गुरुरेव च ॥११०॥

(११०) ब्राह्मण के गृह में क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, मित्र बन्धु गुरु यह सब अतिथि नहीं कहलाते अर्थात् जो अन्ने

वढा हो, और सम्बन्ध और प्रभुता से विलग हो वह सब वर्णों का अतिथि कहलाता है।

यदि त्वतिथिधर्मेण क्षत्रियो गृहमाव्रजेत्।
भुक्तवत्स्वथ विप्रेषु कामं तमपि भोजयेत् ॥१११॥

(१११) यदि ब्राह्मण के गृह पर क्षत्रिय अतिथि आ जावे तो ब्राह्मण के पश्चात् उसका भी भोजनादि से सत्कार करना चाहिये।

वैश्यशूद्रावपि प्राप्तौ कुटुम्बेऽतिथिधर्मिणौ।
भोजयेत्सह भृत्यैस्तावानृशंस्यं प्रयोजयन् ॥ ११२ ॥

(११२) इसी प्रकार देवता करके वैश्य और शूद्र को भी भाई बन्धुओं के साथ भोजन देना चाहिये।

इतरानपि सख्यादीन्संप्रीत्या गृहमागतान्।
सत्कृत्यान्नं यथाशक्ति भोजयेत्सह भार्यया ॥११३॥

(११३) प्रीति के कारण मित्रादि प्रियजन गृह पर आये हों तो यथाशक्ति स्त्रियों के भोजन के समय उनको भी भोजन देना चाहिये।

सुवासिनीः कुमारीश्च रोगिणो गर्भिणीः स्त्रियः।
अतिथिभ्योऽग्र एवैतान्भोजयेदविचारयन् ॥११४।

(११४) पुत्रवधू (बेटे की स्त्री) विवाहिता पुत्री, छोटा बालक, रोगी, गर्भिणी स्त्री, इन सबको अतिथि-भोजन से प्रथम देना चाहिये, कुछ सोच विचार न करना चाहिये।

अदत्त्वा तु य एतेभ्यः पूर्वं भुङ्क्तेऽविचक्षणः।
स भुञ्जानो न जानाति श्वगृध्रैर्जग्धिमात्मनः॥११५॥

(११५) भोजन योग्य जितने पुरुषों को कह आये हैं उन सब को बिना भोजन कराये जो अज्ञानी आप भोजन करता है वह नहीं जानता कि हमारे शरीर को कुत्ते और गिद्ध खावेंगे।

भुक्तवत्स्वथ विप्रेषु स्वेषु भृत्येषु चैव हि।
भुञ्जीयातां ततः पश्चादवशिष्टं तु दम्पती ॥११६॥

(११६) ब्राह्मण, सम्बन्धी, और भृत्य (सेवक) को भोजन देकर गृहस्वामी को अपनी पत्नी सहित भोजन करना चाहिये।

देवानृषीन्मनुष्यांश्च पितॄन्गृह्याश्च देवताः।
पूजयित्वा ततः पश्चाद्गृहस्थः शेषभुग्भवेत् ।११७।

(११७) देवता, ऋषि, पितर, मनुष्य, और भूत इन सबके निमित्त यज्ञ करके और सब के भोजनोपरान्त जो शेष रहे उसे गृहस्थ भोजन करे।

अघं स केवलं भुङ्क्ते यः पचत्यात्मकारणात्।
यज्ञशिष्टाशनं ह्येतत्सतामन्नं विधीयते। ११८।

(११८) जो पुरुष केवल अपने ही लिये भोजन करता है वह पाप को भोजन करता है। यज्ञ का बचा हुआ अन्न उत्तम पुरुषों को भोजन करना चाहिये।

राजर्त्विक्स्नातकगुरून्प्रियश्वशुरमातुलान्।
अर्हयेन्मधुपर्केण परिसंवत्सरात्पुनः। ११९।

(११९) राजा, ऋत्विक् (यज्ञ कराने वाला) स्नातक (विद्या व व्रत में पूर्ण ब्रह्मचारी) गुरु, प्यारा, ससुर, मामा इन सब की मधुपर्क से प्रतिवर्ष पूजा करनी चाहिये।

राजा च श्रोत्रियश्चैव यज्ञकर्मण्युपस्थितौ ।
मधुपर्केण सपूज्यो नत्वयज्ञ इति स्थितिः ॥१२०॥

(१२०) राजा श्रोत्रिय (वेद पढने वाला) इन दोनों की पूजा मधुपर्क से यज्ञकर्म म करनी चाहिये । अन्य समय में नहीं करनी, यह शास्त्रविधि है ।

साय त्वन्नस्य सिद्धस्य पत्न्यमन्त्रं बलिं हरेत् ।
वैश्वदेव हि नामैतत्सायप्रातर्विधीयते ॥१२१॥

(१२१) सन्ध्या समय पके हुये अन्न से बिना मत्र के स्त्री बलि वैश्य कर्म करे । गृहस्थियों को नित्य पच महायज्ञ यथाविधि करने चाहियें ।

पितृयज्ञ तु निर्वर्त्य विप्रश्चन्दुक्षयेऽग्निमान् ।
पिण्डान्वाहार्यकं श्राद्धं कुर्यान्मासानुमासिकम् ।१२२।

(१२२) 'प्रत्येक मास की अमावस्या' म पितृयज्ञ से अग्निहोत्री ब्राह्मण श्राद्ध करे ।

पितृणा मासिक श्राद्धमन्वाहार्य विदुर्बुधाः ।
तच्चामिषेण कर्त्तव्य प्रशस्तेन प्रयत्नतः ॥१२३॥

(१-३) ❀ 'प्रत्येक मास में पितरों का जो श्राद्ध किया जाता है वह ईश्वर वादी कहलाता है । और उसको उत्तम मास से करना चाहिये ।

तत्र ये भोजनीयाः स्युर्ये च वर्ज्याद्विजोत्तमाः ।
यावन्तश्चैव यैश्चान्नैस्तान्प्रवक्ष्याम्यशेषतः ॥१२४॥

❀ यह श्लोक मुसलमानो के राज्य-काल म मिलाया गया है, क्योंकि राजा कर्ण से प्रथम जो अलाउद्दीन खिजली के समय म हुआ है मृतक-श्राद्ध प्रचलित न था ।

(१२४) इस श्राद्ध में जो भोजन योग्य है और जो अयोग्य हैं जितने चाहिये और जो अन्न भोजन कराना चाहिये वह सब हम कहेंगे ।

द्वौ दैवे पितृकार्ये त्रीनेकैकमुभयत्र वा ।
भोजयेत्सुसमृद्धोऽपि न प्रसज्जेत विस्तरे ॥१२५॥

(१२५) श्राद्ध में दो कर्म हैं १—पितृकर्म, २—देवकर्म, तिसमें कैसा ही धनी हो परन्तु देवकर्म में एक और पितृकर्म में दो ही ब्राह्मण को भोजन करावे, अथवा दोनों कर्मों में एक ही ब्राह्मण को भोजन करावे, अधिक विस्तार न बढ़ावें ।

सत्क्रियां देशकालौ च शौचं ब्राह्मणसंपदः ।
पञ्चैतान्विस्तरो हन्ति तस्मान्नेहेत विस्तरम् ॥१२६॥

(१२६) सत्कार, देश काल, पवित्रता, श्रेष्ठ ब्राह्मण इन सब बातों का नाश विस्तार करने से होता है। अतएव विस्तार न करना चाहिये ।

प्रथिता प्रेतकृत्यैषा पित्र्यं नाम विधुक्षये ।
तस्मिन्युक्तस्यैति नित्यं प्रेतकृत्यैव लौकिकी ॥१२७॥

(१२७) अमावस्या में श्राद्ध करने से पितरों का उपकार होता है, क्योंकि पितृलोग श्राद्ध करने वाले को गुण, बेटा, पोता, धनादि सब कुछ देते हैं अत. श्राद्ध अवश्य करना चाहिए।

श्रोत्रियायैव देयानि हव्यकव्यानि दातृभिः ।
अर्हत्तमाय विप्राय तस्मै दत्तं महाफलम् ॥१२८॥

(१२८) देवता और पितरों के निमित्त जो वस्तु देनी हो वह वेदपाठी बड़े पूज्य ब्राह्मण को दे, किसी मूर्ख को न दे। क्योंकि ऐसे ब्राह्मण को देने से महाफल होता है।

एकैकमपि विद्वांसं दैवे पित्र्ये च भोजयेत् ।
पुष्कलं फलमाप्नोति नऽमन्त्रज्ञान्बहूनपि ॥१२९॥

(१२९) देव व पितृकर्म में एक ब्राह्मण को भोजन कराने से भी बड़ा फल होता। और बहुत से मूर्ख ब्राह्मणों के भोजन कराने से वैसा फल नहीं होता।

दूरादेव परीक्षेत ब्राह्मणं वेदपारगम् ।
तीर्थं तद्धव्यकव्यानां प्रदाने सोऽतिथिः स्मृतः॥१३०॥

(१३०) दूर से वेदपाठी ब्राह्मण की परीक्षा करनी चाहिये क्योंकि देवता और पितरों की वस्तु को लेने वाला वही है।

सहस्रं हि सहस्राणामनृचां यत्र भुञ्जते ।
एकस्तान्मन्त्रवित्प्रीतः सर्वानर्हति धर्मतः॥ १३१ ॥

(१३१) दश लाख मूर्ख ब्राह्मणों के भोजन कराने से जो फल होता है, वही फल मन्त्रज्ञाता एक ब्राह्मण के भोजन कराने से होता है।

ज्ञानोत्कृष्टाय देयानि कव्यानि च हवींषि च ।
न हि हस्तावसृग्दिग्धौ रुधिरेणैव शुध्यतः ॥१३२॥

(१३२) देवता या पितरों के देने की वस्तु ज्ञानी ब्राह्मण को देनी चाहिये। जिस प्रकार रुधिर से सना हुआ हाथी रुधिर ही से धोने से शुद्ध नहीं होता उसी भाँति मूर्ख ब्राह्मण के सत्कार से मूर्खता नहीं जाती।

यावतो ग्रसते ग्रासान्हव्यकव्येष्वमन्त्रवित्
तावतो ग्रसते प्रेत्य दीप्तान्शूलानयोगुडान् ॥१३३॥

(१३३) + 'देवता या पितरों के अन्न के जितने ग्रास मूर्ख ब्राह्मण भोजन करता है उतने बार श्राद्ध करने वाला अग्नि से तप्त लोहपिण्ड और दुधारे शस्त्र को भोजन करता है।

ज्ञाननिष्ठा द्विजाः केचित्तपोनिष्ठास्तथाऽपरे ।
तपः स्वाध्यायनिष्ठाश्च कर्मनिष्ठास्तथापरे ॥१३४॥

(१३४) ब्राह्मण चार प्रकार के हैं (१) ज्ञानी (२) तपस्वी (३) वेदपाठी (४) कर्मकाण्डी।

ज्ञाननिष्ठेषु कव्यानि प्रतिष्ठाप्यानि यत्नतः ।
हव्यानि तु यथान्यायं सर्वेष्वेव चतुर्ष्वपि ॥१३५॥

(१३५) 'पितरों के देने योग्य वस्तु ज्ञानी ब्राह्मण को देनी चाहिये और देवताओं के देने योग्य वस्तु चारों में से जो मिले उसी को देना चाहिये।

अश्रोत्रियः पिता यस्य पुत्रः स्याद्वेदपारगः ।
अश्रोत्रियो वा पुत्रः स्यात्पिता स्याद्वेदपारगः॥१३६॥

(१३६) 'जिसका पिता वेदपाठी और आप मूर्ख अथवा आप वेदपाठी और पिता मूर्ख हो तो—

ज्यायांसमनयोर्विद्याद्यस्य स्याच्छ्रोत्रियः पिता ।
मन्त्रसंपूजनार्थं तु सत्कारमितरोऽर्हति ॥ १३७ ॥

(१३७) 'इन दोनों में जिसका पिता वेदपाठी हो वह बड़ा है और दूसरा भी वेद पढ़ने के कारण सत्कार करने योग्य है। क्योंकि वेदपाठी पिता से पुत्र में संस्कार विधिपूर्वक होते हैं।

+ आजकल के हिन्दुओं और महामण्डल के पंडितों को इसे बार-बार पढ़ना चाहिये।

न श्राद्धे भोजयेन्मित्रं धनैः कार्योऽस्य संग्रहः ।
नाऽरिंन मित्रं यं विद्यात्तं श्राद्धे भोजयेद्द्विजम् ॥१३८॥

(१३८) 'श्राद्ध में मित्र ब्राह्मण को भोजन न करावे, कुछ धनादि देकर सत्कार करे, परन्तु जो ब्राह्मण न मित्र न शत्रु हो उसे भोजन करावे।

यस्य मित्रप्रधानानि श्राद्धानि च हवींषि च ।
तस्य प्रेत्य फलं नास्ति श्राद्धेषु च हविःषु च ॥१३९॥

(१३९) 'जिस किसी के देव वा पितृकर्म मे मित्र ही भोजन करता है उसको भोजन कराने का फल परलोक मे नहीं मिलता।

यः संगतानि कुरुते मोहाच्छ्राद्धेन मानवः ।
स स्वर्गाच्च्यवते लोकाच्छ्राद्धमित्रो द्विजाधमः ॥१४०॥

(१४०) 'जो ब्राह्मण श्राद्ध में भोजन करने के अर्थ ही मित्रता करता है वह स्वर्ग लोक से भ्रष्ट होता है और वह ब्राह्मणों में अधर्म है।

संभोजनीयाभिहिता पैशाची दक्षिणा द्विजैः ।
इहैवास्ते तु सा लोके गौरन्धेवैकवेश्मनि ॥१४१॥

(१४१) 'ऐसा भोजन पिशाचों का है और इसी लोक में फलदायक है। जैसे अन्धा गऊ एक ही गृह में रह सकती है वैसे ही वह भोजन उसी लोक में रहता है, परलोक मे कुछ काम नहीं देता।

यथेरिणे बीजमुप्त्वा न वप्ता लभते फलम् ।
तथाऽनृचे हविर्दत्त्वा न दाता लभते फलम् ॥१४२॥

(१४२) 'जैसे ऊपर भूमि में बीज बोने वाला फल नहीं पाता वैसे ही देवता की वस्तु मूर्ख ब्राह्मण को भोजन कराने से दाता फल नहीं पाता।

दातॄन्प्रतिग्रहीतॄंश्च कुरुते फलभागिनः।
विदुषे दक्षिणां दत्वा विधिवत्प्रेत्य चेह च ॥१४३॥

(१४३) 'पण्डित ब्राह्मण को यथाविधि दक्षिणा देने से दाता और लेने वाला दोनों इस लोक और परलोक दोनों लोकों में फल को प्राप्त करते हैं।

कामं श्राद्धेऽर्चयेन्मित्रं नाभिरूपमपि त्वऽरिम्।
द्विषता हि हविर्भुक्तं भवति प्रेत्य निष्फलम् ।१४४।

(१४४) 'श्राद्ध में मित्र को भोजन कराना कुछ हानिकारक नहीं परन्तु शत्रु यदि पण्डित भी हो तो भी उसे भोजन न कराना। क्योंकि उसके भोजन करने से परलोक में दाता फल नहीं पाता है।

यत्नेन भोजयेच्छ्राद्धे बह्वृचं वेदपारगम्।
शाखान्तगमथाध्वर्युं छन्दोगं तु समाप्तिकम् ॥१४५॥

(१४५) 'श्राद्ध में प्रयत्न करके चारों वेदों में पारंगत को भोजन करावे अथवा जिसने वेद और उसके व्याख्यान (उपशाखाओं) को यथाविधि पढ़ा हो उसको भोजन करावे।

एषामन्यतमो यस्य भुञ्जीत श्राद्धमर्चितः।
पितृणां तस्य तृप्तिःस्याच्छाश्वती साप्तपौरुषी ।१४६।

(१४६) 'इन वेद पाठियों में से एक को भी यदि पूजा करके श्राद्ध में भोजन करावे तो सात वर्ष पर्यन्त पितरों की तृप्ति होती है।

एष वै प्रथमः कल्पः प्रदाने हव्यकव्ययोः ।
अनुकल्पस्त्वयं ज्ञेयः सदा सद्भिरनुष्ठितः ॥१४७॥

(१४७) 'हव्य और कव्य इन दोनों के दान में मुख्य पक्ष को कहा है, अब कौन पक्ष को उत्तम पुरुषों ने धारण किया है, सो कहते हैं।

मातामहं मातुलं च स्वस्रीयं श्वशुरं गुरुम् ।
दौहित्रं विट्पतिं बन्धुमृत्विग्याज्यौ च भोजयेत् १४८

(१४८) '१—नाना, २—मामा, ३—भानजा, ४—ससुर ५-विद्यागुरु, ६—दोहित्र, (नाती, बेटी का बेटा), ७—दामाद, (जामाता), ८-मौसीपुत्र, यज्ञ कराने वाला, १०—यजमान। इन दशों को मुख्य पक्ष न होने से भोजन कराना चाहिये।

न ब्राह्मणं परीक्षेत दैवे कर्मणि धर्मवित् ।
पित्र्ये कर्मणि तु प्राप्ते परीक्षेत प्रयत्नतः ॥१४९॥

(१४९) 'देवकर्म में ब्राह्मण की परीक्षा न लेनी चाहिये, परन्तु पितृकर्म में पुरुषार्थ से ब्राह्मणों की परीक्षा लेनी चाहिये।

ये स्तेनपतित क्लीबा ये च नास्तिकवृत्तयः ।
तान्हव्यकव्ययोर्विप्राननर्हान्मनुरब्रवीत् ॥ १५० ॥

(१५०) 'जिन ब्राह्मणों को मनुजी ने भोजन कराने से वर्जित किया है वह यह है—चोर, महापापी, क्लीब (नपुंसक, नामर्द), नास्तिक।

जटिलं चानधीयानं दुर्बलं कितवं तथा ।
याजयन्ति च ये पूगांस्तांश्च श्राद्धे न भोजयेत् ।१५१।

(१५१) 'जटाधारी, अनपढ़, दुर्बल, कितव (दूषित

घमड़े वाला), स्वार्थ से प्रत्येक योग्य वा अयोग्य को यज्ञ कराने वाला, इनको श्राद्ध में न खिलाये।

चिकित्सकान्देवलकान्मांसविक्रयिणस्तथा।
विपणेन च जीवन्तो वर्ज्याः स्युर्हव्यकव्ययोः॥१५२॥

(१५२) वैद्य (चिकित्सक), धन लेकर तीन वर्ष पर्यन्त देवमूर्ति का पुजारी, माँस बेचने वाला, वैश्यों के कर्म से जीने वाला।

प्रेष्यो ग्रामस्य राज्ञश्च कुनखी श्यावदन्तकः।
प्रतिरोद्धा गुरोश्चैव त्यक्ताग्निर्वार्धुषिस्तथा॥१५३॥

(१५३) राजा अथवा प्रजा का वेतन भोगी सेवक, कुलखी, जन्म से काले दाँत वाला, गुरु के प्रतिकूल काम करने वाला, अधिकार होते हुये अग्निहोत्र न करने वाला, सूदव्याज से कालक्षेप करने वाला।

यक्ष्मी च पशुपालश्च परिवेत्ता निराकृतिः।
ब्रह्मद्विट् परिवित्तिश्च गणाभ्यन्तर एव च॥१५४॥

(१५४) यक्ष्मा (क्षयरोग) वाला, पशु पालन करके निर्वाह करने वाला, परवेत्ता, पंच महायज्ञ न करने वाला, ब्राह्मणों से शत्रुता रखने वाला, परधन को अपहरण करने वाला, गणाभ्यन्तर।

कुशलिवोऽवकीर्णी च वृषली पतिरेव च।
पौनर्भवश्च काणश्च यस्य चोपपतिर्गृहे॥१५५॥

(१५५) नाच से निर्वाह करने वाला स्त्री भोग से अपवित्र (पतित) ब्रह्मचारी, शूद्रा स्त्री का पति, दूसरे पति से स्त्री का काणा बेटा; और जिसको स्त्री ने उपपति किया हो।

भृतकाध्यापको यश्च भृतकाध्यापितस्तथा ।
शूद्रशिष्यो गुरुश्चैव वाग्दुष्टःकुण्डगोलकौ ॥१५६॥

(१५६) ※ वेतन भोगी अध्यापक, वेतन देकर विद्याध्ययन करने वाला, शूद्र का गुरु, शूद्र का शिष्य, कड़वी बात करने वाला, पतित को विद्या पढाने वाला, कुण्ड, गोलक ।

अकारणपरित्यक्ता मातापित्रोगुरोस्तथा ।
ब्राह्मैर्यौनैश्च संबन्धैः संयोगं पतितैर्गतः ॥१५७॥

(१५७) अकारण माता पिता और गुरु को परित्याग करने वाला (अलग होने वाला), जो मनुष्य सयोग वश धर्म-पतित, हो गये हैं उनसे पढ़ने वा उनको पढाने वाला, और उनसे विवाहादि सम्बन्ध करने वाला ।

आगारदाही गरदः कुण्डाशी सोमविक्रयी ।
समुद्रयायी बन्दी च तैलिकः कूटकारकः ॥१५८॥

(१५८) घर में अग्नि लगाने वाला, विषदाता, कुण्ड का अन्न भक्षी सोमलता को वेचने वाला, समुद्र मे जाने वाला वन्दी तेल के अर्थ तेलादि पीसने वाला, कूट वात कहने वाला,

पित्रा विवदमानश्च कितवो मद्यपस्तथा ।
पापरोग्यभिशस्तश्च दाम्भिको रसविक्रयी ॥ १५९ ॥

※ मनुजी ने मूर्ति पूजा करने वाले पुजारी और मास वेचने वाले को एक समान लिखा है परन्तु मूर्खलोग पुजारी को अच्छा समझते हैं। और वेतन भोगी अध्यापकी का कार्य करने वाला ब्राह्मण भी ब्राह्मण कहाने योग्य नहीं है। अब जो वेतन लेकर पढ़ाते हैं वे न जाने इन श्लोको को देखते हैं या नहीं।

(१५६) पिता से कलह विवाद करने वाला, आप पासा खेलना नहीं जानता और अपने अर्थ दूसरे को पासा खिलाने वाला ❀ शराब पीने वाला, कोढी, अभिशस्त्र वहाने से धर्म करने वाला, रस वेचने वाला।

धनुःशराणां कर्ता च यश्चाग्रेदिधिषूपतिः ।
मित्रध्रुग्द्यूतवृत्तिश्च पुत्राचार्यस्तथैव च ॥ १६० ॥

(१६०) धनुषबाणधारी, बड़ी सगी बहिन का विवाह हुए बिना छोटी बहिन का पाणिग्रहण कराने वाला, मित्र से शत्रुता करने वाला, द्यूत (जुआ) वृत्ति वाला, पुत्र से विद्याध्ययन करने वाला।

भ्रामरी गण्डमाली च श्वित्र्यथो पिशुनस्तथा ।
उन्मत्तोऽन्धश्च वर्ज्याः स्युर्वेदनिन्दक एव च ।१६१।

(१६१) मृगी, गण्डमाला, श्वेतकुष्ट, इन रोगा में से कोई एक रोग वाला, दुष्ट पुरुष, उन्मत्त (पागल, दीवाना), अन्धा, वेदनिन्दक ।

हस्तिगोश्वोष्ट्रदमको नक्षत्रैर्यश्च जीवति ।
पक्षिणां पोषको यश्च युद्धाचार्यस्तथैव च ॥ १६२ ॥

(१६२) हाथी, बैल, ऊँट घोड़ा, इन सबको वधिया करने वाला × ज्योतिषी (ज्योतिष विद्या से कालक्षेप करने वाला), पक्षी पालने वाला युद्धार्थ अस्त्र शस्त्र विद्या को सिखाने वाला।

❀ शराब पीने वाले ब्राह्मणों को ब्राह्मण कैसे कह सकते हैं यहाँ पर मद्य से भाग, गाजा और शराब आदि मादक वस्तुओं का अर्थ लेना चाहिये।

× महात्मा मनुजी ज्योतिषी को ब्राह्मण को पदवी से गिराते हैं क्योंकि ज्योतिषी स्वार्थपरता वश अनृत (झूँठ) भाषण करते हैं।

स्रोतसां भेदको यश्च तेषां चावरणे रतः।
गृहसंवेशको दूतो वृक्षारोपक एव च॥ १६३॥

(१६३) बँधे हुए पानी को दूसरे स्थान पर ले जाने वाला, बहते पानी को अवरुद्ध करने वाला (बाँधने वाला), सर्वदा गृहसवेश (मेमारीराज) वृत्ति वाला, दूत, वेतन लेकर वृक्ष रोपने (लगाने) वाला।

श्वक्रीडी श्येनजीवी च कन्यादूषक एव च।
हिंस्रो वृषलवृत्तिश्च गणानां चैव याजकः॥ १६४॥

(१६४) कुत्तों से क्रीडा (खेल) करने वाला, बाज आदि पक्षियों से जीवन निर्वाह करने वाला, कुमारी कन्या से भोग करने वाला, जीव हिंसा करने वाला, शूद्रों से जीवन-निर्वाह करने वाला, बहुत से पुरुषों को यज्ञ कराने वाला।

आचारहीनः क्लीबश्च नित्यं याचनकस्तथा।
कृषिजीवी श्लीपदी च सद्भिर्निन्दित एव च॥१६५॥

(१६५) आचारहीन, नपुंसक, ❀ नित्य भिक्षावृत्ति करने वाला, कृषि से उदरपोषण करने वाला, मोटे पाँव वाला, सत्पुरुषों से निन्दा पाने वाला।

औरभ्रिको माहिषिकः परपूर्वापतिस्तथा।
प्रेतनिर्यातकाश्चैव वर्जनीयाः प्रयत्नतः॥ १६६॥

(१६६) भेड़, भैंस से जीवन-निर्वाह करने वाला, निज पति को त्याग कर दूसरा पति करने वाली स्त्री का दूसरा पति, धन लेकर शवदाह करने वाला।

❀ मनुजी भिक्षावृत्ति वाले ब्राह्मण को ब्राह्मण नहीं मानते और जीवहिंसक के तुल्य बतलाते हैं।

एतान्विगर्हिताचारानपाङ्क्तेयान्द्विजाधमान् ।
द्विजातिप्रवरो विद्वानुभयत्र विवर्जयेत् ॥ १६७ ॥

(१६७) ये अकारण निन्दिताचरणी हैं, ब्राह्मणों मे अधम हैं, पंक्ति मे बिठाने के अयोग्य हैं, इन सब को देवता या पितृ-कर्म के भोजन न करावे ।

ब्राह्मणस्त्वनधीयानस्तृणाग्निरिव शाम्यति ।
तस्मै हव्यं न दातव्यं न हि भस्मनि हूयते ॥१६८॥

(१६८) जैसे फूस की अग्नि झटपट बुझ जाती है उसी प्रकार मूर्ख ब्राह्मण है । अतएव हव्य और कव्य उसको न देना चाहिये। क्योंकि राख में हवन नहीं हो सकता ।

अपाङ्क्तदाने यो दातुर्भवत्यूर्ध्वं फलोदयः ।
दैवे हविषि पित्र्ये वा तत्प्रवक्ष्याम्यशेषतः ॥ १६९ ॥

(१६९) देवकर्म वा पितृकर्म मे निन्दक ब्राह्मणों को भोजन कराने से जो फल परलोक में मिलता है उसी को हम (अर्थात् भृगुजी) कहते हैं कि—

अव्रतैर्यद्द्विजैर्भुक्तं परिवेत्रादिभिस्तथा ।
अपाङ्क्तेयैर्यदन्यैश्च तद्वै रक्षांसि भुञ्जते ॥१७०॥

(१७०) उपरोक्त निन्दक ब्राह्मण जो भोजन करते वह राक्षस भोजन करते हैं, अर्थात् निष्फल होता है।

दाराग्निहोत्रसंयोगं कुरुते योऽग्रजे स्थिते ।
परिवेत्ता स विज्ञेयः परिवित्तिस्तु पूर्वजः ॥१७१॥

(१७१) अविवाहिता सगे बड़े भाई के होते हुए छोटा भाई विवाह करे और अग्निहोत्र करे तो बड़ा भाई परिवित्त कहलाता है और छोटा भाई परिवेत्ता कहलाता है ।

परिवित्तिः परीवेत्ता यथा च परिविद्यते ।
सर्वे ते नरकं यांति दातृयाजकपञ्चमाः ॥ १७२ ॥

(१७२) परिवित, परिवेता, परिविता (अर्थात् जि कन्या से विवाह हुआ है), सो उस कन्या को देने वाला औ विवाह-सस्कार कराने वाला ब्राह्मण यह पाँचो नरकगामी होते

भ्रातुर्मृतस्य भार्यायां योऽनुरज्येत कामतः ।
धर्मेणापि नियुक्तायां स ज्ञेयो दिधिपूपतिः ॥१७३॥

(१७३) मृत भाई की स्त्री से भोग करने की विधि आगे कहेंगे उस विधि से भी स्वेच्छापूर्वक भाग करने वा दिधिपूपति कहलाता है ।

परदारेषुजायेते द्वौ सुतौ कुण्डगोलकौ ।
पत्यौ जीवति कुण्डः स्यान्मृते भर्तरि गोलकः ।१७४।

(१७४) पर स्त्री मे दो पुत्र होते हैं एक कुण्ड और दूसरा गोलक। इनमें से जीवित पति वाली का पुत्र कुण्ड कहलाता है और मृत पति वाली का पुत्र गोलक कहलाता है ।

तौ तु जातौ परक्षेत्रे प्राणिनौ प्रेत्य चेह च ।
दत्तानि हव्यकव्यानि नाशयेते प्रदायिनाम् ॥१७५॥

(१७५) इन दोनों (अर्थात् कुण्ड वा गोलक) को देव वा पितृकर्म में भोजन कराने से और दान देने से दाता को परलोक में कुछ फल नहीं मिलता।

अपाङ्क्त्यो यावतः पाङ्क्त्यान्भुञ्जानाननुपश्यति ।
तावतां न फलं तत्र दाता प्राप्नोति बालिशः ॥१७६॥

(१७६) ब्राह्मणमण्डली से पतित ब्राह्मण जितने ब्राह्मणों

को भोजन करता हुआ देखता है उतने ब्राह्मणों के खिलाने का फल दाता को नहीं होता और वह दोनों बुद्धिहीन हैं।

वीक्ष्यान्धो नवतेः काणः षष्टेः श्वित्री शतस्य तु ।
पापरोगी सहस्रस्य दातुर्नाशयते फलम् ॥१७७॥

(१७७) अन्धा, काणा, श्वेतकुष्ठ वाला राजरोगी, इन सब के देखने से यथाक्रम ६०, ६०, १००, १०००, ब्राह्मण भोजन कराने का फल दाता को नहीं प्राप्त होता।

यावतः संस्पृशेदंगैर्ब्राह्मणाञ्छूद्रयाजकः ।
तावतां न भवेद्दातु फलं दानस्य पौर्तिकम् ॥१७८॥

(१७८) शूद्र के यज्ञ में यज्ञ कराने वाला ब्राह्मण अपने शरीर से जितने ब्राह्मणों को स्पर्श करता है उतने ब्राह्मणों को देने का फल दाता नहीं पाता और श्राद्ध में उत्तम ब्राह्मणों की पंक्ति में बैठकर यदि वह भोजन करे तो जितने ब्राह्मण भोजन करते हैं उन सबके भोजन करने का फल दाता नहीं प्राप्त कर सकता।

वेदविच्चापि विप्रोऽस्य लोभात्कृत्वा प्रतिग्रहम् ।
विनाशं व्रजति क्षिप्रमामपात्रमिवाम्भसि ॥ १७९ ॥

(१७९) शूद्र को यज्ञ कराने वाले ब्राह्मण से ※ लोभ वश वेद पढने वाला ब्राह्मण भी जो दान लेवे तो झटपट नाश हो जाता है, जैसे मिट्टी का कच्चा बरतन पानी में।

नोट—आजकल तो श्राद्ध में भोजन करने वाले सभी ऐसे ही ब्राह्मण हैं।

※ लोभ से वेद शास्त्र पढना महापाप है क्योंकि यह तो ब्राह्मणों का धर्म ही है । आजकल जितने वेदपाठी धनोपार्जन अर्थ पढते हैं वह मनुजी के कथानुसार ब्राह्मणों में से पतित हैं।

सोमविक्रयिणे विष्ठा भिषजे पूयशोणितम्।
नष्टं देवलके दत्तमप्रतिष्ठं तु वार्धुषौ ॥१८०॥

(१८०) सोमलता के बेचने वाले ब्राह्मण को दान देने से दाता दूसरे जन्म में विष्ठाभक्षी पशु होता है। और इसी प्रकार जीविकार्थ चिकित्सा करने वाले ब्राह्मण को दान देने से दाता आगामी जन्म में रुधिर और पीव पान करने वाला जीव होता है और तीन वर्ष पर्यन्त वेतन लेकर मूर्ति-पूजन करने वाले ब्राह्मण और व्याज लेने वाले ब्राह्मण को दान देने से दाता को फल नहीं प्राप्त होता अर्थात् निष्फल होता है।

यत्तु वाणिजके दत्तं नेह नामुत्र तद्भवेत्।
भस्मनीव हुतं हव्यं तथा पौनर्भवे द्विजे ॥१८१॥

(१८१) वैश्य कर्म से निर्वाह करने वाले ब्राह्मण को दान देने से इस लोक और परलोक में दान का फल नहीं होता और प्रथम पति को त्याग पुनर्पति करने वाली स्त्री के दूसरे पति से उत्पन्न पुत्र को दान देना ऐसा है जैसे राख में हवन करना।

इतरेषु त्वपांक्त्येषु यथोद्दिष्टेष्वसाधुषु।
मेदोसृङ्मांसमज्जास्थिवदन्त्यन्नं मनीषिणः ॥१८२॥

(१८२) जो ब्राह्मण पंक्ति में बैठने के अयोग्य हैं उनको दान देने से दाता आगामी जन्म में छाती का मास, रुधिर, हड्डी आदि भक्षण करने वाला जीव होता है।

अपंक्त्योपहता पङ्क्तिःपाव्यते यैर्द्विजोत्तमः।
तान्निबोधत कार्त्स्न्येन द्विजाग्र्यान्पङ्क्तिपावनान्१८३

(१८३) जो पंक्ति चोर आदि ब्राह्मणों से दूषित हो उसे पवित्र करने वाले जो ब्राह्मण हैं उनको सुनो—

अग्र्याः सर्वेषु वेदेषु सर्वप्रवचनेषु च ।
श्रोत्रियान्वयजाश्चैव विज्ञेयाः पंक्तिपावनाः ॥१८४॥

(१८४) जिस कुल में दस पीढी से वेदका पढ़ना पढ़ाना चला आता हो उस कुल में उत्पन्न होकर चारों वेद अङ्गसहित जो ब्राह्मण पढ़ सकता हो वह ब्राह्मण पंक्ति पवित्र करनेवाला है।

त्रिणाचिकेतः पञ्चाग्निस्त्रिसुपर्णः षडङ्गवित् ।
ब्रह्मदेयात्मसंतानो ज्येष्ठसामग एव च ॥ १८५ ॥

(१८५) १-त्रिणाचिकेत, २-अग्निहोत्री, ३-त्रिसुपर्ण, ४-व्याकरणादि षडङ्गज्ञाता, ५-ब्राह्म विवाह से उत्पन्न ६-सामवेद के उस भाग का ज्ञाता जिसमें ब्रह्मविचार है, यह छः पंक्ति के पवित्र करने वाले हैं।

वेदार्थवित्प्रवक्ता च ब्रह्मचारी सहस्रदः ।
शतायुश्चैव विज्ञेया ब्राह्मणाः पंक्तिपावनाः ॥१८६॥

(१८६) वेदार्थ ज्ञाता, वेदार्थ-वक्ता, ब्रह्मचारी, सहस्र गोदानदाता, सौ वर्ष की आयु वाला यह लोग पंक्ति को शुद्ध करने वाले हैं।

पूर्वेद्युरपरेद्युर्वा श्राद्धकर्मण्युपस्थिते ।
निमन्त्रयेतऽव्यवरान्सम्यग्विप्रान्यथोदितान् ॥१८७॥

(१८७) श्राद्ध करने से एक दिन पहले वा उसी दिन तीन से अधिक अच्छे ब्राह्मण मिल सकें तो उनको निमन्त्रण देवे यदि न मिल सकें तो एक वा दो वा तीन को भी नेवता देना चाहिये।

निमन्त्रितो द्विजः पित्र्ये नियतात्मा भवेत्सदा ।
न च छन्दांस्यधीयीत यस्य श्राद्धं च तद्भवेत्॥१८८॥

(१६२) ❀ पितृलोग भीतर बाहर से एक,राग द्वेष तथा क्रोध रहित, स्त्री भोग से रहित कलह से परे, विद्यादि आठ गुणो से पूर्ण, महाभागी, अनादि देवतारूप हैं, इस कारण श्राद्धकर्ता तथा श्राद्ध भोजनकर्ता दोनों क्रोध से रहित हों।

यस्मादुत्पत्तिरेतेषा सर्वेषामप्यशेषतः ।
ये च यैरुपचर्याः स्युर्नियमैस्तान्निबोधत ॥१९३॥

(१९३) जिससे इन सबकी उत्पत्ति है और जिन नियमो से जिनका सेवन है उन सबको सुनिये—

मनोर्हैरण्यगर्भस्य ये मरीच्यादयः सुताः ।
तेषामृषीणां सर्वेषा पुत्राः पितृगणाः स्मृताः ॥१९४॥

(१९४) ब्रह्मा के पुत्र अर्थात् मनुजी के मरीचि आदि जो पुत्र हैं उनके जो पुत्र हैं सो पितृगण हैं।

विराट्सुता सोमसदः साध्यानां पितरः स्मृताः ।
अग्निष्वात्ताश्च देवानां मारीचा लोक विश्रुताः॥१९५॥

(१९५) साधुगण के पितर विराट् के पुत्र सोम सद हैं, देवों के पितर अग्निष्वात हैं। यह सब मरीचि के पुत्र हैं और लोक प्रसिद्ध हैं।

दैत्यदानवयक्षाणा गन्धर्वोरगरक्षसाम् ।
सुपर्णकिन्नराणां च स्मृता बर्हिष दोऽत्रिजाः ॥१९६॥

❀ श्राद्ध विषय में बहुत कुछ मिलावट है और यह सारी कथा महाभारत के पश्चात् उत्पन्न हुई है, अतः इसका अधिक विस्तार नहीं किया गया।

(१८८) ❀ निमन्त्रित ब्राह्मण उस रात्रि दिन में स्त्री सम्भोग न करे और वेद पाठ भी न करे और श्राद्ध कर्त्ता भी स्त्री-सम्भोग और स्वाध्याय न करे।

निमन्त्रितान्हि पितरं उपतिष्ठन्ति तान्द्विजान्।
वायुवच्चानुगच्छन्ति तथासीनानुपासते ॥ १८९ ॥

(१८९) निमन्त्रित ब्राह्मण के समीप पितृलोग खड़े रहते हैं और वायु वेश (रूप) में उस ब्राह्मण के अनुगामी रहते हैं।

केचितस्तु यथान्यायं हव्यकव्ये द्विजोत्तमः।
कथंचिदप्यतिक्रामन्पापः सूकरतां व्रजेत् ॥ १९० ॥

(१९०) × देव वा पितृ कर्म में निमन्त्रण पाकर जो ब्राह्मण भोजन न करे वह उस पाप के कारण आगामी जन्म में सूकर (सुअर) होता है।

आमन्त्रितस्तु यः श्राद्धे वृषल्या सह मोदते।
दातुर्यद्दुष्कृतं किंचित्तत्सर्वं प्रतिपद्यते ॥ १९१ ॥

(१९१) श्राद्ध कर्म में नेवता पाकर जो ब्राह्मण शूद्र की स्त्री से भोग करता है वह श्राद्धकर्ता के सम्पूर्ण पाप को प्राप्त करता है।

अक्रोधनाः शौचपराः सततं ब्रह्मचारिणः।
न्यस्तशस्त्रा महाभागाः पितरः पूर्वदेवताः ॥ १९२ ॥

❀यह श्लोक राजा कर्ण के राज्यकाल के पश्चात् मिलाया गया है, क्योंकि मृतक पितरों का श्राद्ध यहीं से प्रचलित हुआ है।

×आजकल तो ऐसा एक भी ब्राह्मण नहीं दीखता। वास्तव में ऋषि श्राद्ध का वर्णन है इसको मिलावट करके पितृ-श्राद्ध बताया गया है।

(१६२) ॐ पितृलोग भीतर बाहर से एक,राग द्वेष तथा क्रोध रहित, स्त्री भोग से रहित कलह से परे, विद्यादि आठ गुणों से पूर्ण, महाभागी, अनादि देवतारूप हैं, इस कारण श्राद्धकर्ता तथा श्राद्ध भोजनकर्ता दोनों क्रोध से रहित हों।

यस्मादुत्पत्तिरेतेषां सर्वेषामप्यशेषतः ।
ये च यैरुपचर्याः स्युर्नियमैस्तान्निबोधत ॥१६३॥

(१६३) जिससे उन सबकी उत्पत्ति है और जिन नियमों से जिनका सेवन है उन सबको सुनिये—

मनोर्हैरण्यगर्भस्य ये मरीच्यादयः सुताः ।
तेषामृषीणां सर्वेषां पुत्राः पितृगणाःस्मृताः ॥१६४॥

(१६४) ब्रह्मा के पुत्र अर्थात् मनुजी के मरीचि आदि जो पुत्र हैं उनके जो पुत्र हैं सो पितृगण हैं।

विराट्सुता सोमसदः साध्यानां पितरः स्मृताः ।
अग्निष्वात्ताश्च देवानां मारीचा लोके विश्रुताः॥१६५॥

(१६५) साधुगण के पितर विराट् के पुत्र सोम सद हैं, देवों के पितर अग्निष्वात हैं। यह सब मरीचि के पुत्र हैं और लोक प्रसिद्ध हैं।

दैत्यदानवयक्षाणां गन्धर्वोरगरक्षसाम् ।
सुपर्णकिन्नराणां च स्मृता बर्हिष दोऽत्रिजाः ॥१६६॥

ॐ श्राद्ध विषय में बहुत कुछ मिलावट है और यह सारी था महाभारत के पश्चात् उत्पन्न हुई है, अतः इसका अधिक विस्तार नहीं किया गया।

(१६६) + दैत्य, दानव, यक्ष, गन्धर्व, उरग, राक्षस, सुपर्ण, किन्नर इन सबका पितर अत्रि का पुत्र बर्हिषद है।

सोमपा नाम विप्राणां क्षत्रियाणां हविर्भुजः।
वैश्यानामाज्यपानाम शूद्राणां तु सुकालिनः॥१९७॥

(१९७) १-ब्राह्मण, २-क्षत्रिय, ३-वैश्य, ४-शूद्र इन सब के पितर क्रमानुसार १—सोमपा २—हविर्भुज, ३—आज्यप, और ४—सुकाली हैं।

सोमपास्तु कवेः पुत्रा हविष्मन्तोऽङ्गिरः सुता।
पुलस्त्यस्याज्यपाः पुत्रा वशिष्ठस्य सुकालिनः ॥१९८॥

(१९८) १-कवि, २-अंगिरा, ३-पुलस्त्य, ४-वसिष्ठ के पुत्र क्रमानुसार १-सोमपा, २-हविर्भुज, ३-आज्यप, ४-सुकाली हैं

अग्निदग्धानग्निदग्धान्काव्यान्बर्हिषदस्तथा।
अग्निष्वात्तांश्च सौम्यांश्चविप्राणामेवनिर्दिशेत् ॥१९९॥

(१९९) 'अग्निदग्ध' अर्थात् वानप्रस्थ और गृहस्थी, अनाग्निदग्ध संन्यासी, काव्य, बर्हिषद, अग्नि, ष्वात, सोमपा यह सब ब्राह्मण ही के पितर हैं।

य एते तु गणा मुख्याःपितॄणां परिकीर्तिताः।
तेषामपीह विज्ञेयं पुत्र पौत्रमनन्तकम् ॥ २०० ॥

(२००) यह सब मुख्य पितृगण हैं, इनके पुत्र और पौत्र अनन्त हैं।

ऋषिभ्यः पितरो जाताः पितृभ्यो देवमानवाः।
देवेभ्यस्तु जगत्सर्वं चरं स्थाण्वनुपूर्वशः ॥ २०१ ॥

+ श्लोक १९६ से २०१ तक पौराणिक कथा है और महाभारत के अनन्तर सम्मिलित की गई है।

(२०१) ऋषियों से पितरों की उत्पत्ति है, पितरों से देवता और मनुष्य उत्पन्न हुये हैं, देवतों से चर अचर सारा जगत् उत्पन्न हुआ है।

राजतैर्भाजनैरेषामथो वा राजतान्वितैः ।
वार्यपि श्रद्धया दत्तमक्षयायोपकल्पते ॥ २०२ ॥

(२०२) चाँदी के बर्तनों में अथवा चाँदी चढ़े हुये बर्तनों में सब पितरों को केवल जल ही देने से बहुत प्रसन्नता प्राप्त होती हैं।

देवकार्याद्द्विजातीनां पितृकार्यं विशिष्यते ।
दैवं हि पितृकार्यस्य पूर्वमाप्यायनं श्रुतम् ॥२०३॥

(२०३) ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्य के द्विज-कार्य से पितृ-कार्य बड़ा है। इस कारण द्विज-कार्य प्रथम होने से पितृकार्य पूर्ण होता है।

तेषामारक्षभूतं तु पूर्वं दैवं नियोजयेत् ।
रक्षांसि हि विलुम्पन्ति श्राद्धमारक्षवर्जितम् ॥२०४॥

(२०४) पितृकार्य के रक्षक द्विज-कार्य को प्रथम करना उचित है। रक्षा रहित कार्य को राक्षस ले लेते हैं।

दैवाद्यन्तं तदीहेत पित्राद्यन्तं न तद्भवेत् ।
पित्राद्यन्तं त्वीहमानः क्षिप्रं नश्यति सान्वयः ॥२०५॥

(२०५) पितृकार्य के आदि अन्त में देव-कार्य करना चाहिये। देव-कार्य के आदि अन्त में पितृ-कार्य-कर्ता शीघ्र ही वंश सहित नाश हो जाता है।

शुचिं देशं विविक्तं च गोमयेनोपलेपयेत् ।
दक्षिणाप्रवणं चैव प्रयत्नेनोपपादयेत् ॥ २०६ ॥

(२१५) हवन से शेष बचे हव्य के तीन पिण्ड बनाकर दक्षिण दिशा को मुँह करके दाहिने हाथ से कुशों के ऊपर उन पिण्डों को एकाग्र चित्त हो देवे।

न्युप्य पिण्डांस्ततस्तांस्तु प्रयतो विधिपूर्वकम् ।
तेषु दर्भेषु तं हस्तं निमृज्याल्लेपभागिनाम् ॥२१६॥

(२१६) जो विधि कर्मकाण्ड के सूत्र में लिखी है तदनुसार कुशों पर उन पिण्डों को देकर पिण्ड के नीचे का जो कुश है उसकी जड़में हाथ को पोंछे, वृद्ध प्रपितामह आदि तीन पुरुषों के कर्मार्थ—

आचम्योदक्परावृत्य त्रिरायम्य शनैरसून् ।
षड्ऋतूंश्च नमस्कुर्यात्पितॄनेव च मन्त्रवित् ॥२१७॥

(२१७) मन्त्रज्ञाता उत्तरमुख होकर आचमन और तीन प्राणायाम बलानुसार करके वसन्तादि छः ऋतुओं और पितरों को नमस्कार करें।

उदकं विनयेच्छेषं शनैः पिण्डान्तिके पुनः ।
अवजिघ्रेच्च तान्पिण्डान्यथान्युप्तान्समाहितः ॥२१८॥

(२१८) पिण्डदान मे प्रथम पिण्ड स्थापन करने के स्थान की पृथ्वी को जो जल दिया जाता है उस पात्र मे शेष जो जल है उसको पिण्डों के समीप क्रम से देवे। तत्पश्चात् उन पिण्डों को एकाग्र चित्त हो क्रम से सूंघे।

पिण्डेभ्यस्त्वल्पिकां मात्रां समादायानुपूर्वशः ।
तेनैव विप्रानासीनान्विधिवत्पूर्वमाशयेत् ॥२१९॥

नोट—गर्भसूत्र जिनमें कर्मविधि उल्लिखित है कृष्णयजुर्वेद के पश्चात् बने हैं और कृष्ण यजुर्वेद महाभारत के पश्चात् बना है। अतएव श्लोक २१६ से २२१ तक सम्मिलित किये हुए हैं।

(२१६) पिण्डों से थोड़ा-थोड़ा अन्न यथाक्रम लेकर नमन्त्रित बैठे ब्राह्मणों को विधिपूर्वक भोजन करावे ।

ध्रियमाणे तु पितरि पूर्वेषामेव निर्वपेत् ।
विप्रवद्वापि तं श्राद्धे स्वकं पितरमाशयेत् ॥२२०॥

(२२०) पिता के गृह मे रहते हुए जो दादा, परदादा वानप्रस्थ और सन्यासी हैं उनका श्राद्ध करे अथवा पिता के ब्राह्मण के स्थान पर पिता ही को भोजन करावे और पितामह, प्रपितामह को पिण्ड देवे और दोनों के निमित्त ब्राह्मण भोजन भी करावे ।

पिता यस्य निवृत्तः स्याज्जीवेच्चापि पितामहः ।
पितुः स नाम संकीर्त्य कीर्तयेत्प्रपितामहम् ॥२२१॥

(२२१) जिसके पिता की मृत्यु हो गयी हो और पितामह जीवित हो वह पिता का नाम लेकर प्रपितामह का नाम लेवे

पितामहो वा तच्छ्राद्धं भुञ्जीतेत्यब्रवीन्मनुः ।
कामं वा समनुज्ञातः स्वयमेव समाचरेत् ॥२२२॥

(२२२) अथवा जिस प्रकार जीवित पिता को भोजन कराना कहा है उसी प्रकार जीवित पितामह को भोजन करावे पिता, प्रपितामह को पिण्ड देवे । इस बात को मनुजी ने कहा है, या पितामह की आज्ञा पाकर पिता प्रपितामह, वृद्ध प्रपितामह को पिण्ड देवे पितामह को भोजन करा देवे ।

तेषां दत्त्वा तु हस्तेषु सपवित्रं तिलोदकम् ।
तत्पिण्डाग्रं प्रयच्छेत स्वधैषामस्त्विति ब्रुवन् ॥२२३॥

(२२३) उन ब्राह्मणों के हाथ मे तिल, जल, कुश को

देकर पिण्डों से निकाला हुआ जो थोड़ा २ भाग है उसको पितादि तीनों के ब्राह्मणों को यथाक्रम देवे।

पाणिभ्यां तूपसंगृह्य स्वयमन्नस्य वर्धितम्।
विप्रान्तिके पितॄन्ध्यायञ्शनकैरुपनिक्षिपेत् ॥२२४॥

(२२४) आप दोनों हाथों से सब खाद्य पदार्थ भोजनालय से लेकर पितरों का ध्यान करता हुआ ब्राह्मणों के समीप धीरे से परोसे।

उभयोर्हस्तयोर्मुक्तं यदन्नमुपनीयते।
तद्विप्रलुम्पन्त्यसुराः सहसा दुष्टचेतसः ॥ २२५ ॥

(२२५) एक हाथ से लाए हुए अन्न को असुर लोग छीन लेते हैं। अत. दोनों हाथों से लाना चाहिये।

गुणांश्च सूपशाकाद्यान्पयोदधि घृतं मधु।
विन्यसेत्प्रयतः पूर्वं भूमावेव समाहितः ॥ २२६ ॥

(२२६) शहद, दूध, घी दधि आदि वस्तुओं से बना हुआ भोजन इस उत्तमता से कि जिसमें पृथिवी पर न बिखरने पावे भूमि पर रक्खे।

भक्ष्यं भोज्यं च विविधं मूलानि च फलानि च।
हृद्यानि चैव मांसानि पानानि सुरभीणि च ।२२७।

(२२७) मन प्रसन्न करने वाले उत्तम भोज्य पदार्थ और उत्तम फल मूल तथा स्वादिष्ट वा सुगन्धित वस्तुओं को रक्खे।

उपनीय तु तत्सर्वं शनकैः सुसमाहितः।
परिवेषयत् प्रयतो गुणान्सर्वान्प्रचोदयन् ।२२८।

(२२८) एकाग्र चित्त हो सब वस्तुओं को ब्राह्मण के समीप लाकर यह कहकर कि यह मीठा है यह खट्टा है, परोसे ।

नाश्रु मापातयेज्जातु न कुप्येन्नानृत वदेत् ।
न पादेन स्पृशेदन्नं न चैतदवधूनयेत् । २२९ ।

(२२९) रुदन करना, क्रोध करना, असत्यभाषण (अनृत) इन सब को त्याग दे, पाव से अन्न स्पर्श न करे और न उछाल कर अन्न को पात्र से रखे ।

अस्रं गमयति प्रेतान्कोपोऽरीननृत वदेत् ।
पादस्पर्शस्तु रक्षांसि दुष्कृतीनवधूननम् । २३० ।

(२३०) + रुदन करने से प्रेत को, क्रोध करने से शत्रु को, अनृत भाषण से कुत्ते को, पगस्पर्श से राक्षस को, तथा उछालने से पापी को वह अन्न मिलता है ।

यद्यद्रोचेतसविप्रेभ्यस्तत्तद्द्योदमत्सरः ।
ब्रह्मोद्याश्चकथाः कुर्यात्पितृणामेतदीप्सितम् । २३१ ।

(२३१) क्षोभ तथा मत्सर परित्याग कर जो २ वस्तुयें ब्राह्मणों को रुचे सो २ वस्तुये देवे और परमात्मा की कथा कहे क्योंकि यह कार्य पितरों का प्रिय है ।

स्वाध्यायं श्रावयेत्पित्र्ये धर्मशास्त्राणि चैव हि ।
आख्यानानीतिहासांश्चपुराणानिखिलानि च ।२३२।

नोट—श्राद्ध का सारा विषय पीछे से सम्मिलित किया गया है।
+ शाक प्रेत अर्थात् मृतक-को अन्न पहुँचना श्राद्ध का उद्देश्य बतलाया गया है और इन मिलावटी श्लोका से प्रेत को मिलना गर्हित बतलाया गया है ।

+ इस श्लोक के सम्मिश्रण में किंचित मात्र शका नही है ।

(२३२) वेद, धर्मशास्त्र, पुराण, तथा इतिहासों की कथा आदि प्रति समय ब्राह्मण को सुनाया करे। इस स्थान पर पुराण से तात्पर्य ब्राह्मण ग्रन्थों से है, क्योंकि जिस समय यह ग्रन्थ लिखा गया था उस समय अष्टादश पुराणों की रचना नहीं हुई थी।

हर्षयेद्ब्राह्मणांस्तुष्टो भोजयेच्च शनैः शनैः।
अन्नाद्येनासकृच्चैतान्गुणैश्च परिचोदयेत्। २३३।

(२३३) आप हर्षित होकर मिष्टभाषणादि से ब्राह्मणों को प्रसन्न करे और शीघ्रता न करे, वरन यह स्वादिष्ट खीर है, यह उत्तम लड्डू हैं ऐसे सब वस्तुओं के गुण वर्णन कर ब्राह्मण को सन्तुष्ट करे।

व्रतस्थमपि दौहित्रं श्राद्धे यत्नेन भोजयेत्।
कुतपं चासने दद्यात्तिलैश्च विकिरेन्महीम् ॥२३४॥

(२३४) दौहित्र (नाती) यदि व्रत में भी हो तो उसको किसी यत्न से श्राद्ध में भोजन अवश्य करावे। नैपाली कम्बल का आसन दे, श्राद्ध को पृथिवी पर तिल छिटका दे।

त्रीणि श्राद्धे पवित्राणि दौहित्रः कुतपस्तिलाः।
त्रीणि चात्र प्रशंसन्ति शौचमक्रोधमत्वराम् ॥२३५॥

(२३५) श्राद्ध में तीन वस्तु पवित्र हैं, १-दौहित्र (नाती), २-नैपाली, कम्बल, ३-तिल तथा तीन ही वस्तुयें प्रशसनीय हे १-पवित्रता, शान्ति, ३-धैर्य।

अत्युष्णं सर्वमन्नं स्याद्भुञ्जीरंस्ते च वाग्यताः।
न च द्विजातयो ब्रूयुर्दात्रा पृष्टा हविर्गुणान् ॥२३६॥

(२३६) ब्राह्मण लोग मौन धारण कर अति उष्ण

गरम) भोजन करे । यदि भोजनदाता वस्तुओं का गुण पूछे भी कुछ न बोले ।

यावदुष्ण भवत्यन्नं यावदश्नन्ति वाग्यताः ।
पितरस्तावदश्नन्ति यावन्नोक्ता हविर्गुणाः ॥२३७॥

(२३७) जब तक भोजन उष्ण (गरम) रहता है और भोजनकर्ता मौन धारण किये रहते हैं तब तक पितर लोग भोजन करते हैं।

यद्वेष्टितशिरा भुङ्क्ते यद्भुङ्क्ते दक्षिणामुखः ।
सोपानत्कश्च यद्भुङ्क्ते तद्वै रक्षांसि भुञ्जते ॥२३८॥

(२३८) दक्षिण दिशा को मुख करके और सिर बाँधकर या जूता पहन कर जो भोजन करता है यह अनाचारी और राक्षस का भोजन कहलाता है।

चाण्डालश्च वराहश्च कुक्कुटः श्वा तथैव च ।
रजस्वला च षण्ढश्च नेक्षेरन्नश्नतो द्विजान् ।२३९।

(२३९) चाण्डाल, वराह (सूकर, सुअर) कुक्कुट (मुर्गा) श्वान कुत्ता), रजस्वला स्त्री, निपुंसक यह सब लोग ब्राह्मणों को भोजन करते हुए न देखें।

होमे प्रदाने भोज्ये च यदेभिरभिवीक्ष्यते ।
दैवे कर्मणि पित्र्ये वा तद्गच्छत्ययथातथम् ।२४०।

(२४०) देवयज्ञ वा पितृयज्ञ करते समय निम्नलिखित जीवधारियों के दर्शन करने से सब कार्य नष्ट हो जाते हैं।

घ्राणेन सूकरो हन्ति पक्षवातेन कुक्कुटः ।
श्वा तु दृष्टिनिपातेन स्पर्शेनाऽवरवर्णजः ।२४१।

(२४१) सुअर सूंघने से, मुर्गा पर फड़फड़ाने से, कुत्ता दर्शन से, शूद्र स्पर्श से, सब कार्य नष्ट कर देते हैं।

खञ्जो वा यदि वा काणो दातुः प्रेष्योऽपि वा भवेत्।
हीनातिरिक्तगात्रो वा तमप्यपनयेत्पुनः ॥ २४२ ॥

(२४२) काना, गंजा, आदि एक अंगहीन वा एक अधिक अंग रखने वाला चाहे अपना सेवक हो क्यों न हो, परन्तु उसे श्राद्ध समय श्राद्ध-स्थान से निकाल दे।

ब्राह्मणं भिक्षुकं वापि भोजनार्थमुपस्थितम्।
ब्राह्मणैरभ्यनुज्ञातः शक्तितः प्रतिपूजयेत् ॥२४३॥

(२४३) यदि ब्राह्मण वा भिक्षुक जो भोजनार्थ आए तो निमन्त्रित ब्राह्मणों की आज्ञा ग्रहण करके यथाशक्ति प्रत्येक का पूजन करे।

सार्ववर्णिकमन्नाद्यं सन्नीयाप्लाव्य वारिणा।
समुत्सृजेद्भुक्तवतामग्रतो विकिरन्भुवि ॥ २४४ ॥

(२४४) सब प्रकार के अन्न को व्यंजनादि से मिला, जल डाल कर उस अन्न को भोजन किये हुये ब्राह्मणों के सम्मुख पृथिवी पर कुश पर डाल दे।

असंस्कृतप्रमीतानां त्यागिनां कुलयोषिताम्।
उच्छिष्टं भागधेयं स्याद्दर्भेषु विकिरश्च यः ॥२४५॥

(२४५) जो बालक अग्निदाह करने के अयोग्य है और उनकी मृत्यु हो गई है, वा जो नर दूषित कुल स्त्रियों को त्याग कर मर गये हैं, इन सब को यह अन्न जो कुश पर डाला गया है, मिलता है।

उच्छेषणं भूमिगतमजिह्मस्याशठस्य च ।
दासवर्गस्य तत्पित्र्ये भागधेयं प्रचक्षते ॥२४६॥

(२४६) पृथिवी पर जो जूठा अन्न है वह दास लोगों का है परन्तु वह दास कुटिल वा नटखट न हों।

आसपिण्डक्रियाकर्म द्विजातेः संस्थितस्य तु ।
अदैवं भोजयेच्छ्राद्धं पिण्डमेकं तु निर्वपेत् ।२४७।

(२४७) ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य के मृत्यु दिन से सपिण्डी क्रिया पर्यन्त विश्वदेव के निमित्त ब्राह्मण भोजन न करावे। किन्तु प्रेत के निमित्त एक ब्राह्मण भोजन करावे और एक पिण्ड देवे।

सहपिण्डक्रियायां तु कृतायामस्य धर्मतः ।
अनयैवावृता कार्यं पिण्डनिर्वपणं सुतैः ।२४८।

(२४८) सपिण्डी करने के पश्चात् अमावस्या के श्राद्ध के विधान से पुत्र पिण्ड को देवे।

श्राद्धं भुक्त्वा य उच्छिष्टं वृषलाय प्रयच्छति ।
स मूढो नरकं याति कालसूत्रमवाक्शिराः ।२४९।

(२४९) + जो कोई श्राद्धान्न को भोजन कर जूठा अन्न शूद्र को देता है वह मूढ़ अधोशिर (नीचे सिर किये हुये) कालसूत्र नाम नरक मे आता है।

+ यह श्लोक और इस प्रकार के और भी श्लोक सम्मिलित किये हुये हैं, जिनमें मृतक पितरों के श्राद्ध और मांस-भक्षण का विधान है। क्योंकि श्राद्ध राजा कर्ण से प्रचलित हुआ है और मांस-भक्षण वेद-विरुद्ध है।

श्राद्धभुग्वृषलीतल्पं तदहर्योऽधिगच्छति ।

तस्याः पुरीषे तन्मासं पितरस्तस्य शेरते ॥ २५० ॥

(२५०) श्राद्धान्न भोजन कर जो कोई उस रात्रि को स्त्री-सम्भोग करता है उसके पितर उसी स्त्री के मूत्रस्थान में एक मास पर्यन्त पड़े रहते हैं।

पृष्टवा स्वदितमित्येवं तृप्तानाचामयेत्ततः ।

आचान्तांश्चानुजानीयादभि तो रम्यतामिति ॥२५१॥

(२५१) भली भाँति भोजन किया है यह पूछ कर संतुष्ट और तृप्त जानकर आचमन कराके श्राद्धकर्ता ब्राह्मणों से कहे कि जाये।

स्वधास्त्वित्येव तं ब्रूयुर्ब्राह्मणास्तदनन्तरम् ।

स्वधाकारः परा ह्याशीः सर्वेषु पितृकर्मसु ॥२५२॥

(२५२) उसके प्रत्युत्तर में ब्राह्मण लोग स्वध स्तु कहें पितृकर्मों में स्वधा कहना बड़ा आशीर्वाद है।

ततो भुक्तवतां तेषामन्नशेषं निवेदयेत् ।

यथा ब्रूयुस्तथा कुर्यादनुज्ञातस्ततो द्विजैः ॥२५३॥

(२५३) तत्पश्चात् सब ब्राह्मणों के बचे हुये अन्न को निवेदन करे जैसा वह ब्राह्मण कहें वैसा करे।

पित्र्ये स्वदितमित्येव वाच्यं गोष्ठे तु सुश्रुतम् ।

संपन्नमित्यभ्युदये दैवे रुचितमित्यपि ॥ २५४ ॥

(२५४) एकोद्दिष्ट श्राद्ध में 'तृप्त और प्रसन्न के अर्थ। स्वादितम् कहना चाहिये। गोष्ठी श्राद्ध में सुश्रुतम् और अभ्युदयिक श्राद्ध मे सम्पन्न कहना चाहिये। देवता के निमित्त जो श्राद्ध है उसमें रुचितम् कहना चाहिये।

नोट—२५० से २५५ श्लोक तक सम्मिलित किये हुये हैं।

अपराह्नस्तथा दर्भा वास्तुसम्पादनं तिलाः ।
सृष्टिर्मृष्टिर्द्विजाश्चाग्र्याः श्राद्धकर्मसु संपदः ॥२५५॥

(२५५) अपराह्न काल (दोपहर पश्चात्) कुश गोबर आदि से भूमि को शोधना, तिल, उदारता, अन्न आदि का संस्कार, पंक्ति के पवित्र कर्ता ब्राह्मण, यह सब पार्वण श्राद्ध में संपद हैं।

दर्भाः पवित्रं पूर्वाह्णो हविष्याणि च सर्वशः ।
पवित्रं यच्च पूर्वोक्तं विज्ञेया हव्यसम्पदः ॥ २५६ ॥

(२५६) मन्त्र, पूर्वाह्न काल (दोपहर से प्रथम) हविष्य, उपरोक्त विधि से भूमिका शोधना, यह सब देव कर्म की सम्पदा (धन) है।

मुन्यन्नानि पयः सोमो मांसं यच्चानुपस्कृतम् ।
अक्षारलवणं चैव प्रकृत्या हविरुच्यते ॥ २५७ ॥

(२५७) मुनियों के अन्न, दूध, सोमलता का रस, बना बनाया मांस, विन बना सेंधा लवण (नमक) आदि यह स्वाभाविक हव्य कहाते हैं।

विसृज्य ब्राह्मणांस्तांस्तु नियतो वाग्यतः शुचिः ।
दक्षिणां दिशमाकांक्षन्याचेतेमान्वरान्पितॄन् ॥२५८॥

(२५८) गोष्ठी श्राद्ध में 'सुश्रुतम्' कहना चाहिये। इन ब्राह्मणों को विदा करने पश्चात् श्राद्धकर्ता पवित्र हो मौन धारण कर दक्षिण दिशा की ओर होकर पितरों से यह वरदान माँगेकि-

नोट—श्लोक २५६ से २६१ पर्यन्त मिलाये हुये हैं। क्योंकि माँस तो यज्ञ भ्रष्ट कर देने वाली वस्तु है। यहाँ मृतक पितृ श्राद्ध आदि को बतलाने के हेतु यह सब सम्मिलित किये गये हैं।

द्वौ मासौ मत्स्यमांसेन त्रीन्मासान्हारिणेन तु।
औरभ्रेणास्थ चतुरः शाकुनेनाथ पञ्च वै ॥ २६८

(२६८) दो मास पर्यंत मछली के मांस से, तीन मास पर्यंत हिरन के मांस से, चार मांस पर्यंत भेड़ के मांस से पांच मांस पर्यंत पक्षियों के मांस से।

षण्मासांश्छागमांसेन पार्षतेन च सप्त वै।
अष्टावेणस्य मांसेन रौरवेण नवैव तु ॥ २६९ ॥

(२६९) षट (छः) मास पर्यंत छाग (बकरा) के मांस से सात मास पर्यंत चित्रमृग के मांस से, आठ मास पर्यंत ऐण नामक हिरण के मांस से, नौ मास पर्यंत रुरु नामक मृग के मांस से।

दशमासांस्तु तृप्यन्ति वराहमहिषामिषैः।
शशकूर्मयोस्तु मांसेन मासानेकादशैव तु ॥ २७० ॥

(२७०) दस मास पर्यंत वराह (जङ्गली सूअर) या महिष (भैंसा) के मास से, एकादश (ग्यारह) मास पर्यंत शशक (खरहा) वा कूर्म (कछुवा) के मास से।

संवत्सरं तु गव्येन पयसा पायसेन च।
वार्ध्रीणसस्य मांसेन तृप्तिर्द्वादशवार्षिकी ॥ २७१ ॥

(२७१) गौदुग्ध वा गौदुग्ध की खीर से एक वर्ष पर्यंत

---

(१) श्लोक २६८ से २७२ तक वाममार्गियों के संमिलित किये हुए हैं और वेद तथा प्रत्यक्ष के विरुद्ध है।

(२) यह विषय सम्भवतः सम्मिलित किया हुआ है क्योंकि मृतक पुरुषों के पितृ का सम्बन्ध नहीं रहता और वह अपने कर्मानुसार योनि पा जाते हैं।

ऐसे बकरे के मांस से जिसके दोनों कान पानी पीते समय पानी को स्पर्श करें बारह वर्ष पर्यन्त।

कालशाकं महाशल्काः खड्गलोहामिषं मधु।
आनन्त्यायैव कल्प्यन्ते मुन्यन्नानि च सर्वशः ॥२७२॥

(२७२) कालशाक, महाशल्क (एक प्रकार की मछली) गेंडा तथा लाल बकरा इनमें से किसी एक के मॉस से असंख्य वर्ष पर्यन्त तथा मधु या सपूर्ण मुन्यन्नों से भी असंख्य वर्ष पर्यंत तृप्त रहते हैं।

यत्किंचिन्मधुना मिश्रं प्रदद्यात्तु त्रयोदशीम्।
तदप्यक्षयमेव स्याद्वर्षासु च मघासु च ॥ २७३ ॥

(२७३) वर्षा ऋतु में जिस त्रयोदशी तिथि को मघा नक्षत्र हो उस दिन मीठी वस्तुओं को देने से अक्षय (नाश न होने वाला) फल होता है।

अपि नः सकुले जायाद्यो नो दद्यात्त्रयोदशीम्।
पायसं मधुसर्पिभ्यां प्राक्छाये कुञ्जरस्य च ॥२७४॥

(२७४) पितृलोग यह अभिलाषा किया करते हैं कि हमारे कुल में ऐसा पुरुष उत्पन्न होवे जो भाद्रपद (भादों) कृष्ण पक्ष त्रयोदशी तिथि अथवा उस मास की किसी अन्य तिथि में अपराह्न (दोपहर पश्चात्) काल में मधु और घी मिश्रित खीर देवे।

यद्यद्ददाति विधिवत्सम्यक् श्रद्धासमन्वितः।
तत्तत्पितृणां भवति परत्रानन्तमक्षयम् ॥ २७५ ॥

(२७५) जो वस्तु यथाविधि उत्तम रीति से श्रद्धा सहित पितरों को दी जाती है उसका परलोक में अनन्त फल होता है

कृष्णपक्षे दशम्यादौ वर्जयित्वा चतुर्दशीम् ।
श्राद्धे प्रशस्तास्तिथयो यथैता न तथेतराः ॥२७६॥

(२७६) कृष्णपक्ष में दशमी से लेकर चतुर्दशी के अतिरिक्त अमावस्या तिथि जैसी श्राद्ध में उत्तम है वैसी अन्य नहीं।

युक्षु कुर्वन्दिनर्क्षेषु सर्वान्कामान्समश्नुते ।
अयुक्षु तु पितॄन्सर्वान्प्रजां प्राप्नोति पुष्कलाम् ॥२७७॥

(२७७) सम तिथि तथा सम नक्षत्र में श्राद्ध करने से सम्पूर्ण कामना सिद्ध होती है वा विषम तिथि तथा विषम नक्षत्र में श्राद्ध करने से विद्वान् तथा धनवान् सन्तति होती है । .

यथा चैवापरः पक्षः पूर्वपक्षाद्विशिष्यते ।
तथा श्राद्धस्य पूर्वाह्णादपराह्णो विशिष्यते ॥२७८॥

(२७८) जैसे शुक्लपक्ष से कृष्णपक्ष उत्तम है वैसे ही पूर्वाह्न काल से अपराह्न काल श्राद्ध में उत्तम है ।

प्राचीनावीतिना सम्यगपसव्यमतन्द्रिणा ।
पित्र्यमानिधनात्कार्यं विधिवद्दर्भपाणिना ॥२७९॥

(२७९) दक्षिण कंधे पर जनेऊ रखकर आलस्य त्याग कुशा ग्रहण कर पितरों के अर्थ वेद शास्त्रानुसार कर्म करे ।

रात्रौ श्राद्धं न कुर्वीत राक्षसी कीर्तिता हि सा ।
संध्ययोरुभयोश्चैव सूर्ये चैवाचिरोदिते ॥२८०॥

(२८०) * रात्रि समय श्राद्ध करना उचित नहीं क्योंकि

---

* रात्रि को निषेध इस कारण कहा है कि उस समय मान्य (वृद्ध)लोग भूखे मर जावेंगे तथा उनको दारुण कष्ट होगा । अतः वह राक्षसी बतलाया गया और यहाँ पितृ से अर्थ पिता आदि है

वह राक्षसी समय है। दोनों सन्ध्या के समय तथा प्रातःकाल तीन घड़ी पर्यन्त भी श्राद्ध करना वर्जित है।

अनेन विधिना श्राद्धं त्रिरब्दस्येह निर्वपेत्।
हेमन्तग्रीष्मवर्षासु पाञ्चयाज्ञिकमन्वहम् ॥२८१॥

(२८१) इस विधि से प्रत्येक वर्ष हेमन्त (जाड़ा), ग्रीष्म (गर्मी) वर्षा (बरसात) तीनों ऋतुओं में श्राद्ध करे तथा पंचमहायज्ञ तो नित्य ही करे।

न पैतृयज्ञियो होमो लौकिकेऽग्नौ विधीयते।
न दर्शेन विना श्राद्धमाहिताग्नेर्द्विजन्मनः ॥२८२॥

(२८२) अग्निहोत्री का पितृ-यज्ञ सम्बन्धी हवन लौकिक अग्नि में नहीं होना तथा अमावस्या के अतिरिक्त अन्य तिथि में श्राद्ध नहीं होता।

यदेव तर्पयन्त्यद्भिः पितॄन्स्नात्वा द्विजोत्तमः।
तेनैव कृत्स्नमाप्नोति पितृयज्ञक्रियाफलम् ॥२८३॥

(२८३) पच यज्ञ संबंधी श्राद्ध न हो सके तो ब्राह्मण स्नान से निवृत्त हो जल द्वारा तर्पण करे। उसी से सब पितृ यज्ञ के फल को लाभ करते हैं।

वसून्वदन्ति तु पितॄन्रुद्रांश्चैव पितामहान्।
प्रपितामहांस्तथादित्याञ्छ्रुतिरेषा सनातनी ॥२८४॥

(२८४) पर सदैव सनातन से सुनते चले आये हैं कि पिता को वसु, पितामह (दादा) को रुद्र तथा प्रपितामह (परदादा) को आदित्य कहते हैं।

विघासाशी भवेन्नित्यं नित्यं वामृतभोजनः ।
विघसो भुक्तशेषं तु यज्ञशेषं तथामृतम् । २८५ ।

(२८५) ❀ श्राद्ध के पश्चात् जो कुछ भोजन शेष रहे उसे श्राद्धकर्ता स्वयं खावे, यह यज्ञ से शेष रहा भोजन पवित्र करने वाला है ।

एतद्वोऽभिहितं सर्वं विधानं पाञ्चयाज्ञिकम् ।
द्विजातिमुख्यवृत्तीनां विधानं श्रूयतामिति । २८६ ।

(२८६) भृगुजी कहते हैं कि हे ऋषि-वर्गों पंचमहायज्ञ की विधि कही, अब ब्राह्मण की मुख्यवृत्ति (जीविका) को कहते हैं तिसको सुनो ।

मनुजीके धर्मशास्त्र भृगुजीकी संहिताका तृतीय अध्याय समाप्तहुआ

—०—

चतुर्थोऽध्यायः ।

चतुर्थमायुषो भागमुषित्वाऽद्यं गुरौ द्विजः ।
द्वितीयमायुषो भागं कृतदारो गृहे वसेत् ॥ १ ॥

(१) अपनी आयु का प्रथम भाग वेदाध्ययनार्थ गुरुकुल में व्यतीत करे । आयु के द्वितीय भाग में तदनुसार कर्म करने के हेतु विवाह कर गृहस्थाश्रम में विचरे ।

अद्रोहेणैव भूतानामल्पद्रोहेण वा पुनः ।
या वृत्तिस्तां समास्थाय विप्रो जीवेदनापदि ॥ २ ॥

❀ जो यज्ञ समाप्त कर भोजन करता है वह सदैव आनन्द प्राप्त करता है ।

(२) ब्राह्मण को अपनी वृत्ति ऐसी रखनी उचित है जिससे जीवों को नष्ट न हो। यदि यह असाध्य हो तो जिस कारण से अल्प कष्ट हो ऐसी विधि से कार्य करे।

यात्रामात्रप्रसिद्ध्यर्थं स्वैः कर्मभिरगर्हितैः।
अक्लेशेन शरीरस्य कुर्वीत धनसंचयम् ॥ ३ ॥

(३) शुभकर्मों तथा शरीर को क्लेश न पहुँचाने वाली विधि द्वारा अपने शरीर पोषण मात्र (उदर क्षुधा निवृत्त्यर्थ धन सञ्चय करे।

ऋतामृताभ्यां जीवेत्तु मृतेन प्रमृतेन वा।
सत्यानृताभ्यामपि वा न श्ववृत्त्या कदाचन ॥ ४ ॥

(४) ऋत, अमृत, मृत, ॐ प्रमृत तथा सत्य के ग्रहण और अनृत (असत्यभाषण) के परित्याग द्वारा जीवरक्षा करे।

ऋतमुञ्छशिलं ज्ञेयममृतं स्यादयाचितम्।
मृतं तु याचितं भैक्षं प्रमृतं कर्षणं स्मृतम् ॥ ५ ॥

(५) उञ्छशिल को ऋतु कहते हैं, अयाचन मिले उसे अमृत कहते हैं। याचना करने पर प्राप्त हो उसे मृत कहते हैं। कृषि को प्रमृत कहते हैं।

सत्यानृतं तु वाणिज्यं तेन चैवापि जीव्यते।
सेवा श्ववृत्तिराख्याता तस्मात्तां परिवर्जयेत् ॥ ६ ॥

(६) व्यापार का नाम सत्यानृत (सत्य तथा झूँठ) है, सेवकाई को कुत्ता-वृत्ति कहते हैं। अतएव विपत्ति समय ब्राह्मण वाणिज्य को तो कर ले परन्तु सेवकाई कदापि न करे।

ॐ अन्य स्थल पर ब्राह्मण को कृषि करने का निषेध है तथा इस स्थल पर आज्ञा दी है अतएव यह श्लोक संशयात्मक है।

कुशूलधान्यको वा स्यात्कुम्भीधान्यक एव वा ।
त्र्यहैहिको वापि भवेदश्वस्तनिक एव वा ॥ ७ ॥

(७) नित्य नैमित्तिक धर्म्मादि के कर्त्ता को इतना अ संचय करना उचित है जितना तीन वर्ष को यथेष्ट हो, वा ए वर्ष, या एक दिन मितव्यय करे ।

चतुर्णामपि चैतेषां द्विजानां गृहमेधिनाम् ।
ज्यायान्परः परो ज्ञेयो धर्मतो लोकजित्तमः ॥ ८ ॥

(८) चार प्रकार के ब्राह्मण कहे गये हैं । उनमें से प्रथ से द्वितीय, द्वितीय से तृतीय तथा तृतीय से चतुर्थ उत्तम हैं वे धर्म द्वारा लोक को जीत सकते हैं ।

षट्कर्मको भवत्येषां त्रिभिरन्यः प्रवर्त्तते ।
द्वाभ्यामेकश्चतुर्थस्तु ब्रह्मसत्रेण जीवति ॥ ६ ॥

(६) इन चारों में १–प्रथम षटकर्म द्वारा जीवन निर्वा करे. २–द्वितीय तीन कर्म द्वारा, ३–तृतीय दो कर्म द्वारा, ४– चतुर्थ एक कर्म से शरीर रक्षा करे ।

वर्तयश्च शिलोञ्छाभ्यामग्निहोत्रपरायणः ।
इष्टीःपार्वायनान्तीयाः केवला निर्वपेत्सदा ॥ १० ॥

(१०) शिल तथा उञ्छ से जीवन व्यतीत करे अग्निहो करे, तथा अमावस्या, पौर्णमासी, नवीनान्न उत्पत्ति समय इ तीनों समयों में यज्ञ करे ।

न लोकवृत्तं वर्तेत वृत्तिहेतोः कथञ्चन ।
अजिह्मामशठां शुद्धां जीवेद्ब्राह्मणजीविकाम् ॥११॥

(११) असत्य भाषण, मनोरञ्जन तथा निन्दा व दम्भ द्वारा जीविका ग्रहण करना उचित नहीं । ब्राह्मण को छल तथ

श्यामापण द्वारा आजीविका परित्याग कर शुभता सत्यचु-
तार द्वारा जीविका प्राप्त करनी चाहिये।

सन्तोषं परमास्थाय सुखार्थी संयतो भवेत्।
संतोषमूलं हि सुखं दुःखमूलं विपर्ययः॥ १२॥

(१२) इन्द्रियों के वश करने के हेतु सदैव मन में सन्तोष
रण करे क्योंकि ससार में सुख का मूल सन्तोष और दुःख
ा मूल असन्तोष वा अधैर्य है।

अतोऽन्यतमया वृत्त्या जीवंस्तु स्नातको द्विजः।
स्वर्गायुष्ययशस्यानि व्रतानीमानि धारयेत्॥ १३॥

(१३) कथित वृत्तियां में से किसी एक द्वारा कालया-
न करे। वेदाध्ययन (सम्पूर्ण समाप्त करने पश्चात् इन्द्रियों को
श कर समावर्त्तन करे। स्वर्ग, आयु तथा यश के हेतु लाभ-
ारक व्रत जो आगे कहेंगे उसको करे।

वेदोदितं स्वकं कर्म नित्यं कुर्यादतन्द्रितः।
तद्धि कुर्वन्यथाशक्ति प्राप्नोति परमांगतिम्॥ १४॥

(१४) आलस्य त्याग वेदानुकूल कर्म करे। तथा वेदज्ञान
अनुसार कार्य करने से अवश्य मुक्ति लाभ करे।

नेहेतार्थान्प्रसंगेन न विरुद्धेन कर्मणा।
न विद्यमानेष्वर्थेषु नार्त्यामपि यतस्ततः॥ १५॥

(१५) गीत वाद्य (गाना बजाना), अयोग्य तथा
अनधिकारी को यज्ञ कराना, इन कर्मों द्वारा कालक्षेप न करे।
था जो मनुष्य पतित (अर्थात् अपने कर्म से धर्म भ्रष्ट) हो
या है, उससे धनादि वस्तु ग्रहण न करे।

इन्द्रियार्थेषु सर्वेषु न प्रसज्येत कामतः ।
अतिप्रसक्तिं चैतेषां मनसा सन्निवर्त्तयेत् ॥१६॥

(१६) इन्द्रिय-निग्रह (इन्द्रियों को वश) कर उनकी अतिशय आसक्ति को मन से वहिष्कृत कर दे।

सर्वान्परित्यजेदर्थान्स्वाध्यायस्य विरोधिनः ।
यथातथाध्यायेयंस्तु सा ह्यस्य कृतकृत्यता ॥१७॥

(१७) जिस धन द्वारा स्वाध्याय (वेदाध्ययन) में व्यतिक्रम हो उसका परित्याग कर दे। जिससे वेदाध्ययन में व्यतिक्रम न होवे ऐसी विधि से कार्य साधन करे।

वयसः कर्मणोऽर्थस्य श्रुतस्याभिजनस्य च ।
वेषवाग्बुद्धिसारूप्यमाचरन्विचरेदिह ॥ १८ ॥

(१८) आयु, कर्म, धन, सुनी हुई बात, तीक्ष्ण भाषण तथा बुद्धि इन सब के अनुसार आचरणों से संसार में जीवन व्यतीत करे।

बुद्धिवृद्धिकराण्याशु धन्यानि च हितानि च ।
नित्यं शास्त्राण्यवेक्षेत निगमांश्चैव वैदिकान् ॥१९॥

(१९) बुद्धि तथा धन की वृद्धि करने वाले वैदि (वेदाङ्ग आदि) तथा निगम, शिल्पकारी, वैद्यक, शास्त्रवि (युद्ध विद्या), धर्मशास्त्र आदि विद्याओं का नित्य स्वाध्या किया करे।

यथा यथा हि पुरुषः शास्त्रं समधिगच्छति ।
तथा तथा विजानाति विज्ञानं चास्यरोचते ॥२०॥

(२०) मनुष्य शास्त्र में जैसे २ परिश्रम तथा अभ्या

करता है वैसे २ उसके अर्थ को समझता है और ज्ञान को लाभ करता है।

ऋषियज्ञं देवयज्ञं भूतयज्ञं च सर्वदा ।

नृयज्ञं पितृयज्ञं च यथाशक्ति न हापयेत् ॥२१॥

(२१) यथा शक्ति नित्यकर्म (अर्थात् पचमहायज्ञ का त्यागन न करे। पञ्च यज्ञ हैं—१-ब्रह्मयज्ञ,२-देवयज्ञ,३-भूतयज्ञ, ४-पितृयज्ञ, तथा ५ अतिथि यज्ञ ।

एतानेके महायज्ञान्यज्ञशास्त्रविदो जनाः ।

अनीहमानाः सततमिन्द्रियेष्वेव जुह्वति ॥२२॥

(२२) जो मनुष्य यज्ञ शास्त्र के ज्ञाता हैं परन्च उन यज्ञों के करने की इच्छा नहीं करते वे सर्वदा इन्द्रियों में हवन करते हैं।'

वाच्येके जुह्वति प्राणं प्राणे वाचं च सर्वदा ।

वाचि प्राणे च पश्यन्तो यज्ञनिर्वृत्तिमक्षयाम् ॥२३॥

(२३) जो मनुष्य वाणी से उपदेश कर, तथा प्राण से परोपकार मे परिश्रम कर इस अक्षय यज्ञ को सिद्ध करना चाहते हैं यह वाणी को प्राणों में हवन करते हैं।

ज्ञानेनैवापरे विप्रा यजन्त्येतैर्मखैः सदा ।

ज्ञानमूलां क्रियामेषां पश्यन्तो ज्ञानचक्षुषा ॥२४॥

(२४) प्रत्येक कर्म का मूल 'ज्ञान' है अतएव बुद्धिमान पुरुष ज्ञान दृष्टि से देख इन यज्ञों (मखो) का यजन (देवताओं की पूजा) करे।

अग्निहोत्रं च जुहुयादाद्यन्ते द्युनिशोः सदा ।

दर्शेन चार्धमासान्ते पौर्णमासेन चैव हि ॥२५॥

(२५) सूर्योदय तथा सूर्यास्त पर हवन करना प्रचलित है। पौर्णमासी तथा अमावस्या पर भी हवन करना उचित है।

सस्यान्ते नवसस्येष्ट्या तथर्त्वन्ते द्विजोऽध्वरैः ।
पशुना त्वयनस्यादौ समान्ते सौमिकैर्मखैः ॥ २६ ॥

(२६) नवीनान्न उत्पन्न होने के समय नवसस्येष्टि से हवन करे फसल के अन्त में चातुर्मासिक यज्ञ, दोनों अयनों में पशु द्वारा हवन करे, तथा वर्ष के अन्त में सोमयोग करे।

नानिष्ट्वा नवसस्येष्ट्या पशुना चाग्निमान्द्विजः ।
नवान्नमद्यान्मांसं वा दीर्घमायुर्जिजीविषुः ॥ २७ ॥

(२७) जो अग्निहोत्री ब्राह्मण दीर्घायु की इच्छा रखता है वह नवीन अन्न जब तक उससे यज्ञ न कर ले तथा पशु मास जब तक उससे यज्ञ न करले, दोनों का भोजन न करे।

नवेनानर्चिता ह्यस्य पशुहव्येन चाग्नयः ।
प्राणानेवाऽत्तुमिच्छन्ति नवान्नमिषगर्द्धिनः ॥२८॥

(२८) जो अग्नि नवीनान्न तथा पशु मांस से तृप्त नहीं होती है वह उस पुरुष के प्राण भक्षण करने की इच्छा करती है जो नवीनान्न और पशुमांस से यज्ञ न करके प्रथम आप भक्षण करने लगा है।

आसनाशनशय्याभिरद्भिर्मूलफलेन वा ।
नास्य कश्चिद्वसेद्गेहे शक्तितोऽनर्चितोऽतिथिः ॥२९॥

(२९) बैठने के हेतु आसन, खाने हेतु भोजन, सोने के हेतु शय्या, जल, फल, तथा मूल आदि से शक्त्यनुसार आतिथ्य पाये बिना किसी गृहस्थी के गृह पर कोई अतिथि न रहना चाहिये।

पाखण्डिनो विकर्मस्थान्वैडालव्रतिकाञ्छठान् ।
हैतुकान्वकवृत्तींश्च वाङ्मात्रेणापि नार्चयेत् ॥३०॥

(३०) यदि पाखण्ड, गर्हित मार्ग द्वारा उदर पोषण-कर्त्ता, बिडालवृत्तिक, स्वाध्याय न करने वाले, कुतर्की, यह सब अतिथि काल में आजावें तो वाणी (वाक्) मात्र से भी उनका आतिथ्य न करें किन्तु भोजन अवश्य दें।

वेदविद्याव्रतस्नाताञ्श्रोत्रियान्गृहमेधिनः ।
पूजयेद्धव्यकव्येन विपरीतांश्च वर्जयेत् ॥ ३१ ॥

(३१) गृहस्थ, वेद और वर्णों के आचरणी पुरुषों का पूजन हवन करे और भोजन योग्य पदार्थों से आतिथ्य सत्कार करे, यदि वेद विरुद्ध आचरण व कर्म हों तो उनकी पूजा न करे

शक्तितोऽपचमानेभ्यो दातव्यं गृहमेधिना ।
संविभागश्च भूतेभ्यः कर्तव्योऽनुपरोधतः ॥ ३२ ॥

(३२) जो ब्रह्मचारी वा सन्यासी आदि स्वयमपाकी नहीं हैं गृहस्थ अपने शक्त्यनुसार उनको भोजनादि दे तत्पश्चात् बालकों से जो अन्न जल बचे वह अन्य जीवों को दे।

राजतो धनमन्विच्छेत्संसीदन्स्नातकः क्षुधा ।
याज्यान्तेवासिनोर्वापि न त्वन्यत इति स्थितिः ॥३३॥

(३३) यदि स्नातक गृहस्थ क्षुधा से अतीव पीड़ित हो तो राजा, यजमान, विद्यार्थी इन सब से धन लेवे अन्य से न लेवे यह शास्त्रमर्यादा है।

न सीदेत्स्नातको विप्रः क्षुधा शक्तः कथंचन ।
न जीर्णमलवद्वासा भवेच्च विभवे सती ॥ ३४ ॥

(३४) जो गृहस्थ, स्नातक तथा वैभव सम्पन्न हो वह क्षुधा से कभी भी आशक्त (दुखी हृदय) न हो। और शक्त रहते जीर्ण (पुराने) तथा मैले वस्त्र धारण करे।

क्लृप्तकेशनखश्मश्रुर्दान्तः शुक्लाम्बरः शुचिः ।
स्वाध्याय चैव युक्तः स्यान्नित्यमात्महितेषु च ॥३५॥

(३५) स्वाध्याय और शुभकर्मों में सदैव रत रहे तथा केश (सर के बाल), नख, डाढ़ी कटाकर छोटे रखे, श्वेत वस्त्र धारण करे, शुचि (पवित्र) रहे तथा आत्मा को इन्द्रियों के वशीभूत न होने दे वरन् इन्द्रियों को आत्मा का दास जाने।

वैणवीं धारयेद्यष्टि सोदकं च कमण्डलुम् ।
यज्ञोपवीतं वेदं च शुभे रौक्मे च कुण्डले ॥ ३६ ॥

(३६) वेदाध्ययन के हेतु बाँस की लाठी, जल से भरा कमण्डलु, यज्ञोपवीत तथा सोने के कुण्डलधारणार्थ सदैव अपने पास रक्खे।

नेक्षेतोद्यन्तमादित्यं नास्तं यान्तं कदाचन ।
नोपसृष्टं च वारिस्थं न मध्यनभसो गतम् ॥३७॥

(३७) सूर्योदय, सूर्यास्त, मध्याह्न तथा ग्रहण समय सूर्य का प्रतिबिम्ब जल में न देखे।

न लङ्घयेद्वत्सतन्त्रीं न प्रधावेच्च वर्षति ।
न चोदके निरीक्षेत स्वं रूपमिति धारणा ॥३८॥

(३८) जल बरसते में न दौड़े, जल में निज रूप न देखे, बँधे बछड़े की तन्त्री (रस्सी गरियावाँ वा जेवड़ा) को न लाँघे शास्त्र में ऐसा लिखा है।

मृदं गां दैवतं विप्रं घृतं मधु चतुष्पथम् ।
प्रदक्षिणानि कुर्वीत प्रज्ञातांश्च वनस्पतीन् ॥३९॥

(३९) कहीं जाता हो और सन्मुख मिट्टी, गऊ, देवता ब्राह्मण, घृत, मधु (शहद) चौराहा, प्रज्ञाता (जानी हुई) वनस्पति मिले तो उनकी प्रदक्षिणा करके जाय अथवा उनको दाहिनी ओर करके जावे ।

नोपगच्छेत्प्रमत्तोऽपि स्त्रियमार्तवदर्शने ।
समानशयने चैव न शयीत तया सह ॥ ४० ॥

(४०) यद्यपि अधिक कामातुर होवे तो भी रजोदर्शन वाली स्त्री से रति कदापि न करे तथा उसके बराबर शय्या पर स्त्री के सहित न सोवे ।

रजसाभिप्लुतां नारीं नरस्य ह्युपगच्छतः ।
प्रज्ञा तेजोबलं चक्षुरायुश्चैव प्रहीयते ॥ ४१ ॥

(४१) जो पुरुष रजोदर्शन वाली स्त्री से भोग करता है उसकी बुद्धि, तेज बल, चक्षु तथा आयु यह सब क्षीण होजाते हैं

तां विवर्जयतस्तस्य रजसा समभिप्लुताम् ।
प्रज्ञा तेजो बलं चक्षु रायुश्चैव प्रवर्धते ॥ ४२ ॥

(४२) जो पुरुष रजोदर्शन वाली स्त्री से भोग नहीं करता है उसकी तेज, बल, चक्षु तथा आयु इन सब की वृद्धि होती है ।

नाश्नीयाद्भार्यया सार्धं नैनामीक्षेत चाश्नतीम् ।
क्षुभतीं जृम्भमाणां वा न चासीनां यथासुखम् ॥४३॥

(४३) स्त्री के सहित एक पात्र में भोजन न करे, तथा स्त्री के जम्भाई लेने, तथा सुख से बैठने की दशा में न देखे।

नाञ्जयन्तीं स्वके नेत्रे न चाभ्यक्तामनावृताम् ।
न पश्येत्प्रसवन्तीं च तेजस्कामो द्विजोत्तमः ॥४४॥

(४४) जो ब्राह्मण तेजवान होने की कामना रखते हैं वह स्त्री को सुरमा वा उबटनादि लगाते या नग्न अथवा प्रसव-काल (बालक जनते) की दशा में न देखें।

नान्नमद्यादेकवासा न नग्नः स्नानमाचरेत् ।
न मूत्रं पथि कुर्वीत न भस्मनि न गोव्रजे ॥४५॥

(४५) एक वस्त्र धारण कर भोजन न करे, नग्न हो स्नान न करे, पथ (रास्ता), भस्म तथा गोस्थान पर मूत्र न त्यागे।

न फालकृष्टे न जले न चित्यां न च पर्वते ।
न जीर्णदेवायतने न वल्मीके कदाचन ॥४६॥

(४६) जुते खेत, जल, अग्नि, चिता, पर्वत देवताओं के जीर्ण (पुराने) मन्दिर, वल्मीक (छोटे २ कीड़ों द्वारा एकत्रित की हुई मिट्टी) इन सब पर भी कदापि मलमूत्र त्याग न करे।

न ससत्त्वेषु गर्तेषु न गच्छन्नापि च स्थितः ।
न नदीतीरमासाद्य न च पर्वतमस्तके ॥४७॥

(४८) वायु, अग्नि, सूर्य, जल, ब्राह्मण, गऊ इन सबको देखते हुये भी मल या मूत्र न त्यागे।

विरस्कृत्योच्चरेत्काष्ठलोष्ठपत्रतृणादिना ।
नियम्य प्रयतो वाचं संवीताङ्गोऽवगुण्ठितः ॥४९॥

(४९) सूखे पत्ते, घास फूंस, काष्ठ (काठ) आदि से पृथिवी को छुपाकर तथा शीश या अन्य अंगों को वस्त्राच्छादित (कपड़े से ढक) कर मौन धारण कर मल व मूत्र विसर्जन करे।

मूत्रोच्चारसमुत्सर्गं दिवा कुर्यादुदङ्मुखः ।
दक्षिणाभिमुखो रात्रौ संध्ययोश्च तथा दिवा ॥५०॥

(५०) दिवस, प्रातः तथा सायं को उत्तराभिमुख हो (उत्तर दिशा को मुख कर) तथा रात्रि को दक्षिणाभिमुख हो मल व मूत्र विसर्जन करे।

छायायामन्धकारे वा रात्रावहनि वा द्विजः ।
यथासुखमुखः कुर्यात्प्राणबाधाभयेषु च ॥५१॥

(५१) छाया, अन्धकार (अँधेरे) प्राणबाधा (प्राणों को कष्ट हो) तथा भय में रात्रि हो या दिन जिस ओर मुख करने से सुख प्राप्त हो उस ओर ही मुह करके मल व मूत्र त्याग करे।

प्रत्यग्निं प्रतिसूर्यं च प्रतिसोमोदकद्विजान् ।
प्रतिगां प्रतिवातं च प्रज्ञा नश्यति मेहतः ॥५२॥

(५२) अग्नि, सूर्य, सोम, जल, ब्राह्मण, गऊ, वायु के प्रति मुख करके मल व मूत्र त्याग करने से प्रज्ञा (बुद्धि) नष्ट हो जाती है।

(४३) स्त्री के सहित एक पात्र में भोजन न करे, तथा स्त्री के जम्भाई लेने, तथा सुख से बैठने की दशा में न देखे।

नाञ्जयन्तीं स्वके नेत्रे न चाभ्यक्तामनावृताम्।
न पश्येत्प्रसवन्तीं च तेजस्कामो द्विजोत्तमः ॥४४॥

(४४) जो ब्राह्मण तेजवान होने की कामना रखते हैं वह स्त्री को सुरमा वा उबटनादि लगाते वा नग्न अथवा प्रसव-काल (बालक जनते) की दशा में न देखें।

नान्नमद्यादेकवासा न नग्नः स्नानमाचरेत्।
न मूत्रं पथि कुर्वीत न भस्मनि न गोव्रजे ॥४५॥

(४५) एक वस्त्र धारण कर भोजन न करे, नग्न हो स्नान न करे, पथ (रास्ता), भस्म तथा गोस्थान पर मूत्र न त्यागे।

न फालकृष्टे न जले न चित्यां न च पर्वते।
न जीर्णदेवायतने न वल्मीके कदाचन ॥४६॥

(४६) जुते खेत, जल, अग्नि, चिता, पर्वत देवताओं के जीर्ण (पुराने) मन्दिर, वल्मीक (छोटे २ कीड़ों द्वारा एकत्रित की हुई मिट्टी) इन सब पर भी कदापि मलमूत्र त्याग न करे।

न ससत्त्वेषु गर्तेषु न गच्छन्नापि च स्थितः।
न नदीतीरमासाद्य न च पर्वतमस्तके ॥४७॥

(४७) खड़े होकर, चलते हुये, उस गढ़े में जिसमें जीव रहते हों, नदीतट तथा पर्वत की चोटी पर भी मलमूत्र न करे।

वाय्वग्निविप्रमादित्यमपः पश्यंस्तथैव गाः।
न कदाचन कुर्वीत विण्मूत्रस्य विसर्जनम् ॥४८॥

(४८) वायु, अग्नि, सूर्य, जल, ब्राह्मण, गऊ इन सबको देखते हुये भी मल वा मूत्र न त्यागे।

तिरस्कृत्योच्चरेत्काष्ठलोष्ठपत्रतृणादिना।
नियम्य प्रयतो वाचं संवीताङ्गोऽवगुण्ठितः ॥४६॥

(४६) सूखे पत्ते, घास फूस, काष्ठ (काठ) आदि से पृथिवी को छुपाकर तथा शीश या अन्य अङ्गों को वस्त्राच्छादित (कपडे से ढक) कर मौन धारण कर मल व मूत्र विसर्जन करे।

मूत्रोच्चारसमुत्सर्गं दिवा कुर्यादुदङ्मुखः।
दक्षिणाभिमुखो रात्रौ सन्ध्ययोश्च तथा दिवा ॥५०॥

(५०) दिवस, प्रातः तथा सायं को उत्तराभिमुख हो (उत्तर दिशा को मुख कर) तथा रात्रि को दक्षिणाभिमुख हो मल व मूत्र विसर्जन करे।

छायायामन्धकारे वा रात्रावहनि वा द्विजः।
यथासुखमुखः कुर्यात्प्राणबाधाभयेषु च ॥५१॥

(५१) छाया, अन्धकार (अँधेरे) प्राणबाधा (प्राणों को कष्ट हो) तथा भय में रात्रि हो वा दिन जिस ओर मुख करने से सुख प्राप्त हो उस ओर ही मुह करके मल व मूत्र त्याग करे।

प्रत्यग्निं प्रतिसूर्यं च प्रतिसोमोदकद्विजान्।
प्रतिगां प्रतिवातं च प्रज्ञा नश्यति मेहतः ॥५२॥

(५२) अग्नि, सूर्य, सोम, जल, ब्राह्मण, गऊ, वायु के प्रति मुख करके मल व मूत्र त्याग करने से प्रज्ञा (बुद्धि) नष्ट हो जाती है।

नाग्निं मुखेनोपधमेन्नग्नां नेक्षेत च स्त्रियम् ।
नामेध्यं प्रक्षिपेदग्नौ न च पादौ प्रतापयेत् ॥ ५३ ॥

(५३) ❀ अग्नि को मुख से न फूंकना, अग्नि में अपवित्र वस्तु न डालना, अग्नि में पाँव को न तपाना तथा नग्न स्त्री को न देखना चाहिये।

अधस्तान्नोपदध्याच्च न चैनमभिलंघयेत् ।
न चैनं पादतः कुर्यान्नप्राणाबधमाचरेत् । ५४ ।

(५४) अग्नि को शय्या (चारपाई) के नीचे न रक्खे, अग्नि न लाघे, अग्नि को पांव से स्पर्श न करे तथा प्राणों को कष्ट न दे।

नाश्नीयात्संधिवेलायां न गच्छेन्नापि संविशेत् ।
न चैव प्रलिखेद्भूमिं नात्मनोपहरेत्स्रजम् ।५५।

(५५) संधि वेला (प्रातः तथा सायं) में भोजन न करे, न चले, तथा न सोवे, भूमि पर रेखायें (लकीरें) न खींचे तथा जो फूलमाला अपने शरीर में धारण किये हो उसे आप न उतारे अन्य से उतरवा ले।

नाप्सु मूत्रपुरीषं वा ष्ठीवनं न समुत्सृजेत् ।
अमेध्यलिप्तमन्यद्वा लोहितं वा विषाणि वा ।५६।

(५६) मल, मूत्र, खखार (थूक) अपवित्र वस्तु रुधिर, तथा विष इन सब को जल में विसर्जित वा प्रवाहित न करे।

नैकः सुप्याच्छून्यगेहे श्रेयांसं न प्रबोधयेत् ।
नोदक्ययाभिभाषेत यज्ञं गच्छेन्न चाऽवृतः ।५७।

❀ अग्नि को मुख से फूकने से शिरोवेदना और अपवि: वस्तुयें जलाने से वायु दूषित हो जाती है।

(५७) शून्य गृह में एकाकी न सोवे, अपने से विद्यादि में उच्च व श्रेष्ठपुरुष यदि सोता हो तो न जगावे मासिक धर्म वाली स्त्री से सम्भाषण न करें तथा बिना निमन्त्रण पाये यज्ञ में न जावे।

अग्न्यागारे गवां गोष्ठे ब्राह्मणानां च सन्निधौ ।
स्वाध्याये भोजने चैव दक्षिणं पाणिमुद्धरेत् ।५८।

(५८) अग्निगृह, गोस्थान (सार), ब्राह्मण के समीप स्वाध्याय में तथा भोजन में दाहिना हाथ निकालना चाहिये।

न वारयेद्गां धयन्तीं न चाचक्षीत कस्यचित् ।
न दिवीन्द्रायुधं दृष्ट्वा कस्यचिद्दर्शयेद्बुधः । ५६ ।

(५६) दुग्ध वा जल पीती हुई गऊ को कैसे भी न हटावे, और इन्द्र धनुष के दर्शन कर किसी को न दिखावे।

नाधार्मिके वसेद्ग्रामे नव्याधिबहुले भृशम् ।
नैकः प्रपद्येताध्वानं न चिरं पर्वते वसेत् । ६० ।

(६०) अधर्मी ग्राम (जो गाँव धर्म रहित हो) में न वसे तथा व्याधिग्रस्त ग्राम (गाँव) में भी न रहे, एकाकी परिभ्रमण न करे (राह न चले), चिरकाल पर्यन्त पर्वत पर न वसे।

न शूद्रराज्ये निवसेन्नाधार्मिकजनावृते ।
न पाखण्डिगणाक्रांते नोपसृष्टेऽन्त्यजैर्नृभिः ।६१।

(६१) जिस गाँव में शूद्र का राज्य हो वा ग्राम अधर्मी पाखण्डी,चाण्डाल मनुष्य के उपद्रव द्वारा पीड़ित हो उसमें न रहे

न भुञ्जीतोद्धृतस्नेहं नातिसौहित्यमाचरेत् ।
नातिप्रगे नातिसायं न सायं प्रातराशितः ।६२।

(६२) जिस वस्तु से तेल निकाल लिया गया हो उसे भक्षण न करे, प्रातःकाल व सन्ध्या समय भोजन न करे, तथा यदि प्रातः समय अधिक भोजन कर लिया हो तो सायंकाल को भोजन न करे।

न कुर्वीत वृथा चेष्टां न वार्यञ्जलिना पिबेत्।
नोत्संगे भक्षयेद्भक्ष्यान्न जातु स्यात्कुतूहली ॥६३॥

(६३) जिस प्रकार से इहलोक तथा परलोक में कुछ लाभ न हो उसको न करे, अञ्जलि (चुल्लू) जल न पीवे, जाँघ पर लड्डू आदि रख कर भक्षण न करे, तथा बिना अभिप्राय किसी भेद के जानने की चेष्टा न करे।

न नृत्येदथवा गायेन्न वादित्राणि वादयेत्।
नास्फोटयेन्न च क्ष्वेडेन्न च रक्तो विरावयेत् ॥६४॥

(६४) नृत्य, गीत, वाद्य, ताली, ठोकना, कटकटाना, हास्य, गधा आदि के स्वर की प्रतिध्वनि (बोली बोलना) इन सब कार्यों से घृणा करे।

न पादौ धावयेत्कांस्ये कदाचिदपि भाजने।
न भिन्नभाण्डे भुञ्जीत न भावप्रतिदूषिते ॥६५॥

(६५) काँसी के पात्र में पाँव कदापि न धोवे, टूटे हुये वा दूषित पात्र में जिससे चित्त खिन्न होता हो वा अनिच्छा हो भोजन न करे।

उपानहौ च वासश्च धृतमन्यैर्न धारयेत्।
उपवीतमलंकारं स्रजं करकमेव च ॥६६॥

(६६) जूता, छतरी, उपवीत (जनेऊ), आभूषण

फूल माला, कमण्डलु, वस्त्र इन सब को यदि किसी ने धारण किया हो तो आप धारण न करे।

नाविनीतैर्व्रजेद्धुर्यैर्नचक्षुद्व्याधिपीड़ितैः।

न भिन्नशृङ्गाक्षिखुरैर्न वालधिविरूपितैः ॥६७॥

(६७) जिस रथ मे ऐसा बैल जुता हो जिसे रथ म न सिखाया गया हो वा क्षुधा पीड़ित, प्यासा, रोगी व जिसके सींग, आँख, खुर तथा पूँछ खण्डित होगय हो ऐसे रथ पर न बैठे।

विनीतैस्तु व्रजेन्नित्यमाशुगैर्लक्षणान्वितैः।

वर्णरूपोपसंपन्नैः प्रतोदेनातुदन्भृशम् ॥६८॥

(६८) जिस रथ में ऐसे बैल जुते हों जिनको रथ म चलना सिखाया गया हो तथा लक्षण, रूप रङ्ग जिसका उत्तम हो उस रथ पर चढे परन्तु बैलों को पैने से न मारे।

बालातपः प्रेतधूमो वर्ज्यं भिन्नं तथासनम्।

न छिन्द्यान्नखलोमानि दन्तैर्नोत्पाटयेन्नखान् ॥६९॥

(६९) प्रात. समय तीन घड़ी पर्यन्त सूर्य की धूप, जलते शव का धुआँ, टूटा आसन इन सब से दूर (विलग) रहे, लोम तथा नाखून न नोचे। तथा नखों को दाँतों से न काटे।

न मृत्लोष्ठं च मृद्नीयान्न च्छिन्द्यात्करजैस्तृणम्।

न कर्मनिष्फलं कुर्यान्नायत्यामसुखोदयम् ॥७०॥

(७०) मिट्टी तथा ढेले को मर्दन न करे, नख से तृण (तिनका) न तोड़े, व्यर्थ तथा निष्फल कार्य न करे, तथा जिस कार्य के करने से सुख न होवे उस कार्य को न करे।

लोष्टमर्दी तृणच्छेदी नखखादी च यो नरः।

स विनाशं व्रजत्याशु सूचकोऽशुचिरेव च ॥७१॥

(७१) ढेला मर्दन करने वाला, तृण तोड़ने वाला, दाँतों से नख काटने वाला, अपवित्र रहने वाला, चुगली करने वाला शीघ्र नाश हो जाता है क्योंकि यह सब दशायें चिन्ता तथा अधर्म की हैं।

न विगर्ह्य कथां कुर्याद्बहिर्माल्यं न धारयेत् ।
गवां च यानं पृष्ठेन सर्वथैव विगर्हितम् ॥७२॥

(७२) लोकरीति वा वेदरीति में चित्त लगा कर कथा वार्ता न कहे, बालों में माला न धारण करे, बैल की पीठ पर चढ़कर न चले; यह सब कार्य वर्जित हैं।

अद्वारेण च नातीयाद्ग्रामं वा वेश्म वावृतम् ।
रात्रौ च वृक्षमूलानि दूरतः परिवर्जयेत् ॥७३॥

(७३) गाँव वा घर यह दोनों, चारों ओर से घिरे हुए होवें तो द्वार छोड़ और ओर से लाँघ (फाँद) कर उसके भीतर न जावे तथा रात्रि समय वृक्ष की जड़ में न रहे।

नाक्षैः क्रीडेत्कदाचित्तु स्वयं नोपानहौ हरेत् ।
शयनस्थो न भुञ्जीत न पाणिस्थं न चासने॥७४॥

(७४) पाँसा न खेले, अपना जूता पाँवों के अतिरिक्त हाथों से एक स्थान से दूसरे स्थान पर न ले जावे, शय्या पर बैठकर और अधिक अन्न को हाथ में ग्रहण कर उसमें से थोड़ा २ निकाल कर तथा आसन पर भोजन पात्र को रखकर भोजन न करे।

सर्वं च तिलसंबद्धं नाद्यादस्तमिते रवौ ।
न च नग्नः शयीतेह न चोच्छिष्टःक्वचिद्व्रजेत् ॥७५॥

(७५) रात्रि में तिलमिश्रित वस्तु न खावे, नग्न न सोवे जूठे मुँह कहीं न जाये।

आर्द्रपादस्तु भुञ्जीत नार्द्रपादस्तु संविशेत् ।
आर्द्रपादस्तु भुञ्जानो दीर्घमायुरवाप्नुयात् ॥७६॥

(७६) गीले पाँव करके भोजन करना उत्तम है परन्तु गीले पाँव सोना वर्जित है। जो मनुष्य पाँव धोकर भोजन करता है वह दीर्घजीवी होता है।

अचक्षुर्विषयं दुर्गं न प्रपद्येत कर्हिचित् ।
न विण्मूत्रमुदीक्षेत न बाहुभ्यां नदीं तरेत् ॥७७॥

(७७) ॐ जो देश आँखों से नहीं देखा या जिस देश में मृत्युभय है उस देश व स्थान पर कभी न जावे, तथा अपने मल व मूत्र को न देखे तथा नदी को बाहुओं (हाथों) से न तैरे।

अधितिष्ठेन्न केशांस्तु न भस्मास्थिकपालिकाः ।
न कार्पासास्थि न तुषान्दीर्घमायुर्जिजीविषुः ॥७८॥

(७८) दीर्घायु का इच्छुक पुरुष बाल, राख, हड्डी मिट्टी के छिन्न पात्रों के टुकड़े, बिनौले तथा भूसे पर खड़ा न रहे।

न संवसेच्च पतितैर्न चण्डालैर्न पुल्कसैः ।
न मूर्खैर्नावलिप्तैश्च नान्त्यैर्नान्त्यावसायिभिः ॥७९॥

(७९) दूसरे ग्रामवासी पुरुष जो पतित, चाण्डाल,

ॐ ७७ वाँ श्लोक सम्मिलित किया गया है, इससे दूसरे देशों में जाना वर्जित है क्योंकि एक बार जाये बिना कोई आँखों द्वारा नहीं देख सकता।

पुल्कस, धनगर्वित, मूर्ख धोबी, आदि तथा अन्त्यावसायी हों उनके ससर्ग (साथ) मे एक वृक्ष की छाया मे न रहे।

न शूद्राय मतिं दद्यान्नोच्छिष्टं न हविष्कृतम्।
न चास्योपदिशेद्धर्मं न चास्य व्रतमादिशेत् ॥८०॥

(८०) शूद्रा को निज सम्पत्ति न दे, दासके अतिरिक्त अन्य शूद्र को जूठा अन्न न दे, जो हव्य हवन करने पश्चात् शेष रहा है वह शूद्र को न दे तथा धर्म व व्रत का उपदेश शूद्र को न दे।

(८१) × जो पुरुष शूद्र को धर्म तथा व्रतोपदेश करता है वह उस शूद्र सहित असंवृत नाम नरक को प्राप्त होता है।

यो ह्यस्य धर्ममाचष्टे यश्चैवादिशति व्रतम्।
सोऽसंवृतं नाम तमः सह तेनैव मज्जति ॥८१॥

(८२) बद्ध करों से शिर न खुजलावे, न जूठे हाथों से शिर स्पर्श करे तथा शिर को छोड़ कण्ठ से स्नान न करे अर्थात् शिर से पाँव पर्यन्त स्नान करे।

न संहताभ्यां पाणिभ्यां कण्डूयेदात्मनः शिरः।
न स्पृशेच्चैतदुच्छिष्टो न च स्नायाद्विना ततः ॥८२॥

(८२) क्रोधवश अपने व दूसरे के शिर मे न मारे, केश (बालों को) न खींचे, यदि शिर में तेल लगा स्नान करे तो अन्य अंगों में तेल न लगावे।

केशग्रहान्प्रहारांश्च शिरस्येतान्विवर्जयेत्।
शिरःस्नातश्च तैलेन नाङ्गं किञ्चिदपि स्पृशेत् ॥८३॥

× ८१ वां श्लोक पौराणिक काल मे सम्मिलित किया गयाहै जब शूद्रोंको विद्याध्ययन वर्जित कर उनको धर्मोपदेशसेविलगररवनाथा

(८३) क्रोधवश अपने व दूसरे के सिर में न मारे, केश (बालों को) न खींचे, यदि शिर में तेल लगा स्नान करे तो अन्य अंगों मे तेल न लगावे।

न राज्ञः प्रतिगृह्णीयादराजन्यप्रसूवितः।
सूनाचक्रध्वजवतां वेश्येनैव च जीवताम् ॥८४॥

(८४) जो राजा क्षत्रिय न हो तथा कसाई, तेली, कलाल या ऐसे स्त्री पुरुष जो वेश्या बन कर जीवन व्यतीत करते हों, इनसे ब्राह्मण दान न लेवे।

दशसूनासमं चक्रं दशचक्रसमो ध्वजः।
दशध्वजसमो वेश्या दशवेश्यसमो नृपः ॥ ८५ ॥

(८५) दश सूना (कसाई) के समान तेली, दश चक्र (तेली) के समान कलाल, दश ध्वज (कलाल) के समान वेश्या तथा दश वेश्याओं के समान राजा है।

दश सूनासहस्राणि यो वाहयति सौनिकः।
तेन तुल्यः स्मृतो राजा घोरस्तस्य प्रतिग्रहः ॥८६॥

(८६) जो सौनिक (कसाई) अपने अर्थ दशसहस्र जीव हनन करता है उसके तुल्य वह राजा है इस राजा का प्रतिग्रह घोर (सख्त) है।

यो राज्ञः प्रतिगृह्णाति लुब्धस्योच्छास्त्रवर्तिनः।
स पर्यायेण यातीमान्नरकानेकविंशतिम् ॥ ८७ ॥

(८७) जो राजा लोभी व शास्त्र प्रतिकूल आचरण वाला है उससे जो कोई दान ग्रहण करता है वह यथाक्रम २१ प्रकार के नरकों (जो आगे कहेंगे) में जाता है।

जो उपाकर्म किया हो उसको माघ शुक्ल प्रतिपदा में पूर्वाह्न काल (दोपहर से प्रथम) उत्सर्जन करे।

यथाशास्त्रं तु कृत्वैवमुत्सर्गं छन्दसां बहिः ।
विरमेत्पक्षिणीं रात्रिं तदेवैकमहर्निशम् ॥ ९७ ॥

(९७) साढे चार मास पर्यन्त वेदपाठ करना इस कारण लिखा है कि वर्षा के कारण अन्य कार्य नहीं हो सकते हैं। उन दिनों में केवल वेद पाठ ही करना चाहिये, अन्यथा अन्य कार्य यथाविधि करने चाहिये।

अत ऊर्ध्वं तु छन्दांसि शुक्लेषु नियतः पठेत् ।
वेदाङ्गानि च सर्वाणि कृष्णपक्षेषु संपठेत् ॥ ९८ ॥

(९८) तत्पश्चात् शुक्लपक्ष में वेद तथा कृष्ण पक्ष में शास्त्रों का पाठ करे।

नाविस्पष्टमधीयीत न शूद्रजनसन्निधौ ।
न निशान्ते परिश्रान्तो ब्रह्माधीत्य पुनः स्वपेत् ॥९९॥

(९९) पाठ में स्पष्ट शब्द और स्वर सहित पढ़े, शूद्र के समीप पाठ न करे और यदि रात्रि के चौथे पहर में वेदपाठ से श्रमित हो जावे तो सोवे नहीं।

यथोदितेन विधिना नित्यं छन्दस्कृतं पठेत् ।
ब्रह्मछन्दस्कृतं चैव द्विजो युक्तोह्यनापदि ॥ १०० ॥

(१००) यथोक्त विधि से नित्य वेदके दोनों भाग अर्थात् छन्द और ब्राह्मण का पाठ करे।

इमान्नित्यमनध्यायानधीयानि विवर्जयेत् ।
अध्यापनं च कुर्वाणःशिष्याणां विधिपूर्वकम् ॥१०१॥

(१०१) आगे जो अनध्याय कहेंगे उनमें गुरु व शिष्य दोनों वेद पाठ न करें तथा वेद न पढावें।

कर्णश्रवेऽनिले रात्रौ दिवा पांसुसमूहने ।
एतौ वर्षास्वनध्यायावनध्यायज्ञाः प्रचक्षते ॥१०२॥

(१०२) रात्रि के समय कान मे वायु सनसनाती हो वा दिन में धूल उडती हो तो वर्षा ऋतु में उसी दिन अनध्याय जाने, ऐसा अनध्याय ज्ञाताओं ने कहा है ।

विद्युत्स्तनितवर्षेषु महोल्कानां च संप्लवे ।
आकालिकमनध्यायमेतेषु मनुरब्रवीत् । १०३ ।

(१०३) विद्युत् (बिजली) का चमकना, गरजना, वर्षा होने मे बिजली का टूटना ऐसे समय मे दूसरे दिवस उसी समय तक अनध्याय है ।

एतांस्त्वभ्युदितान्विद्याद्यदा प्रादुष्कृताग्निषु ।
तदा विद्यादनध्यायमनृतौ चाभ्रदर्शने । १०४ ।

(१०४) विद्युत् (बिजली) का चमकना, गरजना, जल-वर्षा यह यदि तीनों सन्ध्या के समय हों तो वर्षा ऋतु मे अनध्याय जानना । परन्तु सदैव अनध्याय न जाने क्योंकि वर्षा ऋतु मे तो यह सब होते ही हैं। और यदि अन्य ऋतु में मेघ दिखाई देवें तो भी अनध्याय समझे।

निर्घाते भूमिचलने ज्योतिषां चोपसर्जने ।
एतानाकालिकान्विद्यादनध्यायानृतावपि ।१०५।

(१०५) आकाश मे उत्पात का शब्द हो, भूचाल, चन्द्रमा, सूर्य व नक्षत्रों का उपद्रव हो यह सब जिस समय हों दूसरे दिवस उसी समय तक अनध्याय जाने

प्रादुष्कृतेष्वग्निषु तु विद्युत्स्तनित निःस्वने।
सज्योतिःस्यादनध्यायः शेषे रात्रौ यथा दिवा ॥१०६॥

(१०६) प्रातःकाल के हवन के अर्थ काष्ठ के संघर्षण से अग्नि उत्पन्न होने के समय बिजली का चमकना तथा मेघ-गर्जन हो परन्तु वर्षा न होवे तो केवल दिवस भर अनध्याय समझे। यदि यही तीनों बातें सन्ध्या हवन समय हो तो केवल रात्रि भर अनध्यान समझे।

नित्यानध्याय एव स्याद्ग्रामेषु नगरेषु च।
धर्मनैपुण्यकामानां पूतिगन्धे च सर्वदा ॥१०७॥

(१०७) जो पुरुष धर्म की पूर्ण कामना रखता हो वह चाहे ग्राम हो या नगर हो जिस समय दुर्गन्धि फैली हो उस समय अनध्याय करावें।

अन्तर्गतशवे ग्रामे वृषलस्य च सन्निधौ।
अनध्यायो रुद्यमाने समवाये जनस्य च ॥१०८॥

(१०८) जब तक गाँव में शव पड़ा रहे तब तक अधर्म्मी के समीप, रोदन समय, तथा अन्य कार्यार्थ जन समुदाय में अनध्याय जाने।

उदके मध्यरात्रौ च विण्मूत्रस्य विसर्जने।
उच्छिष्टः श्राद्धभुक्चैव मनसापि न चिन्तयेत् ॥१०९॥

(१०९) जल में, अर्द्ध रात्रि में, मल व मूत्र विसर्जन करते समय चित्त में भी वेद का ध्यान न लावे, जूठे मुँह तथा श्राद्ध भोजन करके भी स्वाध्याय न करे।

प्रतिगृह्य द्विजो विद्वानेकोद्दिष्टस्य केतनम्।
त्र्यहं न कीर्तयेद्ब्रह्म राज्ञो राहो श्च सूतके ॥११०॥

(११०) + एकोदिष्ट श्राद्ध का निमन्त्रण, ग्रहण करके निमन्त्रित दिवस से तीन दिवस पर्यन्त वेद पाठ न करे। तथा राजा के सूतक म व चन्द्र सूर्य्य ग्रहण म भी वेद पाठ न करे।

यावदेकानुदिष्टस्य गन्धो लेपश्च तिष्ठति।
विप्रस्य विदुषो देहे तावद्ब्रह्म न कीर्तयेत् ॥१११॥

(१११) जब तक एकोदिष्ट श्राद्ध का गन्धलेप शरीर म रहे तब तक वेद पाठ न करे।

शयानः प्रौढपादश्च कृत्वा चैवावसक्थिकाम्।
नाधीयीतामिषं जग्ध्वा सूतकान्नाद्यमेव च ॥११२॥

(११२) × माँस व सूतक का अन्न, दोनों मे से किसी एक का अन्न, भोजन करके सोते हुए, आसन पर पाँव रखे तथा दोनों टिहुनों (घुट्टू) को नीचे किये हुये वेदपाठ करे।

नीहारे बाणशब्दे च संध्ययोरेव चोभयोः।
अमावास्याचतुर्दश्योः पौर्णमास्यष्टकासु च ॥११३॥

(११३) कुहरा पड़ते समय बाण शब्द, दोनों सन्ध्या, अमावस्या, चतुर्दशी, पौर्णमासी, अष्टमी, इन सब में स्वाध्याय (वेदपाठ) न करे।

अमावास्या गुरुं हन्ति शिष्यं हन्ति चतुर्दशी।
ब्रह्माष्टकापौर्णमास्यौ तस्मात्ताः परिवर्जयेत् ॥११४॥

+ एकोदिष्ट श्राद्ध को ऐसा गर्हित बतलाया गया है कि उसकी गन्धमात्र शरीर में आने से वेदपाठ का अधिकार नहीं है।

× मांस भक्षी को वेदपाठ का अधिकार नहीं है अत मांस भक्षण का निषेध ज्ञात होता है।

(११४) अमावस्या गुरु को, चतुर्दशी शिष्य को, अष्टमी व पूर्णमासी वेद को नाश करती है, इस कारण इन दिवसों में वेद पाठ न करे।

पांसुवर्षे दिशां दाहे गोमायुविरुते तथा।
श्वखरोष्ट्रे च रुवति पङ्क्तौ च न पठेद्द्विजः।११५।

(११५) जिस समय धूल उड़ती हो, किसी ओर अग्नि लगी हो, सियारनी व कुत्ता व गधा व ऊँट ये सब रोने का सा शब्द करते हों तथा पंक्ति में वेदपाठ न करें।

नाधीयीत श्मशानान्ते ग्रामान्ते गोव्रजेपि वा।
वासित्वा मैथुनं वासः श्राद्धिकं प्रतिगृह्य च।११६।

(११६) श्मशान (मरघट) गोशाला, ग्राम समीप तथा मैथुन समय के वस्त्र धारण किये हुए श्राद्ध का अन्न ग्रहण करके वेदपाठ न करे।

प्राणि वा यदि वाऽप्राणि यत्किंचिच्छ्राद्धिकं भवेत्।
तदालभ्याप्यनध्यायः पाण्यास्यो हि द्विजःस्मृतः११७

(११७) श्राद्ध की वस्तु प्राणी हो अथवा जड़ हो इनको ग्रहण करने के पश्चात् वेदपाठ न करे, क्योंकि ब्राह्मण उसका मुख व हाथ है।

चौरैरुपप्लुते ग्रामे संभ्रमे चाग्निकारिते।
आकालिकमनध्यायं विद्यात्सर्वाद्भुतेषु च।११८।

(११८) जिस ग्राम में चोरी अधिक होती हो उसमें, अग्निदाह में, अद्भुत कर्म के देखने में उस समय से दूसरे दिवस के उसी समय तक अनध्याय जाने।

उपाकर्मणि चोत्सर्गे त्रिरात्रं क्षेपणं स्मृतम् ।
अष्टकासु त्वहोरात्रमृत्वन्तासु च रात्रिषु ॥११९॥

(११६) उपाकरण (उपाकर्म) व उत्सग में तथा त्रिरात्र अष्टका में एक रात्रि अनध्याय करना चाहिये ।

नाधोयीताश्वमारूढो न वृक्षं न च हस्तिनम् ।
न नावं न खरं नोष्ट्रं नेरिणस्थो न यानगः ॥१२०॥

(१२०) अश्व (घोड़ा), वृक्ष, हस्ति (हाथी), नाव, गधा, ऊँट, ऊसर भूमि, यान (सवारी) इन पर बैठ कर वेद-पाठ न करे।

न विवादे न कलहे न सेनायां न संगरे ।
न भुक्तमात्रे नाजीर्णे न वमित्वा न सूतके ॥१२१॥

(१२१) विवाद में, कलह में, सेना के संग्राम में, अजीर्ण में, वमन में, सूतक में, इन सब में भी अनध्याय जानना, तथा भोजन करने के पश्चात् भी वेद पाठ न करना ।

अतिथि चाननुज्ञाप्य मारुते वाति वा भृशम् ।
रुधिरे च स्रुते गात्राच्छस्त्रेण च परिक्षते ॥१२२॥

(१२२) अति वायु के चलने में, शरीर से रुधिर निकलने में, शस्त्र से क्षत (घाव) हो जाने में, अतिथि को अनाज्ञा य अरुचि में भी अनध्याय करे।

सामध्वनावृग्यजुषी नाधीयीत कदाचन ।
वेदस्याधीत्य वाप्यन्तमारण्यकमधीत्य च ॥१२३॥

(१२३) सामवेद को सुनकर ऋग्वेद व यजुर्वेद को न पढ़े वेद का अन्त और अनेक प्रकरण इन तीनों में से किसी को पढ़ कर अनध्याय करे।

वैरिणं नोपसेवेत सहायं चैव वैरिणः ।
अधार्मिकं तस्करं च परस्यैव च योषितम् ॥१३३॥

(१३३) शत्रु, शत्रु का मित्र, अधर्मी, चोर, परस्त्री इन सब के संग में न रहे।

न हीदृशमनायुष्यं लोके किंचन विद्यते ।
यादृशं पुरुषस्येह परदारोपसेवनम् ॥ १३४॥

(१३४) परस्त्री से सम्भोग करने के सदृश्य (समान) संसार में कोई भी वस्तु आयु क्षीण करने वाली नहीं है।

क्षत्रियं चैव सर्पंच ब्राह्मणं च बहुश्रुतम् ।
नावमन्येत वै भूष्णुः कृशानपि कदाचन ॥१३५॥

(१३५) जो पुरुष सब वस्तुओं में उन्नति पाने के इच्छुक हों वह क्षत्रिय, साँप तथा विद्वान् ब्राह्मण यद्यपि बूढ़े तथा कृश भी हों तो भी अनादर न करे।

एतत्त्रयं हि पुरुषं निर्दहेदवमानितम् ।
तस्मादेतत्त्रयं नित्यं नावमन्येत बुद्धिमान् ॥१३६॥

(१३६) यह तीनों अनादृत होने से नाश करते हैं। इस कारण बुद्धिमान पुरुष इन तीनों का अनादर न करे।

नात्मानमवमन्येत पूर्वाभिरसमृद्धिभिः ।
आमृत्योःश्रियमन्विच्छेन्नैनां मन्येत दुर्लभाम् ।१३७।

(१३७) दरिद्रता (कङ्गाली) में अपनी अव मानता अवहेलना न करे। मृत्यु पर्यन्त धन की कामना रखे व धन प्राप्ति दुर्लभ न जाने।

सत्यं ब्रूयात्प्रियं ब्रूयान्न ब्रूयात्सत्यमप्रियम् ।
प्रियं च नानृतं ब्रूयादेष धर्मः सनातनः ॥ १३८ ॥

(१३८) सत्य और मिष्ट भाषण करे यदि सत्य हो किन्तु कटु हो तो न कहे, तथा यदि प्रिय हो परन्तु असत्य हो तो भी न कहे यह नित्य का धर्म है ।

भद्रं भद्रमिति ब्रूयाद्भद्रमित्येव वा वदेत् ।
शुष्कवैरं विवादं च न कुर्यात्केनचित्सह ॥ १३९ ॥

(१३९) अभद्र को भी भद्र (अच्छा) कहना चाहिये, किसी से निरर्थक शत्रुता व विवाद न करे ।

नातिकल्पं नातिसायं नातिमध्यंदिने स्थिते ।
नाज्ञातेन समं गच्छेन्नैको न वृषलैः सह ॥१४०॥

(१४०) अतिः प्रातः अति संध्या, अति दोपहर (मध्यदिन) के समय अज्ञानपुरुष और शूद्र के साथ एकाकी कहीं न जाये ।

हीनाङ्गानतिरिक्ताङ्गान्विद्याहीनान्वयोधिकान् ।
रूपद्रव्यविहीनांश्च जातिहीनांश्च नाक्षिपेत् ॥ १४१ ॥

(१४१) अङ्गहीन, अतिरिक्त (अधिक) अङ्ग वाला मूर्ख, कुरूप, नीच जाति, अल्प द्रव्य वाला इनको कूट भाषण न न करे अर्थात् काने को काना न कहे ।

न स्पृशेत्पाणिनोच्छिष्टो विप्रो गोब्राह्मणानलान् ।
न चापि पश्येदशुचिः सुस्थो ज्योतिर्गणान्दिवि।१४२।

(१४२) जूठे मुख ब्राह्मणों अपने हाथों से ब्राह्मण, गऊ अग्नि को स्पर्श न करे तथा अपवित्र व अस्वस्थ हो, तो वह ब्राह्मण चन्द्र, सूर्य व नक्षत्रों को देखे ।

स्पृष्ट्वैतानशुचिर्नित्यमद्भिः प्राणानुपस्पृशेत् ।
गात्राणि चैव सर्वाणि नाभिं पाणितलेन तु ॥१४३॥

(१४३) जिनको छूना वर्जित है यदि उनको स्पर्श करे तो हाथ में जल लेकर उस जल से प्राण (नाक), कर्णादि इन्द्रियों व सर्व शरीर को स्पर्श करे तथा नाभि का पाणि (हथेली) से छुये।

अनातुरः स्वानि खानि न स्पृशेदनिमित्ततः ।
रोमाणि च रहस्यानि सर्वाण्येव विवर्जयेत् ॥१४४॥

(१४४) अनातुर, विना आवश्यकता अपनी इन्द्रियों को स्पर्श न करे तथा गुप्त स्थान (अर्थात् गोप्य मलमूत्र स्थान) के रोम (वाल) भी स्पर्श न करे।

मङ्गलाचारयुक्तः स्यात्प्रयतात्मा जितेन्द्रियः ।
जपेच्च जुहुयाच्चैव नित्यमग्निमतन्द्रितः ॥१४५॥

(१४५) मंगलाचार युक्त वाह्याभ्यन्तर पवित्रता सहित जितेन्द्रिय हो जप वा हवन करे, आलस्य न करे।

मङ्गलाचारयुक्तानां नित्यं च प्रयतात्मनाम् ।
जपतां जुह्वतां चैव विनिपातो न विद्यते ॥१४६॥

(१४६) जो मनुष्य यह सर्व कर्म करता है, वह शास्त्र रीत्यानुसार चलता है, उसको देवता अन्य मनुष्य कुछ हानि नहीं पहुंचा सकते।

वेदमेवाभ्यसेन्नित्यं यथाकालमतन्द्रितः ।
तं ह्यस्याहुः परं धर्ममुपधर्मोऽन्य उच्यते ॥१४७॥

(१४७) आलस्य परित्याग कर यथाकाल नित्य वेद का पाठादि करे यह परम धर्म है, शेष सब उपधर्म हैं।

वेदाभ्यासेन सततं शौचेन तपसैव च ।
अद्रोहेण च भूतानां जातिं स्मरति पौर्विकीम् ॥१४८॥

(१४८) नित्य वेदाभ्यास, पवित्रता, तप, जीवों पर दया यह सब कार्य करने से पूर्वजन्म (अगले जन्म) की जाति स्मरण (याद) होती है ।

पौर्विकीं संस्मरञ्जातिं ब्रह्म वाभ्यसते पुनः ।
ब्रह्माभ्यासेन चाजस्रमनन्तं सुखमश्नुते ।१४६।

(१४६) पूर्व जन्म की जाति को स्मरण करता हुआ वेदाभ्यास ही करता रहे । वेदाभ्यास द्वारा सदैव सुख प्राप्त होता है ।

सावित्राञ्छान्तिहोमांश्च कुर्यात्पर्वसु नित्यशः ।
पितृंश्चैवाष्टकास्वर्चेन्नित्यमन्वष्टकासु च ॥१५०॥

(१५०) पर्व में नित्य गायत्री देवता का हवन और अरिष्ट, त्रास के निमित्त शान्ति हवन करे । अष्टका अन्वष्टका में पितरों की नित्य पूजा करे ।

दूरादावसथान्मूत्रं दूरात्पादावसेचनम् ।
उच्छिष्टान्ननिषेकं च दूरादेव समाचरेत् ॥१५१॥

(१५१) अग्नि के गृह से दूर देश में, मूत्र, पादप्रक्षालन, जूठा अन्न, वीर्य इन सब को त्याग करे ।

मैत्रं प्रसाधनं स्नानं दन्तधावनमञ्जनम् ।
पूर्वाह्ण एव कुर्वीत देवतानां च पूजनम् ।१५२।

(१५२) विष्ठात्याग (अर्थात् आवश्यकताओं की निवृत्ति) टट्टी आदि, स्नान, दातन, अंजन, देवता का पूजन इन सब कामों को दोपहर (मध्याह्न) से प्रथम करना चाहिये।

दैवतान्यभिगच्छेत्तु धार्मिकांश्च द्विजोत्तमान् ।
ईश्वरं चैव रक्षार्थं गुरूनेव च पर्वसु । १५३ ।

(१५३) रक्षार्थ देवता, धार्मि, ब्राह्मण, गुरु, राजा इन सबका दर्शन पर्व में करे।

अभिवादयेद्वृद्धांश्च दद्याच्चैवासनं स्वकम् ।
कृताञ्जलिरुपासीत गच्छतः पृष्ठतोऽन्वियात् ।१५४।

(१५४) यदि कोई वृद्ध अपने गृह पर आवे तो उसका अभिवादन करे और बैठने के हेतु आसन देवे तथा सामने खड़ा बद्ध खड़े रहे, जब वह चलने लगे तब आप भी पीछे होकर चले

श्रुतिस्मृत्युदितं सम्यङ्निबद्धं स्वेषु कर्मसु ।
धर्ममूलं निषेवेत सदाचारमतन्द्रितः । १५५ ।

(१५५) वेद शास्त्रानुकूल जो उत्तम पुरुषों का समाचार है वह धर्म का मूल है, आलस्य परित्याग कर उसी आचार पर सदैव चले।

आचाराल्लभते ह्यायुराचारादीप्सिताः प्रजाः ।
आचाराद्धनमक्षय्यमाचारो हन्त्यलक्षणम् । १५६ ।

(१५६) आयु, उत्तम सन्तति, अक्षय धन यह सब आचार द्वारा सदा प्राप्त होते हैं। तथा शरीर में जो अवगुण दोष देने वाले होते हैं, आचार उनको नाश कर देता है।

दुराचारो हि पुरुषो लोके भवति निन्दितः ।
दुःखभागी च सततं व्याधितोऽल्पायुरेव च ।१५७।

(१५७) दुराचारी मनुष्य संसार में अपयश पाता

और सदैव दुःख तथा व्याधि ग्रसित रहने के कारण अल्प जीवित रहता है।

सर्वलक्षणहीनोऽपि यः सदाचारवान्नरः।

श्रद्दधानोऽनसूयश्च शतं वर्षाणि जीवति। १५८।

(१५८) जिसमें कोई लक्षण नहीं है, जो किसी का अप्रिय नहीं करता, तथा श्रद्धावान् और उत्तम पुरुषों की नाईं सदाचारी है वह सौ वर्ष जीता है।

यद्यत्परवशं कर्म तत्तद्यत्नेन वर्जयेत्।

यद्यदात्मवशं तु स्यात्तत्तत्सेवेत यत्नतः। १५९।

(१५९) जो कर्म परवश है उसका परित्याग तथा स्ववश कर्म का यत्न सहित सेवन करे।

सर्वं परवशं दुःखं सर्वमात्मवशं सुखम्।

एतद्विद्यात्समासेन लक्षणं सुखदुःखयोः। १६०।

(१६०) जो कर्म परवश है वह दुःख है और जो कर्म स्ववश है वह सुख है। यह सुख दुःख का लक्षण है।

यत्कर्म कुर्वतोऽस्य स्यात्परितोषोऽन्तरात्मनः।

तत्प्रयत्नेन कुर्वीत विपरीतं तु वर्जयेत्। १६१।

(१६१) जिस कर्म करने से अन्तरात्मा को परितोष हो उसको सप्रयत्न करे जो इसके विपरीत हो उसका त्याग करे।

आचार्यं च प्रवक्तारं पितरं मातरं गुरुम्।

न हिंस्याद्ब्राह्मणान्गाश्च सर्वांश्चैव तपस्विनः। १६२।

(१६२) + आचार्य, वेदज्ञानदाता, पिता, माता, गुरु, ब्राह्मण, गऊ, तपस्वी इनमें से किसी को न मारे।

+ यज्ञोपवीत कराने वाला।

अयुध्यमानस्योत्पाद्य ब्राह्मणस्यासृङ्गतः ।
दुःखं सुमहदाप्नोति प्रेत्याप्राज्ञतया नरः ॥१६७॥

(१६७) युद्ध न करने वाले ब्राह्मण के शरीर से जो रुधिर पात करता है वह अपनी अज्ञानता के कारण परलोक में बड़ा दुःख भोगता है।

शोणितं यावतः पांसून्संगृह्णाति महीतलात् ।
तावतोऽब्दानमुत्रान्यैः शोणितोत्पादकोऽद्यते ॥१६८॥

(१६८) युद्ध न करने वाले ब्राह्मण के शरीर से शस्त्र द्वारा रुधिर पात करने वाला परलोक में महादुखी होता है। और उस रुधिर से भूमि के जितने कण भीग जाते हैं उतने ही वर्ष पर्यन्त परलोक में वह रुधिर पात करने वाला कुत्ता, सियार आदि से भोजन किया जाता है।

न कदाचिद्द्विजे तस्माद्विद्वनवगुरेदपि ।
न ताडयेत्तृणेनापि न गात्रात्स्रावयेदसृक् ॥ १६९ ॥

(१६९) अतएव बुद्धिमान् पुरुष ब्राह्मण के ताड़नार्थ कभी भी शस्त्र न उठावे। वरन् तृणमात्र से भी न मारे और न शरीर से रुधिर बहावे।

अधार्मिको नरो यो हि यस्य चाप्यनृतं धनम् ।
हिंसारतश्च यो नित्यं नेहऽसौ सुखमेधते ॥ १७० ॥

(१७०) जो अधर्मी, अनृत, अपवित्र व अनुचित रीत्यो-पार्जित धन वाले, तथा हिंसक है वह इस लोक में सुख नहीं पाते।

न सीदन्नपि धर्मेण मनोऽधर्मे निवेशयेत् ।
अधार्मिकाणां पापानामाशु पश्यन्विपर्ययम् ॥१७१॥

(१७१) अधर्म्मी और पापियों के धनादि का शीघ्र नाश देखकर, और धर्म्म में कष्ट पाने पर भी अधर्म न करे अर्थात् धर्म को परित्याग न करे।

नाधर्मश्चरितो लोके सद्यः फलति गौरिव ।
शनैरावर्तमानस्तु कर्तुर्मूलानि कृन्तति । १७२ ।

(१७२) अधर्म्म शीघ्र फल नहीं देता है जैसे बीज बोने के पश्चात् पृथिवी शीघ्र फल नहीं देती, थोड़े समय उपरान्त फल देती है।

यदि नात्मनि पुत्रेषु न चेत्पुत्रेषु नप्तृषु ।
न त्वेव तु कृतोऽधर्मः कर्तुर्भवति निष्फलः ॥१७३॥

(१७३) यदि अधर्म्म का फल अधर्म्मी को नहीं मिलता तो उसके पुत्र को मिलता है। यदि बेटे को न हो, तो उसके पौत्र को मिलता है। यदि पौत्र (पोते) को न मिला तो दौहित्र (नाती)को मिलता तात्पर्य यह है कि अधर्म्म निष्फल नहीं होता।

अधर्मेणैधते तावत्ततो भद्राणि पश्यति ।
ततः सपत्नाञ्जयति समूलस्तु विनश्यति ॥ १७४ ॥

(१७४) अधर्म्मी प्रथम तो अधर्म्म के कारण उन्नत होता है, तत्पश्चात् कल्याण पाता है, तदनन्तर शत्रु विजयी होता है। अन्त को समूल नष्ट हो जाता है।

सत्यधर्मार्यवृत्तेषु शौचे चैवारमेत्सदा ।
शिष्यांश्च शिष्याद्धर्मेण वाग्बाहूदरसंयतः ॥ १७५ ॥

(१७५) भद्र पुरुषों का आचार सद्धर्म, व पवित्रता है इसमें सदैव दत्तचित्त रहे, स्त्री, पुत्र, दास, शिष्य इन सबको

सन्मार्ग दर्शावे और ॐ वाणी, वाहु, तथा उदर का सयम करे।

परित्यजेदर्थकामो यौ स्यातां धर्मवर्जितौ।
धर्मंचाप्यसुखोदर्कं लोकविक्रुष्टमेव च ॥१७६॥

(१७६) अधर्म से उपार्जित जो अर्थ काम है उसका परित्याग धर्म है परन्तु जो लोक रीति के विरुद्ध है तथा भविष्य सुखद ई नहीं है उसका भी त्याग करना उचित है।

न पाणिपादचपलो न नेत्रचपलोऽनृजुः।
न स्याद्वाक्चपलश्चैव न परद्रोहकर्मधीः ॥१७७॥

(१७७) न तो परनिन्दावाद में सम्मिलित हो, न हाथ, पॉव, वाणी व नेत्र की चपलता करे, क्योंकि यह सब कार्य दुष्ट प्रकृति के प्रकट करने वाले हैं।

येनास्य पितरो यातायेन याताः पितामहाः।
तेन यायात्सतां मार्गं तेन गच्छन्न रिष्यते ॥१७८॥

(१७८) जिस मार्ग द्वारा हमारे पूर्वजों ने मुक्ति लाभ किया है सपुरुषों के उसी मार्ग पर हम को भी वेदानुकूल कर्मों को चलना चाहिए और इसी प्रकार के कर्म करने से दुःख नहीं होता है।

ऋत्विक्पुरोहिताचार्यैर्मातुलातिथिसंश्रितैः।
बालवृद्धातुरैर्वैद्यैर्ज्ञातिसम्बन्धिबान्धवैः ॥१७९॥

ॐ वाणी का सयम सत्य बोलना, वाहु (हाथ) का सयम किसी जीव को क्लेश न पहुँचाना उदर का सयम यह है कि *न्यूनाधिक जो कुछ प्राप्त हो उसी को भोजन करके रहे।*

(१८८) सोना, भूमि, अश्व, गऊ, अन्न, वस्त्र, तिल, घी इनमें से किसी एक वस्तु के लेने से मूर्ख ब्राह्मण लकड़ी की नाईं जलकर भस्म हो जाता है।

हिरण्यमायुरन्नं च भूर्गौश्चाप्योषतस्तनुम्।
अश्वश्चक्षुस्त्वचं वासो घृतं तेजस्तिलाः प्रजाः॥१८९॥

(१८९) सोना और रत्न का दान ग्रहण करने से आयु क्षीण होती है, गऊ तथा भूमिका दान शरीर को हानि पहुँचाता है, अश्वदान लेने से नेत्रों को क्षति पहुँचती है, वस्त्रदान से त्वचा (खाल) को, घृत दान से तेज को, तिलदान ग्रहण करने से मूर्ख ब्राह्मण की सन्तति को क्षति पहुँचती है।

अतपास्त्वनधीयानः प्रतिग्रहरुचिर्द्विजः।
अम्भस्यश्मप्लवेनेव सह तेनैव मज्जति॥१९०॥

(१९०) जो ब्राह्मण तप तथा वेदाभ्यास नहीं करता है और दान लिया करता है वह दानदाता सहित डूब जाता है जैसे पानी में पत्थर की नाव।

तस्मादविद्वान्बिभियाद्यस्मात्तस्मात्प्रतिग्रहात्।
स्वल्पकेनाप्यऽविद्वान्हि पङ्के गौरिव सीदति॥१९१॥

(१९१) अतः मूर्ख ब्राह्मण को थोड़ा दान लेने से भी भयभीत होना चाहिये, अन्यथा कीचड़ में फंस कर जिस प्रकार गऊ कष्ट पाती है उसी प्रकार वह भी कष्ट भोगेगा।

न वार्यपि प्रयच्छेत्तु वैडालव्रतिके द्विजे।
न बकव्रतिके विप्रे नावेदविदि धर्मवित्॥१९२॥

(१९२) (१) वैडालव्रतिक व (२) बक (बगुला) व्रतिक, और (३) मूर्ख इन तीनों ब्राह्मणों को धर्मात्मा पुरुष जल तक न देवे।

त्रिष्वप्येतेषु दत्तं हि विधिनाप्यर्जितं धनम् ।
दातुर्भवत्यनर्थाय परत्रादातुरेव च ॥ १६३ ॥

(१६३) उत्तम रीति से उपार्जित धन इन तीनों को देने से आगामी जन्म में कुछ फल नहीं देता अर्थात् निष्फल होता है।

यथा प्लवेनौपलेन निमज्जत्युदके तरन् ।
तथा निमज्जतोऽधस्तादज्ञौ दातृप्रतीच्छकौ ॥१६४॥

(१६४) जिस प्रकार पत्थर की नाव पर चढ कर मनुष्य डूब जाता है उसी प्रकार ❀ मूर्ख ब्राह्मण को दान देने वाला और ग्रहण कर्ता दोनों नरक में पड़ते हैं, अर्थात् दोनों नरकगामी होते हैं।

धर्मध्वजी सदालुब्धश्छाद्मिको लोकदम्भकः ।
वैडालव्रतिको ज्ञेयो हिंस्रः सर्वाभिसंधकः ॥१६५॥

(१६५) धर्मध्वजा को लिए हुए सदा लोभी, छद्मवेशी (बहुरूपिया) की नाई, बहुवेशधारी लोक (संसार) में कपट (धोके) का प्रचारक वैडालवृत्तिक (बिल्ली की तरह जीवक हिंसा करने वाला) सबका निन्दक, हिंसक (जीवहया कर खाने वाला) ये बिल्ली की ओर होने वाले कहलाते हैं।

अधोदृष्टिर्नैष्कृतिकः स्वार्थसाधनतत्परः ।
शठोमिथ्याविनीतश्च वकव्रतचरो द्विजः ॥ १६६ ॥

(१६६) नीचे देखने वाला, निर्दयी, स्वार्थ साधन में

❀ मूर्ख ब्राह्मण को दान देने का मनुजी ने १६२व१६३,१६४श्लोक में इस कारण निषेध किया है कि कोई ब्राह्मण मूर्ख रहे।

नोट—इस श्लोक के अनुसार आज कल के ब्राह्मण तो अवश्य ही नरकगामी होवेंगे।

सदैव तत्पर (लगा हुआ) शठ, निठुर, धोका देने के लिये विनीत भाव दिखलाने वाले, यह सब विडालवृत्ति के गुण हैं। इन लक्षणों से युक्त पुरुष को वेडालवृत्तिक कहते हैं।

ये वकव्रतिनो विप्रा ये च मार्जारलिङ्गिनः ।
ते पतन्त्यन्धतामिस्रे तेन पापेन कर्मणा ॥१९७॥

(१६७) वकवृत्तिक तथा वैडालवृत्तिक महाअन्धकार वाली जीव योनियों में जन्मते हैं जिसमे अति ही दुःख प्राप्त होते हैं।

न धर्मस्यापदेशेन पापं कृत्वा व्रतं चरेत् ।
व्रतेन पापं प्रच्छाद्य कुर्वन्स्त्रीशूद्रदम्भनम् ॥१९८॥

(१९८) पाप कर्म करके धर्म के मिस से व्रत को करे अर्थात् पापकर्म तो करता है परन्तु स्त्री और शूद्र को शुभ दिखलाता है कि मैं धर्म करता हूँ।

प्रेत्येह चेदृशा विप्रा गर्ह्यन्ते ब्रह्मवादिभिः ।
छद्मनाचरितं यच्च व्रतं रक्षांसि गच्छति ॥१९९॥

(१६६) जो पुरुष (लोग) वेद पाठी ब्राह्मणों की निन्दा करते हैं वह इस लोक तथा परलोक मे दुःख पाते हैं और जो कपटाडम्बर करके व्रत धारण करते हैं उनका व्रत राक्षस व्रत है।

अलिङ्गी लिङ्गिवेषेण यो वृत्तिमुपजीवति ।
स लिङ्गिनां हरत्येनस्तिर्यग्योनौ च जायते ॥२००॥

नोट—जो वेशधारी केवल वेश ही को धारण करते हैं परन्तु वेदानुसार आचरण नहीं करते हैं वे संसार को धोका देने से महापाप के भागी होते हैं। और पाप भाग का बढ़ाना भी महापाप है। अतएव जो लोग वेषधारियों की सेवा शुश्रूषा करते हैं वह भी पापी गिने जाते हैं।

(२००) जो ब्रह्मचारी व संन्यासी नहीं है किंतु उनका वेप बनाये रहते हैं वह ब्रह्मचारी तथा संन्यासी से पाप को प्राप्त होते हैं और कीट कृमि की योनि में जन्म पाते हैं इसी प्रकार सब आश्रम वालों को जानना।

परकीयनिपानेषु न स्नायाच्च कदाचन ।
निपानकर्तुः स्नात्वा तु दुष्कृतांशेन लिप्यते ॥२०१॥

(२०१) दूसरे के बनवाए हुए कुवाँ तालाव आदि, (जिनकी सिद्धि अर्थात् प्रतिष्ठा न हुई हो) में यदि स्नान करे तो उनमें स्नान करने से उनके खुदवाने वालेके पाप को प्राप्त होता है

यानशय्यासनान्यस्य कूपोद्यानगृहाणि च ।
अदत्तान्युपभुञ्जान एनसः स्यात्तुरीयभाक् ॥२०२॥

(२०२) सवारी, शय्या (चारपाई), कुवाँ, उद्यान (बाग) गृह (घर) यह सब जिसके हों उस स्वामी की आज्ञा बिना जो निजकार्य में लाता है वह पुरुष उसके स्वामी के पाप के चतुर्थांश को प्राप्त होता है।

नदीषु देवखातेषु तडागेषु सरःसु च ।
स्नानं समाचरेन्नित्यं गर्तप्रस्रवणेषु च ॥२०३॥

(२०३) नदी, देवताओं के खात (गार) तथा तड़ाग (तालाब), बन्द, झरना तथा गढ़ा इन सब में नित्य स्नान करे।

यमान्सेवेत सततं न नित्यं नियमान्बुधः ।
यमान्पतत्यकुर्वाणो नियमान्केवलान्भजन् ॥२०४॥

(२०४) यम तथा नियम जिनका वर्णन आगे आवेगा उनमें यम को नित्य धारण करे नियम को नहीं । यमको परित्याग कर केवल नियम के धारण करने से पतित होजाता है।

नाश्रोत्रियतते यज्ञे ग्रामयाजिकृते तथा ।
स्त्रिया क्लीवेन च हुते भुञ्जीत ब्राह्मणः कचित् ।२०५।

(२०५) वेद न पढ़ा हुआ वैदिक रीति से गाँव में यज्ञ कर्ता, स्त्री, नपुंसक इन लोगों के यज्ञ में ब्राह्मण भोजन न करे।

अश्रीकमेतत्साधूनां यत्र जुह्वत्यमी हविः ।
प्रतीपमेतद्देवानां तस्मात्तत्परिवर्जयेत् ॥२०६॥

(२०६) इस प्रकार के कर्म करना साधुओं के अयोग्य है और विद्वान् पुरुष इसको घृणित दृष्टि से देखते हैं । अतएव ऐसे कर्मों से बचा रहे ।

मत्तक्रुद्धातुराणां च नभुञ्जीत कदाचन ।
केशकीटावपन्नं च पदास्पृष्टं च कामतः ॥२०७॥

(२०७) मत्त (बदमस्त) क्रोधी, आतुर इनके अन्न को, या जिस अन्न में बाल वा कीड़ा पड़ा हो अथवा जो अन्न जान बूझकर पाँव से स्पर्श किया गया हो इन सब को भोजन न करे ।

भ्रूणघ्नावेक्षितं चैव संस्पृष्टं चाप्युदक्यया ।
पतत्रिणावलीढं च शुना संस्पृष्टमेवच ॥२०८॥

(२०८) भ्रूणहत्या करने वाली, वा मासिक धर्मवाली स्त्री का छुआ हुआ अन्न अथवा पक्षिया की चोंच से फोड़ा हुआ अन्न, वा कुत्ते का स्पर्श किया हुआ अन्न हो तो उसे न खावे ।

× (भ्रूण हत्या) गर्भ गिराने वाली ।

नोट—इस प्रकार का अन्न खाने से बहुत प्रकार के रोग उत्पन्न होते हैं ।

गवां चान्नमुपघ्रातं घुष्टान्नं च विशेषतः ।
गणान्नं गणिकान्नं च विदुषां च जुगुप्सितम् ।२०६।

(२०६) गऊ का सूँघा हुआ, यज्ञादि में वह अन्न जो उच्च स्वर में यह कहकर कि कौन भोजन करेगा, दिया गया हो, व बहुत मनुष्यों का अन्न वा वेश्याओं का अन्न, इन सब अन्नों को पण्डित जन निन्दा करते हैं ।

स्तेनगायकयोश्चान्नं तक्ष्णो वार्धुषिकस्य च ।
दीक्षितस्य कदर्यस्य बद्धस्य निगडस्य च ॥२१०॥

(२१०) चोर, गायक (गाने वाला), बढ़ई, व्याज से जीवन निर्वाह करने वाला, दीक्षित (जिसका यज्ञ अभी असमाप्त है), कृपण व बंदी (कैदी) बेड़ी पड़ा हुआ ।

अभिशस्तस्य षण्ढस्य पुंश्चल्या दाम्भिकस्य च ।
शुक्तं पर्युषितं चैव शूद्रस्योच्छिष्टमेव च ॥२११॥

(२११) दोषी व दुष्ट प्रकृति, षंढ (हिजड़ा), दम्भी आदि का अन्न, बासी अन्न (अर्थात् वह अन्न जो बिना खटाई मिश्रित किये खट्टा हो जावे), तथा शूद्र का जूठा अन्न इन सबको भोजन न करे ।

चिकित्सकस्य मृगयोः क्रूरस्योच्छिष्टभोजिनः ।
उग्रान्नं सूतिकान्नं च पर्याचान्तमनिर्दशम् ॥२१२॥

(२१२) चिकित्सक (वैद्य, हकीम) शिकारी दुःखी, क्रूर, निर्दयी, जूठा खाने वाला, उग्र, (कठिन) अन्न (सरलता से न पचने वाला अन्न), सूतिकागृह (जच्चाखाना) में बना हुआ भोजन न खाना चाहिये। अथवा जिस स्थान पर लोग एक पंक्ति में भोजन कर रहे हों और कोई मनुष्य अपमान

करने के हेतु पंक्ति मे से उठकर कुल्ला करने लगे तो भी भोजन त्याग दे।

अनर्चितं वृथामांसमवीरायाश्च योषितः।
द्विषदन्नं नगर्यन्नं पतितान्नमवक्षुतम् ॥ २१३ ॥

(२१३) पूज्य पुरुष को जो अन्न अनादर भाव से दिया जावे, व्याधि उत्पादक अन्न, जो अतिथि तथा विद्वानों को खिलाया हो, दूषित, गर्हित, पतित इन लोगों का अन्न जिस पर छींक पड़ी हो।

पिशुनानृतिनाश्चान्न क्रतुविक्रयिणस्तथा।
शैलूषतुन्नवायान्नं कृतघ्नस्यान्नमेव च ॥ २१४ ॥

(२१४) चुगलखोर, यज्ञ करने के पश्चात् उसको बेचने वाला, नट, दर्जी, कृतघ्न,

कर्मारस्य निषादस्य रङ्गावतारकस्य च।
सुवर्णकर्तुर्वेणस्य शस्त्रविक्रयिणस्तथा ॥ २१५ ॥

(२१५) लोहार, निषाद, नट, गायक के अतिरिक्त इन दोनों की वृत्ति द्वारा जीवन निर्वाह करने वाला सोनार, शस्त्र बेचने वाला।

श्ववतां शौण्डिकानां च चैलनिर्णेजकस्य च।
रञ्जकस्य नृशंसस्य यस्य चोपपतिर्गृहे ॥२१६॥

(२१६) कुत्तों से क्रीड़ा कर जीवन व्यतीत करने वाला, कलवार, रजक (धोबी), रञ्जक रंगरेज), नृशंस (जल्लाद), जिस स्त्री के घर पर उसका उपपति (दूसरा पति) हो,

मृष्यन्ति ये चोपपतिं स्त्रीजितानां च सर्वशः।
अनिर्दशं च प्रेतान्नमतुष्टिकरमेव च ॥ २१७ ॥

(२१७) जो उपपति रहने से प्रसन्न हो, जो स्त्री के वश्य हो अर्थात् जो स्त्री का आज्ञाकारी हो जिसकी मृत्यु का दसवां हुआ हो, उनका अन्न तथा जो अन्न तुष्टि न करे अर्थात् जिस अन्न से चित्त सन्तुष्ट न हो इन सब का भोजन न करे।

राजान्नं तेज आदत्ते शूद्रान्नं ब्रह्मवर्चसम्।
आयुः सुवर्णकारान्नं यशश्चर्मावकर्तिनः ॥ २१८ ॥

(२१८) १-राजा, २-शूद्र, ३-सोनार, ४-चमार, इन लोगों का अन्न यथा क्रम १-तेज, २-ब्रह्मतेज, ३-आयु, ४-यश का नाश करता है।

कारुकान्नं प्रजां हन्ति बलं निर्णेजकस्य च।
गणान्नं गणिकान्नं च लोकेभ्यः परिकृन्तति ॥२१९॥

(२१९) १-कारुक (नापित, नाई), २-निर्णेजक (धोबी) दोनों का अन्न क्रम से १-सन्तान तथा २-बल का नाश करता है, गण (पंक्ति) तथा वेश्या (गणिका) का अन्न स्वर्गलोक को खोता है जो कर्मों द्वारा प्राप्त होने वाला है।

पूयं चिकित्सकस्यान्नं पुंश्चल्यास्त्वन्नमिन्द्रियम्।
विष्ठा वार्धुषिकस्यान्नं शस्त्रविक्रयिणो मलम् ॥२२०॥

(२२०) १-चिकित्सक, २-पुंश्चली (विषया) ३-ब्याज, से निर्वाह करने वाला, ४-शस्त्र बेचने वाला, इनका अन्न क्रमानुसार १-पीव, २-वीज, ३-विष्ठा, ४-रसार के तुल्य है।

य एतेऽन्ये त्वभोज्यान्नाः क्रमशः परिकीर्तिताः।
तेषां त्वगस्थिरोमाणि वदन्त्यन्नं मनीषिणः ॥२२१॥

नोट—इन श्लोकों में मिलावट ज्ञात होती है क्योंकि प्रेत शब्द के अर्थ मृतक के हैं उसका अन्न कभी होता ही नहीं।

.(२२१) जितने अन्न भोजन करने के अयोग्य हैं वह सब निम्नाङ्कित हैं और त्वक् (खाल), हड्डी तथा रोम (बाल के तुल्य है। यह पण्डितों ने कहा है (अर्थात् बालादि के खाने से जो कष्ट होता है वही इनके अन्न भोजन करने से होता है)

भुक्त्वातोऽन्यतमस्यान्नमनत्या क्षपणं त्र्यहम् ।
मत्या भुक्त्वा चरेत्कृच्छ्रं रेतोविण्मूत्रमेव च ।२२२।

(२२२) यदि इनमें से किसी के अन्न को अज्ञानता में भोजन करे तो तीन दिवस उपवास करे। और यदि जान बूझ कर भोजन करे तो छः व्रत जो आगे कहेंगे उनको करे तथा विष्ठा व मूत्र के भोजन में पृथक्-पृथक् यही व्रत करे।

नाद्याच्छूद्रस्य पक्वान्नं विद्वानश्राद्धिनो द्विजः ।
आददीताममेवास्मादवृत्तावेकरात्रिकम् ॥२०३॥

(२०३) विद्वान् ब्राह्मणों को शूद्र का बनाया हुआ भोजन न खाना चाहिये, यदि घर में अन्न न हो तो एक रात्रि के भोजन भर कच्चा अन्न ले लेने में कोई दोष नहीं है।

श्रोत्रियस्य कदर्यस्य वदान्यस्य च वार्धुषेः ।
मीमांसित्वोभयं देवाः सममन्नमकल्पयन् ॥२२४॥

(२२४) कृपण, वेदपाठी तथा दानी व्याज लेने वालों के अन्न को देवताओं ने एक समान बतलाया है।

तान्प्रजापतिराहैत्यमाकृध्वं विषमं समम् ।
श्रद्धापूतं वदान्यस्य हतमश्रद्धयेतरत् ॥२२५॥

(२२५) परन्तु ब्रह्मा जी देवताओं की सम्मति से सहमत नहीं हैं वरन् वह व्याज द्वारा अजीविका वाले दानी के

श्रेष्ठ को श्रद्धा व सहृदय होने के कारण उत्तम और कृपण के अन्न को विष के समान निकृष्ट बतलाते हैं।

श्रद्धयेष्टं च पूर्तं च नित्यं कुर्यादतन्द्रितः।
श्रद्धाकृते ह्यक्षये ते भवतः स्वागतैर्धनैः ॥२२६॥

(२२६) आलस्य त्याग कर साहस सहित सदैव यज्ञ करे, कुआँ बनवाये, तथा तालाब व बावली को बनवाये। उत्तम रीति से उपार्जित धन लगा कर साहस सहित यह दोनों कार्य करे तो अक्षय धन, सुख तथा यश को प्राप्त करता है।

दानधर्मं निषेवेत नित्यमैष्टिकपौर्तिकम्।
परितुष्टेन भावेन पात्रमासाद्य शक्तितः ॥२२७॥

(२२७) उत्तम ब्राह्मण को पाकर शक्त्यनुसार परितुष्ट करने के भाव से सदैव यज्ञ तथा कुँवा आदि का दान करे, अर्थात् उत्तम ब्राह्मणों को अपनी शक्ति के अनुसार सन्तुष्ट करे।

यत्किंचिदपि दातव्यं याचितेनानसूयया।
उत्पत्स्यते हि तत्पात्रं यत्तारयति सर्वतः ॥२२८॥

(२२८) अन्दिक भिक्षुकों को निजबलानुसार दान दिया करे, क्योंकि सदैव के देने में किसी न किसी दिवस कोई पात्र (योग्य) धर्मात्मा आ जावेगा और ज्ञानोपदेश से तार देगा।

वारिदस्तृप्तिमाप्नोति सुखमक्षय्यमन्नदः।
तिलप्रदः प्रजामिष्टां दीपदश्चक्षुरुत्तमम् ॥२२९॥

(२२९) प्यासों (तृषितों) को पानी पिलाने वाला सन्तोष तथा तृप्ति, क्षुधातुरों को भोजन खिलाने वाला अक्षय

सुख, तिल देने वाला उत्तम सन्तान और पथ में दीपक जलाने वाला उत्तम चक्षु (आँखों) को पाता है।

भूमिदो भूमिमाप्नोति दीर्घमायुर्हिरण्यदः ।
गृहदोऽग्र्याणि वेश्मानि रूप्यदो रूपमुत्तमम् ॥२३०॥

(२३०) १–भूमि, २–सोना, ३–घर, ४–रूपा इनका देने वाला क्रमानुसार १—भूमि, २—दीर्घायु, ३—उत्तम घर तथा ४—उत्तम रूप को पाता है।

वासोदश्चन्द्रसालोक्यमश्विसालोक्यमश्वदः ।
अनडुहः श्रियं पुष्टां गोदो ब्रध्नस्य विष्टपम् ॥२३१॥

(२३१) १—वस्त्र, २—अश्व, ३—बैल, ४—गऊ का देने वाला यथाक्रम १—चन्द्रलोक, २—अश्वनी कुमारलोक ३—अक्षय धन, ४—सूर्यलोक को पाता है।

यानशय्याप्रदो भार्यामैश्वर्यमभयप्रदः ।
धान्यदः शाश्वतंसौख्यं ब्रह्मदो ब्रह्मसाष्टिताम् ॥२३२॥

(२३२) १—यान (सवारी) २—शय्या, ३—अभय, ४—वेद इनका देने वाला क्रमानुसार १—स्त्री, २—धन, ३—अक्षय सुख, ४—ब्रह्मलोक के तुल्य पद को पाता है।

सर्वेषामेव दानानां ब्रह्मदानं विशिष्यते ।
वार्यन्नगोमहीवासस्तिलकांचनसर्पिषाम् ॥२३३॥

(२३३) जल, अन्न, गऊ, भूमि, वस्त्र, तिल, सोना, घी इन सब दानों में से वेद का दान सर्वोत्तम है।

येन येन तु भावेन यद्यद्दानं प्रयच्छति ।
तत्तत्तेनैव भावेन प्राप्नोति प्रतिपूजितः ॥२३४॥

(२३४) जो दान जिस प्रकार दिया जाता है वह उसी विधि से दूसरे जन्म में प्राप्त होता है।

योऽर्चितं प्रतिगृह्णाति ददात्यर्चितमेव च।
तावुभौ गच्छतः स्वर्गं नरकं तु विपर्यये ॥२३५॥

(२३५) उत्तम वस्तु का दाता और ग्रहणकर्ता दोनों स्वर्गगामी होते हैं इसके विपरीत निकृष्ट वस्तु के दान दाता व ग्रहणकर्ता दोनों नरकगामी होते हैं।

न विस्मयेत तपसा वदेदिष्ट्वा च नानृतम्।
नार्तोऽप्यपवदेद्विप्रान्न दत्त्वा परिकीर्तयेत् ॥२३६॥

(२३६) तप करके अभिमान न करे, यज्ञ करके अनृत (असत्य) भाषण न करे, क्रोधयुक्त व दुःखी चित्त होकर ब्राह्मण को अपशब्द न कहे दान देकर प्रकट न करे।

यज्ञोऽनृतेन क्षरति तपः क्षरति विस्मयात्।
आयुर्विप्रापवादेन दानं च परिकीर्तनात् ॥ २३७ ॥

(२३७) १—असत्य भाषण, २—अभिमान करना, ३—ब्राह्मण का अपमान व अनादर करना, ४—दान देकर प्रकट करना, इन सब कार्यों के करने से यथाक्रम १—यज्ञ, २—तप, ३—आयु, ४—दान का नाश हो जाता है।

धर्मं शनैः संचिनुयाद्वल्मीकमिव पुत्तिकाः।
परलोकसहायार्थं सर्वभूतान्यपीडयन ॥ २३८ ॥

(२३८) ऐसी विधि से जिसमें किसी भूत (जीव प्राणी) को कष्ट न होने पावे परलोक के सहायार्थ धीरे २ धर्म सचय (इकट्ठा) करे जैसे वल्मीक (चींटी) अन्न सग्रह करती है।

नामुत्र हि सहायार्थं पिता माता च तिष्ठतः ।
न पुत्रदारां न ज्ञातिर्धर्मस्तिष्ठति केवलः ॥ २३९ ॥

(२३९) माता, पिता, स्वजाति सम्बन्धी, पुत्र यह सब परलोक में कुछ भी सहायता नहीं कर सकते हैं केवल धर्म ही वहाँ काम आता है।

एकः प्रजायते जन्तुरेक एव प्रलीयते ।
एकोऽनुभुङ्क्ते सुकृतमेक एव च दुष्कृतम् ॥ २४० ॥

(२४०) जीव अकेला ही जन्मता है और अकेला ही मृत्यु पाता है, अकेला ही पुण्य पाप करता है और अकेला ही उसका फल पाता है।

मृतं शरीरमुत्सृज्य काष्ठलोष्टसमं क्षितौ ।
विमुखा बान्धवा यान्ति धर्मस्तमनुगच्छति ॥ २४१ ॥

(२४१) लकड़ी और मिट्टी के ढेले की नाईं बान्धव वा जाति सम्बन्धी मृत शरीर को जलाकर विमुख हो जाते अर्थात् चले आते हैं, केवल धर्म ही साथ जाता है।

तस्माद्धर्मं सहायार्थं नित्यं सञ्चिनुयाच्छनैः ।
धर्मेण हि सहायेन तमस्तरति दुस्तरम् ॥ २४२ ॥

(२४२) अतएव अपने सहायतार्थ धर्म को सदैव करता रहे, क्योंकि धर्म ही की सहायता से भवसागर से पार होता है।

धर्मप्रधानं पुरुषं तपसा हतकिल्विषम् ।
परलोकं नयत्याशु भास्वन्तं खशरीरिणम् ॥ २४३ ॥

(२४३) जिस पुरुष का धर्म सहायक है और तप द्वारा जिसका पाप क्षय हो गया है वही धर्म उसको स्वर्ग में ले जाता है

उत्तमैरुत्तमैर्नित्यं संबन्धानाचरेत्सतः ।
निनीषुः कुलमुत्कर्षमधमानधमांस्त्यजेत् ॥ २४४ ॥

(२४४) कुल को मान देने के हेतु उत्तम उत्तम पुरुषों से सम्बन्ध करे और अधम पुरुषों का करना चाहिये ।

उत्तमानुत्तमान्गच्छन्हीनान्हीनांश्च वर्जयन् ।
ब्राह्मणः श्रेष्ठतामेति प्रत्यवायेन शूद्रताम् । २४५ ॥

(२४५) उत्तम उत्तम पुरुषों से सवन्ध करके तथा अधम २ पुरुषों का परित्याग करके ब्राह्मण मान मर्यादा प्राप्त करता है और दोष लगने से शूद्र के समान होता है ।

दृढकारी मृदुर्दान्तःक्रूराचारैरसंवसन् ।
अहिंस्रो दमदानाभ्यां जयेत्स्वर्गं तथा व्रतः ॥२४६॥

(२४६) प्रारम्भ किये हुये कार्य को दृढ चित्त से समाप्त करने वाला, दयालु और क्रूर अत्याचारी के विरोध को सहनशीला इन्द्रिय निग्रह (इन्द्रियों को वश में करना) और विषयों से उनको अवरुद्ध करने वाला, अधम पुरुषों का परित्याग कर उत्तम पुरुषों से सवन्ध करने वाला, आत्महत्या तथा जीव हत्या (किसी जीव का हनन करना) न करने वाला सुख को प्राप्त करता है ।

एधोदकं मूलफलमन्नमभ्युद्यतं चयत् ।
सर्वतः प्रतिगृह्णीयान्मध्वथाऽभयदक्षिणाम् ॥२४७॥

(२४७ लकड़ी, जल, मूल, फल, अन्न, मधु अभय यह सब अयाचना (वेमांगे) प्राप्त होवें तो इनको सबसे लेना चाहिये । परन्तु विषयों पीड़ित, नपुंसक तथा शत्रु में न लेवे ।

(२५६) जितने अर्थ हैं सो सब वाणी में रहते हैं और वाणी इन सबकी मूल है, यह सब वाणी द्वारा निकलते हैं उस वाणी को जिसने चुराया वह सब वस्तुओं का चुराने वाला हुआ

महर्षिपितृदेवानां गत्वाऽऽनृण्यं यथाविधि ।
पुत्रे सर्वं समासज्य वसेन्माध्यस्थमाश्रितः ॥२५७॥

(२५७) देव, ऋषि, पितर इन तीनों को ऋण से यथाविधि छूटकर, सब वस्तुएँ पुत्र को सौंप कर संसार त्यागी होकर सबको एक दृष्टि से एक समान देखे और गृह ही में रहे ।

एकाकी चिन्तयेन्नित्यं विविक्ते हितमात्मनः ।
एकाकी चिन्तयानो हि परं श्रेयोधिगच्छति ॥२५८॥

(२५८) एकान्त मे अकेला अपनी आत्मा के हित का नित्य ही ध्यान करे इसमें परम कल्याण होगा ।

एषोदिता गृहस्थस्य वृत्तिर्विप्रस्य शाश्वती ।
स्नातकव्रतकल्पश्च सत्त्ववृद्धिकरः शुभः ॥२५९॥

(२५९) गृहस्थ वृत्ति ब्राह्मण अर्थात् गृहस्थी ब्राह्मण का यह नित्य व्रत कहा तथा बुद्धि की वृद्धि करने वाला स्नातक व्रत भी कहा ।

अनेक विप्रो वृत्तेन वर्त्तयन्वेदशास्त्रवित् ।
व्यपेतकल्मषो नित्यं ब्रह्मलोके महीयते ॥२६०॥

(२६०) वेद तथा शास्त्र का ज्ञाता ब्राह्मण उपरोक्त रीति से रहा करे तो सब पापों से छूटकर सदैव ब्रह्मलोक में पूजने योग्य है ।

मनुजी के धर्मशास्त्र भृगुजी की संहिता का चतुर्थ अध्याय समाप्त हुआ ।

पञ्चमोऽध्यायः ।

श्रुत्वैतानृषयो धर्मान्स्नातकस्य यथोदितान् ।
इदमूचुर्महात्मानमनलप्रभवं भृगुम् ॥ १ ॥

(१) स्नातक के धर्मों को सुनकर ऋषि लोगों ने महात्मा भृगुजी से (जो आग्न से उत्पन्न हुए हैं) यह प्रश्न किया कि हे प्रभु,

एवं यथोक्तं विप्राणां स्वधर्ममनुतिष्ठताम् ।
कथं मृत्युः प्रभवति वेदशास्त्रविदां प्रभो ॥ २ ॥

(२) इस प्रकार ब्राह्मण लोग जो अपने यथोक्त धर्म पर स्थित रहें और वेद तथा शास्त्र के ज्ञाता हों उनकी मृत्यु क्यों होती है ?

स तानुवाच धर्मात्मा महर्षीन्मानवो भृगुः ।
श्रूयतां येन दोषेण मृत्युर्विप्राञ्जिघांसति ॥ ३ ॥

(३) मनुजी के पुत्र धर्मात्मा भृगुजी ने उन ऋषियों को उत्तर दिया कि जिस दोष से ब्राह्मण को मृत्यु मारती है उसको सुनिये।

अनभ्यासेन वेदानामाचारस्य च वर्जनात् ।
आलस्यादन्नदोषाच्च मृत्युर्विप्राञ्जिघांसति ॥ ४ ॥

(४) वेदाभ्यास न करने से, आलस्य करने से, आचार परित्याग से, भोजनदोष से ब्राह्मणों को मृत्यु मारती है।

लशुनं गृञ्जनं चैव पलाण्डुं कवकानि च ।
अभक्ष्याणि द्विजातीनाममेध्यप्रभवाणि च ॥ ५ ॥

(१३) चोंच से खाने वाले वटफोड़ नाम पक्षी आदि, आड़ी आदि, टिटिहरी आदि पञ्जे से नोच कर खाने वाले बाज आदि, पानी में डूबकर मछली खाने वाले जीव, कसाई के घर का मास, सूखा मास इन सब को भी न खावे।

बकं चैव बलाकां च काकोलं खञ्जरीटकम् ।
मत्स्यान्विड्वराहांश्च मत्स्यानेव च सर्वशः ॥ १४ ॥

(१४) बगुला वा बलाका (दूसरे प्रकार का बगुला) काकोल (अति श्याम कौआ) खजरीट (खड़रैचा), मछली भक्षी पक्षी, गाँवका सूअर, तथा मछली इन सबको भी न खाय।

यो यस्य मासमश्नाति स तन्मांसाद उच्यते ।
मत्स्यादःसर्वमांसादस्तस्मान्मत्स्यान्विवर्जयेत् ॥१५॥

(१५) जो जीव जिसके मास का भक्षण करता है वह उस जीव का भक्षी कहलाता है जैसे मछली सबका माँस भक्षण करती है और उसको जिसने खाया उसने मानों सब मास भक्षण कर लिये, अत. मछली न खानी चाहिये।

पाठीनरोहितावाद्यो नियुक्तो हव्यकव्ययोः ।
राजीवान् सिंहतुण्डांश्च सशल्कांश्चैव सर्वशः ॥१६॥

(१६) राजीव, सिंह, तुण्ड, सशल्क, पढ़ना, रोहू इन सब को देवता और पितरों को भोग लगाकर खाना चाहिये।

न भक्षयेदेकचरानज्ञातांश्च मृगद्विजान् ।
भक्ष्येष्वपि समुद्दिष्टान्सर्वान्पञ्चनखांस्तथा ॥ १७ ॥

(१७) जो जीव प्रायः अकेले रहते हैं यथा साँप आदि और जो जाने हुए नहीं है हिरन व पक्षी आदि, पाँच नख वाले बन्दर आदि, इन सब को भोजन न करे।

स्वाविधं शल्यकं गोधां खड्गकूर्मशशांस्तथा ।
भक्ष्यान्पञ्चनखेष्वाहुरनुष्ट्रांश्चैकतोदतः ॥ १८ ॥

(१८) पाँच नख वालों में, शाली, गोह, सेही, गैंडा, कछुआ, खरहा खाने योग्य हैं और ऊँट को छोड़ एक और दांत रखने वाले तथा इनके अतिरिक्त जिन २ को वर्जित किया है, वह भक्षण योग्य हैं।

छत्राकं विड्वराहं च लशुनं ग्राम कुक्कुटम् ।
पलाण्डुं गृञ्जनं चैव मत्या जग्ध्वा पतेद्द्विजः ॥१६॥

(१६) १-कुकुरमुत्ता, २-गाँव का रहने वाला सूअर, ३-लहसुन, ४-गाँव का मुर्गा, ५-प्याज, ६-गाजर इन सब को जान कर भोजन करे तो पतित हो जाता है अर्थात् अपने धर्म वर्ण, आश्रम के पद से गिर जाता है।

अमत्यैतानि षड्जग्ध्वा कृच्छ्रं सान्तपनं चरेत् ।
यतिचान्द्रायणं वापि शेषेषूपवसेदहः ॥ २० ॥

(२०) यदि इन छहों को अज्ञानतावस्था में भोजन करे तो सन्तपन नाम कृच्छ्रव्रत को करे या यति चन्द्रायण व्रत को करे, शेष, वृक्षलासादि के भोजन करने में एक दिन का उपवास करे।

संवत्सरस्यैकमपि चरेत्कृच्छ्रं द्विजोत्तमः ।
अज्ञातभुक्तशुद्ध्यर्थं ज्ञातस्य तु विशेषतः ॥ २१ ॥

(२१) जो वस्तु खाने योग्य नहीं है उसको अनभिज्ञता में खा जाने से जो दोष है उसके विनाशार्थ साल भर में एक कृच्छ्र व्रत को करे। यदि जान कर खाया हो तो उसके हेतु विशेष कर कृच्छ्र व्रत करे।

(२६) १—चर जीवों का भोजन, २—अचर जीव है दाढ़ वालों का भोजन बिना दाढ़ वाले हैं, हाथ वालों क भोजन बिना हाथ वाले हैं, शूर, वीरों का भोजन (भीरु (डरपोक) हैं।

नात्ता दुष्यत्यदन्नाद्यान्प्राणिनोऽहन्यहन्यपि ।
धात्रैव सृष्टा ह्याद्याश्च प्राणिनोऽत्तार एव च ॥३०॥

(३०) भोजन योग्य जीवों को खाने से भक्षी को दोष नहीं होता क्योंकि भक्षण योग्य जीवों को और भक्षण करने वालों को दोनों को ही ब्रह्माजी ने ही उत्पन्न किया है।

यज्ञाय जग्धिर्मांसस्येत्येष दैवो विधिः स्मृतः ।
अतोऽन्यथा प्रवृत्तिस्तु राक्षसो विधिरुच्यते ॥३१॥

(३१) यज्ञ के निमित्त मांस भक्षण करना शास्त्र की विधि है इसके अतिरिक्त और मांस भक्षण करना राक्षसी विधि है।

क्रीत्वा स्वयंवाप्युत्पाद्य परोपकृतमेव वा ।
देवान्पितॄंश्चार्चयित्वा खादन्मांसं न दुष्यति ॥३२॥

(३२) मोल लिये हुये व दूसरे के लाये हुये मांस को देवता तथा पितर को भोग लगा कर भक्षण करने से पाप नहीं होता।

नाद्यादविधिना मांसं विधिज्ञोऽनापदि द्विजः ।
जग्ध्वा ह्यविधिना मांसं प्रेत्य तैरद्यतेऽवशः ॥३३॥

(३३) जो ब्राह्मण शास्त्र-विधिज्ञाता है वह आपत्काल के अतिरिक्त अन्य दशा में यदि विधिविरुद्ध मांस भक्षण करे तो

परलोक में उसके मांस को वह भक्षण करता है, जिसके मांस को उसने भक्षण किया है।

न तादृशं भवत्येनो मृगहन्तुर्धनार्थिनः ।

यादृशं भवति प्रेत्य वृथा मांसानि खादतः ॥३४॥

(३४) धनार्थ (धनोपार्जनार्थ) जो मृग (हिरन) को हनन करता है उसे वैसा पाप नहीं होता जैसा वृथा मांसभक्षी को परलोक में होता है।

नियुक्तस्तु यथान्यायं यो मांसंनात्ति मानवः ।

स प्रेत्य पशुतां याति संभावनेकविंशतिम् ॥३५॥

(३५) शास्त्र विधि से जो मांस विशुद्ध है उसको जो मनुष्य नहीं ग्रहण करता है वह परलोक में २१ जन्म पर्यन्त पशु होता है।

असंस्कृतान्पशून्मन्त्रैर्नाद्याद्विप्रः कदाचन ।

मन्त्रैस्तु सकृतानद्याच्छाश्वतं विधिमास्थितः ॥३६॥

(३६) जिस मास का संस्कार नहीं हुआ उसको ब्राह्मण कदापि भोजन न करे, तथा सदैव शास्त्रानुकूल मन्त्रों द्वारा संस्कार किये हुये मांस को भक्षण किया करे।

कुर्याद्घृतपशुं सङ्गे कुर्यात्पिष्टपशुं तथा ।

न त्वेव तु वृथा हन्तुं पशुमिच्छेत्कदाचन ॥३७॥

(३७) जब पशु के मांस भक्षण करने की तीव्र अभिलाषा हो तो घी अथवा मीठे का पशु बना कर भोजन करे किन्तु पशु के हनन करने की इच्छा न करे।

यावन्ति पशुरोमाणि तावत्कृत्वो हि मारणम् ।

वृथापशुघ्नः प्राप्नोति प्रेत्य जन्मनि जन्मनि ॥३८॥

(३८) जो मनुष्य वृथा पशु हनन करता है वह परलोक में कई जन्म पर्यन्त उतनी ही बार मारा जाता है जितने बाल (रोम) उस मारे हुए पशु के शरीर पर हों।

यज्ञार्थं पशवः सृष्टाः स्वयमेव स्वयंभुवा ।
यज्ञस्य भूत्यै सर्वस्य तस्माद्यज्ञे वधोऽवधः ॥३९॥

(३९) श्री ब्रह्माजी ने स्वयमेव यज्ञ निमित्त पशु को उत्पन्न किया इससे * यज्ञ में जो पशु वध (अर्थात् जीवहत्या) होती है वह वध नहीं कहलाता।

ओषध्यः पशवो वृक्षास्तिर्यञ्चः पक्षिणस्तथा ।
यज्ञार्थंनिधनं प्राप्ताः प्राप्नुवन्त्युत्सृतीः पुनः ॥४०॥

(४०) अन्न, पशु, वृक्ष, पंछी, कछुवा आदि यह सब यज्ञ निमित्त वध किये जाने से आगामी जन्म में उत्तम जाति को पाते हैं।

मधुपर्के च यज्ञे च पितृदैवतकर्मणि ।
अत्रैव पशवो हिंस्या नान्यत्रेत्यब्रवीन्मनुः ॥४१॥

(४१) १—मधुपर्क, २—यज्ञ, ३—देवकर्म, ४—पितृकर्म इनमें पशुवध करना चाहिये अन्य कर्म मे न करना चाहिये। यह भी मनुजी ने कहा है।

एष्वर्थेषु पशून्हिंसन्वेदतत्त्वार्थविद्द्विजः ।
आत्मानं च पशुं चैव गमयत्युत्तमां गतिम् ॥४२॥

---

*यज्ञमे पशुवध वाममार्गियों ने सम्मिलित किया है अन्यथा वेदों में तो यज्ञके अर्थ में अध्वर शब्द आता है जिसका अर्थ यह है कि जिसमें कहीं हिंसा न हो। उसका यही प्रमाण है कि विश्वामित्र ने हिंसा के भय से अपने यज्ञ में स्वयम् राक्षसों को नहीं मारा वरन् रक्षा के निमित्त रामचन्द्र को बुलाया।

(४२) ऐसे कर्मों में पशु की हिंसाकर वेदज्ञाता ब्राह्मण अपने आप को तथा उस पशु की उत्तम गति को पहुँचाता है।

गृहे गुरावरण्ये वा निवसन्नात्मवान्द्विजः ।
नावेदविहितां हिंसामापद्यपि समाचरेत् ॥४३॥

(४३) गृह में, गुरु के स्थान में व बन (जंगल) में वस कर ब्राह्मण वेदविरुद्ध जीव हिंसा आपद् समय में भी न करे।

या वेदविहिता हिंसा नियतास्मिंश्चराचरे ।
अहिंसामेव तां विद्याद्वेदाद्धर्मो हि निर्बभौ ॥४४॥

(४४) जो हिंसा इस ससार में वेदाज्ञानुसार है उसको हिंसा अर्थात् जीवहत्या न जानना चाहिये क्योंकि वेद ही से धर्म निकला है।

योऽहिंसकानि भूतानि हिनस्त्यात्मसुखेच्छया ।
स जीवंश्च मृतश्चैव न क्वचित्सुखमेधते ॥४५॥

(४५) जो जीव वध योग्य नहीं है उनको जो कोई अपने सुख के निमित्त मारता है वह जीवित दशा में भी मृतक तुल्य है वह कहीं भी सुख नहीं पाता है।

यो बन्धनवधक्लेशान्प्राणिनां न चिकीर्षति ।
स सर्वस्य हितप्रेप्सुः सुखमत्यन्तमश्नुते ॥४६॥

(४६) जो मनुष्य किसी जीव को बन्धन में रखने (पकड़ने) वध करने व क्लेश देने की इच्छा नहीं रखता है वह सब का हितेच्छु है अतएव वह अनन्त सुख भोगता है।

यद्ध्यायति यत्कुरुते धृतिं बध्नाति यत्र च ।
तदवाप्नोत्ययत्नेन यो हिनस्ति न किञ्चन ॥४७॥

(४७) जो मनुष्य किसी का ※ वध नहीं करता वह जिस कार्य का ध्यान करता है अथवा जिस कार्य के करने की इच्छा करता है उसको बिना प्रयास ही पाता है।

नाऽकृत्वा प्राणिनां हिंसां मांसमुत्पद्यते क्वचित्।
न च प्राणिवधः स्वर्ग्यस्तस्मान्मांसं विवर्जयेत् ।४८।

(४८) जीवोंकी हिंसा बिना मांस प्राप्त नहीं होती और जीवों की हिंसा स्वर्ग-प्राप्ति में बाधक हैं, अतः माँस कदापि भक्षण न करना चाहिये।

समुत्पत्तिं तु मांसस्य वधबन्धौ च देहिनाम्।
प्रसमीक्ष्य निवर्तेत सर्वमांसस्य भक्षणात्। ४९।

(४९) मांस की प्राप्ति, जीवों का बन्धन तथा उनकी हिंसा (हत्या) इन बातों को देख कर सब मांस का भक्षण त्याग करे।

न भक्षयति यो मांसं विधिं हित्वा पिशाचवत्।
स लोके प्रियतां याति व्याधिभिश्च न पीड्यते ।५०।

(५०) जो मनुष्य विधि परित्याग कर पिशाच की तरह मांस भक्षण नहीं करता है वह लोक में सर्व प्रिय होता है और विपत्ति के समय कष्ट नहीं पाता।

※ वेदों में नीपकृष्ट जीवों को मनुष्यों के रक्षार्थ वध करना तो लिखा है परन्तु यज्ञादि के निमित्त पशुवध व जीवहत्या करना बाद को सम्मिलित किया गया है। राजा का धर्म है कि दस्यु आदि मनुष्यों को तथा सिंहादि जीवों को मनुष्यों के रक्षार्थ मारे (आखेट करे)।

श्लोक ४६ वाँ तथा ४७ वाँ अहिंसा का सर्वथा मानने वाला है

अनुमन्ता विशसिता निहन्ता क्रयविक्रयी ।
संस्कर्ता चोपहर्ता च खादकश्चेति घातकाः ॥५१॥

(५१) १-जिनकी सम्मति बिना जीव हिंसा न हो सके, २-शस्त्र से मांस काटने वाला, ३-मारने वाला, ४-बेचने वाला, ५-मोल लेने वाला ६-बनाने वाला, ७-लाने वाला, ८-खाने वाला, यह आठों घातक (हिंसा करने वाले) ही कहलाते हैं।

स्वमांसं परमांसेन यो वर्धयितुमिच्छति ।
अनभ्यर्च्य पितृन्देवांस्ततोऽन्यो नास्त्यपुण्यकृत् ॥५२॥

(५२) जो मनुष्य दूसरे के मांस द्वारा अपने मांस को बढ़ाने की इच्छा मात्र करता है उससे अधिक दूसरा पापी नहीं है।

वर्षे वर्षेऽश्वमेधेन यो यजेत शतं समाः ।
मांसानि च न खादेद्यस्तयोः पुण्यफलं समम् ॥५३॥

(५३) जो मनुष्य सौ वर्ष पर्यन्त प्रत्येक वर्ष एक बार अश्वमेघ यज्ञ करता है, तथा अन्य पुरुष जो मांस भक्षी नहीं हैं इन दोनों के पुण्य का फल समान है।

फलमूलाशनैर्मेध्यैर्मुन्यन्नानां च भोजनैः ।
न तत्फलमवाप्नोति यन्मांसपरिवर्जनात् ॥५४॥

(५४) जो फल माँस परित्याग से होता है वह फल मनुजी के बतलाये हुए अन्य पदार्थों के भोजन करने से नहीं होता है। तात्पर्य यह कि सुख तथा बुद्धि जितनी भोजन द्वारा बढ़ती है उससे कहीं अधिक माँस परित्याग से बढ़ती है।

मांसभक्षयिताऽमुत्र यस्य मांसमिहाद्म्यहम् ।
एतन्मांसस्य मांसत्वं प्रवदन्ति मनीषिणः ॥५५॥

(५५) विद्वजन मांस के यह लक्षण कहते हैं कि जिसके मांस को मैं इस जन्म में खाता हूं वह आगामी जन्म में मेरे मास को भक्षण करेगा।

न मांसभक्षणे दोषो न मद्ये न च मैथुने ।
प्रवृत्तिरेषा भूतानां निवृत्तिस्तु महाफला ॥५६॥

(५६) मद्य (शराब आदि) पीने, मांस भक्षण करने तथा मैथुन करने (स्त्रियों से संभोग करने) में प्रायः जीवों की प्रवृत्ति है और वह अज्ञानवश इसमें दोष नहीं मानते हैं। परन्तु इन सबका परित्याग महाफल का देने वाला है।

प्रेतशुद्धिं प्रवक्ष्यामि द्रव्यशुद्धिं तथैव च ।
चतुर्णामपि वर्णानां यथावदनुपूर्वशः ॥ ५७ ॥

(५७) अब यथाक्रम चारों वर्णों की प्रेत शुद्धि तथा द्रव्य शुद्धि को कहते हैं।

दन्तजातेऽनुजाते च कृतचूडे च संस्थिते ।
अशुद्धा बान्धवाः सर्वे सूतके च तथोच्यते ॥५८॥

(५८) जिस घर में सूतक होता है उनके वह सम्बन्धी जिनके सस्कार हो चुके हैं शुद्ध गिने जाते हैं और सस्कार लेने चाहिये। चूड़ाकर्म यज्ञोपवीत इत्यादि।

नोट—श्लोक ५३ व ५४ में माँस के परित्याग का उपदेश है। जो मांस भक्षण के पक्ष मे मनुजी का श्लोक दिखलाते हैं वह सर्वथा भूल करते हैं।

दशाहं शावमाशौचं सपिण्डेषु विधीयते ।
अर्वाक् संचयनादस्थ्नां त्र्यहमेकाहमेव च ॥५६॥

(५६) वेदपाठी व ब्रह्मज्ञानी ब्राह्मण को एक दिन जब तक शुद्धि का हवन न हो अशुद्धि रहती है । केवल वेदपाठी अग्निहोत्री को तीन दिन पर्यन्त और मूर्ख को दश दिन पर्यन्त सूतक रहता है ।

सपिण्डता तु पुरुषे सप्तमे विनिवर्तते ।
समानोदकभावस्तु जन्मनाम्नोरवेदने ॥ ६० ॥

(६०) सातवें पुरुष में सपिण्डता की निवृत्ति होती है और अपनी मृत्यु के पश्चात् जब जन्म नामका ज्ञान नहीं रहता तब समानादकता की निवृत्ति होती है ।

यथेदं शावमाशौचं सपिण्डेषु विधीयते ।
जननेऽप्येवमेव स्यान्निपुणां शुद्धिमिच्छताम् ॥६१॥

(६१) जो पुरुष सपिण्डी में हों और अधिक शुद्ध की इच्छा रखते हों उनका * सूतक पुत्रादि के उत्पन्न होने में भी मृतक के सूतक के तुल्य होता है ।

---

* यहाँ सूतक की अशुद्धि से यह तात्पर्य है कि सन्तानोत्पत्ति द्वारा उत्पन्न प्रसन्नता अथवा किसी कुटुम्बी की मृत्यु द्वारा उत्पन्न शोक के नित्य कर्मों के करने में विघ्न डाल देता है ।

५६ वाँ श्लोक मासनिषेध को भी सिद्ध करता है । मासभक्षी लोग जो मनुस्मृति के श्लोक अपने पक्ष में दिखलाते हैं यह उनकी भूल है, क्योंकि मास भक्षण का पाप होना तो मनुस्मृति तथा वेद दोनों में सिद्ध है और मास भक्षण पक्ष के श्लोक वाममार्गियों ने सम्मिलित कर दिये हैं । मनु जैसा ऋषि न तो वेदों के विरुद्ध लिख सकता है तथा न अपनी पुस्तक को दो प्रकार

सर्वेषां शावमाशौचं मातापित्रोस्तु सूतकम् ।
सूतकं मातुरेव स्यादुपस्पृश्य पिता: शुचिः ॥ ६२ ॥

(६२) मृतक का सूतक सबको होता है किन्तु जन्म होने का सूतक केवल माता पिता ही को होता है। इन दोनों में से माता पिता को छूना न चाहिए और पिता स्नान करने के पश्चात् छूने योग्य होता है।

निरस्य तु पुमाञ्शुक्रमुपस्पृश्यैव शुद्ध्यति ।
वैजिकादभिसंबन्धादनुरुन्ध्यादघं त्र्यहम् ॥ ६३ ॥

(६३) यदि स्त्री सम्भोग के अतिरिक्त पुरुष का वीर्य पतन हो जावे तो स्नान करके पवित्र हो जाता है व जिस स्त्री ने उपपति किया हो उस स्त्री में दूसरे पति से पुत्रोत्पन्न होने में दूसरे पति को तीन दिन सूतक होता है। एक दिन रात्रि में वा तीन दिन रातों में ।

अह्ना चैकेन रात्र्या च त्रिरात्रैरेव च त्रिभिः ।
शवस्पृशो विशुद्ध्यन्ति त्र्यहादुदकदायिनः ॥ ६४ ॥

(६४) मृतक के शव को स्पर्श करने वाले तथा मृतक के घर का जल पीने वाले अर्थात् जिनका जल एक ही हो तीन दिन में शुद्ध होते हैं ।

गुरोः प्रेतस्य शिष्यस्तु पितृमेधं समाचरन् ।
प्रेतहारैः समं तत्र दशरात्रेण शुद्ध्यति ॥ ६५ ॥

(६५) गुरु की मृत्यु पर यदि शिष्य उसका शव-दाह करे तो वह भी दश दिन में शुद्ध होता है।

को ऐसी आज्ञाओं से जिनमें मतावरोध हो निरर्थक (रद्दी) कर सकता है।

रात्रिभिर्मासतुल्याभिर्गर्भस्रावे विशुध्यति ।
रजस्युपरते साध्वी स्नानेन स्त्री रजस्वला ॥ ६६ ॥

(६६) जब गर्भ पात हो जावे (गिर जावे) तो जितने मास का गर्भ हो उतने ही दिन अशौच (अशुद्ध) रहता है। मासिकधर्म में रजोदर्शन के समाप्त होने पर स्नान करके वह स्त्री शुद्ध हो जाती है।

नृणामकृतचूडानां विशुद्धिर्नैशिकी स्मृता ।
निर्वृत्तचूडकानां तु त्रिरात्राच्छुद्धिरिष्यते ॥ ६७ ॥

(६७) जिसका चूड़ाकर्म (मुण्डन) न हुआ हो उसकी मृत्यु से एक रात दिन का सूतक होता है। और चूड़ाकर्म के हो जाने पर मृत्यु पश्चात् तीन रात्रि तक सूतक रहता है।

ऊनद्विवार्षिकं प्रेतं निदध्युर्बान्धवा बहिः ।
अलङ्कृत्य शुचौ भूमावस्थिसंचयनादृते ॥ ६८ ॥

(६८) जो लड़का दो महीने का होकर मर जावे उस को अलङ्कृत करके ग्राम से बाहर जङ्गल में गाड़ना चाहिए। उसकी अस्थि (हड्डियाँ) सञ्चय (इकट्ठा) न करनी चाहिये।

नास्य कार्योऽग्निसंस्कारो न च कार्योदकक्रिया ।
अरण्ये काष्ठवत्त्यक्त्वा क्षपेयुस्त्र्यहमेव च ॥ ६९ ॥

(६९) अति छोटे बालकों का अग्नि दाह करना व उनके शव को स्नान कराना यह दोनों कार्य्य न करने चाहिये। केवल जङ्गल में लकड़ी की नाईं छोड़ आना चाहिये, क्योंकि इससे वायु में दुर्गन्धि फैलने का भय नहीं होता।

नाऽत्रिवर्षस्य कर्तव्या बान्धवैरुदकक्रिया ।
जातदन्तस्य वा कुर्युर्नाम्नि वापि कृते सति ॥७०॥

(७०) जो तीन वर्ष से न्यून अवस्था का हो उसके शव को स्नान कराना पर अग्नि दाह न करना चाहिए। यदि दांत निकल आने पर मरा हो वा नामकरण पश्चात् मरा हो तो दाह करना, जल देना चाहिए। यह केवल चलन (रीति) की बात है, इसके करने न करने में कोई फल अथवा दोष नहीं है।

सब्रह्मचारिण्येकाहमतीते क्षपणं स्मृतम् ।
जन्मन्येकोदकानां तु त्रिरात्राच्छुद्धिरिष्यते ॥७१॥

(७१) सहपाठी के मरने पर एक दिन का सूतक होता है और जन्म में मानोदक को तीन रात्रि का सूतक होता है।

स्त्रीणामसंस्कृतानां तु त्र्यहाच्छुद्ध्यन्ति बान्धवाः ।
यथोक्तेनैव कल्पेन शुद्ध्यन्ति तु सनाभयः ।

(७२) विवाह के प्रथम वाग्दान के पश्चात् स्त्री के मरने में पति आदि तीन दिन में शुद्ध होते हैं और विवाह के पश्चात् मरने में पिता आदि सब तीन दिन मे शुद्ध होते हैं।

अक्षारलवणान्नाः स्युर्निमज्जेयुश्च ते त्र्यहम् ।
मांसाशनं च नाश्नीयुः शयीरंश्च पृथक् क्षितौ ॥७३॥

(७३) खारी नमक न खाना, नदी आदि में तीन दिन पर्यन्त स्नान करना, माँस भक्षण न करना, पृथक् पृथिवी पर सोना चाहिए।

सन्निधावेष वै कल्पः शावाशौचस्य कीर्तितः ।
असन्निधावयं ज्ञेयो विधिः संबन्धिबान्धवैः ॥७४॥

(७४) जो सम्बन्धी समीप उपस्थित हों उनका सूतक

मरने में वर्णन किया गया, अब जो सम्बन्धी व कुटुम्बी दूर देश (परदेश) में हो उनका सूतक कहते हैं।

विगतं तु विदेशस्थं शृणुयाद्यो ह्यनिर्दशम् ।
यच्छेषं दशरात्रस्य तावदेवाशुचिर्भवेत् ॥ ७५ ॥

(७५) जो सबन्धी व कुटुम्बी परदेश में मर जावे, यदि उसका सन्देश दश दिन के भीतर आवे तो जितने दिन दश दिन से न्यून हों उतने दिन तक सूतक अर्थात् चिन्ता आदि अशुद्धि रहती है।

अतिक्रान्ते दशाहे च त्रिरात्रमशुचिर्भवेत् ।
सम्वत्सरे व्यतीते तु स्पृष्ट्वै वापो विशुद्ध्यति ॥७६॥

(७६) यदि मरने से दश दिन पश्चात् सुनने में आवे तो तीन दिन रात पर्यन्तक सूतक मानना चाहिये। और यदि वर्ष पश्चात् सुनने में आवे तो सुनने वाला स्नान करके शुद्ध हो जाता है।

निर्दशं ज्ञातिमरणं श्रुत्वा पुत्रस्य जन्म च ।
सवासा जलमाप्लुत्य शुद्धो भवति मानवः ॥ ७७ ॥

(७७) दश दिन पश्चात् यदि कुटुम्बियों में किसी का मरण और जन्म सुनने में आवे तो वस्त्रों सहित स्नान करने से शुद्ध हो जाता है।

बाले देशान्तरस्थे च पृथक्पिण्डे च संस्थिते ।
सवासा जलमाप्लुत्य सद्य एव विशुद्ध्यति ॥ ७८ ॥

(७८) परदेश में समानोदक बालक का मरण सुनने में आवे तो वस्त्रों सहित स्नान करने से उसी समय शुद्ध हो जाता है।

अन्तर्दशाहे स्यातां चेत्पुनर्मरणजन्मनी ।
तावत्स्यादशुचिर्विप्रो यावत्तत्स्यादनिर्दशम् ॥७६॥

(७६) एक जन्म के पश्चात् दूसरे का जन्म दश दिन के भीतर होवे अथवा एक की मृत्यु के पश्चात् दूसरे की मृत्यु प्रथम के दश दिन के भीतर होवे तो प्रथम सूतक समाप्त होने से दूसरा सूतक भी समाप्त हो जाता है ।

त्रिरात्रमाहुराशौचमाचार्ये संस्थिते सति ।
तस्य पुत्रे च पत्न्यां च दिवारात्रमिति स्थितिः॥८०॥

(८०) आचार्य की मृत्यु में शिष्य को तीन रात्रि का सूतक होता है, आचार्य की स्त्री व उसके पुत्र की मृत्यु में एक दिन रात्रि का सूतक होता है, यह शास्त्र मे उल्लिखित हैं।

श्रोत्रिये तूपसंपन्ने त्रिरात्रमशुचिर्भवेत् ।
मातुले पक्षिणीं रात्रिं शिष्यर्त्विग्बान्धवेषु च ॥८१॥

(८१) यदि वेद व शास्त्र का अध्ययन करने वाला मर जावे तो मित्रादि होकर उसके समीप रहने वाले अथवा उसके गृह में रहने वाले का तीन रात्रि पर्यन्त सूतक रहता है तथा मामा, शिष्य ऋत्विक, भाई, बन्धु इनके मरने मे पक्षिणी रात्रि (अर्थात् प्रथम और अन्त के मध्य की रात्रि) पर्यन्त सूतक रहता है।

प्रेते राजनि सज्योतिर्यस्य स्याद्विषये स्थितः ।
अश्रोत्रिये त्वहः कृत्स्नमनूचाने तथा गुरौ ॥८२॥

(८२) यदि राजा की मृत्यु दिन में हुई हो तो सारे दिन और यदि रात में हुई हो तो सारी रात्रि उस राज मे रहने वाली प्रजा को सूतक होता है । मूर्ख ब्राह्मण को मृत्यु में उसे

गृह वासियों को एक दिन का सूतक होता है, अर्थात् यदि दिवस में मृत्यु हुई हो तो सारे दिन और रात्रि मे मृत्यु हुई हो तो सारी रात्रि सूतक होता है। गृहपाठी की मृत्यु में तथा किंचित् वेदशास्त्र पढाने वाले की मृत्यु मे ऊपर लिखे सूतक के अनुसार एक दिन सूतक होता है।

शुद्ध्येद्विप्रो दशाहेन द्वादशाहेन भूमिपः।
वैश्यः पञ्चदशाहेन शूद्रो मासेन शुद्ध्यति ॥ ८३ ॥

(८३) ब्राह्मण दश दिन मे, क्षत्रिय बारह दिन मे, वैश्य पन्द्रह दिन में, शूद्र तीस दिन में शुद्ध होता है।

न वर्धयेदघाहानि प्रत्यूहेन्नाग्निषु क्रियाः।
न च तत्कर्म कुर्वाणः सनाभ्योऽप्यशुचिर्भवेत् ॥८४॥

(८४) पाप के दिन को न बढावे और अग्निहोत्र न छोडना चाहिये, अग्निहोत्री सामर्थ्य न रखता हो तो उसके पुत्रादि अग्निहोत्र को कर लेवें, इस कर्म के करने से उसको अपवित्रता नहीं रहती।

दिवाकीर्तिमुदक्यां च पतितं सूतिकां तथा।
शवं तत्स्पृष्टिनं चैव स्पृष्ट्वा स्नानेन शुद्ध्यति ॥८५॥

(८५) चाण्डाल, मासिक धर्म वाली स्त्री, जिसने बेटा या बेटी जनी हो, मृतक के छूने वाले, इन सबको छूकर स्नान करने से पवित्र हो जाते हैं।

आचम्य प्रयतो नित्यं जपेदशुचिदर्शने।
सौरान्मन्त्रान्यथोत्साहं पावमानीश्च शक्तितः ॥८६॥

क्ष यह श्लोक बतलाता है कि जितना अधिक ज्ञान होगा उतनी ही शीघ्र शोक से निवृत्त हो जावेगा।

(८६) अशुचिता के दर्शन करने में आचमन कर विधिवत् शक्ति अनुसार (जैसे अच्छा ज्ञात हो वैसे ही) सूर्य भगवान् के मन्त्र अथवा अन्य किसी पवित्रकर्ता के मन्त्र का जप करे।

नारं स्पृष्ट्वास्थिसस्नेहं स्नात्वा विप्रो विशुद्ध्यति ।
आचम्यैव तु निःस्नेहं गामालभ्यार्कमीक्ष्य वा ।८७।

(८७) ब्राह्मण मनुष्य की सस्नेह (चिकनी) अस्थि को त्याग कर स्नान करने से शुद्ध होता है। शुष्क (सूखी) हड्डियों को छोड़कर आचमन करके गऊ स्पर्श अथवा सूर्य भगवान् के दर्शन से पवित्र होता है।

आदिष्टी नोदकं कुर्यादाव्रतस्य समापनात् ।
समाप्ते तूदकं कृत्वा त्रिरात्रेणैव शुद्ध्यति । ८८ ।

(८८) ब्रह्मचारी किसी की मृत्यु में जल न देवे जब तक उसका व्रत (ब्रह्मचर्य) सम्पूर्ण न हो जावे, व्रत सम्पूर्ण होने पर जल देकर तीन रात्रि में पवित्र होता है।

वृथासंकरजातानां प्रव्रज्यासु तिष्ठताम् ।
आत्मनस्त्यागिनां चैव निवर्तेतोदक क्रिया ।८९।

(८९) स्वधर्म त्यागी, जो झूठा संन्यास धारण किये हो, जो शास्त्र प्रतिकूल आत्मा का त्यागी हो इन सब की मृत्यु में जल न देना चाहिये।

पाषण्डमाश्रितानां च चरन्तीनां च कामतः ।
गर्भभर्तृद्रुहां चैव सुरापीनां च योषिताम् ।९०।

(९०) पाखण्ड धर्म (वेद विरुद्ध धर्म) करने वाली

छानुसार चलने वाली, गर्भिणी तथा अपने भर्ता से शत्रुता
ने वाली, शराब पीने वाली ऐसी स्त्री की मृत्यु में जल न
ा चाहिये।

आचार्यं स्वमुपाध्यायं पितरं मातरं गुरुम्।
निर्हृत्य तु व्रती प्रेतान्नव्रतेन वियुज्यते ॥९१॥

(९१) आचार्य, उपाध्याय, माता, पिता, गुरु इन सबों
दाह आदि करने से ब्रह्मचारी अपने व्रत से भ्रष्ट नहीं
ता है।

दक्षिणेन मृतं शूद्रं पुरद्वारेण निर्हरेत्।
पश्चिमोत्तरपूर्वैस्तु यथायोगं द्विजन्मनः ॥९२॥

(९२) नगर के १-पश्चिम, २-उत्तर, ३-पूर्व, ४-दक्खिन
र से यथाक्रम (प्रथम, द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ द्वार से) ब्राह्मण
त्रिय, वैश्य शूद्र का शव ले जाना चाहिये।

न राजमखदोषोऽस्ति व्रतीनां न च सत्रिणाम्।
ऐन्द्रं स्थानमुपासीना ब्रह्मभूता हि ते सदा ॥९३॥

(९३) राजा वा ब्रह्मचारी, चान्द्रायणादि व्रतकर्त्ता,
ज्ञकर्त्ता इन तीनों को सूतक नहीं लगता क्योंकि राजा तो
ाजा इन्द्र के स्थान पर बैठता है और ब्रह्मचारी, व्रतकर्त्ता यह
ब सदैव ब्रह्मस्वरूप हैं।

राज्ञो महात्मिके स्थाने सद्यः शौचं विधीयते।
प्रजानां परिरक्षार्थमासनं चात्र कारणम् ॥९४॥

(९४) राजा न्याय करने में पवित्र रहता है अन्य कार्य
 नहीं, क्योंकि प्रजा की रक्षा, बिना सिंहासन पर बैठने के
ही होती।

डिम्बाहवहतानां च विद्युता पार्थिवेन च ।
गोब्राह्मणस्य चैवार्थे यस्यचेच्छति पार्थिवः ॥ ९५ ॥

(९५) राजा बिना जो युद्ध (लड़ाई) हुआ और उसमें जो मनुष्य मर गये, विद्युत्पात द्वारा जिन मनुष्यों की मृत्यु हो गई, राजाज्ञा से मारने योग्य मनुष्य मारे गये, तथा ब्राह्मण या गऊ के हेतु जो मनुष्य मर गये, ऐसे मरण में सूतक नहीं होता, तथा निज कार्य के हेतु राजा जिसे सूतक लगाना नहीं चाहता उसे भी सूतक नहीं लगता ।

सोमाग्न्यर्कानिलेन्द्राणां वित्ताप्पत्योर्यमस्य च ।
अष्टानां लोकपालानां वपुर्धारयते नृपः ॥ ९६ ॥

(९६) चन्द्रमा, अग्नि, सूर्य, वायु, इन्द्र, कुवेर, वरुण, यम इन सबके वर्णों को राजा धारण करता है ।

लोकेशाधिष्ठितो राजा नास्य शौचं विधीयते ।
शौचाशौचं हि मर्त्यानां लोकेशप्रभवाप्ययम् ॥ ९७ ॥

(९७) क्योंकि राजा सारे लोक का रक्षक है और उसका सबसे सम्बन्ध है अतएव राजा को किसी प्रकार का सूतक नहीं लगता और वह स्वयं मनुष्यों की अपवित्रता हरण कर सकता है ।

उद्यतैराहवे शस्त्रैः क्षात्रधर्महतस्य च ।
सद्यः संतिष्ठते यज्ञस्तथा शौचमिति स्थितिः ॥९८॥

(९८) जो वीर क्षत्रिय युद्ध में शस्त्र द्वारा वीरगति को प्राप्त हो जाते हैं वह अपने धर्मानुसार कर्म करने के कारण पवित्रता के यज्ञ को सम्पूर्ण कर चुके ।

विप्रः शुद्ध्यत्यपः स्पृष्ट्वा क्षत्रियो वाहनायुधम् ।
वैश्यः प्रतोदं रश्मीन्वा यष्टिं शूद्रः कृतक्रियः ॥९९॥

(९९) सारी क्रिया करके सूतक के अन्त में ब्राह्मण जल, क्षत्रिय यान (सवारी) व शस्त्र, वैश्य पैना तथा शूद्र लाठी को स्पर्श कर पवित्र हो जाते हैं।

एतद्वोऽभिहितं शौचं सपिण्डेषु द्विजोत्तमाः ।
असपिण्डेषु सर्वेषु प्रेतशुद्धिं निबोधत ॥१००॥

(१००) भृगुजी कहते हैं कि हे ऋषि लोगो ! आप से सपिण्डों का सूतक हमने कहा। अब उन लोगों की प्रेतशुद्धि को कहते हैं जो सपिण्डी में नहीं हैं।

असपिण्डं द्विजं प्रेतं विप्रो निर्हृत्य बन्धुवत् ।
विशुद्ध्यन्ति त्रिरात्रेण मातुराप्तांश्च बान्धवान् ॥१०१॥

(१०१) जो ब्राह्मण सपिण्डी में नहीं है उसको भ्रातावत् श्मशान तक ले जाकर तीन रात्रि में पवित्र हो जाता है तथा मामा, मौसी आदि का भी श्मशान तक ले जाकर तीन रात्रि में पवित्र होता है।

यद्यन्नमत्ति तेषां तु दशाहेनैव शुद्ध्यति ।
अनदन्नन्नमह्नैव न चेत्तस्मिन्गृहे वसेत् ॥१०२

(१०२) जब मृतक के सपिण्ड के अन्न को भोजन करे तो दश दिन में शुद्ध होता है। यदि अन्न को भोजन न करे और न उसके गृह में वसे तो एक दिन में शुद्ध हो जाता है।

अनुगम्येच्छया प्रेतं ज्ञातिमज्ञातिमेव च ।
स्नात्वा सचैलः स्पृष्ट्वाग्निं घृतं प्राश्य विशुद्ध्यति १०३

(१११) सोने आदि के पात्र, रत्नपात्र, सब पात्र (बर्तन) भस्म (राख), मिट्टी, जल से पवित्र जाते हैं, इस बात को मनु आदि ऋषियों ने कहा है।

निर्लेपं काञ्चनं भाण्डमद्भिरेव विशुद्ध्यति ।
अब्जमश्ममयं चैव राजतं चानुपस्कृतम् ॥११२॥

(११२) जिस सुवर्ण (सोने), शङ्ख, मोती वा पत्थर के पात्र में जूठनादि नहीं लगी तथा जिस रूपे (चाँदी) के पात्र में रेखा (लकीरें) नहीं हैं यह केवल जल ही द्वारा शुद्ध हो जाते हैं।

अपामग्नेश्च संयोगाद्धैमं रौप्यं च निर्बभौ ।
तस्मात्तयोः स्वयोन्यैव निर्णेको गुणवत्तरः ॥११३॥

(११३) अग्नि जल के संयोग से स्वर्ण तथा रूपा (चांदी) उत्पन्न होता है अतएव अपने मूल तत्त्व द्वारा दोनों की शुद्धता अत्युत्तम है।

ताम्रायः कांस्यरैत्यानां त्रपुणः सीसकस्य च ।
शौचं यथार्हं कर्तव्यं क्षाराम्लोदकवारिभिः॥११४॥

(११४) ताम्र, (तावा), लोहा, कांस्य (कांसा), पीतल इन सब की पवित्रता भस्म, खटाई तथा जल से यथाविधि करनी चाहिये।

द्रवाणां चैव सर्वेषां शुद्धिराप्लवनं स्मृतम् ।
प्रोक्षणं संहतानां च दारवाणां च तक्षणम् ॥११५॥

(११५) जो द्रव (पदार्थ) यथा तेल घी आदि हैं उनको वस्त्र आदि से छान लेवे तथा जमे हुए पदार्थों को दो कुशा लेकर उन पदार्थों में चलाने से पवित्र हो जाते हैं। यदि

शय्या (चारपाई) आदि पर जूठन गिर पड़ी हो तो वह जल के छींटे देने से पवित्र हो जाती है। काष्ट (काठ) आदि का पात्र जब जूठनादि से अधिक लसा हो तो वह छीलने से पवित्र होता है।

मार्जनं यज्ञपात्राणां पाणिना यज्ञकर्मणि ।
चमसानां ग्रहाणां च शुद्धिः प्रक्षालनेन तु ॥११६॥

(११६) यज्ञ पात्रों की शुद्धता हाथ से करनी चाहिये। यज्ञकर्म में चमस (चमचा) तथा सण्डासी चिमटा की पवित्रता धोने से होती है।

चरूणां स्रुक्स्रुवाणां च शुद्धिरुष्णेन वारिणा ।
स्फ्यशूर्पशकटानां च मुशलोलूखलस्य च ॥११७॥

(११७) + चरु, स्रुग, स्रुवा, सूप, गाली, मूसल, ओखली, इन सब की शुद्धता उष्ण (गरम) जल से होती है।

अद्भिस्तु प्रोक्षणं शौचं बहूनां धान्यवाससाम् ।
प्रक्षालनेन त्वल्पानामद्भिः शौचं विधीयते ॥११८॥

(११८) यदि वस्त्रों का बहुत बड़ा ढेर होवे तो वह जल के छींटे देने से पवित्र हो जाता है। यदि थोड़ा होवे तो जल से धोने से पवित्र हो जाता है।

चैलवच्चर्मणां शुद्धिर्वैदलानां तथैव च ।
शाकमूलफलानां च धान्यवच्छुद्धिरिष्यते ॥११९॥

(११९) जो पशु स्पर्श योग्य नहीं हैं उनके चमड़े का (बर्तन) और बांस का बर्तन इन दोनों की पवित्रता वस्त्र

+ लिखे सब यज्ञ पात्र हैं।

(१११) सोने आदि के पात्र, रत्नपात्र, पत्थर-पात्र यह सब पात्र (वर्तन) भस्म (राख), मिट्टी, जल से पवित्र हो जाते हैं, इस बात को मनु आदि ऋषियों ने कहा है।

निर्लेपं काञ्चनं भाण्डमद्भिरेव विशुद्ध्यति ।
अब्जमश्ममयं चैव राजतं चानुपस्कृतम् ॥११२॥

(११२) जिस सुवर्ण (सोने), शङ्ख, मोती वा पत्थर के पात्र में जूठनादि नहीं लगी तथा जिस रूपे (चाँदी) के पात्र में रेखा (लकीरें) नहीं हैं यह केवल जल ही द्वारा शुद्ध हो जाते हैं।

अपामग्नेश्च संयोगाद्धैमं रौप्यं च निर्बभौ ।
तस्मात्तयोः स्वयोन्यैव निर्णेको गुणवत्तरः ॥११३॥

(११३) अग्नि जल के संयोग से स्वर्ण तथा रूपा (चांदी) उत्पन्न होता है अतएव अपने मूल तत्त्व द्वारा दोनों की शुद्धता अत्युत्तम है।

ताम्रायः कांस्यरैत्यानां त्रपुणः सीसकस्य च ।
शौचं यथार्हं कर्तव्यं क्षाराम्लोदकवारिभिः॥११४॥

(११४) ताम्र, (तावा), लोहा, कांस्य (कांसा), पीतल इन सब की पवित्रता भस्म, खटाई तथा जल से यथाविधि करनी चाहिये।

द्रवाणां चैव सर्वेषां शुद्धिराप्लवनं स्मृतम् ।
प्रोक्षणं संहतानां च दारवाणां च तक्षणम् ॥११५॥

(११५) जो द्रव (पदार्थ) यथा तेल घी आदि है उनको वस्त्र आदि से छान लेवे तथा जमे हुए पदार्थों को दो कुश लेकर उन पदार्थों में चलाने से पवित्र हो जाते हैं। यदि

शय्या (चारपाई) आदि पर जूठन गिर पड़ी हो तो वह जल के छींटे देने से पवित्र हो जाती है। काष्ठ (काठ) आदि का पात्र जब जूठनादि से अधिक लसा हो तो वह छीलने से पवित्र होता है।

मार्जनं यज्ञपात्राणां पाणिना यज्ञकर्मणि ।
चमसानां ग्रहाणां च शुद्धिः प्रक्षालनेन तु ॥११६॥

(११६) यज्ञ-पात्रों की शुद्धता हाथ से करनी चाहिये। यज्ञकर्म में चमस (चमचा) तथा सण्डासी चिमटों की पवित्रता धोने से होती है।

चरूणां स्रु क्स्रु च वाणां शुद्धिरुष्णेन वारिणा ।
स्फ्यशूर्पशकटानां च मुशलोलूखलस्य च ॥११७॥

(११७) + चरु, स्रु ग, स्रु वा, सूप, गाली, मूसल, ओखली, इन सब की शुद्धता उष्ण (गरम) जल से होती है।

अद्भिस्तु प्रोक्षणं शौचं बहूनां धान्यवाससम् ।
प्रक्षालनेन त्वल्पानामद्भिः शौचं विधीयते ॥११८॥

(११८) यदि वस्त्रों का बहुत बड़ा ढेर होवे तो वह जल के छींटे देने से पवित्र हो जाता है । यदि थोड़ा होवे तो जल से धोने से पवित्र हो जाता है।

चैलवच्चर्मणां शुद्धिर्वैदलानां तथैव च ।
शाकमूलफलानां च धान्यवच्छुद्धिरिष्यते ॥११९॥

(११९) जो पशु स्पर्श योग्य नहीं हैं उनके चमड़े का पात्र (बर्तन) और मांस का बर्तन इन दोनों की पवित्रता वस्त्र

+ इस श्लोक में लिखे सब यज्ञ पात्र हैं।

कही हैं-प्रथम विना देखी हुई वस्तु, दूसरे जल से धोई हुई वस्तु, तीसरे जो जल से श्रेष्ठ है।

आपः शुद्धा भूमिगता वैतृष्ण्यं यासु गोर्भवेत् ।
अव्याप्ताश्चेदमेध्येन गन्धवर्णरसान्विताः ॥१२८॥

(१२८) जो जल एक गऊ की प्यास बुझाने योग्य हो, अपवित्र वस्तु से मिश्रत न हो, गन्ध व रंग में उत्तम हो, तथा भूमि पर स्थित हो वह जल पवित्र है।

नित्यं शुद्धः कारुहस्तः पण्ये यच्चप्रसारितम् ।
ब्रह्मचारिगतं भैक्ष्यं नित्यं मेध्यमिति स्थितिः ॥१२९॥

(१२९) कारीगर का हाथ, पंसारी की दूकान की वस्तु, तथा ब्रह्मचारी की भिक्षा सदैव पवित्र है। यह शास्त्र की मर्यादा है।

नित्यमास्यं शुचिः स्त्रीणां शकुनिः फलपातने ।
प्रस्रवे च शुचिर्वत्सः श्वा मृगग्रहणे शुचिः ॥१३०॥

(१३०) सम्भोग समय स्त्री का मुँह, फल गिराने में पक्षी, दूध दुहते समय बछड़ा, हिरन के पकड़ने के समय कुत्ता,

श्वभिर्हतस्य यन्मांसं शुचिस्तन्मनुरब्रवीत् ।
क्रव्याद्भिश्च हतस्यान्यैश्चण्डालाद्यैश्च दस्युभिः॥१३१॥

(१३१) + कुत्ता, सिंह, बाज तथा आखेट खेलने वाले से जो मांस प्राप्त होता है उस मांसको मनुने पवित्र बतलाया है।

+यह श्लोक वाममार्गियों ने सम्मिलित किया है, क्योंकि आगामी श्लोकों में मनु ने स्वयम् इसकी व्याख्या की है।-

ऊर्ध्वंनाभेर्यानि खानि तानि मेध्यानि सर्वशः ।
यान्यधस्तान्यमेध्यानि देहाच्चैव मलाश्च्युताः ।१३२।

(१३२) नाभि के ऊपर का सारा शरीर पवित्र है और नाभि से नीचे का भाग अपवित्र है, और जो मल शरीर से पृथक् होता है वह भी अपवित्र है ।

मक्षिका विप्रुषश्छाया गौरश्वः सूर्यरश्मयः ।
रजो भूर्वायुरग्निश्च स्पर्शे मेध्यानि निर्दिशेत् ॥१३३॥

(१३३) मक्खी, जलबूँद, छाया, गऊ, घोड़ा, सूर्य-किरण, धूल, भूमि, वायु, अग्नि यह सब छूने से पवित्र हैं ।

विण्मूत्रोत्सर्गशुद्ध्यर्थं मृद्वार्यादेयमर्थवत् ।
दैहिकानां मलानां च शुद्धिषु द्वादशस्वपि ॥१३४॥

(१३४) मल मूत्र तथा अन्य बारहों अपवित्र वस्तुओं (जो शरीर से पृथक् होकर गिर जाती हैं) को छूकर जल मिट्टी द्वारा आवश्यकतानुसार धोने से पवित्र होता है।

वसा शुक्रमसृङ्मज्जा मूत्रविट्घ्राणकर्णविट् ।
श्लेष्माश्रु दूषिका स्वेदो द्वादशैते नृणां मलाः ।१३५।

(१३५) मनुष्य के शरीर में यह बारह मल (अर्थात् निरर्थक अपवित्र वस्तु) होते हैं । १—वसा (चर्बी), २—शुक्र (वीर्य), ३—रुधिर, ४—मज्जा, ५—मूत्र, ६—विष्ठा, ७—नाक थूक, ८—कान का मैल, ९—खखार, १०—आँसू, ११—कीचड़, १२—स्वेद, (पसीना) ।

एका लिंगे गुदे तिस्रस्तथैकत्र करे दश ।
उभयोः सप्त दातव्या मृदः शुद्धिमभीप्सता ।१३६।

और (इत्यादि) कराना चाहिये। उस शूद्र की पवित्रता वैश्य तुल्य है और ब्राह्मण की जूठन उसका भोजन है।

नोच्छिष्टं कुर्वते मुख्या विप्रुषोऽङ्गं पतन्ति याः।
न श्मश्रूणि गतान्यास्यं न दन्तान्तरधिष्ठितम् ॥१४१॥

(१४१) थूक की बूँदें शरीर के किसी भाग में गिर जावें तथा मोछ का बाल मुँह में आता रहे और दाँत में जो वस्तु लगी हो वह सब अपवित्र नहीं हैं।

स्पृशन्ति बिन्दवः पादौ य आचामयतः परान्।
भौमिकैस्ते समाज्ञेया न तैराप्रयतो भवेत् ॥१४२॥

(१३६) मिट्टी द्वारा पवित्रता का इच्छुक मनुष्य मिट्टी को एक वार मूत्र स्थान (लिंगेन्द्रिय) पर और पाँच वार मल-द्वार पर, दश वार वायें हाथ में सात वार दाहिने हाथ में लगावे।

एतच्छौचं गृहस्थानां द्विगुणं ब्रह्मचारिणाम् ।
त्रिगुणं स्याद्वनस्थानां यतीनां तु चतुर्गुणम् ॥१३७॥

(१३७) यह शौच अर्थात् पवित्रता गृहस्थ मनुष्यों के लिये हैं, ब्रह्मचारियों को इससे द्विगुण (दूनी), वानप्रस्थी अर्थात् वन में तप करने वालों को इसमें त्रिगुण (तिगुनी) संन्यासियों को इससे चतुर्गुण (चौगुनी) करना चाहिए।

कृत्वा मूत्रं पुरीषं वा खान्याचान्त उपस्पृशेत ।
वेदमध्येष्यमाणश्च अन्नमश्नंश्च सर्वदा ॥ १३८ ॥

(१३८) विष्ठा व मूत्र त्याग करके हाथ पांव धोकर आचमन करके इन्द्रियों को छुये और भोजन करने के समय तथा वेदपाठ करने के समय भी आचमन करके इन्द्रियों को स्पर्श करे।

त्रिराचामेदपः पूर्वं द्विः प्रमृज्यात्ततो मुखम् ।
शारीरं शौचमिच्छन्ति स्त्रीशूद्रस्तु सकृत्सकृत् ॥१३९॥

(१३९) शारीरिक शौच (शरीर की पवित्रता) के हेतु प्रथम तीन वार आचमन करे, पश्चात् दो वार मुँह धोवे, तथा स्त्री व शूद्र केवल एक ही वार मुँह धोवे तथा आचमन करे।

शूद्राणां मासिकं कार्यं वपनं न्यायवर्तिनाम् ।
वैश्यवच्छौचकल्पश्च द्विजोच्छिष्टं च भोजनम् ॥१४०॥

(१४०) न्याय से रहने वाले शूद्र का मांस में एक वार

क्षौर (हजामत) कराना चाहिये। उस शूद्र की पवित्रता वैश्य तुल्य है और ब्राह्मण की जूठन उसका भोजन है।

नोच्छिष्टं कुर्वते मुख्या विप्रुषोऽङ्गे पतन्ति याः ।
न श्मश्रूणि गतान्यास्यं न दन्तान्तरधिष्ठितम् ॥१४१॥

(१४१) थूक की बूँदें शरीर के किसी भाग में गिर जावें तथा मोछ का बाल मुँह में जाता रहे और दाँत में जो वस्तु लगी हो यह सब अपवित्र नहीं हैं।

स्पृशन्ति बिन्दवः पादौ य आचामयतः परान् ।
भौमिकैस्ते समाज्ञेया न तैराप्रयतो भवेत् ॥१४२॥

(१४२) कोई मनुष्य किसी को आचमन कराता हो और आचमनकर्ता के मुँह से जल की बूँद जमीन पर गिर कर आचमन कराने वाले के पाँव पर पड़े तो यह बूँद भूमि के जल के तुल्य है, इससे अपवित्रता नहीं होती।

उच्छिष्टेन तु संस्पृष्टो द्रव्यहस्तः कथंचन ।
अनिधायैव तद्द्रव्यमाचान्तः शुचितामियात् ।१४३।

(१४३) यदि हाथ में कोई वस्तु ग्रहण किये हुये किसी झूठे पुरुष से छू जावे तो यह वस्तु हाथ में ग्रहण किये ही आचमन ग्रहण करने से शुद्ध हो जाता है।

वान्तो विरिक्तः स्नात्वा तु घृतप्राशनमाचरेत् ।
आचामेदेव भुक्त्वान्नं स्नानं मैथुनिनःस्मृतम् ।१४४।

(१४४) वमन करने वाला तथा विसूचिका वाला (दस्त का रोगी) स्नान करने के पश्चात् घी खावे, और अन्नादि भोजन करके आचमन करे तथा स्त्री सम्भोग करके स्नान करे।

(१३६) मिट्टी द्वारा पवित्रता का इच्छुक मनुष्य मिट्टी को एक बार मूत्र स्थान (लिंगेन्द्रिय) पर और पाँच बार मल-द्वार पर, दश बार बायें हाथ में सात बार दाहिने हाथ में लगावे।

एतच्छौचं गृहस्थानां द्विगुणं ब्रह्मचारिणाम्।
त्रिगुणं स्याद्वनस्थानां यतीनां तु चतुर्गुणम् ॥१३७॥

(१३७) यह शौच अर्थात् पवित्रता गृहस्थ मनुष्यों के लिये हैं, ब्रह्मचारियों को इससे द्विगुण (दूनी), वानप्रस्थी अर्थात् वन में तप करने वालों को इसमें त्रिगुण (तिगुनी) संन्यासियों को इससे चतुर्गुण (चौगुनी) करना चाहिए।

कृत्वा मूत्रं पुरीषं वा खान्याचान्त उपस्पृशेत्।
वेदमध्येष्यमाणश्च अन्नमश्नंश्च सर्वदा ॥ १३८ ॥

(१३८) विष्टा व मूत्र त्याग करके हाथ पांव धोकर आचमन करके इन्द्रियों को छुये और भोजन करने के समय तथा वेदपाठ करने के समय भी आचमन करके इन्द्रियों को स्पर्श करें।

त्रिराचामेदपः पूर्वं द्विः प्रमृज्यात्ततो मुखम्।
शारीरं शौचमिच्छन्ति स्त्रीशूद्रस्तु सकृत्सकृत् ॥१३९॥

(१३९) शारीरिक शौच (शरीर की पवित्रता) के हेतु प्रथम तीन बार आचमन करे, पश्चात् दो बार मुँह धोवे, तथा स्त्री व शूद्र केवल एक ही बार मुँह धोवे तथा आचमन करें।

शूद्राणां मासिकं कार्यं वपनं न्यायवर्तिनाम्।
वैश्यवच्छौचकल्पश्च द्विजोच्छिष्टं च भोजनम् ॥१४०॥

(१४०) न्याय से रहने वाले शूद्र का मास में एक बार

चौर (हजामत) कराना चाहिये। उस शूद्र की पवित्रता वैश्य तुल्य है और ब्राह्मण की जूठन उसका भोजन है।

नोच्छिष्टं कुर्वते मुख्या विप्रुषोऽङ्गं पतन्ति याः।
न श्मश्रूणि गतान्यास्यं न दन्तान्तरधिष्ठितम् ॥१४१॥

(१४१) थूक की बूँदें शरीर के किसी भाग में गिर जावे तथा मोछ का बाल मुँह में जाता रहे और दाँत में जो वस्तु लगी हो वह सब अपवित्र नहीं हैं।

स्पृशन्ति बिन्दवः पादौ य आचामयतः परान्।
भौमिकैस्ते समाज्ञेया न तैराप्रयतो भवेत् ॥१४२॥

(१४२) कोई मनुष्य किसी को आचमन कराता हो और आचमनकर्ता के मुँह से जल की बूँद जमीन पर गिर कर आचमन कराने वाले के पाँव पर पड़े तो वह बूँद भूमि के जल के तुल्य है, उससे अपवित्रता नहीं होती।

उच्छिष्टेन तु संस्पृष्टो द्रव्यहस्तः कथंचन।
अनिधायैव तद्द्रव्यमाचान्तः शुचितामियात् ।१४३।

(१४३) यदि हाथ में कोई वस्तु ग्रहण किये हुये किसी जूठे पुरुष से छू जावे तो वह वस्तु हाथ में ग्रहण किये ही आचमन ग्रहण करने से शुद्ध हो जाता है।

वान्तो विरिक्तः स्नात्वा तु घृतप्राशनमाचरेत्।
आचामेदेव भुक्त्वान्नं स्नानं मैथुनिनःस्मृतम् ।१४४।

(१४४) वमन करने वाला तथा विसूचिका वाला (दस्त रोगी) स्नान करने के पश्चात् घी खावे, और अन्नादि भोजन करके आचमन करे तथा स्त्री सम्भोग करके स्नान करे।

अनृतावृतुकाले च मन्त्रसंस्कारकृत्पतिः।
सुखस्य नित्यं दातेह परलोके च योषितः ॥ १५३ ॥

(१५३) ऋतुकाल अथवा अन्य समय में मन्त्र संस्कार करने वाला पति इस लोक (संसार) व परलोक में स्त्रियों को सुख देता है।

विशीलः कामवृत्तो वा गुणैर्वा परिवर्जितः।
उपचर्यः स्त्रिया साध्व्या सततं देववत्पतिः ॥१५४॥

(१५४) यदि पति निष्ठुर होवे तथा दूसरी स्त्री से प्रीति रखता हो अथवा गुणहीन हो तो भी पतिव्रता स्त्री सदैव उसकी सेवा देवता की नाईं करती है।

नास्ति स्त्रीणां पृथग्यज्ञो न व्रतं नाप्युपोषणम्।
पतिं शुश्रूषते येन तेन स्वर्गे महीयते ॥ १५५ ॥[१]

(१५५) क्योंकि स्त्रियाँ विवाहोपरान्त पति का आधा अङ्ग (शरीर) हो जाती हैं अतएव स्त्रियों को पृथक, यज्ञ वा व्रत करना पाप है। केवल पति की सेवा शुश्रूषा ही करनी उचित है।

पाणिग्राहस्य साध्वी स्त्री जीवतो वा मृतस्य वा।
पतिलोकमभीप्सन्ती नाचरेत्किंचिदप्रियम् ॥ १५६ ॥

(१५६) पतिलोक में जाने की इच्छा रखने वाली पतिव्रता स्त्री पति के जीवित रहते व मृत्यु के उपरान्त अपने पति की इच्छा के विरुद्ध कोई कार्य न करे।

१—पतिव्रता शब्द पति+व्रता शब्दों से योगिक है। पति के अर्थ भर्ता तथा व्रत के अर्थ दृढ प्रतिज्ञा के हैं अतः जो स्त्री अपनी विवाह प्रतिज्ञा को दृढ नियम द्वारा निभाती है वह पतिव्रता कहलाती है।

काम तु चपयेद्देहं पुष्पमूलफलैः शुभैः ।
न तु नामापि गृह्णीयात्पत्यो प्रेते परस्य तु ॥१५७॥

(१५७) अपने पति की मृत्यु पश्चात् दूसरे पति का नाम तक भी न लेवे, उत्तम मूल, फल फूल, इच्छानुसार कम भोजन करके निर्दोष शरीर (कामेच्छा रहित) रह कर जीवन व्यतीत करे।

आसीतामरणात्क्षान्ता नियता ब्रह्मचारिणी ।
यो धर्म एकपत्नीनां काङ्क्षन्ती तमनुत्तमम् ॥१५८॥

(१५८) जिस स्त्री का एक ही पति है वह पतिव्रता धर्म की इच्छा करती हुई, अपने मरण पर्यन्त नियम से ब्रह्मचारिणी रह कर क्षीण शरीर से जीवन निर्वाह करे।

अनेकानि सहस्राणि कुमारब्रह्मचारिणाम् ।
दिवं गतानि विप्राणामकृत्वा कुलसंततिम् ॥ १५९ ॥

(१५९) यदि कहो कि पुत्र विना स्वर्ग प्राप्ति नहीं हो सकती अतएव दूसरे पति को वरण करना चाहिये, इसका उत्तर यह है कि कई सहस्र कुमार ब्रह्मचारी ब्राह्मण सन्तति विना स्वर्गारोहण कर गये। इस बात को समझ कर सन्तान के विना ही नियम से रहे।

मृते भर्तरि साध्वी स्त्री ब्रह्मचर्ये व्यवस्थिता ।
स्वर्गं गच्छत्यपुत्रापि यथा ते ब्रह्मचारिणः ॥ १६० ॥

(१६०) पति की मृत्यु के पश्चात् पतिव्रता स्त्री ब्रह्मचर्यावस्था में स्थित रहे तो सन्तान न होने पर भी स्वर्ग में जाती है, जैसे कुमार ब्रह्मचारी स्वर्ग को गये।

अपत्यलोभाद्या तु स्त्री भर्तारमतिवर्तते ।
सेह निन्दामवाप्नोति पतिलोकाञ्च हीयते ।१६१।

(१६१) जो स्त्री सन्तानोत्पत्ति की इच्छा से दूसरे पति से सम्भोग करती है वह ससार में निन्दा पाती है और परलोक में पतिलोक को नहीं प्राप्त करती है ।

यान्योत्पन्ना प्रजास्तीह न चाप्यन्यपरिग्रहे ।
न द्वितीयश्च साध्वीनां क्वचिद्भर्तोपदिश्यते ।१६२।

(१६२) दूसरे पति से जो सन्तान उत्पन्न होती है वह शास्त्रानुसार अपनी सन्तान नहीं कहलाती, क्योंकि पतिव्रता स्त्री को शास्त्र में दूसरा पति नहीं लिखा है ।

पतिं हित्वापकृष्टं स्वमुत्कृष्टं या निषेवते ।
निन्द्यैव सा भवेल्लोके परपूर्वेति चोच्यते ।१६३।

(१६३) जो स्त्री अपने अल्पगुणी पति को त्याग कर दूसरे अधिक गुणी पति को वरण (ग्रहण) करती है वह ससार में निन्दनीय होती है तथा दो पति वाली कहलाती है ।

व्यभिचारात्तु भर्तुः स्त्री लोके प्राप्नोति निन्द्यताम् ।
शृगालयोनिं प्राप्नोति पापरोगैश्च पीड्यते ।१६४।

(१६४) दूसरे पति सम्भोग करने से स्त्री, ससार में अपयश पाती है गीदड़ का जन्म पाती है तथा पाप रोगों से दुःखी होती है ।

नोट—स्त्री का दूसरे पति की इच्छा करना कामवृत्ति के कारण है अतएव वह स्त्री तथा वह पुरुष जो विषयों की इच्छा से दूसरा विवाह करते हैं गीदड़ की योनि को प्राप्त होते हैं ।

पतिं या नाभिचरति मनोवाग्देहसंयता।
सा भर्तृलोकमाप्नोति सद्भिः साध्वीति चोच्यते।१६५॥

(१६५) जो स्त्री दूसरे पति से सम्बन्ध (सम्भोग) नहीं करती तथा मन, वाणी व शरीर को अपने वश में रखती है वह परलोक में पतिलोक प्राप्त करती है तथा उत्तम पुरुष उस स्त्री को साध्वी कहते हैं।

अनेन नारीवृत्तेन मनोवाग्देहसंयता।
इहाग्र्यां कीर्तिमाप्नोति पतिलोकं परत्र च ॥१६६॥

(१६६) + इस प्रकार मन, वाणी, शरीर का सयत (वश में) करके इस लोक में अपार कीर्ति लाभ करती है और परलोक में पतिलोक को प्राप्त करती है।

एवंवृत्तां सवर्णां स्त्रीं द्विजातिः पूर्वमारिणीम्।
दाहयेदग्निहोत्रेण यज्ञपात्रैश्च धर्मवित् ॥ १६७ ॥

(१६७) धर्मज्ञाता ब्राह्मण क्षत्रिय, वैश्य ऐसी अपनी जाति की स्त्री की मृत्यु में उसका शवदाह अग्निहोत्र की अग्नि व यज्ञपात्रों से धर्मानुसार करें।

भार्यायै पूर्वमारिण्यै दत्वाग्नीनन्त्यकर्मणि।
पुनर्दारक्रियां कुर्यात्पुनराधानमेव च ॥ १६८ ॥

(१६८) तत्पश्चात् अन्त्येष्टी कर्म करके दूसरा विवाह करे तथा अग्नि को स्थापन करे।

+ यह श्लोक सर्वथा सम्मिलित किया हुआ है क्योंकि विवाह प्रकरण के मन्त्री द्वारा जो प्रतिज्ञा होती है उसके सर्वथा विरुद्ध है और अध्याय में सम्मलित है।

अनेन विधिना नित्यं पञ्चयज्ञान्न हापयेत् ।
द्वितीयमायुषो भागं कृतदारो गृहे वसेत् ॥ १६९ ॥

(१६९) इस विधि से सदैव पञ्चयज्ञ को करे, उनको कभी परित्याग न करें। तथा आयु के दूसरे भाग तक विवाह करके गृह में रहें।

मनुजी के धर्मशास्त्रभृगुजी की संहिता का पञ्चमोऽध्याय समाप्त हुआ।

षष्ठोऽध्यायः ।

—)※※(—

एवं गृहाश्रमे स्थित्वा विधिवत्स्नातको द्विजः ।
वने वसेत्तु नियतो यथावद्विजितेन्द्रियः ॥ १ ॥

(१) इस रीति से गृहस्थाश्रम को पूर्ण करके स्नातक द्विज सांसारिक चिन्ताओं को छोड़ जितेन्द्रिय होकर वानप्रस्थ आश्रम के निमित्त वन में वसकर जीवन व्यतीत करे।

गृहस्थस्तु यदा पश्येद्वलीपलितमात्मनः ।
अपत्यस्यैव-चापत्यं तदारण्यं समाश्रयेत् ॥ २ ॥

(२) गृहस्थ पुरुष अपने को वृद्धावस्था में देखे और पौत्र (पुत्र के पुत्र) को देखे तब वन में वास करे।

संत्यज्य ग्राम्यमाहारं सर्वं चैव परिच्छदम् ।
पुत्रेषु भार्यां निक्षिप्य वनं गच्छेत्सहैव वा ॥ ३ ॥

(३) गाँव के आहार और घर की सामग्री को त्याग करके तथा स्त्री को पुत्र को सौंप कर वन में जावे अथवा सपत्नीक वन को जावे।

अग्निहोत्रं समादाय गृह्यं चाग्निपरिच्छदम्।
ग्रामादरण्यं निःसृत्य निवसेन्नियतेन्द्रियः ॥ ४ ॥

(४) अग्निहोत्र को तथा सामिग्री सहित घर को अग्नि को लेकर और इन्द्रिय जित होकर गाँव का परित्याग कर वन में रहे। सामर्थ्य भर (अर्थात् जहाँ तक हो सके) किसी नगर में न जावे।

मुन्यन्नैर्विविधैर्मेध्यैः शाकमूलफलेन वा।
एतानेव महायज्ञान्निर्वपेद्विधिपूर्वकम् ॥ ५ ॥

(५) विविध प्रकार के मुनि अग्नि से, तथा पवित्र शाक, मूल, फल इनसे शास्त्रानुसार यथाविधि पंच महायज्ञों को करे।

वसीत चर्म चीरं वा सायं स्नायात्प्रगे तथा।
जटाश्च बिभृयान्नित्यं श्मश्रु लोमनखानि च ॥ ६ ॥

(६) चमड़ा व वस्त्र का टुकड़ा पहन कर सायं प्रातः स्नान करे, जटा, मोछ, बाल तथा नख बढ़ावे अर्थात् चौर न करावे।

यद्भक्ष्यं स्यात्ततो दद्याद्बलिं भिक्षां च शक्तितः।
अम्मूलफलभिक्षाभिरर्चयेदाश्रमागतान् ॥ ७ ॥

(७) जो वस्तु भोजन के लिये उपस्थित हो उसी से बलि वैश्य कर्म करे और उसी को ब्रह्मचारी आदि को भिक्षा देवे, तथा जो अतिथि घर पर आ जावे उसकी कन्द, मूल, जल, फल आदि से पूजा करे।

नोट–श्राद्ध में जहां पितरों को बुलाना लिखा है वहीं इन्हीं पितरों से तात्पर्य है जो इस रीति से वानप्रस्थ तथा सन्यास में उपस्थित होते हैं।

स्वाध्याये नित्ययुक्तः स्याद्दान्तो मैत्रः समाहितः ।
दाता नित्यं मनोदाता सर्वभूतानुकम्पकः ॥ ८ ॥

(८) नित्य वेदपाठ कर जप को स्थिर रक्खे, सबका मित्र होकर रहे, शीत, घाम, क्रोध, आदि को सहन करे, किसी से कुछ न लेवे, सब भूतों (जीवों) पर दया रक्खे।

वैतानिकं च जुहुयादग्निहोत्रं यथाविधि ।
दशमस्कन्दयन्पर्व पौर्णमासं च योगतः ॥ ९ ॥

(९) शास्त्रोक्त विधि से अग्निहोत्र करे। दर्शन, पौर्णमास इन नियमित यज्ञों को भी करता रहे।

ऋक्षेष्ट्याग्रयणं चैव चातुर्मास्यानि चाहरेत् ।
तुरायणं च क्रमशो दाक्षस्यायनमेव च ॥ १० ॥

(१०) नक्षत्र श्रवण, चातुर्मास उत्तरायण दक्षिणायन कर्मों को करे।

वासन्तशारदैर्मेध्यैर्मुन्यन्नैः स्वयमाहृतैः ।
पुरोडाशांश्चरूंश्चैव विधिवन्निर्वपेत्पृथक् ॥ ११ ॥

(११) वसन्त तथा शरद ऋतु में जो भोजन योग्य पवित्र अन्न (मुन्यन्न) उत्पन्न होता है उसे स्वयं लाकर शास्त्रोक्त विधि द्वारा पृथक् पृथक् पुरोडाश व चरु देवताओं को यज्ञसिद्धि होने के निमित्त देवे।

देवताभ्यस्तु तद्धुत्वा वन्यं मेध्यतरं हविः ।
शेषमात्मनि युञ्जीत लवणं च स्वयं कृतम् ॥ १२ ॥

(१२) अति शुद्ध तथा उत्तम हवन योग्य पदार्थ को हवन द्वारा अग्नि वायु आदि देवताओं को देवे। हवन के

पश्चात् जो शेष रहे उसे स्वयम् भोजन करे तथा अपने बनाये हुए ॐ लवण पदार्थों को भी खावे।

स्थलजौदकशाकानि पुष्पमूलफलानि च।
मेध्यवृक्षोद्भवान्यद्यात्स्नेहांश्च फलसम्भवान् ॥१३॥

(१३) पृथ्वी, जल व पवित्र वृक्ष से जो शाक, मूल, फूल, फल उत्पन्न हुये हैं। तथा फल से उत्पन्न तेल को भी भोजन करे।

वर्जयेन्मधु मांसं च भौमानि कवकानि च।
भूस्तृणं शिग्रुकं चैव श्लेष्मातकफलानि च ॥१४॥

(१४) ॐ शराब, मांस, व पृथ्वी के छत्राकार व भूतृण जो मलावा देश में प्रसिद्ध है व शक्कर शाक जो वाह्लीक देश में प्रसिद्ध है व लहेशा इन सब का भोजन करना परित्याग करे।

त्यजेदाश्वयुजे मासि मुन्यन्नं पूर्वसञ्चितम्।
जीर्णानि चैव वासांसि शाकमूलफलानि च ॥१५॥

(१५) मुनियों का अन्न जो सूचित किया है, जीर्ण वस्त्र (पुराने वसन) शाक मूल फल इन सबको आश्विनमासमेंत्यागदे।

न फालकृष्टमश्नीयादुत्सृष्टमपि केनचित्।
न ग्रामजातान्यार्तोऽपि मूलानि च फलानि च ॥१६॥

(१६) जो वस्तु हल द्वारा उत्पन्न हुई तथा जो क्षेत्र (खेत) के समीप हो चाहे उसे क्षेत्र स्वामी ने त्याग दिया हो

ॐ लवणान्नि पृथक् करने से यह तात्पर्य है कि हवन में लवण मिश्रत पदार्थ न डाले जावें।

ॐ १४ वें श्लोक में मद्य मांस का निषेध है। अतएव जहाँ मांस भक्षण लिखा है यह सब सम्मिलित किया हुआ है।

परन्तु उसे भोजन न करे तथा दुःखी होने पर भी हल चलाये विना गाँव के भीतर जो फल मूल उत्पन्न हुए हों उनका भोजन न करे।

अग्निपक्वाशनो वा स्यात्कालपक्वभुगेव वा।
अश्मकुट्टो भवेद्वापि दन्तोलूखलिकोऽपि वा ॥१७॥

(१७) जो वस्तु अग्नि द्वारा अथवा समय पाकर परिपक्व (पकी) हुई हो उसको भोजन न करे। पत्थर से कूट कर अथवा दाँतों की ओखली बनाकर भोजन करे।

सद्यःप्रक्षालको वा स्यान्माससंचयिकोऽपि।
षण्मासनिचयो वा स्यात्समानिचय एव वा ॥१८॥

(१८) एक दिन के भोजन योग्य वस्तु को रखे अथवा एक मास व छः मास व एक वर्ष के भोजन योग्य पदार्थ (वस्तु) को रखे।

नक्तं चान्नं समश्नीयाद्दिवा वा हृत्य शक्तितः।
चतुर्थकालिको वा स्यात्स्याद्वाप्यष्टमकालिकः ॥१९॥

(१९) अपने बलानुसार दिन में लाकर रात्रि में भोजन करे, व एक दिवस उपवास करे, दूसरे दिवस एक वार भोजन करे अथवा तीन दिवस उपवास करे चौथे दिवस एक वार ही भोजन करे।

चान्द्रायणविधानैर्वा शुक्लकृष्णे च वर्तयेत्।
पक्षान्तयोर्वाप्यश्नीयाद्यवागूं क्वथितां सकृत् ॥२०॥

(२०) चन्द्रायण व्रत को करे अथवा अमावस्या व पौर्णमासी के दिवस वार जौ की लपसी खावे।

पुष्पमूलफलैर्वापि केवलैर्वर्तयेत्सदा ।
कालपक्वैः स्वयंशीर्णैर्वैखानस मते स्थितः ।२१।

(२१) जो फल फूल, कन्द मूल अर्थात् शकरकदी आदि स्वयं काल पाकर पक गये हों उनको खाकर समय व्यतीत करे तथा यथासम्भव इन्द्रियों को विषयों से पृथक् रक्खे।

भूमौ विपरिवर्तेत तिष्ठेद्वा प्रपदैर्दिनम् ।
स्थानासनाभ्यां विहरेत्सवनेषूपयन्नपः । २२ ।

(२२) वानप्रस्थ आश्रम में रहकर केवल भूमि ही पर लोटा करे व पाँव के अगले भाग के बल से सारे दिन खड़ा रहे तथा स्नान व आसन में विहार करे, तीनों काल अर्थात् प्रातः दोपहर, सायंकाल को स्नान करे।

ग्रीष्मे पञ्चतपास्तु स्याद्वर्षास्वभ्रावकाशिकः ।
आर्द्रवासास्तु हेमन्ते क्रमशो वर्धयंस्तपः ।२३।

(२३) शनैः शनैः (धीरे धीरे) * तप को बढ़ाता हुआ ग्रीष्म (गर्मी) में पञ्चाग्नि तापे, वर्षा में बिना छत वाले घर में रहे अर्थात् खुले मैदान में रहे, हेमन्त (जाड़े) में गीला कपड़ा पहने रहे।

उपस्पृशंस्त्रिषवणं पितॄन्देवांश्च तर्पयेत् ।
तपश्चरंश्चोग्रतरं शोषयेद्देहमात्मनः । २४ ।

(२४) तीनों काल में स्नान करने के पश्चात् देवता तथा

---

* तप करना दुःख के हेतु नहीं किन्तु सहनशीलता उत्पन्न करने के अर्थ वानप्रस्थ को आवश्यक है क्योंकि उसे भविष्य में संसार में विजय प्राप्त करनी है।

पितरों का तर्पण करे । उग्र तप को करता हुआ अपने शरीर को सुखावे।

अग्नीनात्मनि वैतानान्समारोप्य यथाविधि ।
अनग्निरनिकेतः स्यान्मुनिर्मूलफलाशनः ।२५।

(२५) यथाविधि अग्नि होत्र की अग्नि को अपने गृह में स्थित करे । तत्पश्चात् अग्नि तथा स्थान से पृथक् होकर मूल फल खाता हुआ शास्त्र को विचारे ।

अप्रयत्नः सुखार्थेषु ब्रह्मचारी धराशयः ।
शरणेष्वममश्चैव वृक्षमूलनिकेतनः ।२६।

(२६) सुख के लिये प्रयत्न न करे, ब्रह्मचारी होकर धरती पर सोवे वृक्ष मूल में वास करे तथा वासस्थान से प्रीति न करे ।

तापसेष्वेव विप्रेषु यात्रिकं भैक्षमाहरेत् ।
गृहमेधिषु चान्येषु द्विजेषु वनवासिषु ।२७।

(२७) तपस्वी ब्राह्मण से भिक्षा मांगे, अथवा जो वन वासी द्विज गृहस्थ हैं उनसे भी भिक्षा याचन करे (मांगे)।

ग्रामादाहृत्य चाश्नीयादष्टौ ग्रासान्वने वसन् ।
प्रतिगृह्य पुटेनैव पाणिना शकलेन वा ।२८।

(२८) अथवा ग्राम से भिक्षा याचन करके आठ ग्रास खावे, वन में वस कर दोनों हाथ व मिट्टी के पात्र के ठीकर (टुकड़े) में भिक्षा ग्रहण करे ।

एताश्चान्याश्च सेवेत दीक्षा विप्रो वने वसन् ।
विविधाश्चौप निषदीरात्म संसिद्धये श्रुतिः ।२९।

(२६) वन में वस कर इस दीक्षा का तथा अन्य दीक्षा भी सेवन करे और विविध × उपनिषदों में जो वेद की श्रुतियाँ हैं उनका आत्मा को भली प्रकार सिद्धि प्राप्त करने के लिये पढ़े तथा समझे।

ऋषिभिर्ब्राह्मणैश्चैव गृहस्थैरेव सेविताः।
विद्यातपोविवृद्ध्यर्थं शरीरस्य च शुद्धये। ३०।

(३०) शरीर-शुद्धि के लिये तथा तप बढ़ाने के लिये उस विद्या का सेवन करे जिस विद्या का सेवन ऋषि तथा गृहस्थ ब्राह्मणों ने किया है।

अपराजितां वास्थाय व्रजेद्दिशमजिह्मगः।
आनिपाताच्छरीरस्य युक्तो वार्यनिलाशनः। ३१।

(३१) × चाहे एक स्थान पर बैठकर समाधि द्वारा प्राकृत पदार्थों से पृथक्त्व प्राप्त करे अथवा किसी ओर को जल वायु खाता हुआ चलदे, जब तक कि शरीरका नाश न हो जावे

आसां महर्षिचर्याणां त्यक्त्वाऽन्यतमया तनुम्।
वीतशोकभयो विप्रो ब्रह्मलोके महीयते। ३२।

(३२) यह सब आचरण जो बड़े-बड़े ऋषियों ने कहे

× उपनिषदों से तात्पर्य गुप्तलीला अर्थात् परोक्ष पदार्थ जीवात्मा परमात्मा का ज्ञान कराने वाली पुस्तकें हैं जिनमें वेद मंत्रों के द्वारा ब्रह्मज्ञान की व्याख्या की गई है।

+ ३१ वें श्लोक में उनकी अवस्था वालों के अर्थ उपदेश हैं जिनको मुक्ति का साक्षात्कार हो गया है और अब किसी साधन की आवश्यकता नहीं है।

हैं उनमें से किसी आचरण द्वारा शरीर को परित्याग करके शोक तथा भय को छोड़ कर ब्रह्मलोक में पूजित होता है।

वनेषु च विहृत्यैवं तृतीयं भागमायुषः ।
चतुर्थमायुषो भागं त्यक्त्वा सङ्गान्परिव्रजेत् ।३३।

(३३) इस प्रकार आयु का तीसरा भाग वन में व्यतीत करके संग को त्याग कर आयु के चतुर्थ भाग में संन्यास को धारण करे।

आश्रमादाश्रमं गत्वा हुतहोमो जितेन्द्रियः ।
भिक्षावलिपरिश्रान्तः प्रव्रजन्प्रेत्य वर्धते । ३४ ।

(३४) जितेन्द्रिय हो यज्ञ को संपूर्ण कर यथाक्रम एक आश्रम के पश्चात् दूसरे आश्रम को ग्रहण कर भिक्षा तथा बलि-कर्म से श्रमित थका हुआ संन्यास धारण कर परलोक में ब्रह्म-पद को प्राप्त करता है।

ऋणानि त्रीण्यपाकृत्य मनोमोक्षे निवेशयेत् ।
अनपाकृत्य मोक्षंतु सेवमानो व्रजत्यधः । ३५ ।

(३५) तीनों ऋण जिन्हें देवऋण, पितृऋण तथा ऋषि-ऋण कहते हैं चुकाकर मन को मोक्ष में लगावे। इन तीनों ऋणों के चुकाये बिना जो मोक्ष का सेवन करता है वह नरक में जाता है।

अधीत्य विधिवद्वेदान्पुत्रांश्चोत्पाद्य धर्मतः ।
इष्ट्वा च शक्तितो यज्ञैर्मनो मोक्षे निवेशयेत् । ३६ ।

(३६) बुद्धि से वेद का अध्ययन करके, धर्म से पुत्रोत्पन्न करके अपनी शक्ति के अनुसार यज्ञ करता हुआ मोक्ष में मन की प्रवृत्ति करे अर्थात् चित्तवृत्ति लगावे।

अनधीत्य द्विजो वेदाननुत्पाद्य तथा सुतान् ।
अनिष्ट्वा चैव यज्ञैश्च मोक्षमिच्छन्व्रजत्यधः । ३७ ।

(३७) जो ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य वेदाध्ययन न करके धर्म द्वारा पुत्र उत्पन्न न करे तथा यज्ञ का अनुष्ठान न कर मोक्ष की इच्छा करता है वह नरक में जाता है, क्योंकि मनुष्य जन्म केवल वेदाध्ययन कर जीवात्मा की अज्ञानता को दूर करने के निमित्त है ।

प्राजापत्यां निरूप्येष्टिं सर्ववेदसदक्षिणाम् ।
आत्मन्यग्नीन्समारोप्य ब्राह्मणः प्रव्रजेद्गृहात् । ३८ ।

(३८) प्रजापत्य यज्ञ को करने पश्चात् सब को दक्षिणा देकर तथा अग्नि को अपनी आत्मा में रख ब्राह्मण अपने गृह को परित्याग करे अर्थात् संन्यास धारण करे ।

यो दत्त्वा सर्वभूतेभ्यः प्रव्रजत्यभयं गृहात् ।
तस्य तेजोमया लोका भवन्ति ब्रह्मवादिनः । ३९ ।

(३९) जो वेदाध्ययनी पुरुष सब भूतों (जीवों) को अभय प्रदान कर गृह त्याग करता है अर्थात् सन्यास धारण करता है वह ससार में निडर होकर धर्मोपदेश कर सकता है ।

यस्मादण्वपि भूतानां द्विजान्नोत्पद्यते भयम् ।
तस्य देहाद्विमुक्तस्य भयं नास्ति कुतश्चन । ४० ।

(४०) जिस शक्तिसम्पन्न (सामर्थ्यवान्) ब्राह्मण से धर्मात्मा होने के कारण सब भूत (जीव) निडर हों अर्थात् किसी जीव को भय न हो तथा वह सब से प्रेम करता हो उसको आगामी जन्म म कुछ भी भय नहीं रहता ।

अगारादभिनिष्क्रान्तः पवित्रोपचितो मुनिः ।
समुपोढेषु कामेषु निरपेक्षः परिव्रजेत् । ४१ ।

(४०) ससार त्यागी तथा स्नानादि से शुद्ध हो विचार करता हुआ और दूसरे के दिये हुए अन्नादि में अनिच्छुक हो सन्यास को धारण करे।

एक एव चरेन्नित्यं सिद्ध्यर्थमसहायवान् ।
सिद्धि मेकस्य संपश्यन्न जहाति न हीयते । ४२ ।

(४२) किसी की सहायता की इच्छा न करे, सदैव इकाकी (अकेला) रहे, जो सिद्धि के अर्थ एक ही की सिद्धि होती है इस बात को देखकर किसी को त्याग नहीं करता उनको भी कोई नहीं त्यागता।

अनग्निरनिकेतः स्याद्ग्राममन्नार्थमाश्रयेत् ।
पेक्षकोऽशकुसुको मुनिर्भावसमाहिः । ४३ ।

(४३) अग्निहोत्रादि सासारिक कर्म तथा घर की इच्छा को परित्याग कर बुद्धि को स्थिर रख कर मुनिवृत्ति में मन लगाये तथा गॉव से भिक्षा मॉग कर निर्वाह करे। ब्रह्म में चित्त-वृत्ति लगाये हुए अन्नर्थ गॉव का आश्रम ले।

कपालं वृक्षमूलानि कुचेलमऽसहायता ।
समता चैव सर्वस्मिन्नेतन्मुक्तस्य लक्षणम् । ४२ ।

(४४) मुक्त का लक्ष ण है कि भिक्षार्थ मिट्टी का पात्र रखे, वृक्ष की जड़ में निवास करे, ऐसे वस्त्र रखे जो किसी कार्य के योग्य न हो, किसी से सहायता की इच्छा न करे तथा सब जीवों को एक समान समझे।

नाभिनन्देत मरणं नाभिनन्देत जीवितम् ।
कालमेव प्रतीक्षेत निर्देशं भृतको यथा ॥४५॥

(४५) मृत्यु वा जीवन इन दोनों में से किसी की इच्छा न करे केवल समय का ही ध्यान रक्खे, जैसे सेवक अपने स्वामी की आज्ञा का ही ध्यान रखता है, क्योंकि जीवन व मृत्यु की इच्छा का राग द्वेष विना नहीं हो सकती।

दृष्टिपूतं न्यसेत्पादं वस्त्रपूतं जलं पिबेत् ।
सत्यपूतां वदेद्वाचं मनःपूतं समाचरेत् ॥४६॥

(४६) बाल तथा हड्डी से पृथक् रहने के हेतु भूमि पर देखकर पाँव रक्खे छोटे २ जीवों के रक्षार्थ छान कर जल पीवे, सत्य वचनों ही को बोले, मन को इच्छा से रहित रखकर प्रत्येक समय पवित्रात्मा रहे।

अतिवादांस्तितिक्षेत नावमन्येत कंचन ।
न चेमं देह माश्रित्य वैरं कुर्वीत केनचित् ॥४७॥

(४७) लोगों के अपशब्दों को सहन करे, किसी का अपमान न करे, न किसी से शत्रुता करे, तथा अपने चित्त में सांसारिक मनुष्यों को नाशवान जानकर किसी से प्रीति व वैर (शत्रुता) का ध्यान भी न करे।

क्रुध्यंतं न प्रतिक्रुध्येदाक्रुष्टः कुशलं वदेत् ।
सप्तद्वारावकीर्णां च न वाचमनृतां वदेत् ॥४८॥

(४८) यदि कोई सन्यासी पर क्रोध करे तो सन्यासी उस पर क्रोध न करे, और यदि सन्यासी से बुराई करे तो संन्यासी अपने उत्तम शब्दों द्वारा उसको प्रसन्न करे। पञ्च ज्ञानेन्द्रिय, व मन तथा बुद्धि इन सातों से जो वस्तु ग्रहण करे

गई हो उसके विषय में वाणी द्वारा कथन करें, शेष इन्द्रियों को सम्बन्धित वस्तु के विषय मे मूक (चुप) रहे, वरन् ब्रह्मवार्ता वार्तालाप करे।

अध्यात्मरतिरासीनो निरपेक्षो निरामिषः ।
आत्मनैव सहायेन सुखार्थी विचरेदिह ॥ ४६ ॥

(४६) आत्मा में प्रीति करता रहे, प्रत्येक वस्तु का अनिच्छुक रहे । मास भक्षण त्याग दे, केवल अपनी आत्मा ही को सहायक जान कर सुख के अर्थ इस लोक में विचारे ।

न चोत्पातनिमित्ताभ्यां न नक्षत्राङ्गविद्यया ।
नानुशासनवादाभ्यां भिक्षां लिप्सेत कर्हिचित् ॥५०॥

(५०) भूचाल आँख का फड़कना आदि, नक्षत्र तथा हस्तरेखा (हाथ की रेखा) इनका फल कहकर नीतिशास्त्र का उपदेश करके कभी भिक्षा ग्रहण की इच्छा न करे ।

न तापसैर्ब्राह्मणैर्वा वयोभिरपि वा श्वभिः ।
अकीर्णभिक्षुकैर्वान्यैरागार मुपसंव्रजेत् ॥ ५१ ॥

(५१) तपस्वी ब्राह्मण पक्षी, कुत्ता, भिक्षुक यह सब जिस घर में हों उस गृह को त्याग दे अर्थात् वहाँ से भिक्षायाचन न करे ।

क्लृप्तकेशनखश्मश्रुः पात्री दण्डी कुसुम्भवान् ।
विचरेन्नियतो नित्यं सर्वभूतान्यपीडयन् ॥ ५२ ॥

(५२) बाल (केश), नख, मोछ, को छोटा रखे, दण्ड, कमण्डलु तथा पात्र को पास रखे, किसी जीव को कष्ट व पीड़ा न देवे, सदैव अचिन्त्य (चिन्ता रहित) होकर विचरे ।

अतैजसानि पात्राणि तस्य स्युर्निर्व्रणानि च ।
तेषामद्भिः स्मृतं शौचं चमसानामिवाध्वरे ॥५३॥

(५३) जो पात्र काँसी वा पीतलादि के हैं उनको परित्याग कर तूँबा आदि को रक्खे जो अछिद्र हों और उनका जल व मिट्टी से पवित्र करे जैसे यज्ञ में चमस नाम पात्र को पवित्र करते हैं ।

अलाबुं दारुपात्रं च मृन्मयं वैदलं तथा ।
एतानि यतिपात्राणि मनुः स्वायंभुवोऽब्रवीत् ॥५४॥

(५४) लौकी, काठ, मिट्टी व बाँस का पात्र अपने पास रक्खे, सन्यासी के केवल इतने ही पात्र हैं जो उसके कार्यार्थ अत्यन्तावश्यकीय हैं और उन्हीं को अपने समीप रक्खे ऐसा मनुजी ने कहा है ।

एककालं चरेद्भैक्षं न प्रसज्जेत विस्तरे ।
भैक्षे प्रसक्तो हि यतिर्विषयेष्वपि सज्जति ॥५५॥

(५५) केवल एक काल (समय) ही भिक्षा याचन करे, अधिक भिक्षा ग्रहण करने से सन्यासी सांसारिक विषयों में लिप्त होकर अपने सन्यासनामी व्रत को तोड़ देता है ।

विधूमे सन्नमुसले व्यङ्गारे भुक्तवज्जने ।
वृत्ते शरावसंपाते भिक्षां नित्यं यतिश्चरेत् ॥५६॥

(५६) जिस समय गृहस्थ के घर में धुआँ न हो, मूसल का शब्द न हो, अग्नि भी प्रज्वलित न हो तथा सब मनुष्य भोजन से निवृत्त हो गये हों, जूठी पत्तलादि घर से बाहर फेंक दी गई हों तिस उस समय ही सन्यासी भिक्षा-याचन को जावे ।

दशा को पुण्य कर्म व पापकर्म अर्थात् धर्माधर्म का फल समझ कर ध्यान-पूर्वक विचार करे।

दूषितोऽपि चरेद्धर्मं यत्र तत्राश्रमे रतः।
समः सर्वेषु भूतेषु न लिंगं धर्मकारणम् ॥ ६६ ।

(६६) यदि किसी आश्रम में रहकर उसकी सासारिक विधि को कार्य में न लाता हो किन्तु सब जीवों से निज आत्मा तुल्य (समान) व्यवहार करे तो वह दूषित (बुरा) नहीं, क्योंकि सासारिक (१) दिखलावटी चिह्न धर्म का कारण नहीं।

फलं कतकवृक्षस्य यद्यप्यम्बुप्रसादकम्।
न नामग्रहणादेव तस्य वारि प्रसीदति ॥ ६७ ॥

(६७) निर्मली फल यद्यपि जल को स्वच्छ करता है परंतु उसके नाममात्र के लेने से जल स्वच्छ नहीं होता, जब उसको घिस कर पानी में डालेंगे तभी जल स्वच्छ होगा। इसी प्रकार केवल (२) वेष ही धारण कर लेना धर्म नहीं है, वरन् उस धर्म पर चलना धर्म कहलाता है।

संरक्षणार्थं जन्तूनां रात्रावहनि वा सदा।
शरीरस्यात्यये चैव समीक्ष्य वसुधां चरेत् ॥ ६८ ॥

(६८) जीवों के रक्षार्थ दिवस व रात्रि प्रत्येक समय भूमि को देखकर चले जिससे जीवहिंसा न हो, वरन् जीव के शरीर को भी कष्ट न हो।

---

१ व २-जो मनुष्य केवल वेषधारी व सभा में नाम लिखाने से अपने को धर्मात्मा मानते हैं वह इस पर ध्यान देवे कि महात्मा मनुजी केवल दिखलावटी चिह्नों को धर्म नहीं बतलाते

अह्नारात्र्या च याञ्जन्तून्हिनस्त्यज्ञानतो यतिः ।
तेषां स्नात्वा विशुद्ध्यर्थं प्राणायामान्षडाचरेत् ॥६९॥

(६९) सन्यासी अज्ञानता में जो जीवहिंसा करता है उस पाप से मुक्त होने के अर्थ स्नान करके छः प्राणायाम करने से शुद्ध हो जाता है।

प्राणायामा ब्राह्मणस्य त्रयोऽपि विधिवत्कृताः ।
व्याहृतिप्रणवैर्युक्ता विज्ञेयं परमं तपः ॥ ७० ॥

(७०) व्याहृत तथा प्रणव (ॐकार) करके विधिवत् तीन प्राणायाम भी करे तो उस ब्राह्मण का परम तप है।

दह्यन्ते ध्मायमानानां धातूनां हि यथा मलाः ।
तथेन्द्रियाणां दह्यन्ते दोषाः प्राणस्य निग्रहात् ॥७१॥

(७१) जिस प्रकार अग्नि के तपाने से सब धातुओं का मैल दूर हो जाता है उसी प्रकार प्राणायाम करने से इन्द्रियों के सब दोष दूर हो जाते हैं।

प्राणायामैर्दहेद्दोषान्धारणाभिश्च किल्बिषम् ।
प्रत्याहारेण संसर्गान्ध्यानेनानीश्वरान्गुणान् ॥ ७२ ॥

(७२) प्राणायाम द्वारा इच्छा आदि दोषों को भस्मी-भूत कर देना चाहिये, परमात्मा में चित्तवृत्ति लगाकर पाप को इन्द्रिय-निग्रह (वश में) करके विषयों का ध्यान द्वारा लोभ, मोह, क्रोधादि को दूर कर देना चाहिये, तथा अनीश्वर वाद, अर्थात् ईश्वर से पृथकता कराने वाले कार्य्य व तर्क को त्याग देना चाहिये।

(विरुद्ध) समझ कर तथा उनके दोषों का ज्ञान लाभ कर त्याग देता है वह इहलोक तथा परलोक में सुख प्राप्त होता है।

अनेन विधिना सर्वास्त्यक्त्वासङ्गाञ्छनैः शनैः।
सर्वद्वन्द्वविनिर्मुक्तो ब्रह्मण्येवावतिष्ठते ॥८१॥

(८१) इस विधि से धीरे २ सब प्रकार के कर्मों का परित्याग कर क्रोध लोभ मोहादि से विमुक्त होकर ब्रह्म (परमात्मा) के स्वरूप में निमग्न हो जाता है।

ध्यानिकं सर्वमेवैतद्यदेतदभिशब्दितम्।
न ह्यनध्यात्मवित्कश्चित्क्रियाफलमुपाश्नुते ॥ ८२ ॥

(८२) सन्तानादि के प्रतिबन्धन को तोड़ना, मानपमान का विचार न होना आदि बातें जीवात्मा को परमात्मा के ध्यान से प्राप्त होती हैं तथा अनात्मज्ञानी (अर्थात् आत्मा को न जानने वाला) सासारिक दुःखों से विमुक्त होकर मुक्ति लाभ नहीं कर सकता।

अधियज्ञं ब्रह्म जपेदाधिदैविकमेव च।
अध्यात्मिकं च सततं वेदान्ताभिहितं च यत् ॥८३॥

(८३) जो वेद संसार में यज्ञ देवता तथा जीव के स्वरूप को दर्शाकर ब्रह्मज्ञान को प्राप्त कराता है अर्थात् देता है उसे वेद के अध्ययन (पढ़ने) तथा अध्यापन (पढ़ाने) में सदैव रत (लगा) रहे।

इदं शरणमज्ञानमिदमेव विजानताम्।
इदमन्विच्छतां स्वर्गमिदमानन्त्यमिच्छताम् ॥ ८४ ॥

(८४) मूर्ख तथा विद्वान् जो सुख और मुक्ति की अभिलाषा रखते हैं उनको इष्ट लाभ (इच्छित वस्तु के प्राप्त करने)

का सत्य मार्ग बतलाने वाला केवल वेद ही है। अतएव वेद का स्वाध्याय सदैव करता रहे।

अनेन क्रमयोगेन परिव्रजति यो द्विजः।
स विधूयेह पाप्मानं परं ब्रह्माधिगच्छति। ८५।

(८५) जो ब्राह्मण क्षत्रिय तथा वैश्य इस विधि से संन्यास धारण करता है वह इस लोक में पाप से विमुक्त होकर परलोक में परब्रह्म को पाता है।

एष धर्मोऽनुशिष्टो वो यतीनां नियतात्मनाम्।
वेदसंन्यासिकानां तु कर्मयोगं निबोधत। ८६।

(८६) भृगुजी ऋषियों से कहते हैं कि अब हम चारों प्रकार के संन्यासियों के साधारण धर्म बतला कर कुटीचर (मटाधीश) सन्यासी के विशेष धर्म को आप लोगों को बतलाते हैं। चार प्रकार के संन्यासियों के यह नाम हैं; कुटीचर, भावुक, हंस, परमहंस।

ब्रह्मचारी गृहस्थश्च वानप्रस्थो यतिस्तथा।
एते गृहस्थप्रभवाश्चत्वारः पृथगाश्रमाः। ८७।

(८७) ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ, यती विशेष अर्थात् संन्यासी यह चारों आश्रम प्रथक् २ गृहस्थ ही से उत्पन्न हैं।

सर्वेऽपि क्रमशस्त्वेते यथाशास्त्रं निषेविताः।
यथोक्तकारिणं विप्रं नयन्ति परमां गतिम्। ८८।

(८८) जो ब्राह्मण शास्त्र विधि से इन चारों आश्रमोंका सेवन करता है वह परमगति अर्थात् मोक्षपद को लाभ करता है।

एष वोऽभिहितो धर्मो ब्राह्मणस्य चतुर्विधः।
पुण्योऽक्षयफलः प्रेत्य राज्ञां धर्मं निबोधत। ९७।

(९७) भृगुजी कहते हैं कि हे ऋषिजनो! आप से ब्राह्मणों का चार प्रकार का धर्म कहा है। वह धर्म पवित्र है तथा परलोक में उसका फल अक्षय है। इसके पश्चात् राजाओं का धर्म कहते हैं।

मनुजी के धर्मशास्त्र भृगुजी की संहिता का छठा अध्याय समाप्त हुआ।

सप्तमोऽध्यायः।

राजधर्मान्प्रवक्ष्यामि यथावृत्तो भवेन्नृपः।
संभवश्च यथा तस्य सिद्धिश्च परमा यथा। १।

(१) भृगुजी कहते हैं कि अब हम राजाओं के धर्म और उनकी उत्पत्ति को कहते हैं. तथा जिस विधि से राजा लोग अपने जीवन को सफल कर सकते हैं उस विधि को भी वर्णन करते हैं।

ब्राह्मं प्राप्तेन संस्कारं क्षत्रियेण यथाविधि।
सर्वस्यास्य यथान्यायं कर्तव्यं परिरक्षणम्। २।

(२) क्षत्रिय, यथाविधि यज्ञोपवीत (जनेऊ) धारण कर वेदारम्भादि संस्कारों को करके अपनी प्रजा के रक्षार्थ न्याय से विरत (लगा) रहे, यथाशक्ति अन्याय न करे।

अराजके हि लोकेऽस्मिन्सर्वतो विद्रुते भयात्।
रक्षार्थमस्य सर्वस्य राजानमसृजत्प्रभुः। ३।

(३) जो देश सब ओर से भयदायक है तथा जिसमें राजा नहीं है उस देश के रक्षार्थ श्री ब्रह्माजी ने राजा को उत्पन्न किया।

इन्द्रानिलयमार्काणामग्नेश्च वरुणस्य च।
चन्द्रवित्तेशयोश्चैव मात्रा निर्हृत्य शाश्वतीः। ४।

(४)※(१) इन्द्र, (२) यमराज, (३), वायु, (४) सूर्य, (५) अग्नि, (६) वरुण, (७) चन्द्रमा, (८) कुबेर, इन आठों के अंश से श्री ब्रह्माजी ने राजा को उत्पन्न किया।

यस्मादेषां सुरेन्द्राणां मात्राभ्यो निर्मितो नृपः।
तस्मादभिभवत्येष सर्वभूतानि तेजसा। ५।

(५) क्योंकि देवताओं के अंश से राजा की उत्पत्ति है अतएव राजा सब भूतों (जीवों) को अपने तेज से वश में करता है।

तपत्यादित्यवच्चैषां चक्षूंषि च मनांसि च।
न चैनं भुवि शक्नोति कश्चिदप्यभिवीक्षितुम्। ६।

(६) देखने वाले के नेत्रों तथा मन को सूर्य की नाईं तपाता है कोई मनुष्य भूमि पर राजाओं के सन्मुख होकर उनको देख नहीं सकताः क्योंकि उनका तेज सूर्य के समान है।

※ राजा के आठ कार्य हैं—१ इन्द्र से पालन, २ यमराज से न्याय, ३ सूर्य से प्रकाश अर्थात् शिक्षोन्नति, ४ अग्नि से पवित्र वेद को पृथक करना, ५ चन्द्रमा से प्रजा को प्रसन्न करने का प्रयत्न करना, ६ वरुण से शांति स्थापित करना, कुबेर से धन की रक्षा करना।

सोऽग्निर्भवति वायुश्च सोऽर्कः सोमः स धर्मराट्।
स कुबेरः स वरुणः स महेन्द्रः प्रभावतः। ७।

(७) वही राजा समयानुसार अपने बल से प्रत्येक देवता के कार्य को मनुष्य-समूह के अर्थ करता है और उस समय वह (राजा) उसी देवता के तुल्य है।

बालोऽपि नावमन्तव्यो मनुष्य इति भूमिपः।
महती देवता ह्येषा नररूपेण तिष्ठति। ८।

(८) यदि राजा बालक भी हो तो भी मनुष्य उसको तुच्छ न समझें क्योंकि राजा पृथिवी पर मनुष्य रूप में देवता वत् स्थित है।

एकमेव दहत्यग्निर्नरं दुरुपसर्पिणम्।
कुलं दहति राजाग्निः स पशुद्रव्यसंचयम्। ९।

(९) अग्नि के समीप तथा सम्मुख जो कोई जाता है अग्नि केवल उसी को भस्म करती है परन्तु राजा रूपी अग्नि धनादि सामग्री तथा पशुओं सहित कुलों को भस्म कर देती है।

कार्यं सोऽवेक्ष्य शक्तिं च देशकालौ च तत्त्वतः।
कुरुते धर्मसिद्ध्यर्थं विश्वरूपं पुनः पुनः। १०।

(१०) राजा अपने कार्य, देश काल तथा अपनी शक्ति अनुसार, तत्व को विचार अर्थात् सत्यासत्य निर्णय कर अपने तात्पर्य को सिद्ध करने के अर्थ प्रत्येक बार और प्रत्येक समय भिन्न २ देवता के [1] रूप को धारण करता है।

१—श्लोक १० में रूप धारण करने से यह तात्पर्य है कि राजा पालन करने के समय इन्द्र व न्याय समय यमराज तथा शिक्षा प्रचार के समय सूर्य आदि का रूप हो जाता है।

के हेतु समर्थ होते हैं और अपने धर्म से विचलित नहीं हो सकते।

तं देश कालौ शक्ति च विद्यां चावेक्ष्य तत्त्वः।
यथार्हतः संप्रणयेन्नरेष्वन्यायवर्तिषु ॥ १६ ॥

(१६) देश, काल, शक्ति, विद्या को देखकर अपराधियों को उनके वित्तानुसार तथा वालानुसार यथाक्रमयोग्य दण्ड देवे।

स राजा पुरुषो दण्डः स नेता शासिता च सः।
चतुर्णामाश्रमाणां च धर्मस्य प्रतिभूः स्मृतः ॥१७॥

(१७) संसार में दण्ड ही राजा है तथा दण्ड ही के कारण राजा पुरुष है और शेष सब लोग स्त्री हैं दण्ड, कार्यों का फल देने वाला चारों आश्रमों के धर्म का आज्ञादाता और उत्त दाता है।

दण्डः शास्ति प्रजाः सर्वा दण्ड एवाभिरक्षिति।
दण्डः सुप्तेषु जागर्ति दण्डं धर्मं विदुर्बुधाः ॥१८॥

(१८) सबका रक्षक, आज्ञा देने वाला तथा सोते हुओं को चैतन्य करने वाला वही दण्ड है। इसी दण्ड को पंडित लोग धर्म कहते हैं।

समीक्ष्य स धृतः सम्यक्सर्वा रञ्जति प्रजाः।
असमीक्ष्य प्रणीतस्तु विनाशयति सर्वतः ॥ १९ ॥

(१९) जिस समय राजा ध्यान से विचार कर दण्ड देता है तब प्रजा को विश्राम व आनन्द मिलता है तथा जब वही दंड बिना विचार किये दिया जाता है तब सारी प्रजा का सब ओर विनाश कर देता है।

यदि न प्रणयेद्राजा दण्डं दण्ड्येष्वमन्द्रितः ।
शूले मत्स्यानिवाभक्ष्यन्दुर्बलान्बलवत्तराः ॥ २० ॥

(२०) दुर्बल मनुष्यों को बलवान् जीना दुस्तर (कठिन) कर दें, यदि राजा के आलस्य तथा कुप्रबन्ध से अपराधी दण्ड न पावें।

अद्यात्काकः पुरोडाशं श्वा च लिह्याद्धविस्तथा ।
स्वाम्यं च न स्यात्कस्मिंश्चित्प्रवर्तेताधरोत्तरम् ॥२१॥

(२१) *यदि दण्ड न दिया जावे तो अच्छे पुरुषों का सारा धन धूर्त लोग अपहरण करलें।

सर्वो दण्डजितो लोको दुर्लभो हि शुचिर्नरः ।
दण्डस्य हि भयात्सर्वं जगद्भोगाय कल्पते । २२ ।

(२२) जितने जीव हैं सब दण्डनीय हैं। पवित्र मनुष्य दुर्लभ हैं। दण्ड-भय से सारे जीव कार्य करने की सामर्थ्य रखते हैं।

देवदानवगन्धर्वा रक्षांसि पतगोरगाः ।
तेऽपि भोगाय कल्पन्ते दण्डेनैव निपीडिताः ॥२३ ।

(२३) देव, दानव, गन्धर्व, राक्षस, पक्षी, साँप यह सब दण्ड द्वारा ही कर्म करने का सामर्थ्य रखते हैं।

दुष्येयुः सर्ववर्णाश्च भिद्येरन्सर्वसेतवः ।
सर्वलोकप्रकोपश्च भवेद्दण्डस्य विभ्रमात् । २४ ।

---

* इस श्लोक में काक शब्द धूर्तों के अर्थ में आया है।

+ २४ वें श्लोक में जिस दण्ड का वर्णन है वह अति भयानक है जिनका तात्पर्य पुलिस से है।

(२४) दण्डनीय पुरुषों को दण्ड न देने से, व अदण्डनीय पुरुषों को दण्ड देने से सब वर्ण दुष्ट हो जावेंगे तथा मर्यादा टूट जावगी सारा संसार क्रोधित हो जावेगा।

यत्र श्यामो लोहिताक्षो दण्डश्चरति पापहा।
प्रजास्तत्र न मुह्यन्ति नेता चेत्साधु पश्यति ॥२५॥

(२५) जहाँ श्याम व अरुण (लाल काला) नेत्र-पापनाशक दण्ड चक्कर लगाता है वहाँ प्रजा को मोह नहीं होता किन्तु यह उसी दशा में होता है जब दण्ड दाता (दण्ड देने वाला) भली भाँति विचार पूर्वक दण्ड देवे।

तस्याहुः सम्प्रणेतारं राजानं सत्यवादिनम्।
समीक्ष्यकारिणं प्राज्ञं धर्मकामार्थकोविदम् ॥२६॥

(२६) जो राजा सत्यवादी, दूरदर्शी, धर्मकर्मज्ञाता, चतुर, तथा कार्य-तत्पर है उसी में दण्ड देने की सामर्थ्य है।

तं राजा प्रणयन्सम्यक् त्रिवर्गेणाभिवर्धते।
कामात्मा विषमः क्षुद्रो दण्डेनैव निहन्यते ॥२७॥

(२७) इस दण्ड को देने से राजा धर्म काम अर्थ से बढ़ता है, जितने मनुष्य कामी, क्रोधी, छली तथा नीच है वह सब दण्ड द्वारा ही मारे जाते हैं।

दण्डो हि सुमहत्तेजो दुर्धरश्चाऽकृतात्मभिः।
धर्माद्विचलितं हन्ति नृपमेव सबान्धवम् ॥२८॥

(२८) दण्ड बहुत ही तेजवान् है। जो राजा शास्त्रज्ञाता नहीं है। वह दण्ड ही को धारण नहीं कर सकता। यही दण्ड अधर्मी राजा को उसके सम्बन्धी तथा बान्धवों सहित नष्ट कर देता है।

ततो दुर्गं च राष्ट्रं च लोकं च सचराचरम् ।
अन्तरिक्षगतांश्चैव मुनीन्देवांश्च पीडयेत् ॥ २९ ॥

(२९) यही दण्ड तो अधर्मी राजा द्वारा दिया जाता है दुर्ग (किला), राष्ट्र (राज्य) चर, अचर, लोक अन्तरिक्ष (अर्थात् ऊपर के लोक) में जो मनुष्य व देवता लोग हैं इनको पीड़ा पहुँचाता है ।

सोऽसहायेन मूढेन लुब्धेनाकृतबुद्धिना ।
न शक्यो न्यायतो नेतुं सक्तेन विषयेषु च ॥ ३० ॥

(३०) जो राजा शरणागत को शरण नहीं देता, व मूढ़ (मूर्ख) लोभी तथा सांसारिक विषय भोगों में लिप्त है, वह न्याय शास्त्रानुसार दण्ड देने की सामर्थ्य नहीं रखता है ।

शुचिना सत्यसंधेन यथाशास्त्रानुसारिणा ।
प्रणेतुं शक्यते दण्डः सुसहायेन धीमता ॥ ३१ ॥

(३१) जो राजा पवित्र, सत्यवादी शास्त्रानुयोगी शरणागत पालक तथा बुद्धिमान है वह निस्संदेह दण्ड देने की सामर्थ्य रखता है ।

स्वराष्ट्रे न्यायवृत्तः स्याद्भृशदण्डश्च शत्रुषु ।
सुहृत्स्वजिह्मः स्निग्धेषु ब्राह्मणेषु क्षमान्वितः ॥ ३२ ॥

(३२) अपने राज्य में न्यायनुसार चले, शत्रु को कठिन दण्ड देवे, सुहृदों व शुभचिंतकों के साथ दया का बर्ताव करे तथा अल्प अपराधी ब्राह्मणों को क्षमा करे इससे अपने राज्यकी दृढ़ता होती और शत्रुओं को भय रहता है ।

एवंवृत्तस्य नृपतेः शिलोञ्छेनापि जीवतः ।
विस्तीर्यते यशो लोके तैलबिन्दुरिवाम्भसि ॥ ३३ ॥

(४२) विनय करने के कारण पृथु तथा मनु ने राज्य पाया, कुबेर भगवान् के भण्डार के कोषाध्यक्ष हुये, गाधि के पुत्र विश्वामित्र क्षत्रिय से ब्राह्मण हो गये।

त्रैविद्येभ्यस्त्रयीं विद्यां दण्डनीतिं च शाश्वतीम्।
आन्वीक्षिकीं चात्मविद्यां वार्तारम्भांश्च लोकतः ।४३।

(४३) तीन वेदों के ज्ञाताओं से तीनों वेद, दण्डनीति ज्ञाताओं से नीतिशास्त्र, ब्रह्मविद्या ज्ञाताओं से ब्रह्म विद्या को पढ़े तथा धन-प्राप्ति के उपाय ज्ञाताओं से कृषि, व्यापार और पशु-पालन व चिकित्सा आदि को सीखे।

इन्द्रियाणां जये योगं समातिष्ठेद्दिवानिशम्।
जितेन्द्रियो हि शक्नोति वशे स्थापयितुं प्रजाः ।४४।

(४४) रात्रि दिवस इन्द्रियों को वश में करने का प्रयत्न करे, जो राजा जितेन्द्रिय है वह सारी प्रजा को अपनी अधीनता में रख सकता है तथा जो इन्द्रियजित् नहीं है अर्थात् विषयी वह अवश्य नष्ट होता है।

दश कामसमुत्थानि तथाष्टौ क्रोधजानि च।
व्यसनानि दुरन्तानि प्रयत्नेन विवर्जयेत् ॥ ४५ ॥

(४५) दश दोष काम से उत्पन्न होते हैं, आठ दोष क्रोध से उत्पन्न होते हैं इन अठारह दोषों को प्रयत्न करके परित्याग करना उचित है।

कामजेषु प्रसक्तो हि व्यसनेषु महीपतिः।
वियुज्यतेऽर्थधर्माभ्यां क्रोधजेष्वात्मनैव तु ॥ ४६ ॥

(४६) काम द्वारा उत्पन्न व्यसनों में लिप्त होने

राजा के धर्म तथा अर्थ का नाश हो जाता है और क्रोधासन्न व्यसनों में लिप्त होने से राजा स्वयं नष्ट हो जाता है।

मृगयाऽक्षो दिवास्वप्नः परिवादः स्त्रियो मदः।
तौर्यत्रिकं वृथाट्या च कामजो दशको गुणः॥ ४७॥

(४७) काम द्वारा उत्पन्न दस व्यसन यह हैं - १-मृगया (शिकार खेलना), २-पाँसा खेलना, ३-दिन में सोना ४-परिवाद (दूसरे का दोष प्रकट करना) ५-स्त्री को सेवा करना, ६-मद्य पीकर मस्त हो जाना, ७-नाचना, ८-गाना, ९-बजाना १०—व्यर्थ घूमना।

पैशुन्यं साहसं द्रोह ईर्ष्या सूयार्थदूषणम्।
वाग्दण्डज च पारुष्य क्रोधजोऽपि गणोऽष्टकः।४८।

(४८) क्रोध द्वारा उत्पन्न आठ व्यसन यह हैं-१-बिना जाने दोष को कहना २-जिन बल द्वारा काम करना, ३-छल से किसी को मार डालना, ४-ईर्ष्या, ५—किसी के गुण म दोष लगाना ६-कटु भाषण, ७—अर्थ को चुराना अथवा देने योग्य पदार्थ को न देना, दण्ड से ताडन करना।

द्वयोरप्येतयोर्मूल य सर्वे कवयो विदुः।
तं यत्नेन जयेल्लोभ तज्जावेतावुभो गणो॥ ४९॥

(४९) उपरोक्त त्याग योग्य दोषा का मूल लोभ है अर्थात् लोभ करने मे इनकी उत्पत्ति होती है। अतएव लोभ का यत्न करके परित्याग कर देना उचित है। निर्लोभी होने से सब वश मे हो जाते हैं, यह बात बुद्धिमाना ने कही है।

पानमक्षाः स्त्रियश्चैव मृगया च यथाक्रमम्।
एतत्कष्टतमं विद्याच्चतुष्कं कामजे गणे॥ ५०॥

(५०) काम द्वारा उत्पन्न दोषों में, मद्य पीना, पाँसा खेलना, स्त्री वशीभूत होना, + आखेट खेलना, यह चारों यथाक्रम (एक दूसरे से) निकृष्ट हैं।

दण्डस्य पातनं चैव वाक्यपारुष्यार्थदूषणे।
क्रोधजे पि गणे विद्यात्कष्टमेतत्त्रिकं सदा ॥ ५१ ॥

(५१) १-क्रोध द्वारा उत्पन्न व्यसनों में दण्ड से हनन करना, २-कटु भाषण ३-देने योग्य पदार्थ को न देना यह तीन सदैव निकृष्ट हैं।

सप्तकस्यास्य वर्गस्य सर्वत्रैवानुषङ्गिणः।
पूर्वं पूर्वं गुरुतरं विद्याद्व्यसनमात्मवान ॥ ५२ ॥

(५२) इन सातों का वासस्थान एक ही है, इन में यथाक्रम एक दूसरे से अधिक निकृष्ट है।

व्यसनस्य च मृत्योश्च व्यसनं कष्टमुच्यते।
व्यसन्यधोऽधो व्रजति स्वर्यात्यव्यसनी मृतः ॥ ५३ ॥

(५३) व्यसन तथा मृत्यु में व्यसन निकृष्ट है, क्योंकि व्यसनी नरक में जाता है और जिसने व्यसन परित्याग कर दिये हैं वह मृत्यु पश्चात् सुख पाता है, अतएव व्यसन से मृत्यु उत्तम है।

धात की तह को पहुंचे हुए), उत्तम कुलवान् हों उनकी परीक्षा लेकर राजा उनका सचिव (मन्त्री) बनावे तथा वह सचिव संख्या में ७ वा ८ हों ।

अपि यत्सुकरं कर्म यदप्येकेन दुष्करम् ।
विशेषतोऽसहायेन किं तु राज्यं महोदयम् । ५५ ।

(५५) जो कार्य सरल है वह भी एकाकी नहीं हो सकता और राज काज तो बड़ा भारी काम है वह किस प्रकार एकाकी हो सकेगा ?

तैः सार्धं चिन्तयेन्नित्यं सामान्यं संधिविग्रहम् ।
स्थानं समुदयं गुप्तिं लब्धप्रशमनानि च । ५६ ।

(५६) इन मन्त्रियों से निम्नलिखित विषयों पर नित्य मन्त्रणा (परामर्श) करे अर्थात् सिन्ध, विग्रह, धन, नगर, राज्य, रथखाना आदि सेनापालन, अन्न सोना रूपादि की उत्पत्ति स्थान, अपनी तथा राज्य की रक्षा और प्राप्त धन को उत्तम लोगों को दान देना ।

तेषां स्वं स्वमभिप्रायमुपलभ्य पृथक् पृथक् ।
समस्तानां च कार्येषु विदध्याद्धितमात्मनः । ५७ ।

(५७) सचिवगण (मन्त्रिमण्डल) जो मन्त्रणा (सलाह) दें उसको पृथक २ अथवा एक ही वार समझ कर उचित आज्ञा देवे जिसमें भला हो ।

सर्वेषां तु विशिष्टेन ब्राह्मणेन विपश्चिता ।
मन्त्रयेत्परमं मन्त्रं राजा षाड्गुण्यसंयुतम् । ५८ ।

(५८) सब मन्त्रियों में जो अधिक विद्वान् तथा गुण-

वान् हो उसके साथ छः गुण वाले परम मन्त्र को विचारे। छः गुण आगे कहेंगे।

नित्यं तस्मिन्समाश्वस्तः सर्वकार्याणि निःक्षिपेत्।
तेन सार्धं विनिश्चित्य ततः कर्म समारभेत् ॥५६॥

(५६) सदैव उस पर विश्वास करके सारे कार्य करे तथा उसकी सम्मत्ति लेकर कार्य को आरम्भ करे।

अन्यानपि प्रकुर्वीत शुचीन्प्राज्ञानवस्थितान्।
सम्यगर्थसमाहर्तॄनमात्यान्सुपरीक्षितान् ॥ ६० ॥

(६०) जो मनुष्य शुद्ध व सर्वज्ञाता है–उत्तम व उचित रीति से धन प्राप्त करने वाले हैं, तथा उत्तम विधि से जिनकी परीक्षा हो चुकी है ऐसे और भी मंत्री नियत करे।

निर्वर्त्तेतास्य यावद्भिरितिकर्तव्यता नृभिः।
तावतोऽतन्द्रितान्दक्षान्प्रकुर्वीत विचक्षणान् ॥ ६१ ॥

(६१) जितने मनुष्यों से कार्य सम्पादन हो सके उतने ही मनुष्यों को नौकर रक्खे, परन्तु वह मनुष्य चतुर, कार्य-कुशल तत्पर तथा दक्ष होवें।

तेषामर्थे नियुञ्जीत शूरान्दक्षान्कुलोद्गतान्।
शुचीनाकरकर्मान्ते भीरूनन्तर्निवेशने ॥ ६२ ॥

(६२) इन मन्त्रियों में चतुर, कुलवान शुद्ध व पवित्र, अनिच्छुक, तथा धैर्यवान हों उनको कार्य सौंप दे जिसमें धन-प्राप्त हो, तथा जो मनुष्य कायर व डरपोक हों उनको कोट (किला) के भीतर रक्खे।

दूतं चैव प्रकुर्वीत सर्वशास्त्रविशारदम्।
इङ्गिताकारचेष्टज्ञं शुचिं दक्षं कुलोद्गतम् ॥ ६३ ॥

(६३) जो मनुष्य शास्त्र विशारद (ज्ञाता), सैन व आकार (रूप) को समझने वाला, शुद्ध व पवित्र, चतुर (दक्ष) तथा कुलवान् हों उनको दूत नियत करे।

अनुरक्तः शुचिर्दक्षः स्मृतिमान्देशकालवित् ।
वपुष्मान्वीतभीर्वाग्मी दूतो राज्ञः प्रशस्यते ॥६४॥

(६४) राजा के निमित्त ऐसे दूत की आवश्यकता है जो राजा का मित्र, स्वामी को प्रसन्न रखने वाला, शुचि, दक्ष, प्रत्येक बात स्मरण रखने वाला देशकालज्ञाता, सुरूपवान (सुन्दर) सुवार्तालाप करने वाला, तथा निडर हो।

आमात्ये दण्ड आयत्तो दण्डे वैनयिकी क्रियाः ।
नृपतौ कोशराष्ट्रे च दूते सन्धिविपर्ययौ ॥ ६५ ॥

(६५) सचिव के अधीन दण्ड है, दण्ड के अधीन न्याय है, राजा के अधीन कोष व राज्य है, दूत के अधीन सन्धि तथा विग्रह है।

दूत एव हि संधत्ते भिनत्त्येव च संहतान् ।
दूतस्तत्कुरुते कर्म भिद्यन्ते येन मानवाः ॥ ६६ ॥

(६६) दूत ही विगड़े हुए (शत्रु) को मिलता है अथवा दूत ही मिले हुए (मित्र) को विगाड़ता है। जिसके द्वारा सन्धि (मिलाप तथा विग्रह (विगाड़) होता है वह दूत ही करता है।

स विद्यादस्य कृत्येषु निगूढेङ्गितचेष्टितैः ।
आकारमिङ्गितं चेष्टां भृत्येषु च चिकीर्षितम् ॥६७॥

(६७) सब अधिकारियों में दूत ही राजा की बात, सैन आकार, चेष्टा, तथा राजा के करने योग्य सब कार्य को जाने, अन्य सेवकों को पूर्ण भेद ज्ञात न होना चाहिये।

बुद्ध्वा च सर्वं तत्त्वेन परराजचिकीर्षितम् ।
तथा प्रयत्नमातिष्ठेद्यथात्मानं न पीडयेत् ॥ ६८ ॥

(६८) अन्य राजाओं के चित्त का सत्य तत्व (वृत्तान्त) अपने प्रयत्न से ज्ञात करे, तथा ऐसा उपाय करे जिससे अपनी आत्मा को पीड़ा (दुःख) न पहुँचे ?

जाङ्गले सस्यसंपन्नमार्यप्रायमनाविलम् ।
रम्यमानतसामन्तं स्वाजीव्यं देशमावसेत् ॥ ६९ ॥

(६९) जिस देश में अल्प जल व घास हो, तथा वायु, धूप व अन्न अधिक हो उसे जाङ्गल कहते हैं। उसमें तथा जिस देश में सज्जन पुरुष हों, नीरोग हों, जो फल फूल व लतादि से मनोहर हो जहाँ की प्रत्येक दिशा के मनुष्य विनीत हों, जहाँ कृषि व्यापारादि धन प्राप्ति के साधन सरलता से प्राप्त हो सकें ऐसे देश में राजा निवास करे।

धन्वदुर्गं महीदुर्गमब्दुर्गं वार्क्षमेव वा ।
नृदुर्गं गिरिदुर्गं वा समाश्रित्य वसेत्पुरम् ॥ ७० ॥

(७०) (१) जिसके चारों ओर पानी न हो, (२) जहाँ की भूमि ठंडी हो, (३) जिसके चारों ओर पानी हो, (४) जिसके चारों ओर वृक्ष हों, (५) जिसके चारों ओर वीर योद्धा वसते हों, (६) जिसके चारों ओर पहाड़ हो यह छः स्थान दुर्ग (कोट) के समान हैं, ऐसे स्थान पर राजा निवास करे जहाँ पर दूसरे की सेना न जा सके।

सर्वेण तु प्रयत्नेन गिरिदुर्गं समाश्रयेत् ।
एषां हि बाहुगुण्येन गिरिदुर्गं विशिष्यते ॥ ७१ ॥

(७१) जिस देश के चारों ओर पहाड़ है उसमें निवास

करे, जहाँ तक ऐसा स्थान (देश) मिले अन्य स्थान में निवास न करे। इन सबों म ऐसा देश सर्वोत्तम है।

त्रीण्याद्यान्याश्रितास्तेषां मृगगर्ताश्रयाऽप्सराः।
त्रीण्युत्तराणि क्रमशः प्लवङ्गनरामराः। ७२।

(७२) प्रथम तीन दुर्गों (कोटों) में, हिरन, चूहा, जल, के जीव रहते हैं। पिछले तीन कोटों में बन्दर, मनुष्य, देवता रहते हैं।

यथा दुर्गाश्रितानेतान्नोपहिंसति शत्रवः।
तथारयो न हिंसन्ति नृपं दुर्गसमाश्रितम्। ७३॥

(७३) जिस प्रकार हिरन आदि अपने कोट में बसने से शत्रुओं से कष्ट नहीं पाते हैं, उसी प्रकार राजा दुर्ग में बसने से शत्रुओं से पीड़ा नहीं पाता है।

एकः शतं योधयति प्राकारस्थो धनुर्धरः।
शतं दशसहस्राणि तस्माद्दुर्गं विधीयते। ७४।

(७४) दुर्गवासी एक धनुर्धारी प्रकार (कोट की दीवार) के बाहर के सौ योद्धाओं से लड़ सकता है तथा दुर्गवासी सौ मनुष्य बाहर के दश सहस्र मनुष्यों से युद्ध कर सकते हैं। अतएव दुर्ग बनाने का उपदेश करते हैं।

तत्स्यादायुधसंपन्नधनधान्येन वाहनैः
ब्राह्मणैः शिल्पिभिर्यन्त्रैर्यवसेनोदकेन च ॥ ७५ ॥

(७५) दुर्ग के भीतर यह सामग्री उपस्थित रहनी चाहिए—शस्त्र, धन, धान्य (अन्न), ब्राह्मण, शिल्पी (कारीगर) यन्त्र (कल), घास, पानी तथा इन्धन आदि।

तस्य मध्ये सुपर्याप्तं कारयेद्गृहमात्मनः ।
गुप्तं सर्वर्तुकं शुभ्रं जलवृक्षसमन्वितम् ॥ ७६ ॥

(७६) उस दुर्ग में अपना प्रासाद (मकान) ऐसा बनावे कि जिसमें पृथक् २ स्त्री, देवता, शस्त्र तथा अग्नि के गृह हों, खाई भी हो, सब ऋतुओं के फल फूल उपस्थित हों, गृह श्वेत रङ्ग का हो, तथा उसमें बावली, कूप, व वृक्ष हो।

तदध्यास्योद्वहेद्भार्यां सवर्णां लक्षणान्विताम् ।
कुले महति सम्भूतां हृद्यां रूपगुणान्विताम् ॥ ७७ ॥

(७७) उस गृह में वस कर अपनी जाति की उत्तम कुल की कन्या से विवाह करे जो हृदय को प्यारी हो, रूपवती गुणवती व सहृदय हो।

पुरोहितं च कुर्वीत वृणुयादेव चर्त्विजः ।
तेऽस्य गृह्याणि कर्माणि कुर्युर्वैतानिकानि च ॥७८॥

(७८) पुरोहित व ऋत्विज इन दोनों को अधिकार दे यह दोनों राजा के अग्निहोत्र आदि गृह के कार्यों को करें।

यजेत राजा क्रतुभिर्विविधैराप्तदक्षिणैः ।
धर्मार्थं चैव विप्रेभ्यो दद्याद्भोगान्धनानि च ॥७६॥

(७६) विविध यज्ञों को भले प्रकार दक्षिणा देकर करे। धर्मार्थ ब्राह्मणों का भोग (अर्थात् गृह, शय्या, आभूषण, वस्त्रादि) व धन देवे।

सांवत्सरिकमाप्तैश्च राष्ट्रादाहारयेद्बलिम् ।
स्याच्चाम्नायपरो लोके स वर्तेत्पितृवन्नृपु ॥ ८० ॥

(८०) राजा अपने राज्य से अपना भाग प्रतिवर्ष लेवे, वेदाज्ञानुसार कार्य करे, सारी प्रजा का अपनी सन्तान की

नोई पालन करे तथा प्रजा उसको पिता के समान समझ कर उसकी आज्ञा माने।

अध्यक्षान्विविधान्कुर्यात्तत्र तत्र विपश्चितः।
तेऽस्य सर्वाण्यवेक्षेरन्नृणां कार्याणि कुर्वताम् ॥८१॥

(८१) प्रत्येक स्थान पर विविध कार्यों का एक एक अध्यक्ष नियत करे वह अध्यक्ष राजा के कर्मचारियों के काम का निरीक्षण करे।

आवृत्तानां गुरुकुलाद्विप्राणां पूजको भवेत्।
नृपाणामक्षयो ह्येषः निधिर्ब्राह्मोऽभिधीयते ॥ ८२ ॥

(८२) जो ब्राह्मण गुरुकुल से विद्याध्ययन समाप्त कर अपने पिता के गृह आवे राजा उनका पूजन करे, वे ब्राह्मण अक्षय कोष है।

न त स्तेना न चामित्रा हरन्ति न च नश्यति।
तस्माद्राज्ञा निधातव्यो ब्राह्मणेष्वक्षयो निधिः ॥८३॥

(८३) जो धन व सम्पत्ति ब्राह्मण को दी जाती है वह अक्षय है, उसको चोर चुरा नहीं सकता। अतएव राजा अपने मन से ऐसे ब्राह्मणों की सेवा शुश्रूषा तथा पूजा करे।

न स्कन्दते न व्यथते न विनश्यति कर्हिचित्।
वरिष्ठमग्निहोत्रेभ्यो ब्राह्मणस्य मुखे हुतम् ॥ ८४ ॥

(८४) *ब्राह्मण के मुख में जो हवन किया गया अर्थात देवता व पितरों व ऋषियों के निमित्त जो उनको भोजन कराया जाता है) चाहे परमेश्वर के प्रसन्नार्थ भोजन

---

* ब्राह्मण से तात्पर्य पूर्णज्ञानी जितेंद्रिय धर्मोपदेश करने वाले ब्राह्मण से है।

(९३) छिन्न अस्त्र वाला, पुत्रादि की मृत्यु के कारण शोकार्त, कठिन घाव लगा हो, भयातुर, युद्ध से पराङ्मुख (भागा हुआ) इन सब को सज्जनों के धर्म को विचार कर, न मारे।

यस्तु भीतः परावृत्तःसंग्रामे हन्यते परैः।
भर्तुर्यद्दुष्कृतं किंचित्तत्सर्वं प्रतिपद्यते ॥ ९४ ॥

(९४) जो मनुष्य भय वश रण से पराङ्मुख होकर दूसरे के शस्त्र से घायल होकर मारा जाता है वह अपने स्वामी के पाप को पाता है।

यच्चास्य सुकृतं किंचिदमुत्रार्थमुपार्जितम्।
भर्ता तत्सर्वमादत्ते परावृत्तहतस्य तु ॥ ९५ ॥

(९५) जो क्षत्रिय युद्ध से पराङ्मुख होकर मारा जावे उसके पुण्य कर्मों का फल उसके स्वामी को प्राप्त होता है।

रथाश्वं हस्तिनं छत्रं धनं धान्यं पशून्स्त्रियः।
सर्वद्रव्याणि कुप्यं च यो यज्जयति तस्य तत् ॥९६॥

(९६) रथ, घोड़ा, हाथी, छतरी, धन, धान्य, पशु, स्त्री तथा सारा द्रव्य सोना, चाँदी के अतिरिक्त सीसा, पीतल आदि इन सबको जो जीतता है वही उसका स्वामी है।

राज्ञश्च दद्युरुद्धारमित्येषा वैदिकी श्रुतिः।
राज्ञा च सर्वयोधेभ्यो दातव्यमपृथग्जितम् ॥९७॥

(९७) सोना, चाँदी, भूमि आदि जो उत्तम वस्तुयें जीत में प्राप्त हों उनका पाने वाला अपने राजा को देवे यह वेद में लिखा है, तथा राजा उस वस्तु को उन सब शूरों को बाँट दे जिन्होंने देश विजय किया है।

एषोऽनुसस्कृतः प्रोक्तो योधधर्मः सनातनः ।
अस्माद्धर्मान्न च्यवेत क्षत्रियोघ्नन् रणे रिपून् ॥९८॥

(९८) क्षत्रिय शूरवीरों का भी धर्म यही कहा है कि वे रण में शत्रु को मारते हुए क्षात्र धर्म को न छोड़ें। यदि वे क्षात्र धर्म त्याग दें तो क्षत्रिय कहलाने योग्य नहीं हो सकते।

अलब्धं चैव लिप्सेत लब्धं रक्षेत्प्रयत्नतः ।
रक्षितं वर्धयेच्चैव वृद्धं पात्रेषु निःक्षिपेत् ॥९९॥

(९९) अप्राप्त वस्तु को प्राप्त करने का प्रयत्न करे प्राप्त वस्तु की रक्षा करे, रक्षित की उन्नति करे तथा उन्नत वस्तु को * शुभ कार्यों में व्यय करे।

एतच्चतुर्विधं विद्यात्पुरुषार्थप्रयोजनम् ।
अस्य नित्यमनुष्ठानं सम्यक्कुर्यादतन्द्रितः ॥१००॥

(१००) राजा के पुरुषार्थ का प्रयोजन भी चार प्रकार का है, उसको जाने और आलस्य त्याग उन चारों का सेवन करे जो उपरोक्त श्लोक में कथित हैं।

अलब्धमिच्छेद्दण्डेन लब्धं रक्षेदवेक्षया ।
रक्षितं वर्धयेद्वृद्ध्या वृद्धं पात्रेषु निःक्षिपेत् ॥१०१॥

(१०१) अलब्ध वस्तु की प्राप्ति की इच्छा करे, जो दण्ड द्वारा प्राप्त हो उसकी रक्षा करे, जिस वस्तु की रक्षा देखने मात्र से होती है उसकी उन्नति देखने से करे, व्याज से बढ़े हुये धनादि को दान में लगावे।

---

* विद्योन्नति, अनाथरक्षा, ब्रह्मचारी वानप्रस्थ सन्यासी आदि की सहायता में व्यय करे।

(११०) जिस प्रकार किसान अन्न की रक्षा करता है तथा घास आदि निकाल डालता है उसी प्रकार राजा राज्य की रक्षा करे और शत्रुओं को नष्ट करे।

मोहाद्राजा स्वराष्ट्रं यः कर्षयत्यनवेक्षया।
सोऽचिराद्भ्रश्यते राज्याज्जीविताच्च सबान्धवः १११

(१११) जो राजा बिना सोचे विचारे मोहवश प्रजा को कष्ट देता है वह थोड़े ही समय में अपना राज्य, अपने प्राण, भाई बन्धु सब को नष्ट भ्रष्ट कर डालता है।

शरीरकर्षणात्प्राणाः क्षीयन्ते प्राणिनां यथा।
तथा राज्ञामपि प्राणाः क्षीयन्ते राष्ट्रकर्षणात् ॥११२॥

(११२) जिस प्रकार शरीर को दुःख देने से प्राण को दुःख होता है उसी प्रकार राज्य अर्थात् प्रजा के दुःखी होने से राजा का प्राण दुःख पाता है।

राष्ट्रस्य संग्रहे नित्यं विधानमिदमाचरेत्।
सुसंगृहीतराष्ट्रो हि पार्थिवः सुखमेधते ॥११३॥

(११३) प्रजा की उन्नति के लिये नित्य नियम तथा नीति का पालन करे। जिस राजा की प्रजा ने भली भांति उन्नति पायी हो उसी प्रकार के कार्य करने वाला राजा उन्नति पाता है।

द्वयोस्त्रयाणां पञ्चानां मध्ये गुल्ममधिष्ठितम्।
तथा ग्रामशतानां च कुर्याद्राष्ट्रस्य संग्रहम् ॥११४॥

(११४) दो, तीन पाँच गाँवों के मध्य में रक्षा का गृह बनावे और उसमें प्रबन्ध करने के हेतु अपने कर्मचारी रक्खे।

ग्रामस्याधिपतिं कुर्याद्दशग्रामपतिं तथा ।
विंशतीशं शतेशं च सहस्रपतिमेव च ॥११५॥

(११५) योग्यतानुसार किसी को एक गाँव का किसी को दस गाँव का, किसी को बीस गाँव का, किसी को सौ गाँव का तथा किसी को सहस्र गाँव का स्वामी बनावे।

ग्रामदोषान्समुत्पन्नान्ग्रामिकः शनकैः स्वयम् ।
शंसेद्ग्रामदशेशाय दशेशो विंशतीशिने ॥११६॥

(११६) गाँव में कुछ उपद्रव हो तो गाँव का रक्षक (स्वामी) दस गाँव के स्वामी से चुपके से कहे और वह बीस गाँव के स्वामी से कहे।

विंशतीशस्तु तत्सर्वं शतेशाय निवेदयेत् ।
शंसेद्ग्रामशतेशस्तु सहस्रपतये स्वयम् ॥११७॥

(११७) बीस गाँव का स्वामी सौ गाँव के स्वामी से कहे और वह हजार गाँव के स्वामी से कहे।

यानि राजप्रदेयानि प्रत्यहं ग्रामवासिभिः ।
अन्नपानेन्धनादीनि ग्रामिकस्तान्यवाप्नुयात् ॥११८॥

(११८) नित्य राजा का भाग जैसे अन्न, पान, काष्ठ आदि जो ग्रामवासियों से लेने योग्य हैं उसको ग्राम का स्वामी लेवे।

दशी कुलं तु भुञ्जीत विंशी पंच कुलानि च ।
ग्रामं ग्रामशताध्यक्षः सहस्राधिपतिः पुरम् ॥११९॥

(११९) दस गाँव का स्वामी एक + कुल की भूमि का

+ बारह बैलों से जिस जमीन में हल चलाये जायें उसे कुल कहते हैं।

क्रयविक्रयमध्वाने भक्तं च सपरिव्ययम् ।
योगक्षेमं च सम्प्रेक्ष्य वणिजो दापयेत्करान् ॥१२७॥

(१२७) इन सब बातों पर विचार कर व्यापारियों से कर लेवे अर्थात् किस मूल्य को मोल लिया, भोजनादि में क्या व्यय पड़ा, कितनी दूर से लाया, माल की रक्षा मे क्या व्यय पड़ा तथा कितना लाभ प्राप्त होगा।

यथा फलेन युज्येत राजा कर्ता च कर्मणाम् ।
तथावेक्ष्य नृपो राष्ट्रे कल्पयेत्सततं करान् ॥१२८॥

(१२८) जिस विधि से कार्य कर्ता तथा राजा को लाभ हो उसी विधि को देखकर राजा अपने कर नियत करे जो प्रत्येक मनुष्य पर एक समान हो।

यथाल्पाल्पमदन्त्याद्यं वार्योकोवत्सषट्पदाः ।
तथाल्पाल्पो ग्रहीतव्यो राष्ट्राद्राज्ञाब्दिकः करः ॥१२९॥

(१२९) जैसे जोंक, बछड़ा तथा भौंरा यह सब अपने खाद्यपदार्थ को थोड़ा २ खाते हैं, वैसे ही राजा अपने राज्य से वार्षिक कर थोड़ा २ लेवे।

पञ्चाशद्भाग आदेयो राज्ञा पशुहिरण्ययोः ।
धान्यानामष्टमो भागः षष्ठो द्वादश एव वा ॥१३०॥

(१३०) पशु व सोने के लाभ का पचासवाँ भाग लेवे, धान्य के लाभ का छठा, आठवाँ व बारहवाँ भाग लेवे। भूमि की उर्वरा आदि दशा को देख तथा जोतने आदि के परिश्रम को विचार कर नियत करे।

आददीताथ षड्भागं द्रुमांशमधुसर्पिषाम् ।
गन्धौषधिरसानां च पुष्पमूलफलस्य च ॥१३१॥

(१३१) वृक्ष, मांस, मद्य, घी, सुगन्धित वस्तुयें, औषधियाँ, रस, फल, फूल, मूल।

पत्रशाकतृणानां च चर्मणां वैदलस्य च।
मृण्मयानां च भाण्डानां सर्वस्याश्ममयस्य च ॥१३२॥

(१३२) पत्ता, शाक, तृण (घास), चमड़ा, बाँस का पात्र, मिट्टी पात्र, पत्थर पात्र के लाभ का छठा अंश राजा लेवे।

म्रियमाणोऽप्याददीत न राजा श्रोत्रियात्करम्।
न च क्षुधास्य संसीदेच्छ्रोत्रियो विषये वसन् ॥१३३॥

(१३३) राजा यदि मरणासन्न भी हो, तो भी ❀ वेदपाठी ब्राह्मण से कर न लेवे तथा राज्य में इसकी सुव्यवस्था रक्खे कि वहाँ भी वेदपाठी ब्राह्मण को खान पान का कष्ट न होने पावे।

यस्य राज्ञस्तु विषये श्रोत्रियः सीदति क्षुधा।
तस्यापि तत्क्षुधा राष्ट्रमचिरेणैव सीदति ॥१३४॥

(१३४) इस राजा के राज्य में वेदपाठी क्षुधा से पीड़ित रहता है उसका राज्य शीघ्र ही नष्ट हो जाता है।

श्रुतवृत्ते विदित्वास्य वृत्तिं धर्म्यां प्रकल्पयेत्।
संरक्षेत्सर्वतश्चैनं पिता पुत्रमिवौरसम् ॥१३५॥

(१३५) ब्राह्मण के विद्याभ्यास तथा आचरण को समझ कर उनको ऐसी वृत्ति नियत करे जो उनके धर्म विरुद्ध न हो

❀ वेदपाठी ब्राह्मण का उतना मान कर जितना शरीर में नेत्रों को करता है। जैसे नेत्र बिना शरीर के सब काम बिगड़जाते हैं वैसे ही वेदपाठी बिना राज्य के सब कार्य बिगड़ जाते हैं।

और उनकी रक्षा सब ओर से इस प्रकार करे जैसे पिता पुत्र की रक्षा करता है।

संरक्ष्यमाणो राज्ञा यं कुरुते धर्ममन्वहम्।
तेनायुर्वर्धते राज्ञो द्रविणं राष्ट्रमेव च ॥ १३६ ॥

(१३६) राजा की रक्षा में ब्राह्मण नित्य जो धर्म करता है उसके प्रताप से राजा के धन तथा आयु की वृद्धि होती है।

यत्किंचिदपि वर्षस्य दापयेत्करसंज्ञितम्।
व्यवहारेण जीवन्तं राजा राष्ट्रे पृथग्जनम् ॥१३७॥

(१३७) राज में छोटे मनुष्यों से भी थोड़ा शाक पात आदि वर्ष के अन्त में कर रूप में लेवे।

कारुकाञ्छिल्पिनश्चैव शूद्रांश्चात्मोपजीविनः।
एकैकं कारयेत्कर्म मासि मासि महीपतिः ॥१३८॥

(१३८) पाचक (कारुक रसोई बनाने वाले) हर प्रकार के शिल्पी (कारीगर), शूद्र तथा शारीरिक कष्ट द्वारा जीवन निर्वाह करने वाले (पल्लेदार आदि) इन सबों से प्रत्येक मास में एक दिन का काम करावे, इनका यही कर है।

नोच्छिन्द्यादात्मनो मूलं परेषां चातितृष्णया।
उच्छिन्दन्ह्यात्मनो मूलमात्मानं तांश्च पीडयन् ॥१३९॥

(१३९) यदि अधिक प्रीति वश प्रजा से कर नहीं लेता तो राजा अपनी जड़ उखाड़ता है तथा लोभ वश अधिक कर ले तो भी अपनी जड़ उखाड़ता है। अतएव इन दोनों कार्यों को त्याग दे, यदि करेगा तो वह अपने को प्रजा को दुःखी करता है।

तीक्ष्णश्चैव मृदुश्च स्यात्कार्यं वीक्ष्य महीपतिः ।
तीक्ष्णश्चैव मृदुश्चैव राजा भवति संमतः ॥१४०॥

(१४०) राजा कार्य को देख कर उसके अनुसार मृदु या तीक्ष्ण होवे (अर्थात् उत्तम कार्य में मृदु तथा अधम कार्य को देख तीक्ष्ण होवे) ऐसा राजा सबको प्रिय है।

अमात्यमुख्यं धर्मज्ञं प्राज्ञं दान्तं कुलोद्गतम् ।
स्थापयेदासने तस्मिन्खिन्नःकार्येक्षणे नृणाम् ।१४१॥

(१४१) राजा यदि न्याय करने में कष्ट पावे तो अपने स्थान पर ऐसे ब्राह्मण को नियत करे जो प्रधान मन्त्री, धर्मात्मा जितेन्द्रिय तथा कुलवान् हो ।

एवं सर्वं विधायेदमितिकर्तव्यमात्मनः ।
युक्तश्चैवाऽप्रमत्तश्च परिरक्षेदिमाः प्रजाः ॥ १४२ ॥

(१४२, इसी प्रकार अपने योग्य कार्यो को निश्चित करे तथा प्रमाद आदि दोषों को परित्याग कर दत्तचित्त हो परिश्रम के साथ प्रजा की रक्षा करे।

विक्रोशन्त्यो यस्य राष्ट्राद्ध्रियन्ते दस्युभिः प्रजा ।
सपश्यतः सभृत्यस्य मृतः स न तु जीवति ॥१४३॥

(१४३) जिस राजा और राजकर्मचारियों को देखते हुए राज्य में चोरों द्वारा लुटी हुई प्रजा त्राहि त्राहि पुकारती है वह राजा जीवित ही मृतक के समान है।

क्षत्रियस्य परो धर्मः प्रजानामेव पालनम् ।
निर्दिष्टफलभोक्ता हि राजा धर्मेण युज्यते ॥१४४॥

(१४४) प्रजा का पालन करना क्षत्रिय का परम-धर्म है जो राजा शास्त्रानुसार कार्य करता है उसको धर्मात्मा कहते हैं।

उत्थाय पश्चिमे यामे कृतशौचः समाहितः।
हुताग्निर्ब्राह्मणांश्चार्च्य प्रविशेत्स शुभां सभाम् ॥१४५॥

(१४५) पहर रात्रि शेष रहे उठ कर शौचादि से निवृत्ति हो स्नान कर एकाग्र चित्त हो अग्निहोत्र तथा ब्राह्मण का पूजन करने पश्चात राजसभा में प्रवृष्टि हो।

तत्र स्थितः प्रजाः सर्वाः प्रतिनिन्द्य विसर्जयेत्।
विसृज्य च प्रजाः सर्वा मन्त्रयेत्सह मन्त्रिभिः॥१४६॥

(१४६) सभा में बैठकर प्रजा को देखभाल कर तथा समयोचित वार्तालाप कर विदा करे, तत्पश्चात् राज्यप्रबन्ध के विषय में सचिव से मन्त्रणा करे।

गिरिपृष्ठं समारुह्य प्रासादं वा रहोगतः।
अरण्ये निःशलाके वा मन्त्रयेदविभावितः ॥१४७॥

(१४७) पहाड़, प्रासाद वा जङ्गल इत्यादि एकान्त स्थान पर बैठकर मन्त्रणा में विघ्न डालने वाले मनुष्यों को पृथक् करके मन्त्रणा करे।

यस्य मन्त्रं न जानन्ति समागम्य पृथग्जनाः।
स कृत्स्नां पृथवीं भुंक्ते कोशहीनोऽपि पार्थिवः१४८

(१४८) मन्त्रियों के अतिरिक्त अन्य लोग मित्रता करने पर भी जिस राजा की मन्त्रणा को नहीं जान सकते हैं वह राजा निर्धन होने पर भी पृथ्वी पर राज्य कर सकता है।

जडमूकान्धबधिरांस्तैर्यग्योनान्वयोतिगान्।
स्त्रीम्लेच्छव्याधितव्यङ्गान्मन्त्रकालेऽपसारयेत् ॥१४९॥

(१४९) विक्षिप्त (बावला), गूँगा नेत्रहीन (अन्धा),

बधिर (बहरा), पक्षी, वृद्ध (अर्थात् ८० वर्ष से अधिक आयु का), म्लेच्छ स्त्री, रोगी, अंगहीन इन सब को मन्त्रणा के समय अपने समीप न रक्खे।

भिन्दन्त्यवमता मन्त्रं तैर्यग्योनास्तथैव च ।
स्त्रियश्चैव विशेषेण तस्मात्तत्रादृतो भवेत् ॥१५०॥

(१५०) यह सब पूर्वजन्म के पाप से ऐसे हुये हैं, अतएव समय पाकर भेद को प्रकट कर देते हैं। पक्षी, वृद्ध तथा स्त्री इनकी बुद्धि स्थिर नहीं रहती जिससे यह भी भेद का प्रकट कर देते हैं। अतः यह लोग राज्य-प्रबन्ध की मन्त्रणा के समय समीप न रहने पावें।

मध्यंदिनेऽर्धरात्रे वा विश्रान्तो विगतक्लमः ।
चिन्तयेद्धर्मकामार्थांसार्धं तैरेक एव वा ॥ १५१॥

(१५१) दोपहर दिन अथवा आधी रात्रि के समय निश्चिन्त तथा शान्ति से मन्त्रियों के साथ या स्वयं (अकेला) ही कर्म और अर्थ का विचार करे।

परस्परविरुद्धानां तेषां च समुपार्जनम् ।
कन्यानां संप्रदानं च कुमाराणां च रक्षणम्॥१५२॥

(१५२) धन की प्राप्ति के लिये ऐसे उपाय सोचे कि जिसमें धर्म, अर्थ, काम जिनका परस्पर विरोध है—का धन हो। अपने कार्य की सिद्धि के लिये कन्या को दान व नीतिशास्त्रानुसार विद्याध्ययनार्थ कुमारों की रक्षा, इन बातों का भी विचार करे।

दूतसंप्रेषणं चैव कार्यशेषं तथैव च ।
अन्तःपुरप्रचारं च प्रणिधीनां च चेष्टितम् ॥१५३॥

(१५३) दूत भेजना, शेष कार्य्य, नगर के भीतर का

वृत्तान्त व व्यवहार, राजाओं का वृत्तान्त लाने वाले की हृदयेच्छा जनना, इन सब बातों पर भी विचार करे।

कृत्स्नं चाष्टविधिं कर्म पञ्चवर्गं च तत्त्वतः ।
अनुरागापरागौ च प्रचरं मण्डलस्य च ॥ १५४ ॥

(१५४) ॐ (१) आठ कर्म तथा सिद्धान्त से (२) पंच वर्ग को भी विचारे दूसरे राजाओं और अपने मन्त्रियों की प्रीति व शत्रुता को जान कर उसका उपाय करे।

मध्यमस्य प्रचचरं च विजिगीषोश्च चेष्टितम् ।
उदासीनप्रसारं च शत्रोश्चैव प्रयत्नतः । १५५।

(१५५) शत्रु शत्रु से विजय प्राप्त करने का इच्छुक, (१) मध्यम तथा (२) उदासीन इन चारों की हार्दिक इच्छा का ज्ञान प्राप्त करे और विचारे।

ॐ आठ कर्म यह है-(१) प्रजा से कर लेना (२) कर्मचारियों को उचित समय पर वेतन देना (३) धर्म व संसार के करने योग्य कर्मों का करना, (४) त्याग योग्य कर्मों का त्यागना तथा प्रत्येक कार्य के लिये मन्त्रियों को आज्ञा देना (५) व्यवहार देखना, (६) जो व्यवहार विरुद्ध करे उससे शास्त्रानुसार अर्थदण्ड लेना, (७) जिन लोगों ने अपने दान, आश्रम, धर्म को परित्याग कर दिया है उनको फिर दान, आश्रम, धर्म को ठीक व उचित रीति पर कराने के लिये प्रायश्चित्त कराना (८) यदि प्रायश्चित्त द्वारा पतित शुद्ध न किये जावें तो एक दिन सब मनुष्य दान, आश्रम, धर्म से पतित होकर अनाचारी हो जावेंगे अतएव राजा को पतितोद्धार पर अधिक ध्यान देना चाहिये।

२—पंच वर्ग यह है-१ जो पुरुष दूसरों की हार्दिक बातों का ज्ञाता, स्पष्ट वक्ता, कपटी है यदि ऐसा पुरुष जीविकार्थ आवे तो उसकी योग्यता नुसार धन वस्त्रादि देकर एकान्त में उससे कहे

अनन्तरमरिं विद्यादरिसेविनमेव च ।
अरेरनन्यरं मित्रमुदासीनं तयोः परम् ॥ १५८ ॥

(१५८) अपने राज्य के सम्मुख का राजा शत्रु और उसका सेवन भी शत्रु है, उस शत्रु राजा से परे के देश का राजा मित्र है तथा मित्र राजा के राज्य से परे के देश का राजा उदासीन है ।

तान्सर्वानभिसंदध्यात्सामादिभिरुपक्रमैः ।
व्यस्तैश्चैव समस्तैश्च पौरुषेण नयेन च ॥ १५६ ॥

(१५६) इन सब राजाओं को साम आदि चारों उपायों में से जैसा अवसर हो एक-एक या चारों के द्वारा तथा अपनी सेना व पौरुष द्वारा अपनी अधीनता में करना चाहिये ।

सन्धिं च विग्रहं चैव यानमासममेव च ।
द्वैधीभावं संश्रयं च षड्गुणांश्चिन्तयेत्सदा॥१६०॥

(१६०) १—सन्धि, २—विग्रह, ३—शत्रु पर चढ़ाई, ४—विश्राम, ५—भेद, तथा ६—बलवान् राजा का आश्रय गृहण करना, इन छः बातों पर सदैव विचार करना चाहिये !

तात्पर्य को कहेंगे ।
यह पांचों यथाक्रम कापटिक अस्थित गृहपति, वैदिक तथा तापस कहलाते हैं, अतएव इन साधनों से अपना कार्य सिद्ध करे ।

१—जो राजा शत्रु तथा शत्रु पर विजय प्राप्त करने के इच्छुक राजाओं के मध्य में राज करता हो उसे मध्यम कहते हैं और इन दोनों राजाओं में सन्धि व बिगृह करा देने की सामर्थ्य रखता हो

२—उदासीन वह है जो शत्रु शत्रु जय का इच्छुक तथा मध्यम इन तीनों राजाओं में सन्धि वा विगृह करा देने की सामर्थ्य रखता हो ।

३—आठ शाखा प्रकृति यह हैं—१ शत्रु के राज्य के मित्र,

आसनं चैव यानं च संधिं विग्रहमेव च ।
कार्यं वीक्ष्य प्रयुञ्जीत द्वैधं संश्रयमेव च ॥ १६१ ॥

(१६१) इन छहों कार्यों के अतिरिक्त कार्यों को देख कर समयानुसार काम करे।

संधिं तु द्विविधं विद्याद्राजा विग्रहमेव च ।
उभे यानासने चैव द्विविधः संश्रयः स्मृतः ॥१६२॥

(१६२) सन्धि, विग्रह, चढाई, विश्राम, भेद, शरण लेना यह छः बातें दो दो प्रकार की है।

समानयानकर्मा च विपरीतस्तथैव च ।
तदात्वायतिसंयुक्तः संधिर्ज्ञेयो द्विलक्षणः ॥ १६३ ॥

(१६३) उसी समय व भविष्य में फल-प्राप्ति के अर्थ एक राजा के साथ दूसरे राजा पर चढाई करना यह समान-यान नाम सन्धि कहाती है और यदि परस्पर यह प्रतिज्ञा करके कि तुम वहाँ जावोगे तो हम भी जावेंगे सन्धि करे तो वह आकाश-यान नाम सन्धि है।

स्वयंकृतश्च कार्यार्थमकाले काल एव वा ।
मित्रस्य चैवापकृते द्विविधो विग्रहः स्मृतः ॥ १६४ ॥

(१६४) समय पर व असमय पर अपनी इच्छा से बिगाड़ करना यह प्रथम विग्रह हुआ, तथा मित्र का अपमान देख अपमानकर्त्ता से विग्रह करना यह द्वितीय यह विग्रह हुआ।

---

* २ शत्रु का मित्र, ३ मित्र का मित्र, ४ शत्रु के मित्र का मित्र, पार्ष्णिग्राह, ६ क्रन्द पार्ष्णिग्राह ७ असार, ८ क्रन्द असार।

एकाकिनश्चात्ययिके कार्ये प्राप्ते यदृच्छया ।
संहतस्य च मित्रेण द्विविधं यानमुच्यते ॥१५६॥

(१६५) ❀ आवश्यक कार्य-प्राप्ति के समय स्वच्छा से शत्रु पर चढ़ाई करना यह प्रथम चढ़ाई हुई, तथा मित्र के सहायतार्थ चढ़ाई करना यह दूसरी चढ़ाई हुई।

क्षीणस्य चैव क्रमशो दैवात्पूर्वकृतेन वा ।
मित्रस्य चानुरोधेन द्विविधं स्मृतमासनम् ॥१६६॥

(१६६) पूर्व जन्म के पाप से व इस जन्म के पाप से हाथी, घोड़ा, धनादि नष्ट हो जाने के समय दूसरे राजा पर चढ़ाई न करे चाहे धन, हाथी घोड़ा आदि सामग्री अपने पास उपस्थित हो, तथा जाने में मित्र की रक्षा नहीं हो सकती हो तो उसके हेतु न जाना चाहिये यह दो प्रकार का विश्राम है।

बलस्य स्वामिनश्चैव स्थितिः कार्यार्थसिद्धये ।
द्विविधं कीर्त्यते द्वैधं षाड्गुण्यगुणवेदिभिः ॥१६७॥

(१६७) अपनी कार्य सिद्ध के लिये हाथी, घोड़ा आदि व सेनापति को शत्रु के किये हुए उपद्रव मिटाने के निमित्त एक स्थान पर स्थित रखना यह पहला भेद हुआ तथा दुर्ग में प्रधान कर्मचारियों और सब सेना सहित स्थित रहना यह दूसरा दूसरा भेद हुआ।

अर्थसंपादनार्थं च पीड्यमानस्य शत्रुभिः ।
साधुषु व्यपदेशार्थं द्विविधं संश्रयः स्मृतः ॥१६८॥

❀ धर्मशास्त्र में आवश्यक से यह तात्पर्य है कि जब दूसरा राजा प्रजा को कष्ट दे तथा इनको स्पष्ट करना चाहे तब अपनी पूजा के धर्म आदि की रक्षा करे।

(१६८) शत्रु से दुखी न हो व शत्रु से दुःख न होने पावे इन दोनों लाभों के अर्थ बलवान राजा की शरण लेना यह दो प्रकार की शरण है।

यदावगच्छेदायत्यामाधिक्यं ध्रुवमात्मनः ।
तदात्वे चाल्पिकां पीडां तदा सन्धि ॥१६९॥

(१६९) सब लड़ाई के पश्चात् अपनी लड़ाई को अटल जाने और थोड़े ही धन जन आदि की हानि देखे तब सन्धि करे

अपनी सेना को दो भागों में विभाजित करे अर्थात् कुछ सेना लेकर आप दुर्ग में रहे व कुछ सेना को रण क्षेत्र में युद्धार्थ भेजे इस प्रकार अपना कार्य सिद्ध करे।

यदा परबलानां तु गमनीयतमो भवेत् ।
तदा तु संश्रयेत्क्षिप्रं धार्मिकं बलिनं नृपम् ॥१७४॥

(१७४) जब जाने कि शत्रु से पराङ् मुख होंगे तब शीघ्रता में बलवान् धर्मात्मा राजा को शरण ग्रहण करे।

निग्रहं प्रकृतीनां च कुर्याद्योऽरिबलस्य च ।
उपसेवेत तं नित्यं सर्वयत्नैर्गुरुं यथा ॥ १७५ ॥

(१७५) जिस राजा को शत्रु की प्रकृति तथा सेना को अधीन कर वश में रखने की सामर्थ्य हो उसकी सेवा सदैव गुरु की नाईं करे।

यदि तत्रापि संपश्येद्दोषं संश्रयकारितम् ।
सुयुद्धमेव तत्रापि निर्विशङ्कः समाचरेत् ॥ १७६ ॥

(१७६) जब शरण लेने में भी कुछ हानि समझे तब शङ्का को परे हटा सुयुद्ध करे।

सर्वोपायैस्तथा कुर्यान्नीतिज्ञः पृथिवीपतिः ।
यथास्याभ्यधिका न स्युर्मित्रोदासीनशत्रवः ॥ १७७॥

(१५७) लोगों की सम्मति के ज्ञाता राजा को चाहिये कि इस भाँत प्रबन्ध करे जिसमें मित्र, शत्रु व सामान्य मनुष्य राजा से बलवान् न हो जावें।

आयतिं सर्वकार्याणां तदात्वं च विचारयेत् ।
अतीतानां च सर्वेषां गुणदोषौ च तत्त्वतः ॥१७८॥

(१७८) जिन सब कार्यों का दोष, गुण भूत, भविष्यत् वर्तमान काल से सम्बन्ध रखने वाला हो उन सब का उत्तम रीति से विचारे।

आयत्यां गुणदोषज्ञस्तदात्वे क्षिप्रनिश्चयः ।
अतीते कार्यशेषज्ञः शत्रुभिर्नाभिभूयते ॥१७९॥

(१७९) ऐसा विचार करने वाला राजा शत्रुओं से कभी दुःख व पीड़ा नहीं पाता।

यथैनं नाभिसंदध्युर्मित्रोदासीनशत्रवः ।
तथा सर्वं संविदध्यादेव सामासिको नयः ॥१८०॥

(१८०) सारी रीति से मुख्य तात्पर्य यह है कि शत्रु मित्र तथा उदासीन यह सब पीड़ा व हानि न पहुँचा सकें ऐसा उपाय करे।

यदा तु यानमातिष्ठेदरिराष्ट्रं प्रति प्रभुः ।
तदानेन विधानेन यायादरिपुरं शनैः ॥१८१॥

(१८१) जब शत्रु-राज्य के ऊपर जाने की इच्छा हो तब आगामी श्लोक में वर्णित उपाय के अनुसार धीरे २ शत्रु के नगर जावे।

मार्गशीर्षे शुभे मासि यायाद्यात्रां महीपतिः ।
फाल्गुनं वाऽथ चैत्रं वा मासौ प्रति यथाबलम् १८२

(१८२) राजा शुभ मास मार्गशीर्ष (अगहन) में शत्रु पर चढ़ाई करे अथवा फाल्गुन वा चैत्र में अपनी सेना के बलानुसार चढ़ाई करे।

अन्येष्वपि तु कालेषु यदा पश्येद् ध्रुवं जयम् ।
तदा यायाद्विगृह्यैव व्यसने चोत्थिते रिपोः ॥१८३॥

(१८३) दूसरे समय में भी जब विजय-प्राप्ति का पूर्ण विश्वाश हो तब चढ़ाई करे तथा जब शत्रु के ऊपर दुःख हो तब भी चढ़ाई करे।

कृत्वा विधानं मूले तु यात्रिकं च यथाविधि।
उपगृह्यास्पदं चैव चारान्सम्यग्विधाय च ॥१८४॥

(१८४) अपने देश की रक्षा का प्रबन्ध करके यथाविधि चढ़ाई के समायिक कार्यों को करे (अर्थात् सवारी, अन्न शस्त्र कवच आदि सामग्री का ठीक करके साथ लेकर शत्रु के देश में जाके जिससे अपनी स्थिति हो उसको लेकर, शत्रु के सेवकों को अपने वश में कर शत्रु के देश का वृत्तान्त ज्ञात करने के अभिप्राय से चार प्रकार के चरों (दूतों) को भेजे।

संशोध्य त्रिविधं मार्गं षड्विधं च बलं स्वकम्।
सांपरायिककल्पेन यायादरिपुरं शनैः ॥ १८५ ॥

(१८५) ॐ तीन प्रकार के जो मार्ग हैं (अर्थात् जांगल अनूप, अनटक) इनका संशोधन करके (अर्थात् वृक्षादि काट कर तथा ऊँची नीची भूमि सम करके) छः प्रकार के जो बल हैं (अर्थात् हाथी, घोड़ा, रथ, पैदल, सेना शिल्पी) उनको भोजन व औषधी तथा शिल्पी आदि से सुसज्जित कर उत्तम रीति से शीघ्र ही युद्ध में शत्रु के नगर में जावे।

ॐ उपरोक्त रीति से ज्ञान होता है कि भारतवर्ष में प्रवीन समय में युद्ध विद्या में इतनी उन्ननत थी कि प्रत्येक अवसर के लिये पृथक् २ व्यूह रचना होती थी। जो भारतवासी आजकल निर्बल हो गये हैं वे वैदिक धर्म काल में युद्ध विद्याविशारद तथा शक्ति सम्पन्न थे। यद्यपि वर्तमान समय में अधःपतित होगये हैं परन्त वेद धर्म के प्रचार से फिर भी जगद्गुरु बन सकते हैं।

शत्रुसेविनि मित्रे च गूढे युक्ततरो भवेत् ।
गतप्रत्यागते चैव स हि कष्टतरो रिपुः ॥ १८६ ॥

(१८६) अपना मित्र जो गुप्तरीति से शत्रु की सेवा करता है वा अपने सेवक आदि जो अपने यहाँ से निकल कर द्वितीय वार आकर कार्य सम्पादक करते हों उन दोनों से सचेष्ट (होसियार) रहना चाहिये, क्योंकि उनका उठाया उपद्रव कठिनता शान्त होता है ।

दण्डव्यूहेन तन्मार्गं यायात्तु शकटेन व ।
वराहमकराभ्यां व सूच्या वा गरुडेन वा । १८७ ।

(१८७) दण्ड, शकट, वराह, कमर, सूची व गरुड़ व्यूह वनाकर सेना का संचालन करे (अर्थात् जव चारो ओर से भय हो तव दण्ड व्यूह वनावे जव पीछे से भय हो तव शकट व्यूह वनाकर चले, जव एक व दोनों पक्ष में भय है तव वराह तथा गरुड़ व्यूह वनाकर सेना चलावे, जव सम्मुख व पृष्ठ भाग में भय हो तव मगर व्यूह वनावे, जव सम्मुख भय हो तव सूची व्यूह वनाकर सेना संचालित करे) ।

यतश्च भयमाशङ्केत्ततो विस्तारयेद वलम् ।
पद्मेन चैव व्यूहेन निविशेत सदा स्वयम् । १८८ ।

(१८८) जिस ओर से भय हो उसी ओर सैना को वढ़ावे,नगर से निकल.कर पद्म व्यूह रच राजा सदैव गुप्त रहे ।

सेनापतिवलाध्यक्षौ सर्वदिक्षु निवेशयेत् ।
यतश्च भयमाशङ्केत्प्राचीं तां कल्पयेद्दिशम् ॥१८९॥

(१८९) सेनापति तथा वलाध्यक्ष को चारों ओर रखना

चाहिये और जिस ओर से भय की आशंका हो उसको पूर्व दिशा जानो।

गुल्मांश्च स्थापयेदाप्तान्कृतसंज्ञान्समंततः।
स्थाने युद्धे च कुशलानभीरूनविकारिणः ॥१६०॥

(१६०) जो गुल्म (सेना का भाग) सेनापति सहित शूरवीर व रणधीर मनुष्यों से संयुक्त हो, विश्राम करने, छावनी डालने, भागने व युद्ध करने के लिये भेरी, शङ्ख आदि विकारियों के सैन को समझाता हो और विश्राम व युद्ध में सचेष्ट तथा भय व राजद्रोह शून्य हो ऐसे सेना भाग को सब दिशाओं में दूर-दूर पर शत्रु को रोकने और उसकी हार्दिक इच्छा का ज्ञान प्राप्त करने के हेतु आज्ञा देवै।

संहतान्योधयेदल्पान्कामं विस्तारयेद्बहून्।
सूच्या वज्रेण चैवैतान्व्यूहेन व्यूह्य योजयेत् ॥१६१॥

(१६१) सेना थोड़ी होवे तो सम्मुख युद्ध करे तथा अधिक हो तो इच्छानुसार सेना विभाजित करके युद्ध करे (१) सूची व्यूह व (२) वज्र व्यूह रच कर युद्ध करे।

स्यन्दनाश्वैः समे युद्ध्येदनूपे नोद्विपैस्तथा।
वृक्षगुल्मावृते चापैरसिचर्मायुधैः स्थले ॥१६२॥

(१६२) सम भूमि में रथ व घोड़ा द्वारा युद्ध करे जल-पूरित भूमि में नाव व हाथी द्वारा वृक्ष के झाड़ी वाली पृथिवी पर धनुष बाण द्वारा तथा संशोधित भूमि में ढाल तलवार द्वारा युद्ध करे।

---

(१४२) यह एक प्रकार की सैनिक कवायद है और पंक्ति बांधन की विधि है।

कुरुक्षेत्रांश्च मत्स्यांश्च पञ्चालाञ्शूरसेनजान् ।
दीर्घांल्लघूंश्चैव नरानग्रानीकेषु योजयेत् ॥१९३॥

(१९३) ＋ कुरुक्षेत्र, मत्स्य, पंचाल, शूरसेन इन देशों में जो मनुष्य छोटे व बड़े उत्पन्न हुये हों उनको सम्मुख करके युद्ध करे, क्योंकि यह लोग साहसी होते हैं।

प्रहर्षयेद्बलं व्यूह्य तांश्च सम्यक्परीक्षयेत् ।
चेष्टाश्चैव विजानीयादरीन्योधयतामपि ॥१९४॥

(१९४) व्यूह रचकर सेना को प्रसन्न करे तथा उस सैन्यदल की भली भाँति परीक्षा लेवे, शत्रु के सम्मुख युद्ध करते हुए सेना की दशा ज्ञात करे कि सेना शत्रु से मिल तो नहीं गई है।

उपरुध्यारिमासीत राष्ट्रं चास्योपपीडयेत् ।
दूषयेच्चास्य सततं यवसान्नोदकेन्धनम् ॥ १९५ ॥

(१९५) शत्रु दुर्ग में रहे वा बाहर रहे तथा युद्ध भी न करता हो परन्तु उसे घेरे रहे और उसके ＋ राज्य को पीड़ा पहुँचावे, घास लकड़ी व जल इनमें व्यर्थ पदार्थों को डाल कर नष्ट करे।

भिन्द्याच्चैव तड़ागानि प्राकारपरिखास्तथा ।
समवस्कन्दयेच्चैनं रात्रौ वित्रासयेत्तथा ॥ १९६ ॥

(१९६) ताल, दुर्गप्राकार, परिखा (खाई), इन सब

＋ यह श्लोक बहुत समय पश्चात् सम्मिलित किया गया है क्योंकि कुरुक्षेत्र में कौरवों के पीछे बना है तथा मनुजी उस समय से पहले हुए हैं।

＋ यह उपदेश लालची राजाओं के हित से सम्मिलित कियागया है वरन् राजा को लड़ाई में प्रजा को दुःख देना बहुत बड़ा पाप है

को नष्ट भ्रष्ट कर दे तथा निर्भयशत्रु को भयभीत करे और बरछी लेकर रात्रि को डहका नाम बाजे के शब्द से अति दुःख दे

उपजप्यानुपजपेद्बुध्येतैव च तत्कृतम् ।
युक्ते च दैवे युध्येत जयप्रेप्सुरपेतभीः ॥ १९७ ॥

(१९७) जो लोग (सचिव आदि) राजा के कुल में राज्य प्राप्ति के इच्छुक हैं उनको तोड़ फोड़ से मिलाकर अपने वश में करे तथा उनको निज अनुभव के द्वारा जानेकि वश में हुए वा नहीं। जय का इच्छुक राजा निःशंक हो जब सब गृह-अच्छी हो तब युद्ध करे

साम्ना दानेन भेदेन समस्तैरथवा पृथक् ।
विजेतुं प्रयतेतारीन्न युद्धेन कदाचन ॥ ॥ १९८ ॥

(१९८) साम, दाम, भेद इनमें से पृथक् २ व तीनों द्वारा ही न करे।

अनित्यो विजयो यस्माद्दृश्यते युध्यमानयोः ।
पराजयश्च संग्रामे तस्माद्युद्धं विवर्जयेत् ॥१९९॥

(१९९) क्योंकि युद्ध में जय भी होती है और पराजय भी अतएव यथा साध्य युद्ध को टालना चाहिये।

त्रयाणामप्युपायानां पूर्वोक्तानामसम्भवे ।
तथा युध्येत संपन्नो विजयेत रिपून्यथा ॥ २०० ॥

(२००) जब साम, दाम, भेद से काम न चले तब ऐसी विधि से युद्ध करे कि जिसमें विजय अवश्यमेव प्राप्त हो।

जित्वा संपूजयेद्देवान्ब्राह्मणांश्चैव धार्मिकान् ।
प्रदद्यात्परिहारांश्च ख्यापयेदभयानि च ॥ २ ॥

(२०१) विजय प्राप्त करने के पश्चात् देवताओं, धर्मात्मा ब्राह्मणों का पूजन करे, सोना आदि विजय द्वारा प्राप्त वस्तुओं को देवताओं व ऋषियों के लिये संकल्प करके उस देशवासियों का क्षमारूप देवे और सब मनुष्यों को निर्भय कर दे।

सर्वेषां तु विदित्वैषां समासेन चिकीर्षितम् ।
स्थापयेत्तत्र तद्वंश्यं कुर्याच्च समयक्रियाम् ॥२०२॥

(२०२) सब की सम्मति पाकर उस राजा के वश में जो हो उसको उसी के स्थान पर राजा बनावे, तथा उस राजा व उसके मन्त्रियों को यह उपदेश कर दे कि तुम ऐसा करना ऐसा न करना।

प्रमाणानि च कुर्वीत तेषां धर्म्यान्यथोदितान् ।
रत्नैश्च पूजयेदेनं प्रधानपुरुषैः सह ॥ २०३ ॥

(२०३) उनका जो आचार शास्त्रानुसार धर्मानुकूल है उसको प्रदान करे तथा प्रधान पुरुषों सहित रत्नों से राजा का पूजन करे।

आदानमप्रियकरं दानं च प्रियकारकम् ।
अभीप्सितानामर्थानां काले युक्तं प्रशस्यते ॥ २०४ ॥

(२०४) यद्यपि प्रिय वस्तुओं का लेना कष्ट देने वाला है, तथा देना इच्छित सुख का देने वाला है यह बात संसार-व्यापी है, तथापि विशेष समय पर देना व लेना अच्छा होता है, अतः उस समय + दान ही करना चाहिये।

+ क्षत्रिय लोग प्रत्येक हर्ष कार्य में दान करें और धर्म का ध्यान रखें तो देश में धर्म बराबर चल सकता है।

सर्वं कर्मेदमायत्तं विधाने दैवमानुषे ।
तयोर्दैवमचिन्त्यं तु मानुषे विद्यते क्रिया ॥२०५॥

(२०५) १ दैवकर्म व २ मानुषकर्म इन दोनों कर्मो के अधीन करने योग्य जो पदार्थ हैं उनमे दैवकर्म तो अचिन्त्य है परन्तु मानुष कर्म मे विचार है अर्थात् इस जन्म मे जो कार्य करे उसा पूर्णतया समझ कर करे।

सह वापि व्रजेद्युक्तः सन्धिं कृत्वा प्रयत्नतः ।
मित्रं हिरण्यं भूमिं वा सपश्यंस्त्रिविधं फलम् ॥ २०६

(२०६) इस विधि से युद्ध करे तथा यदि वह राजा सन्धि करे तो यात्रा का फल अर्थात् सोना, भूमि, मित्र आदि की प्राप्ति देख कर उसके साथ मिलाप करे।

पार्ष्णिग्राहं च सप्रेक्ष्य तथाक्रन्दं च मण्डले ।
मित्रादथाप्यमित्राद्वा यात्राफलमवाप्नुयात् ॥ २०७ ॥

(२०७) राज-मण्डल मे (३) पार्ष्णिग्राह तथा (४) क्रन्द इन दोनों राजाओं की सम्पति से यात्रा करे। इन दोनों की सम्पति विना यात्रा करने से भय की आशा का है कि ये दोनों

---

(१) पूर्व (पिछले) जन्म में जो पाप व पुण्य किये हैं वह दैवकर्म कहाते हैं।

(२) इस लोक में जो पाप पुण्य किये हैं वह मनुष्य कर्म कहाते हैं।

(३) पार्ष्णिगाह वह राजा है जो पीछे रहता है।

(४) क्रन्द वह राजा है जो उस पार्ष्णिगाह की सम्मति के अनुसार कार्य करता हो जो कि अपने निर्देश (इशारे) के विरुद्ध काम करता है।

उपद्रव करेंगे अतः ससम्मति लेकर यात्रा करने से मित्र व शत्रु से यात्रा का फल मिलता है।

हिरण्यभूमिसंप्राप्त्या पार्थिवो न तथैधते।
यथा मित्रं ध्रुवं लब्ध्वा कृशमप्यायतिक्षमम् ॥२०८॥

(२०८) वर्तमान समय में अल्प सामर्थ्य वाला मित्र तथा भविष्य में उन्नत व स्थिर चित्त मित्र को पाकर जैसी उन्नति पाता है वैसी उन्नति सोना, भूमिके पाने से नहीं पाता।

धर्मज्ञं च कृतज्ञं चतुष्टप्रकृति मेव च।
अनुरक्तं स्थिरारम्भं लघु मित्रं प्रशस्यते ॥ २०९ ॥

(२०९) धर्मज्ञाता, कृतज्ञ, दूरदर्शी, उत्तम प्रकृति वाला अनुरक्त मित्र बहुत ही प्रशंसनीय है, क्योंकि उसी से लाभ की सम्भावना है।

प्राज्ञं कुलीनं शूरं च दक्षं दातारमेव च।
प्राज्ञं च धृतिमन्तं च कष्टमाहुररिं बुधाः ॥२१०॥

(२१०) जो शत्रु पण्डित, कुलवान्, शूरवीर, दक्ष, (चतुर), दाता, उपकारज्ञाता तथा धीर है वह अति कठिन है अर्थात् वह वश में नहीं आसकता, यह पण्डितों ने कहा है।

आर्यता पुरुषज्ञानं शौर्यं करुणवेदिता।
स्थौललक्ष्यं च सततमुदासीनगुणोदयः ॥ २११ ॥

(२११) जो राजा उदासीन, साधु, बहुज्ञात, शौर्यशाली कृपालु तथा प्रत्येक समय अति दाता होवे उसकी शरण में शत्रु से युद्ध करे।

क्षेम्यां सस्यप्रदां नित्य पशुवृद्धिकरीमपि।
परित्यजेन्नृपो भूमिमात्मार्थमविचारयन् ॥ २१२ ॥

(२१२) जो भूमि निर्दोष, उपजाऊ तथा पशुओं की वृद्धि करने वाली है यदि उसको विना परित्याग किये आत्मा की रक्षा न हो सकती हो तो उस भूमि को विना सोच विचार किये निज आत्मा के रक्षार्थ परित्याग कर दे।

आपदर्थे धनं रक्षेद्दारान्रक्षेद्धनैरपि।
आत्मानं सततं रक्षेद्दारैरपि धनैरपि॥ २१३॥

(२१३) + विपत्ति समय के निमित्त धन संचय करें, धन द्वारा स्त्री की रक्षा करे तथा स्त्री व धन द्वारा आत्मा की रक्षा करे।

सह सर्वाः समुत्पन्नाः प्रसमीक्ष्यापदो भृशम्।
संयुक्तांश्च वियुक्तांश्च सर्वोपायान्सृजेद्बुधः॥ २१४॥

(२१४) कोप का धन शून्य होना, प्रकृति का कोप तथा मित्र से शत्रुता एक ही समय पर तीनों कार्य हों तो मोह मोह त्याग साम आदि जो उपाय हैं उनमें से एक २ को वा सब को करे।

उपेतारमुपेयं च सर्वोपायांश्च कृत्स्नशः।
एतत्त्रयं समाश्रित्य प्रयतेतार्थसिद्धये॥ २१५॥

(२१५) १-उपाय, २-उपाय बताने वाला, ३-उपायके द्वारा प्राप्त वस्तु इन तीनों को आशा करके कार्य सिद्ध्यर्थ उपाय करे।

+ इस श्लोक में यह बतलाया गया है कि स्त्री व धन आदि प्रत्येक वस्तु आत्मा के निमित्त है। अतएव आत्मा की रक्षा सब से प्रथम आवश्यक है।

एवं सर्वमिदं राजा सह संमन्त्र्य मन्त्रिभिः ।

व्यायम्याप्लुत्य मध्यान्हे भोक्तुमन्तःपुरंविशेत् ।२१६

(२१६) इस प्रकार इन बातों को सचिवों सहित विचारे तत्पश्चात् व्यायाम करे, तथा दोपहर समय स्नान करके भोजनार्थ राज-मन्दिर में प्रवेश करे ।

तत्रात्मभूतैः कालज्ञैरहार्यैः परिचारकैः ।

सुपरीक्षितमन्नाद्यमद्यान्मन्त्रैर्विषापहैः ॥ २१७ ॥

(२१७) अपने समान कालज्ञाता, धनादि पाकर भेद न खोलने वाला ऐसा जो दूत है तथा विष हरण करने वाला जो मन्त्र है इन सब के द्वारा सुपरीक्षित अन्न को भोजन करे ।

विषघ्नैरगदैश्चास्य सर्वद्रव्याणि योजयेत् ।

विषघ्नानि च रत्नानि नियतो धारयेत्सदा ॥२१८॥

(२१८) विष तथा रोग हरण करने वाली औषधियों को प्रत्येक वस्तु में मिलाना चाहिये । विषहारी रत्नों को सदैव धारण करना उचित है विष मिश्रत अन्न को देखने से चकोर (नाम) पक्षी का नेत्रलाल हो जाता है । अतएव उसको खाद्य पदार्थ दिखला कर परीक्षा लेनी चाहिये ।

परीक्षिताः स्त्रियश्चैनं व्यजनोदकधूपनैः ।

वेषाभरणसंशुद्धाः स्पृशेयुः सुसमाहिताः ॥ २१६ ॥

(२१६) जो स्त्री सुन्दर, आभूषणादि से अलंकृत, शुद्ध हृदय तथा परीक्षित हो वह पखा, पानी, धूप, तथा स्पर्श इन कार्यों को करे ।

एवं प्रयत्नं कुर्वीत यानशय्यासनाशने ।

स्नाने प्रसाधने चैव सर्वालंकारकेषु च ॥ २२० ॥

(२२०) इस विधि से सवारी, शय्या, गद्दी (आसन) स्नान, क्षौर (हजामत) आदि प्रत्येक कार्य बुद्धिमानी से करे।

भुक्तवान्विहरेच्चैव स्त्रीभिरन्तःपुरे सह ।
विहृत्य तु यथाकालं पुनः कार्याणि चिन्तयेत् ।२२१।

(२२१) भोजन करने के पश्चात् अन्त पुर में स्त्रियों के साथ विहार करे, तत्पश्चात् समय पाकर फिर राज्य सम्बन्धी कार्यों की चिन्तना करे।

अलंकृतश्च संपश्येदायुधीयं पुनर्जनम् ।
वाहनानि च सर्वाणि शस्त्राण्याभरणानि च ॥२२२॥

(२२२) तत्पश्चात् अस्त्र शस्त्र तथा राजा योग्य वस्त्रादि से अलंकृत हो मल्ल (पहलवान), सवारी, मन्त्रणागृह, रत्नगृह, वस्त्रगृह का स्वयं निरीक्षण करे।

संध्यां चोपास्य शृणुयादन्तर्वेश्मनि शस्त्रभृत् ।
रहस्याख्यायिकानां चैव प्रणिधीनां च चेष्टितम् ।२२३।

(२२३) सायंकाल को सन्ध्योपासन करके शस्त्रों से अलंकृत हो मित्र तथा रहस्य (गुप्त) की वार्ता करने वालों के योग्य कामों को सुने व विचारे।

गत्वा कक्षान्तरे त्वन्यत्समनुज्ञाप्य तं जनम् ।
प्रविशेद्भजनर्थं च स्त्रीवृतोऽन्तःपुरः पुनः ॥२२४॥

(२२४) दूसरे स्थान पर जाकर वहाँ के पुरुषों के करने योग्य कार्य का निर्देष कर पुनः भोजन करने के हेतु अन्तःपुर, (राजप्रासाद) में प्रवेश करे।

तत्र भुक्त्वा पुनः किंचित्तु र्यघोषैः प्रहर्षितः ।
संविशेत्तु यथाकालमुत्तिष्ठेच्च गतक्लमः ॥२२५॥

(२२५) पश्चात् अन्न भोजन कर सिंह गर्जन से प्रसन्न होकर विश्रामगृह में शयन करे तथा श्रम को दूर कर उचित समय पर निद्रा से उठे।

एतद्विधानमातिष्ठेदरोगः पृथिवीपतिः ।
अस्वस्थः सर्वमेतत्तु भृत्येषु विनियोजयेत् ॥२२६॥

(२२६) जो राजा निरोग हो वह इस विधि से कार्य करे। यदि रोग ग्रसित होवे तो इन सब कार्यों के करने की आज्ञा अपने मन्त्रियों को देवे।

मनुजी के शास्त्रभृगुजी की संहिता का सातवाँ अध्याय समाप्त हुआ।

अष्टमोऽध्यायः ।

व्यवहारान्दिदृक्षुस्तु ब्राह्मणैः सह पार्थिवः ।
मन्त्रज्ञैर्मन्त्रिभिश्चैव विनीतः प्रविशेत्सभाम् । १ ।

(१) राजा, बुद्धिमान् मन्त्री व विद्वान् ब्राह्मण को साथ लेकर सामान्य वस्त्र आभूषण धारण करके न्यायालय में प्रवेश करे

तत्रासीनः स्थितो वापि पाणिमुद्यम्य दक्षिणम् ।
विनीतवेषाभरणः पश्येत्कार्याणि कार्यिणाम् ॥ २ ॥

(२) सभा में बैठकर व खड़े होकर, दाहिना हाथ उठाकर, सामान्यवस्त्र व आभूषण धारण कर राजकर्मचारियों के कार्य का निरीक्षण करे।

प्रत्यहं देशदृष्टैश्च शास्त्रदृष्टैश्च हेतुभिः ।
अष्टादशसु मार्गेषु निबद्धानि पृथक्पृथक् । ३ ।

(३) देशरीति व शास्त्राज्ञा के अनुसार साक्षियों की साक्षी आदि भिन्न २ विधि से पृथक् २ परीक्षा कर अठारह प्रकार के अभियोगों का निर्णय करे ।

तेषामाद्यमृणादानं निक्षेपोऽस्वामिविक्रयः ।
संभूय च समुत्थानं दत्तस्यानपकर्म च । ४ ।

(४) अठारह प्रकार के अभियोग यह हैं-(१) लेनदेन (२) अमानत (३) उस वस्तु को वेचना जिसका कोई स्वामी न हो (४) साझा (५) ऋण लेकर इनकार करना ।

वेतनस्यैव चादानं संविदश्च व्यतिक्रमः ।
क्रयविक्रयानुशयो विवादः स्वामिपालयोः । ५ ।

(५) (६) वेतन तथा परिश्रम का फल न देना (७)प्रण-भंग ८ क्रय विक्रय में वाद विवाद होना (६) स्वामी व सेवक का वाद विवाद

सीमाविवादधर्मश्च पारुष्ये दण्डवाचिके ।
स्तेयं च साहसं चैव स्त्रीसंग्रहणमेव च ॥ ६ ॥

(६) (१०) भूमि सीमा विवाद (११) दूषण देना (१२) मारपीट (१३) गुप्त चोरी (१४) साहस करके धनादि का अप-हरण करना १५ बलपूर्वक स्त्री हरण करना ।

स्त्रीपुन्धर्मो विभागश्च द्यूतमाह्वय एव च ।
पदान्यष्टादशैतानि व्यवहारस्थिताविह ॥ ७ ॥

(७) (१६) स्त्री पुरुष का धर्म, (१७) विभाग(१८) द्यूत

का सभा इस पुस्तक में यह अठारह विवाद मुख्य माने गये हैं और सब प्रकार के विवाद इनमें आ जाते हैं।

एषु स्थानेषु भूयिष्ठं विवादं चरतां नृणाम्।
धर्मं शाश्वतमाश्रित्य कुर्यात्कार्यं विनिर्णयम्। ८।

(८) + राजा सदैव चित्त में धर्म का ध्यान रखकर न्यायालयके कार्यकर्ताओं तथा राजकर्मचारियों के कार्य का ध्यानपूर्वक निरीक्षण करे जिससे वह लोग आलस्य, तथा धनापहरण द्वारा अन्याय कर राजा के न्याय को दूषित न करें।

यदा स्वयं न कुर्यात्तु नृपतिः कार्यदर्शनम्।
तदा नियुञ्ज्याद्विद्वांसं ब्राह्मणं कार्यदर्शने। ९।

(९) जब राजा स्वयं उनका निरीक्षण न करे तब पण्डित ब्राह्मण को उनके निरीक्षण की आज्ञा देवे।

सोऽस्य कार्याणि संपश्येत्सभ्यैरेव त्रिभिर्वृतः।
सभामेव प्रविश्याग्रयामासीनः स्थित एव वा। १०।

(१०) वह ब्राह्मण न्यायालय में बैठकर व खड़ा होकर तीन परामर्शदाताओं के साथ राज्य-कार्य का निरीक्षण करे।

+मनु के मतानुसार नारदस्मृति है कि राजा के सैनिक सभासद धर्मशास्त्र, संरक्षक लेखक, सोना, अग्नि, जल, न्यायालय के कार्यकर्ता हैं इस विषय में बृहस्पति, व व्यास का कथन और देवहार, वाष्र्णे धर्मसूत्र, वृहद् पाराशर स्मृति, मिताक्षरा, शुक्रनीति, मत्स्य पुराण देखने योग्य हैं कि किस २ कार्य पर कौन २ कुल के मनुष्यों को नियत करना चाहिये।

यस्मिन्देशे निषीदन्ति विप्रा वेदविदस्त्रयः ।
राज्ञश्चाधिकृतो विद्वान्ब्राह्मणस्तां सभां विदुः ।११।

(११) जिस देश में एक ब्राह्मण व पण्डित, वेदज्ञाता तीन ब्राह्मणों के साथ विवाद- निर्णय करने के हेतु राजाज्ञानुसार बैठता है उस सभा को ब्रह्माजी की सभा जानना चाहिये ।

धर्मो विद्धस्त्वधर्मेण सभां यत्रोपतिष्ठते ।
शल्यं चास्य न कृन्तन्ति विद्धास्तत्र सभासदः ॥१२॥

(१२) अधर्म से विधा हुआ (अर्थात् अधम मिश्रित] धर्म जिस सभा में रहता है तथा उस सभा के सभासद अधर्म को रोक नहीं सकते हों तो वे सभासद अधर्म से विध गए हैं ।

सभां वा न प्रवेष्टव्यं वा समञ्जसम् ।
अब्रुवन्विब्रुवन्वापि नरो भवति किल्बिषी ॥१३॥

(१३) सभा में जाना न चाहिये, यदि जावे तो सत्य तथा उचित बात कहनी चाहिये । यदि जानकार सत्य न बोले, वरन् उसके विपरीत कहे तो पापी होता है, क्योंकि आत्मा के हनन करने का पाप उसे होता है !

यत्रधर्मोह्यधर्मेण रुद्धः यत्राऽनृतेन च ।
हन्यते प्रेक्षमाणानां हतास्तत्र सभासदः ॥ १४ ॥

(१४) जहाँ सत्य पर असत्य तथा धर्म पर अधर्म विजयी हो सके और देखने वाले इसका विरोध न कर सकते हों मानों उस सभा के सभासद स्वामी सहित मारे गए हैं ।

धर्म एव हतो हन्ति धर्मो रक्षति रक्षितः ।
तस्माद्धर्मो न हन्तव्यो मा नो धर्मो हतोऽवधीत् ।१५।

(१५) धर्म की रक्षा करने से हमारी रक्षा होती है तथा धर्म के नाश से हमारा नाश होता है। अतएव अपने धर्म को कभी नाश न करना चाहिये।

वृषो हि भगवान्धर्मस्तस्य यः कुरुते ह्यलम्।
वृषलं तं विदुर्देवास्तस्माद्धर्मं न लोपयेत् । १६ ।

(१६) भगवान् का जो धर्म है उसको वृष (बैल) कहते हैं अतः जो उसका नाश करता है उसे वृषल कहते हैं। अतएव धर्म का लोप (विनाश) न करना चाहिये।

एक एव सुहृद्धर्मो निधनेऽप्यनुयाति यः।
शरीरेण समं नाशं सर्वमन्यद्धि गच्छति ॥१७॥

(१७) धर्म ही एक मित्र है जो मृत्यु के पश्चात् साथ जाता है। अन्य सब लोग शरीर के नाश के साथ ही सब सम्बन्ध परित्याग कर देते हैं (यद्यपि अधर्म भी मृत्यु के उपरान्त साथ जाता है परन्तु वह मित्र नहीं शत्रु है, हानि ही पहुँचाना उसका काम है)

पादोऽधर्मस्य कर्तारं पादः साक्षिणमृच्छति।
पादः सभासदः सर्वान्पादो राजानमृच्छति ॥ १८ ॥

(१८) अधर्म के चार भाग होते हैं। प्रथम के भागको अधर्मी, द्वितीय भाग को साक्षी, तृतीय भाग को प्रबन्ध न कर सकने वाले सभासद, तथा चतुर्थ भाग को स्वयं राजा पाता है।

राजा भवत्यनेनास्तु मुच्यन्ते च सभासदः।
एनो गच्छति कर्तारं निन्दार्हो यत्र निन्द्यते ॥ १९ ॥

(१९) जहाँ निन्दनीय मनुष्य निन्दा पाते हैं वहाँ राजा

पाप से मुक्त होता है तथा सभासद् लोग भी पापमुक्त रहते हैं। केवल अधर्मी ही को पाप लगता है।

जातिमात्रोपजीवी व कामं स्याद्ब्राह्मणब्रुवः।
धर्मप्रवक्ता नृपतेर्न तु शूद्रः कथंचन ॥ २० ॥

(२०) ※ जो जाति का ब्राह्मण हो परन्तु ब्राह्मण के कर्म न करता हो तथा मूर्ख हो तो भी वह राजा को धर्म उपदेश कर सकता है और शूद्र कैसा ही पण्डित हो परन्तु उपदेश नहीं कर सकता।

यस्य शूद्रस्तु कुरुते राज्ञो धर्मविवेचनम्।
तस्य सीदति तद्राष्ट्रं पङ्के गौरिव पश्यतः ॥ २१ ॥

(२१) जिस राजा के धर्म का विचार शूद्र करता है उस राजा का राज्य उसके देखते ही देखते नाश हो जाता है। जैसे गऊ दलदल मे फँस कर मर जाती है।

यद्राष्ट्रं शूद्रभूयिष्ठं नास्तिकाक्रान्तमद्विजम्।
विनश्यत्याशु तत्कृत्स्नं दुर्भिक्षव्याधिपीडितम् ॥२२॥

(२२) जिस राज्य में शूद्र व नास्तिक अधिक हैं, ब्राह्मण क्षत्रिय तथा वैश्य नहीं हैं वह सारा राज्य दुर्भिक्ष (अकाल) व व्याधि से पीडित हो शीघ्र नाश हो जाता है।

धर्मासनमधिष्ठाय संवीताङ्गः समाहितः।
प्रणम्य लोकपालेभ्यः कार्यदर्शनमाचरेत् ॥ २३ ॥

※ २० वाँ श्लोक सम्मिलित किया हुआ है, क्योंकि ब्राह्मण कोई जाति नहीं है वरन् एक वर्ण है और वर्ण कर्म कर्म से बदलते हैं यह मनुजी का सिद्धान्त है।

(२३) धर्मासन पर बैठकर वस्त्रों से शरीर ठीक एकाग्र चित्त हो लोकपालों को प्रणाम करके कार्य देखना आरम्भ करे।

अर्थानर्थावुभौ बुद्ध्वा धर्माधर्मौ च केवलौ।
वर्णक्रमेण सर्वाणि पश्येत्कार्याणि कार्यिणाम् ॥२४॥

(२४) अर्थ व अनर्थ का प्रमाण लेकर केवल अधर्म का ध्यान करके वर्ण (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य) के क्रमानुसार सब कार्य अकार्य को देखे।

बाह्यैर्विभावयेल्लिङ्गैर्भावमन्तर्गतं नृणाम्।
स्वरवर्णेङ्गिताकारैश्चक्षुषा चेष्टितेन च ॥ २५ ॥

(२५) स्वर, वर्ण, रूप, इंगित, आकार, नेत्र, चेष्टा आदि बाहरी चिन्हों को देखकर मनुष्यों के हृदय की बात को समझे।

आकारैरिङ्गितैर्गत्या चेष्टया भाषितेन च।
नेत्र वक्त्रविकारैश्च गृह्यतेऽन्तर्गतं मनः ॥ २६ ॥

(२६) आकार, इंगित (इशारा), गति, चेष्टा, नेत्र, रूप तथा वाणी इनके द्वारा मनुष्य के हृदय का भाव जाना जाता है।

बालदायादिकं रिक्थं तावद्राजानुपालयेत्।
यावत्सस्यात्समावृत्तो यावच्चातीतशैशवः ॥ २७ ॥

(२७) यदि अनाथ बालक के धन को उसके चचा आदि लेते हों तो राजा उस धन को उस समय तक अपने पास रक्खे जब तक कि उस बालक का समावर्तन कर्म न हो तथा उसका शैशव (लड़कपन) अतीत (व्यतीत) न हो।

वशाऽपुत्रासु चैवं स्याद्रक्षणं निष्कुलासु च ।
पतिव्रतासु च स्त्रीषु विधवास्वातुरासु च ॥२८॥

(२८) बांझ, निर्वंशी व कुल से बहिष्कृत (निकाली हुई), पतिव्रता, विधवा व रोगिणी इन सबकी सम्पत्ति आदि की रक्षा राजा करे जिससे उसे कोई अपहरण न कर सके।

जीवन्तीनां तु तासां ये तद्धरेयुः स्वबान्धवाः ।
ताञ्छिष्याच्चौरदण्डेन धार्मिकः पृथिवीपतिः ॥२९॥

(२९) उपरोक्त सबों की जीवित दशा में उनके धन आदि का यदि उनके सम्बन्धी अपहरण कर लेवें तो धर्मात्मा राजा उस धनादि के हरण करने वाले को चोर की नाईं दण्ड देवे।

प्रणष्टस्वामिकं रिक्थं राजा त्र्यब्दं निधापयेत् ।
अर्वाक् त्र्यब्दाद्धरेत्स्वामी परेण नृपतिर्हरेत् ॥३०॥

(३०) जिस धनका कोई स्वामी नहीं है उस धनकी राजा तीनवर्ष पर्यन्त (१) रक्षा करे। यदि इस समय के अन्तर्गत उनका स्वामी आजावे तो उसकी धन सम्पत्ति उसे सौंप दे। तीन वर्ष की अवधि व्यतीत हो जाने पर उस स्वामी रहित धनादि का (२) स्वामी राजा है।

१—लोग यह समझते हैं कि कोर्ट आफ वार्डस् की रीति अंगरेजों ने प्रचलित की है परन्तु मनुजी ने इसे प्रथम ही लिख दिया है।
२—जो लोग स्वामी हीन धन को राजा के लेने से राज को अपशब्द कहते हैं वे भूल पर हैं। मनुजी के मत से राजा सारी प्रजा का स्वामी है।

ममेदमिति यो ब्रूयात्सोऽनुयोज्यो यथाविधि ।
सवाद्य रूपसंख्यादीन्स्वामी तद्द्रव्यमर्हति ॥३१॥

(३१) जो मनुष्य राजा के सम्मुख जाकर यह कहे कि 'यह वस्तु मेरी है' तो राजा उससे उस वस्तु का रूप तथा संख्या आदि पूछे। यदि वह सप्रमाण सत्य बतला दे तो वह वस्तु उस मनुष्य को दे दे।

अवेदयानो नष्टस्य देशं कालं च तत्त्वतः ।
वर्णं रूपं प्रमाणं च तत्समं दण्डमर्हति ॥ ३२ ॥

(३२) जब उपरोक्त वस्तु की संख्या, रूप, वर्ण, देश व काल सत्य सप्रमाण न बतलावे तो उस वस्तु के समान दण्ड पावे क्योंकि वह अपने असत्य दावे को प्रमाणित न कर सका।

आददीताथ षड्भागं प्रणष्टाधिगतान्नृपः ।
दशमं द्वादशं वापि सतां धर्ममनुस्मरन् ॥३३॥

(३३) उस वस्तु के छठे, दसवें व बारहवें भाग को रक्षा के व्यवार्थ राजा ले ले। सज्जन पुरुषों के धर्म का लक्ष्य कर राजा उस धनादि के स्वामी की अवस्थानुसार उस धनादि का भाग नियत करे।

प्रणष्टाधिगतं द्रव्यं तिष्ठेद्युक्तैरधिष्ठितम् ।
यांस्तत्र चौरान्गृह्णीयात्तान्राजेभेन घातयेत् ॥ ३४ ॥

(३४) पड़ी हुई वस्तु पावे तो उसकी रक्षा सज्जन पुरुषों द्वारा कराके उसे रख तथा राजा उसके चुराने वालों को हाथी से मरवादे।

ममायमितियो ब्रूयान्निधिं सत्येन मानवः ।
तस्याददीत षड्भागं राजा द्वादशमेव वा ।३५।

(३५) जो वस्तु पृथ्वी में गढ़ी है उसको राजा के समीप ले जावे, यदि कोई अन्य पुरुष कहे कि यह वस्तु मेरी है तथा उसके रूप व संख्यादि को यथा तथ्य (ठीक ठीक) सप्रमाण बतलादे तो वह वस्तु वहीं पावे, और उस वस्तु का छठा व बारहवाँ भाग राजा लेवे । राजा उसके स्वामी के विचारानुसार भाग निर्धारित करे ।

अनृतं तु वदन्दण्ड्यः स्ववित्तस्यांशमष्टमम् ।
तस्यैव वा निधानस्य संख्यायाल्पीयसीकलाम् ।३६।

(३६) यदि असत्य बोले तो अपनी वस्तु का आठवाँ भाग दण्ड स्वरूप दे अथवा उस धन की संख्या के अल्प भाग के तुल्य निज धन दण्ड स्वरूप देवे, तथा उपरोक्त धन का निर्धारित भाग उचित समझना चाहिये ।

विद्वांस्तु ब्राह्मणो दृष्ट्वा पूर्वोपनिहितं निधिम् ।
अशेषतोऽप्याददीत सर्वस्याधिपतिर्हि सः ॥ ३७ ॥

(३७) यदि ब्राह्मण पण्डित उस गढ़ी हुई वस्तु को पाजाय तो वह उस धन को लेवे क्योंकि वह सबका स्वामी है। मनुजी विद्वान् ब्राह्मण को सारे संसार का उपदेश होने से सबका स्वामी समझते हैं।

यं तु पश्येन्निधिं राजा पुराणं निहितं क्षितौ ।
तस्माद् द्विजेभ्यो दत्त्वार्धमर्धं कोशे प्रवेशयेत् ॥३८॥

(३८) यदि राजा स्वयं उस गढ़ी हुई वस्तु को पावे तो

आधा भाग × ब्राह्मणों को देवे, शेष आधा भाग अपने कोष में रक्खे।

निधीनां तु पुराणानां धातूनामेव च क्षितौ।
अर्धभाग्रक्षणाद्राजा भूमेरधिपतिर्हि सः ॥३९॥

(३९) गड़े हुए धन के आधे भाग का लेने वाला राजा है, क्योंकि वह रक्षक है तथा सबका स्वामी है।

दातव्यं सर्ववर्णेभ्यो राज्ञा चौरैर्हृतं धनम्।
राजा तदुपयुञ्जानश्चौरस्याप्नोति किल्बिषम् ॥४०॥

(४०) राजा चोर की चुराई वस्तु को लेकर सब वर्णों को देवे (अर्थात् जो उसका स्वामी है उसे देवे)। यदि राजा स्वयं उस वस्तु को लेले तो जो पाप चोर को होता है वह राजा को होवे।

जातिजानपदान्धर्मान्श्रेणीधर्मांश्च धर्मवित्।
समीक्ष्य कुलधर्मांश्च स्वधर्मं प्रतिपादयेत् ॥४१॥

(४१) जातिधर्म, वंशधर्म, सम्प्रदाय आदि धर्म व कुलधर्म इन सब धर्मों की ओर दृष्टिपात कर अपना धर्म निर्धारित करे।

स्वानि कर्माणि कुर्वाणा दूरे सन्तोऽपि मानवाः।
प्रिया भवन्ति लोकस्य स्वे स्वे कर्मण्यवस्थिताः॥४२॥

(४२) अपने धर्म कर्म करने वाले मनुष्य यदि दूर भी रहते हों तो भी लोक (संसार) को प्रिय (प्यारे) होते हैं।

× यहाँ ब्राह्मण से तात्पर्य वेदज्ञाता वहा है किसी जाति विशेष से नहीं।

नोत्पादयेत्स्वयं कार्यं राजा नाप्यस्य पूरुषः ।
न च प्रापितन्मयेन ग्रसेदर्थं कथंचन ॥ ४३ ॥

(४३) राजा व राजकर्मचारी स्वय कार्य को उत्पन्न न करें तथा वादी व प्रति वादी के द्वारा निवेदित कार्य को धन के लोभ से त्याग न करे । (अर्थात् विवाद का निर्णय सत्य तथा न्याय युक्त करे) ।

यथा नयत्सृक्पातैर्मृगस्य मृगयुः पदम् ।
नयेत्तथानुमानेन धर्मस्य नृपतिः पदम् ॥ ४४ ॥

(४४) जिस प्रकार बहेलिया (शिकारी) घाव खाये हुए मृग के शरीर से गिरे हुए रक्त बिन्दुओं द्वारा उसके स्थान का अनुसन्धान पा लेता है उसी प्रकार राजा अनुमान से धर्म पद को प्राप्त करे ।

सत्यमर्थं च संपश्येदात्मानमथ साक्षिणः ।
देश रूपं काल च व्यवहारविधौ स्थितः ॥ ४५ ॥

(४५) राजा विधि व्यवहार पर स्थिति होकर सत्य, तत्वार्थ, आत्मा, साक्षी, देश, काल, रूप इन सबों को देखे ।

सद्भिराचरितं यत्स्याद्धार्मिकैश्च द्विजातिभिः ।
तद्देशकुलजातीनामविरुद्धं प्रकल्पयेत् ॥ ४६ ॥

(४६) धर्मात्मा द्विजों ने जिस धर्म का पालन किया है उस देश, कुल व जाति के अनुसार धर्म को नियत करे ।

अधमर्णार्थसिद्ध्यर्थमुत्तमर्णेन चोदितः ।
दापयेद्धनिकस्यार्थमधमर्णाद्विभावितम् ॥ ४७ ॥

(४७) यदि ऋणदाता ने राजा के सन्मुख अपने दिये

हुये ऋण के विषय में निवेदन किया तथा साक्षी व लेखादि प्रमाणों द्वारा उस ऋण को प्रमाणित कर दिया हो तो राजा उसके धन को ऋणी से दिलादे।

यैर्यैरुपायैरर्थं स्वं प्राप्नुयादुत्तमर्णिकः।
तैस्तैरुपायैः संगृह्य दापयेदधमर्णिकम्॥ ४८॥

(४८) जिस २ उपाय से ऋणदाता अपने धन को प्राप्त कर सके उस उस उपाय से ऋणी को पकड़ कर राजा धन को दिलादे।

धर्मेण व्यवहारेण छलेनाचरितेन च।
प्रयुक्तं साधयेदर्थं पञ्चमेन वलेन च॥ ४९॥

[४९] (१) धर्म (२) व्यवहार [अर्थात् साक्षी लेखादि], (३) छल, (४) आचरण (अर्थात् व्रत उपवास) तथा (५) वल इन पाँच उपायों में से किसी भी उपाय द्वारा अपने दिये हुए धन को प्राप्त करे।

यः स्वयं साधयेदर्थमुत्तमर्णोऽधमर्णिकात्।
न स राज्ञाभियोक्तव्यः स्वकं संसाधयन्धनम्॥५०॥

(५०) जो ऋणदाता अपने धन को ऋणी से अपने उपाय द्वारा स्वयं प्राप्त करता है राजा उसका विरोध न करे कि हमारे सन्मुख अपने ऋण के विषय में निवेदन क्यों नहीं किया, स्वयं अपने उपाय द्वारा क्यों प्राप्त करता है?

अर्थेऽपव्ययमानं तु करणेन विभावितम्।
दापयेद्धनिकस्यार्थं दण्डलेशं च शक्तितः॥ ५१॥

(५१) वाद के निवेदित अभियोग से यदि प्रतिवादी इनकार करे तथा वादी साक्षी व लेख आदि साधनों द्वारा

अपने अभियोग को सत्य प्रमाणित कर दे तो राजा ऋण-दाता के धन को ऋणी से दिलादे और इस असत्यभाषी ऋणी को उसकी शक्ति के अनुसार दण्ड भी देवे।

अपह्नवेऽधमर्णस्य देहीत्युक्तस्य संसदि ।
अभियोक्ता दिशेद्देश्यं करणं वान्यदुद्दिशेत् ॥५२॥

(५२) जो न्यायालय ऋणी से ऋण-परिशोध के अर्थ कहे और ऋणी उस ऋण का लेना न सकारे उस समय ऋण-दाता साक्षी व लेख आदि प्रमाण साधनों को न्यायालय में उपस्थित करे।

अदेश्यं यश्च दिशति निर्दिश्यापह्नुते च यः ।
यश्चाधरोत्तरानर्थान्विगीतान्नावबुध्यते ॥ ५३ ॥

(५३) जिस नगर में प्रतिवादी ने कभी भी वास नहीं किया है परन्तु वादी उस नगर को कहकर तत्पश्चात् कहे कि मैंने उस नगर का नाम नहीं लिया है तो यह वादी सर्वथा आद्यन्त असत्य भाषण करता है।

अपदिश्यापदेश्यं च पुनर्यस्त्वपधावति ।

सम्यक्प्रणिहितं चार्थं पृष्टः सन्नाभिनन्दति ॥ ५४ ॥

(५४) जो ऐसा कहकर कि इसने मेरे हाथ से इतना सोना लिया है तत्पश्चात् यह कहे कि मेरे पुत्र के हाथ से लिया है, तथा न्यायाधीश के प्रश्न का उत्तर नहीं देता है और उसे प्रमाणित नहीं करता है।

असंभाष्ये साक्षिभिश्च देशे संभाषते मिथः ।
निरुच्यमानं प्रश्नं च नेच्छेद्यश्चापि निष्पतेत् ॥५५

(५५) जो एकान्त में साक्षियों से सम्मति करता है

और न्यायाधीश के प्रश्न का उत्तर नहीं देता है, तथा एक बात पर स्थित नहीं रहता है।

ब्रूहीत्युक्तश्च न ब्रूयादुक्तं च न विभावयेत्।
न च पूर्वापरं विद्यात्तस्मादर्थात्स हीयते ॥ ५६ ॥

(५६) न्यायाधीश के आज्ञा देने पर बोलता नहीं है, अपने निवेदित अभियोग को साक्षी व लेख आदि द्वारा प्रमाणित नहीं करता है, जो आदि व अन्त की बात को नहीं जानता है वह सब अपने तात्पर्य की हानि करते हैं।

साक्षिणः सन्ति मेत्युक्त्वा दिशेत्युक्तो दिशेन्न यः।
धर्मस्थः कारणैरेतैर्हीनं तमपि निर्दिशेत् ॥ ५७ ॥

(५७) हमारे साक्षी हैं ऐसा कहने पर भी जो साक्षियों को उपस्थित नहीं करता है, इन कारणों से न्यायाधीश उसको पराजित समझे।

अभियोक्ता न चेद्ब्रूयाद्वध्यो दण्ड्यश्च धर्मतः।
न चेत्त्रिपक्षात्प्रब्रूयाद्धर्मं प्रति पराजितः। ५८।

(५८) जो वादी न्यायाधीश के सम्मुख तो कहता है परन्तु प्रतिवादी के सम्मुख मूक रहता है वह व्यवहार का झूँठा प्रमाणित होकर प्राणदण्ड अथवा अर्थदण्ड के योग्य है।

यो यावन्निह्नुवीतार्थं मिथ्या यावति वा वदेत्।
तौ नृपेण ह्यधर्मज्ञौ दाप्यौ तद्द्विगुणं दमम् ॥५९॥

(५९) जो वादी वा प्रतिवादी जितने धन को मिथ्या बतलावे उतने धन का दुगना दोनों से राजा दण्डस्वरूप लेवे, क्योंकि वह दोनों अधर्मज्ञाता हैं।

पृष्टोऽपव्ययमानस्तु कृतावस्थो धनैषिणा ।
त्र्यवरैः साक्षिभिर्भाव्यो नृपब्राह्मणसन्निधौ ॥ ६० ॥

(६०) जब प्रतिवादी न्यायालय में आकर कहे कि हमने इस ऋणदाता से धन नहीं लिया है तब वादी न्यायाधीश के सम्मुख उपस्थित किये हुए साक्षियों के अतिरिक्त अन्य अधिक साक्षियों द्वारा अपने ऋण देने को प्रमाणित करे।

यादृशा धनिभिः कार्या व्यवहारेषु साक्षिणः ।
तादृशान्संप्रवक्ष्यामि यथावाच्यमृतं च तैः ॥ ६१ ॥

(६१) जो मनुष्य धन व्यवहार सम्बन्धी अभियोगों में साक्षी स्वरूप नियत व उपस्थित होने चाहिये तथा साक्षी लोग जैसी सत्य साक्षी देवें उन सबको कहते हैं—

गृहिणः पुत्रिणो मौलाः क्षत्रविट्शूद्रयोनयः ।
अर्थ्युक्ताः साक्ष्यमर्हन्ति न ये केचिदनापदि ॥ ६२ ॥

(६२) गृहस्थ, सन्तान वाले, व कुलीन क्षत्रिय, वैश्य वा शूद्र जो वादी के पड़ोस में रहने वाले हों वे साक्षी होने चाहिये। अचानक आया हुआ तथा विपत्ति से सताया हुआ साक्षी ठीक नहीं।

आप्ताः सर्वेषु वर्णेषु कार्याः कार्येषु साक्षिणः ।
सर्वधर्मविदोऽलुब्धा विपरीतांस्तु वर्जयेत् ॥ ६३ ॥

(६३) जो मनुष्य सब वर्णों के कार्य में सत्यभाषी, सब धर्मों के ज्ञाता और निर्लोभी हैं वही साक्षी देने योग्य हैं तथा जो उपरोक्त गुण न रखते हों उनको साक्षी न करना चाहिये।

नोर्थसम्बन्धिनो नाप्ता न सहाया न वैरिणः ।
न दृष्टदोषाः कर्तव्या न व्याध्यार्ता न दूषिताः ॥६४॥

(६४) जिस विषय का वाद-विवाद होता है उससे सम्बन्ध रखने वाला, मित्र, सहायक, शत्रु, और जिसका दोष सब स्थानों पर दृष्टिगत हुआ हो, व्याधि-पीड़ित तथा दुष्ट प्रकृति वाला ।

न साक्षी नृपतिः कार्यो न कारुककुशीलवौ ।
न श्रोत्रियो न लिङ्गस्थो न संगेभ्योविनिर्गतः ॥६५॥

(६५) राजा, कारुक (रसोई बनाने वाला), नट आदि, वेदपाठी तथा ब्रह्मचारी आदि जो सग से विलग किया गया है ।

नाध्यधीनो न वक्तव्यो न दस्युर्न विकर्मकृत् ।
न वृद्धो न शिशुर्नैको नान्त्यो न विकलेन्द्रियः ॥६६॥

(६६) सेवक, नीचकर्मी, चोर, विरुद्ध कर्म करने वाला, अस्सी वर्ष से अधिक आयु वाला, सोलह वर्ष से न्यून आयु वाला, एकाकी, चाण्डाल आदि तथा अङ्गहीन ।

नार्तो न मत्तो नोन्मत्तो न क्षुत्तृष्णोपपीडितः ।
न श्रमार्तो न कामार्तो न क्रुद्धो नापि तस्करः ॥६७॥

(६७) दुःखी, मद्यादि से मदमत्त, उन्मत्त वा भूतादि से पीड़ित, क्षुधा प्यास से आर्त, श्रमी, कामपीड़ित, क्रोधी तथा तस्कर (चोर) इन सब को साक्षी न करना चाहिये ।

स्त्रीणां साक्ष्यं स्त्रियः कुर्युर्द्विजानां सदृशा द्विजाः ।
शूद्राश्च सन्तः शूद्राणामन्त्यानामन्त्ययोनयः ॥६८॥

(६८) स्त्रियों की साक्षिणी स्त्रियाँ द्विजों की (अर्थात्

ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य) के साक्षी द्विज, शूद्रों के शूद्र तथा चाण्डालों के साक्षी चाण्डाल हों।

अनुभावी तु यः कश्चित्कुर्यात्साक्ष्यं विवादिनाम्।
अन्तर्वेश्मन्यरण्ये वा शरीरस्यापि चात्यये ॥६९॥

(६९) जिन पुरुषों को वादी प्रतिवादी के अभियोग की वास्तविकता से अनुभव प्राप्त हो यह साक्षी होवें, घर की चोरी, वन की लूट तथा प्राणहत्या के अभियोग में उपरोक्त गुण वाले साक्षियों की आवश्यकता नहीं है। वरन्—

स्त्रियाप्यसंभवे कार्यं बालेन स्थविरेण वा।
शिष्येण बन्धुना वापि दासेन भृतकेनवा। ७०।

(७०) उन तीनों अभियोगों में उल्लिखित गुणों वाले साक्षी न होने पर स्त्री, पुत्र सम्बन्धी, वृद्ध, शिष्य बन्धु, सेवक भृत्य (मजदूर) यह सब भी साक्षी होवें।

बालवृद्धातुराणां च साक्ष्येषु वदतां मृषा।
जानीयादस्थिरां वाचमुत्सिक्तमनसां तथा। ७१।

(७१) * साक्ष्य में बालक वृद्ध, आतुर (दुःखी), उन्मत्त, आदि के कथन को मिथ्या जानना चाहिये।

साहसेषु च सर्वेषु स्तेयसंग्रहणेषु च।
वाग्दण्डयोश्च पारुष्ये न परीक्षेत साक्षिणः ॥ ७२ ॥

---

*साक्षी का सबन्ध स्मरणशक्ति तथा बुद्धि से है अतएव, वृद्ध रोगी, उन्मत्त (पागल) पुरुषों की बुद्धि तथा स्मरणशक्ति ठीक न होने के कारण उनकी गवाही विश्वास योग्य नहीं। बालक का साक्ष्य अल्प बुद्धि तथा न्यायालय में भयभीत हो जाने के कारण प्रमाणिक नहीं।

(७२) साहस में कार्य करना, चोरी, स्त्री का बलात् अपहरण, कुवाच्य कहना (कटु भाषण वा वाग्दण्ड), लाठी आदि से मारना इन अभियोगों में साक्षियों की गवाही विश्वास योग नहीं।

बहुत्वं परिगृह्णीयात्साक्षीद्वैधे नराधिपः।
समेषु तु गुणोत्कृष्टान्गुणिद्वैधे द्विजोत्तमान् ॥७३॥

(७३) जहाँ साक्षियों की साक्ष्य दो प्रकार की हो वह एक प्रकार की एक गवाही के बहुत साक्षियों की गवाही ग्रहण योग्य है। यदि सख्या में समान हैं और दो प्रकार की गवाहियाँ हैं तो वहाँ योग्य तथा उत्कृष्ट गुण वाले साक्षियों का साक्ष्य माननीय है। तथा समान गुण वाले साक्षियों में ब्राह्मण का साक्ष्य प्रमाणिक है।

समक्षदर्शनात्साक्ष्यं श्रवणाच्चैव सिद्ध्यति।
तत्र सत्यं ब्रुवन्साक्षी धर्मार्थाभ्यां न हीयते ॥७४॥

(७४) अपने नेत्रों द्वारा देखा तथा कानों द्वारा सुने हुए में साक्ष्य देना उचित है तथा उसमें सत्य बोलने से धर्म व अर्थ की हानि नहीं होती।

साक्षी दृष्टश्रुतादन्यद्विब्रुवन्नार्य संसदि।
अवाङ्नरकमभ्येति प्रेत्य स्वर्गाच्च हीयते ॥७५॥

(७५) जो मनुष्य सज्जनों की सभा में देखे व सुने के विपरीत साक्ष्य देता है वह आधाशिर किये हुए नरक में जाता है—उसे स्वर्ग प्राप्त नहीं होता।

यत्रानिबद्धोऽपीक्षेत शृणुयाद्वापि किंचन।
दृष्टस्तत्रापि तद्ब्रूयाद्यथादृष्टं यथाश्रुतम् ॥७६॥

(७६) तुम इस में साक्षी हो ऐसा नहीं कहा है तथा उसने अभियोग को वास्तविक दशा को देखा व सुना है यदि वह न्यायालय में बुलाया जावे तो उसने जैसा देखा वा सुना है वैसा ही कहे।

एकोऽलुब्धस्तु साक्षी स्याद्बह्व्यः शुच्योऽपि न स्त्रियः।
स्त्रीबुद्धेरस्थिरत्वात्तु दोषैश्चान्येऽपि येवृत्ताः ॥७७॥

(७७) निर्लोभी एक पुरुष भी साक्षी हो सकता है। परन्तु बहुत सी लोभिणी + स्त्रियाँ साक्षी नहीं हो सकतीं, क्योंकि स्त्रियों की बुद्धि एक दशा में स्थिर नहीं रहती तथा जो मनुष्य दोषयुक्त हैं वह भी साक्षी होने योग्य नहीं हैं।

स्वभावेनैव यद्ब्रूयुस्तद् ग्राह्यं व्यावहारिकम्।
अतो यदन्यद्विब्रूयुर्धर्मार्थं तदपार्थकम् ॥ ७८ ॥

(७८) अपने स्वभाव से जो बात कहे उसे व्यवहार में ग्रहण करना चाहिये (अर्थात् उस बात को मान्य समझ लेखबद्ध करना चाहिये), तथा जो बात सिखलाने से कहे वह व्यर्थ है वह मानने योग्य नहीं है।

सभान्तःसाक्षिणः प्राप्तानर्थिप्रत्यर्थिसन्निधौ।
प्राड्विवाकोऽनुयुञ्जीत विधिना तेन सान्त्वयन् ॥७९॥

(७९) राजाज्ञा से अभियोग का निर्णयकर्ता ब्राह्मण

+ क्योंकि स्त्रियों में भय, लज्जा आदि स्वाभाविक गुण हैं अतः वे गवाही देने में भी इन गुणों से पृथक् नहीं रह सकतीं, जिससे साक्षी की वास्तविकता में सन्देह है। अतएव स्त्रियों की गवाही अविश्वास योग्य निर्धारित व निश्चित की है।

सभा में वादी वा प्रतिवादी की उपस्थित में आगे लिखित विधि से साम उपाय द्वारा साक्षी को आज्ञा दे।

यद्द्वयोरनयोर्वेत्थ कार्येऽस्मिश्चेष्टितं मिथः।

तद्ब्रूत सर्वं सत्येन युष्माकं ह्यत्र साक्षिता। ८०।

(८०) कि वादी तथा प्रतिवादी के उपस्थित अभियोग के सम्बन्ध में अपने नेत्रों देखी हुई अवस्था व वृत्तान्त को जो कुछ तुम जानते हो सब सत्य २ कहो, इस अभियोग में तुम्हारी गवाही है।

वाला परमात्मा तुम्हारे हृदय में स्थित है। उससे विवाद करके अर्थात उसकी आज्ञा को भंग करके गंगा व कुरुक्षेत्र को न जाओ अर्थात् पाप करके गगा व कुरुक्षेत्र जाने से तुम बच नहीं सकते।

नग्नो मुण्डः कपालेन भिक्षार्थी क्षुत्पिपासितः।
अन्धः शत्रुकुलं गच्छेद्यः साक्ष्यमनृतं वदेत्। ९३।

(९३) जो साक्षी असत्य बोले वह नग्न, मूड़ मुड़ाये, क्षुधा व प्यास से पीड़ित व अन्धा होकर भिक्षार्थ कपाल ग्रहण कर शत्रु के कुल में जावे।

अवाक्शिरास्तमस्यन्धे किल्विषी नरकं व्रजेत्।
यः प्रश्नं वितथं ब्रूयात्पृष्टः सन्धर्मनिश्चये। ९४।

(९४) जो पुरुष धर्म के निश्चय करने में किये गये प्रश्न के उत्तर में अनृत भाषण करता है वह पापी अधोशिर हो बहुत ही अंधेरे नरक में जाता है।

अन्धो मत्स्यानिवाश्नाति स नरः कण्टकैः सह।
यो भाषतेऽर्थवैकल्यमप्रत्यक्षं सभां गतः। ९५।

(९५) जो मनुष्य न्यायालय में जाकर के प्रलोभन से असत्य भाषण करता है वह उसी प्रकार दारुण विपत्ति पाता है जैसे अन्धा मनुष्य काँटों वाली मछली खाकर असह्य पीड़ा पाता है।

यस्य विद्वान्हि वदतः क्षेत्रज्ञो नाभिशङ्कते।
तस्मान्न देवाः श्रेयांसं लोकेऽन्यं पुरुषं विदुः। ९६।

(९६) जो मनुष्य बोलते समय अपनी आत्मा का हनन नहीं करता तथा उसकी आत्मा में सन्देह व भ्रम

उत्पन्न नहीं होता—क्योंकि सन्देह व भ्रम सदैव असत्य भाषण के समय उत्पन्न होता है विद्वान् लोग इससे बढ़कर किसी को नहीं जानते।

यावतो बान्धवान्यस्मिन्हन्ति साक्ष्येऽनृतं वदन् ।
तावतः संख्यया तस्मिञ्छृणु सौम्यानुपूर्वशः ॥६७॥

(६७) भृगुजी कहते हैं कि हे ऋषि लोगों ! अनृत साक्ष्य देने से जितने बान्धवों को हनन करता है हम तुम से उनकी संख्या को वर्णन करते हैं।

पञ्च पश्वनृते हन्ति दश हन्ति गवानृते ।
शतमश्वानृते हन्ति सहस्रं पुरुषानृते ॥ ६८ ॥

(६८) यदि पशु के अभियोग में असत्य बोले तो पाँच पुरत, गऊ के अभियोग में असत्य बोले तो दश पुरत, घोड़े के अभियोग में असत्य बोले तो सौ पुरत, मनुष्य के अभियोग में असत्य बोले तो सहस्र पुरत को कलंकित कर देता है।

हन्ति जातानजातांश्च हिरण्यार्थेऽनृतं वदन् ।
सर्वं भूम्यनृते हन्ति मा स्म भूम्यनृतं वदोः ॥६९॥

(६९) सोने के अभियोग में असत्य भाषण करने से जातअजात अर्थात् उत्पन्न हुये और उत्पन्न होने वाले बान्धवों का ॐ हनन करता है। भूमि के अभियोग में असत्य साक्ष्य देने से सबको नाश करता है, अतः भूमि के विषय में गवाही देने में कभी असत्य न बोले।

ॐ मनुजी का तात्पर्य हनन करने से उनकी कीर्ति तथा मान नाश करना है।

अप्सु भूमिवदित्याहुः स्त्रीणां भोगे च मैथुने ।
अब्जेषु चैव रत्नेषु सर्वेष्वश्मयेषु च ॥ १०० ॥

(१००) जल, स्त्री, भोग, मैथुन, मोती रत्न, आदि के अभियोग में भी भूमि समान जानना।

एतान्दोषानवेक्ष्य त्वं सर्वाननृतभाषणे ।
यथाश्रुतं यथादृष्टं सर्वमेवाञ्जसा वद ॥ १०१ ॥

(१०१) × असत्य भाषण में अपनी हानि का ज्ञान लाभकर जैसा अपने को अनुभव तथा ज्ञात हो व जैसा देखा या सुना हो, यथातथ्य बिना मिलाये सत्य २ बोलना चाहिये।

गोरक्षकान्वाणिजिकांस्तथा कारुकुशीलवान् ।
प्रैष्यान्वार्धुषिकांश्चैव विप्रान्शूद्रवदाचरेत् ॥१०२॥

(१०२ गो रक्षा द्वारा निर्वाह करने वाला, वैश्य कर्म करने वाला, अन्य कारुक (पाचक, रसोई बनाने वाला) गायक, दास-कर्म करने वाला, तथा व्यवहार का व्याज लेने वाला जो ब्राह्मण है उसको शूद्र के समान मानना चाहिये।

× मनुजी के मतानुसार असत्य भाषण तथा असत्य साक्ष्य देना सब से बड़ा पाप और इसके कर्ता अपने कुल की कीर्ति तथा मान को समूल नाश कर देते हैं। क्योंकि वर्तमान समय में झूठी गवाही देने वाले अधिक हो गये हैं अतःलोग झूठी गवाही को पाप नहीं समझते परन्तु इस अधर्म ही के कारण देश का सारा सुख व मान नष्ट हो गया।

नोट-श्लोक १०३, १०४ व १०५ पश्चात् के सम्मिलित किए हुए हैं। अन्यथा धर्मशास्त्र किसी भी अवस्था में असत्य बोलने की आज्ञा नहीं देता।

तद्वदन्धमतोऽर्थेषु जानन्नप्यन्यथा नरः ।
न स्वर्गाच्च्यवते लोकाद् दैवीं वाचं वदन्ति ताम् ॥१०३

(१०३) देख व सुनकर भी दया के कारण असत्य भाषण करने वाला स्वर्ग से पतित नहीं होता, उसकी वाणी मन आदि देवता की वाणी के समान समझते हैं।

शूद्रविट्क्षत्रविप्राणां यत्रर्त्तोक्तौ भवेद्वधः ।
तत्र वक्तव्यमनृतं तद्धि सत्याद्विशिष्यते । १०४ ।

(१०४) जहाँ सत्य भाषण से ब्राह्मण, क्षत्रिय वैश्य का हनन होता हो वहाँ असत्य भाषण सत्य से उत्तम है।

वाग्दैवत्यैश्च चरुभिर्यजेरंस्ते सरस्वतीम् ।
अनृतस्यैनसस्तस्य कुर्वाणा निष्कृतिंपराम् । १०५ ।

(१०५) असत्य भाषण कर घर में आकर सरस्वती देवी का यज्ञ करे तब असत्य भाषण के पाप से मुक्त होता है।

कूष्माण्डैर्वापि जुहुयाद् घृतमग्नौ यथाविधि ।
उदित्यृचा वा वारुण्या त्र्यृचेनाब्दैवतेन वा १०६

(१०६) अथवा कूष्माण्ड मन्त्र जो यजुर्वेद में लिखा है उसको पढ़कर व 'उत्तमम्' 'आपोहिष्टा' इन दोनों मन्त्रों में से किसी एक मन्त्र को पढ़कर घी से यथाविधि हवन करे।

त्रिपक्षादब्रुवन्साक्ष्यमृणादिषु नरोऽगदः ।
तदृणं प्राप्नुयात्सर्वं दशबन्धं च सर्वतः ॥ १०७॥

(१०७) ऋणादि के अभियोग में यदि आरोग्य साक्षी तीन पक्ष अर्थात् डेढ़ मास के भीतर कुछ न कहे तो जिस अभियोग में वह साक्षी है उस अभियोग के धन का दसवाँ भाग दण्ड स्वरूप देवे।

यस्य दृश्येत सप्ताहादुक्तवाक्यस्य साक्षिणः ।
रोगोऽग्निर्ज्ञातिमरणं ऋणं दाप्यो दमं च सः ॥१०८॥

(१०८) न्यायालय से कोई साक्षी अपनी गवाही देकर आवे और सात दिवसों के भीतर रोग, अग्निदाह, जाति सम्बन्धी को मृत्यु इनमें से कोई एक दुःख साक्षी को हो तो वह साक्षी उस ऋण को तथा उसके दण्डमास को दण्ड स्वरूप देवे ।

असाक्षिकेषु त्वर्थेषु मिथो विवदमानयोः ।
अविन्दंस्तत्त्वतः सत्यं शपथेनापि लम्भयेत् ॥१०९॥

(१०९) जिस अभियोग में कोई साक्षी नहीं है तथा विचार द्वारा न्यायाधीश उसकी वास्तविकता को नहीं पासकता हो तब निम्नांकित सौगन्ध द्वारा यथार्थ व सत्य वृत्तान्तको पूछे ।

महर्षिभिश्च देवैश्च कार्यार्थं शपथाः कृताः ।
वशिष्ठश्चापि शपथं शेपे पैयवने नृपे । ११० ।

(११०) ऋषिगणों व देवताओं ने कार्यार्थ शपथ (सौगन्ध) खाई है विश्वामित्र के झगड़े में वसिष्ठ ऋषि ने यवन के बेटे सदामान नाम राजा के सम्मुख सौगन्ध खाई थी ।

न वृथा शपथं कुर्यात्स्वल्पेऽप्यर्थे नरो बुधः ।
वृथा हि शपथां कुर्वन्प्रेत्य चेह न नश्यति ॥ १११ ॥

(१११) साधारण अवस्था में स्वल्प अर्थ हेतु वृथा सौगन्ध न खानी चाहिये तथा जो मनुष्य वृथा शपथ खाता है। व थोड़ी २ बातों में सौगन्ध खाता है। वह नष्ट हो जाता है और उसका विश्वास नहीं रहता ।

कामिनीषु विवाहेषु गवां भक्ष्ये तथेन्धने ।
ब्राह्मणाभ्युपपत्तौ च शपथे नास्ति पातकम् ॥११२॥

(११२) कन्या के विवाह में यदि वर पत्नी विश्वास न करे गऊ का भक्ष देने के समय, व ब्राह्मण के रक्षार्थ, अग्निहोत्रार्थ ईन्धन की आवश्यकता दिखलाने में शपथ खाना पातक है तथा असंगत नहीं है।

सत्येन शापयेद्विप्रं क्षत्रियं वाहनायुधैः ।
गोबीजकाञ्चनैर्वैश्यं शूद्रं सर्वैस्तु पातकैः ॥११३॥

(११३) ब्राह्मण को सत्य की, क्षत्रिय को वाहन तथा शस्त्रों की, वैश्य को गऊ बीज तथा सोना (सुवर्ण) की, तथा शूद्र को सारे पातकों की शपथ दिलावे।

अग्निं वाहारयेदेनमप्सु चैनं निमज्जयेत् ।
पुत्रदारस्य वाप्येनं शिरांसि स्पर्शयेत्पृथक् ॥११४॥

(११४) सौगन्ध इसी विधि से खिलावे कि या तो अग्नि ग्रहण कराके या जल में खड़ा करके अथवा पुत्र के सिर पर हाथ रखवा कर।

यमिद्धो न दहत्यग्निरापो नो मज्जयन्ति च ।
न चार्तिं मृच्छति क्षिप्रं स ज्ञेयः शपथे शुचिः ॥११५॥

(११५) जिसे आग न जलावे, जल न डुबावे, या पुत्र व स्त्री का शीघ्र दुःख न पावे उसको सौगन्ध में शुद्ध जानना चाहिये।

वत्सस्य ह्यभिशस्तस्य पुरा भ्रात्रा यवीयसा ।
नाग्निर्ददाह रोमापि सत्येन जगतःस्पृशः ॥११६॥

(११६) पूर्व समय में वत्स ऋषि के अनुज ने उनको दोष लगाया था जिस पर वत्स ऋषि ने अपनी शुद्धता दिखलाने के हेतु अग्नि को उठाया परन्तु सारे संसार के पाप पुण्य की ज्ञाता अग्नि ने ऋषि का एक रोम भी न भस्म किया।

यस्मिन्यस्मिन्विवादे तु कौटसाक्ष्यं कृतं भवेत् ।
तत्तत्कार्यं निवर्तेत कृतं नाप्यकृतं भवेत् ॥ ११७ ॥

(११७) जो २ कार्य साक्षियों के असत्य भाषण के कारण सत्य निर्णय होगये हैं तत्पश्चात् उनका अनृत भाषण प्रमाणित हो गया है तो उस निर्णय किये हुये कार्य को असत्य (वृथा) समझना चाहिये।

लोभान्मोहाद्भयान्मैत्रात्कामात्क्रोधात्तथै च ।
अज्ञानाद्बालभावाच्च साक्ष्यं वितथमुच्यते ॥११८॥

(११८) लोभ, मोह, भय, मैत्री, काम, क्रोध, अज्ञानता बालकपन यह कारण हैं कि जिनसे लोग असत्य साक्षी देते हैं। अतः ऐसे साक्षियों का विश्वास न करे।

एषामन्यतमे स्थाने यः साक्ष्यमनृतं वदेत् ।
तस्य दण्डविशेषांस्तु प्रवक्ष्याम्यनुपूर्वशः ॥ ११९ ॥

(११९) इनके अतिरिक्त अन्य स्थानों में असत्य साक्षी देवे तो उसके हेतु विशेषदण्ड को क्रमानुसार कहेंगे।

लोभात्सहस्रं दंड्यस्तु मोहात्पूर्वं तु साहसम् ।
भयद्द्वौ मध्यमौ दण्डौ मैत्रात्पूर्वं चतुर्गुणम् ।१२०

(१२०) यदि लोभ वश अनृत बोले तो १०० पण दण्ड से देवे, मोहवश असत्य बोले तो पूर्वानुसार साहस दण्ड देवे,

कामाद्दशगुणं पूर्वं क्रोधात्तु त्रिगुणं परम् ।
अज्ञानादद्वे शते पूर्णे बालिश्याच्छतमेवतु ॥१२१॥

(१२१) यदि साक्षी काम वश असत्य बोले तो दश

भुना पूर्वं + साहस दण्ड देवे, यदि क्रोधवश अनत साक्षी देवे तो तीन उत्तम साहस के अनुसार दण्ड देवे, यदि अज्ञानवश मिथ्या बोले तो दो सौ (२) पण दण्ड देवे, तथा यदि बालकपन के कारण मिथ्या भाषण करे तो सौ पण दण्ड स्वरूप देवे।

एतानाहुः कौटसाक्ष्ये प्रोक्तान्दण्डान्मनीषिभिः।
धर्मस्याव्यभिचारार्थमधर्मनियमाय च ॥१२२॥

(१२२) अधर्म के नाश (बन्द) होने तथा धर्म के प्रचलित होने के हेतु पण्डितों ने यह दण्ड साक्षियों के मिथ्या भाषण में कहा है।

कौटसाक्ष्यं तु कुर्वाणांस्त्रीन्वर्णान्धार्मिको नृपः।
प्रवासयेद्दण्डयित्वा ब्राह्मणं तु विवासयेत् ॥१२३॥

(१२३) क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र यह तीनों वर्ण साक्षी हो कर असत्य बोलें तो धर्मात्मा राजा उपरोक्त दण्ड देकर राज्य सीमा से देश निकाला देदे परन्तु ब्राह्मण को उपरोक्त अपराध में केवल राजमण्डल से देश निकाला देदे उसका धन सम्पत्तिहरण न करे।

दश स्थानानि दण्डस्य मनुः स्वायंभुवोऽब्रवीत्।
त्रिषु वर्णेषु यानि स्युरक्षतो ब्राह्मणो व्रजेत् ॥१२४॥

(१२४) क्षत्रिय, वैश्य शूद्र इन तीनों वर्णों के दण्ड के दश स्थान ❀ स्वयम्भू अर्थात् सांकल्पिक सृष्टि के उत्पन्न आदि

१ व २ साहस व पण आदि किस लिये हैं जिनका वर्णन मनुजी ने अपने धर्मशास्त्र में भी कर दिया है।

❀ स्वयम्भू के अर्थ यह है कि जो बिना माता पिता के उत्पन्न

के बेटे मनुजी ने कहे। ब्राह्मण तो शारीरिक दण्ड बिना पाये चला जाये।

उपस्थमुदरं जिह्वां हस्तौ पादौ च पञ्चमम् ।
चक्षुर्नासा च कर्णौ च धनं देहस्तथैव च ॥१२५॥

(१२५) उपस्थ (मूत्रस्थान), उदर (पेट), जिह्वा, दोनों हाथ, दोनों पाँव कान, दोनों आँखे, नाक, धन, शरीर यह दश दण्ड स्थान हैं।

अनुबन्धं परिज्ञाय देशकालौ च तत्त्वतः ।
सारापराधौ चालोक्य दण्डं दण्ड्येषु पातयेत् ।१२६

(१२६) इच्छा से क्रमशः अपराध करना, देश (स्थान) काल (समय) अपराध, अपराधी का शरीर, धन सम्पत्ति, सामर्थ्य, बड़ा छोटा अपराध इन सब को देखकर दण्डनीय पुरुषों को दण्ड देना चाहिये।

अधर्मदण्डनं लोके यशोघ्नं कीर्तिनाशनम् ।
अस्वर्ग्यं च परत्रापि तस्मात्तत्परिवर्जयेत् ॥१२७॥

(१२७) धर्म विरुद्ध जो दण्ड है वह यश तथा कीर्ति को नष्ट करता है तथा परलोक में स्वर्ग भी प्राप्त नहीं होता अतः धर्म विरुद्ध दण्ड न देवे।

अदन्ड्यान्दन्डयन्राजा दन्ड यांश्चैवाप्यदन्डयन् ।
अयशो महदाप्नोति नरकं चैव गच्छति ॥१२८॥

हुआ हो। क्योंकि आदि सृष्टि में ऋषि लोग परमात्मा के संकल्प से उत्पन्न होते हैं अतएव वह स्वयम्भू कहलाते हैं वेदों के ज्ञानको वही लोग प्रचार करते हैं। तथा धर्मशास्त्र भी वही लोग स्थिर व नियत करते हैं।

(१२८) जो अदण्डनीय है उसे दण्ड देने से तथा जो दण्डनीय है उसे दण्ड न देने से राजा इस जन्म में अपयश पाता है तथा दुःख भी भोगता है।

वाग्दण्डं प्रथमं कुर्याद्धिग्दण्डं तदनन्तरम्।
तृतीयं धनदण्डं तु वधदण्डमतः परम् ॥ १२९ ॥

(१२९) प्रथम बार वाग्दण्ड दे अर्थात् तुमने अच्छा कार्य नहीं किया अब फिर ऐसा न करना। द्वितीय बार भिड़क दे तथा धिक्कार देकर उस कार्य से हटावे, यदि तृतीय बार वैसा ही करे तो अर्थ दण्ड दे। इस पर भी न माने तो कारागार तथा वध (शरीरांग छिन्न करना) का दण्ड देवे।

वधेनापि यदा त्वेतान्निग्रहीतुं न शक्नुयात्।
तदैषु सर्वमप्येतत्प्रयुञ्जीत चतुष्टयम् ॥ १३० ॥

(१३०) यदि शरीरांग छिन्न करने से भी न माने तो उसे चारों प्रकार दण्ड एक ही साथ देना चाहिये।

लोकसंव्यवहारार्थं याः संज्ञाः प्रथिता भुवि।
ताम्ररूप्यसुवर्णानां ताः प्रवक्ष्याम्यशेषतः ॥ १३१ ॥

(१३१) संसार के पारस्परिक व्यवहार के हेतु ताँबा, चाँदी, सोने के सिक्के जिस तोल से बनाये जाते हैं अब हम उनके नाम वर्णन करते हैं।

जालान्तरगते भानौ यत्सूक्ष्मं दृश्यते रजः।
प्रथमं तत्प्रमाणानां त्रसरेणुं प्रचक्षते ॥ १३२ ॥

(१३२) सूर्य की किरणें जो झरोखे के छिद्र द्वारा भीतर आती हैं जो सूक्ष्म रज कण दृष्टिगोचर होते हैं। वे

(१४१) अथवा सज्जनों के धर्म को विचार प्रति सैकड़ा दो रुपया मासिक व्याज लेने से द्रव्य पापी नही होता।

द्विकं त्रिकं चतुष्कं च पञ्चकं च शत समम्।
मासस्य वृद्धिं गृह्णीताद्वर्णानामनुपूर्वशः ॥ १४२ ॥

(१४२) ब्राह्मण से दो प्रति सैकड़ा, क्षत्रिय से तीन प्रति सैकड़ा वैश्य से चार प्रति सैकड़ा, तथा शूद्र से पाँच रुपया प्रति सैकड़ा व्याज लेवे।

न त्वेवाधौ सोपकारे कौसीदीं वृद्धिमाप्नुयात्।
न चाधेः कालसंरोधान्निसर्गोऽस्ति न विक्रयः॥१४३॥

(१४३) अब रेहन की रीति को कहते हैं। कि जो जो वस्तु लाभ देने वाली हैं जैसे भूमि, गउ, आदि यदि गिरवी (रेहन) रक्खी जावे तो उस में व्याज न लेवे। जब संरोध (रेहन) किये हुए अधिक काल हो जावे और रेहन रखकर जितना रुपया लिया गया था उससे कुछ रुपया अधिक स्वामी न पावे तो उस वस्तु को दे देवे अथवा बेच डाले। ऐसा न करे कि जब तक मूलधन न पाये तब तक उससे लाभ प्राप्त करता रहे।

न भोक्तव्यो बलादाधिर्भुञ्जानो वृद्धिमुत्सृजेत्।
मूल्येन तोषयेच्चैनमाधिस्तेनोऽन्यथा भवेत्॥१४४॥

(१४४) बलात् उस रोधित (रेहन) वस्तु को कार्य में न लावे यदि ऐसा करे तो व्याज छोड़ दे अथवा वस्तु के स्वामी को उसकी मूल्य देकर प्रसन्न करे यदि ऐसा न करे तो रोधित (रेहन) वस्तु का चोर होता है।

× मनुजी की व्याज को कहा करने से यह सिद्ध होता है कि लोग ऋण पास से अर्थे।

आधिश्चोपनिधिश्चोभौ न कालात्ययमर्हतः ।
अपहार्यौ भवेतां तौ दीर्घकालमवस्थितौ ॥ १४५ ॥

(१४५) आधि वस्तु (रेहन की हुई वस्तु) तथा प्रीति वश कोई वस्तु किसी को मांगे देना इन दोनों प्रकार की वस्तु का उसका स्वामी जब मांगे तुरन्त ही देना चाहिये। यह न कहे कि इतने दिन में देंगे और बहुत काल तक रहने से यह दोनों वस्तुएँ दीर्घकाली नहीं हो जाती है वरन् वास्तविक स्वामी का स्वामित्व स्थित रहता है जिसके पास रखी है वह स्वामी नहीं हो जाता है।

सम्प्रीत्या भुज्यमानानि न नश्यन्ति कदाचन ।
धेनुरुष्ट्रो वहन्नश्वो यश्च दम्यः प्रयुज्यते ॥ १४६ ॥

(१४६) गऊ, ऊँट, घोड़ा, बैल, इन सब को स्वामी की आज्ञा से जो कोई बरते तो जिसकी वह वस्तुएँ हैं, उसका स्वामित्व नष्ट नहीं होता है।

यत्किंचिद्दश वर्षाणि सन्निधौ प्रेक्षते धनी ।
भुज्यमानं परैस्तूष्णीं न स तल्लब्धुमर्हति ॥१४७॥

(१४७) उस वस्तु का स्वामी देखता है परन्तु बचता नहीं है। उस वस्तु का जो कोई दश वर्ष पर्यंत बरतले तो उसका स्वामी उस वस्तु को नहीं पा सकता है। इसी प्रकार वर्तमान काल में जबर्दस्ती (कब्जा मुखालिफानह) की अवधि है।

अजडश्चेदपौगण्डो विषये चास्य भुज्यते ।
भग्नं तद्व्यवहारेण भोक्ता तद्द्रव्यमर्हति ॥१४८॥

(१४८) क्योंकि बरतने वाला कहता है, कि यह उन्मत्त

अदर्शयित्वा तत्रैव हिरण्यं परिवर्तयेत् ।
यावती संभवेद्वृद्धिस्तावतीं दातुमर्हति ॥ १५५ ॥

(१५५) यदि व्याज भी देने की सामर्थ्य न हो तो मूलधन व्याज सहित एकत्र कर एक नया लेख (तमस्सुक) लिख देना चाहिये।

चक्रवृद्धिं समारूढो देशकालव्यवस्थितः ।
अतिक्रामन्देशकालौ न तत्फलमवाप्नुयात् ॥१५६॥

(१५६) + जो मनुष्य सारथि का काम करता है और अपनी प्रतिज्ञा पालन नहीं करता है तो वह उसका सारा फल नहीं पा सकता जैसे यहाँ से बनारस तक बोभा पहुँचाने का इतना धन लेंगे वा एक मास बोभा ले जाने का इतना धन लेवेंगे ऐसा कहकर कार्यारम्भ करे और मध्य ही मे कार्य त्याग दे तो वह अपने परिश्रम फल के सारे धन को नहीं पा सकेगा।

समुद्रयानकुशलादेशकालार्थदर्शिनः ।
स्थापयन्ति तु यां वृद्धिं सा तत्राधिगमं प्रति ॥१५७॥

(१५७) समुद्र के पथ मे कुशल, देश, काल, अर्थ इन चारों के देखने वाले जो वृद्धि न्याज) निर्धारित करें उस स्थान पर वही व्याज लेना।

यो यस्य प्रतिभूस्तिष्ठद्दर्शनायेह मानवः ।
अदर्शयन्स तं तस्य प्रयच्छेत्स्वधनादृणम् ॥ १५८ ॥

+ श्लोक १५६ में ऐसे मनुष्यों के हेतु जो प्रतिज्ञानुसार कार्य पूरा न करें उनका सारा परिश्रम फल के न देने की आज्ञा इस हेतु दी है जिससे कोई मनुष्य जान बूझ कर प्रतिज्ञा भंग करके परिश्रम फल प्राप्ति न करे जिससे संसार में अविश्वास और अधर्म प्रचारित हो सकता है।

(१५८) जो मनुष्य जिस मनुष्य की उपस्थिति का प्रतिभू हो और उसे उचित समय पर उपस्थित नहीं करता वह अपनी सम्पत्ति से उसका ऋण परिशोध करे।

प्रतिभाव्यं वृथादानमाक्षिकं सौरिकं च यत्।
दंडशुल्कावशेषं च न पुत्रो दातुमर्हति ॥ १५६ ॥

(१५६) यदि पिता ने प्रातिभाव (जमानत) दिया हो वा ऋण लेकर पाखण्डी को दान दिया हो, वा द्यूत (जुवा) खेला हो वा मद्य पीने में व्यय किया हो, वा अर्थ दण्ड का धन दिया हो तो इस प्रकार के ऋण का परिशोध करने को उसका पुत्र वाध्य नहीं है।

दर्शनप्रातिभाव्ये तु विधिः स्यात्पूर्वचोदितः।
दानप्रतिभुवि प्रेते दायादानपि दापयेत् ॥ १६० ॥

(१६०) दर्शन प्रातिभावो (मालजामिन) की मृत्यु के उपरान्त उसका पुत्र उस ऋण को देवे। जिस ऋण को परिशोधार्थ उसका पिता प्रतिभुवि है तथा दर्शन प्रातिभुवि मृत्यु के पश्चात् उसका पुत्र उसका उपस्थित करने के हेतु वाध्य नहीं है।

अदातरि पुनर्दाता विज्ञातप्रकृतावृणम्।
पश्चात्प्रतिभुवि प्रेते परीप्सेत्केन हेतुना ॥ १६१ ॥

(१६१) दर्शन प्रतिभू तथा विश्वास + प्रतिभू यह दोनों प्रकार के प्रतिभू ऋण के तुल्य धन को लेकर प्रतिभू हुये हों, तत्पश्चात् मृत्यु होगई हो तो ऋणदाता, अपने धन को प्राप्त

+ अर्थात् जिसने ऐसा कहा कि हमारे विश्वास से इसे ऋण दे दो यह तुमसे कपट न करेगा, भले का पुत्र है, अच्छा गाँव का स्वामी है, तथा उपजाऊ भूमि इसके पास है।

करने की इच्छा से किससे धन प्राप्त करे प्रतिभू की तो मृत्यु हो गई तथा उसके पुत्र से लेने की आज्ञा नहीं। यह तर्क करके उत्तर को कहते हैं।

निरादिष्टधनश्चेत्तु प्रतिभूः स्यादलंधनः।
स्वधनादेव तद्दद्यान्निरादिष्ट इति स्थितिः ॥१६२॥

(१६२) कि उस धन से जो सम्पति लेकर पिता प्रतिभू हुआ हो उसकी सम्पत्ति से प्रतिभू का पुत्र ऋण परिशोध करे।

मत्तोन्मत्तार्ताध्यधीनैर्बालेन स्थविरेण व।
असंबद्धकृतश्चैव व्यवहारो न सिद्ध्यति ॥ १६३ ॥

(१६३) भंग गाँजा आदि के मद्य से उन्मत्त, व्याधि, पीड़ित, क्लेशित बालक, वृद्ध सम्बन्धी सभों से गया हुआ व्योहार सत्य नहीं होता वरन व्योहार का वही लेख सत्य है जो इसकी ज्ञानावस्था मे बिना किसी प्रकार के बलात के लिखा जाय क्योंकि बुद्धि ठीक होने की दशा में कोई किसी प्रकार से बाध्य नहीं वरन वह पशु समान है।

सत्या न भाषा भवति यद्यपि स्यात्प्रतिष्ठिता।
बहिश्चेद्भाष्यते धर्मान्नियताद्व्यावहारिकात् ॥१६४॥

(१६४) × यदि लेख में ऐसी प्रतिज्ञाएँ लिखी गई हों जो शास्त्र तथा देश के विरुद्ध हों तो उन प्रतिज्ञाओं के पालन कराने का प्रयत्न न करना चाहिये।

×श्लोक १६४ में मनुजी ने यह बतलाया है कि यदि धर्मशास्त्रतथा देश व्यवहार (रिवाज)के विरुद्ध यथा विधि लेख लिखाजावे तथा दोनों पक्ष उसमें सहमत भी हो तो भी राजाको उसके अनुसारकार्य न करना चाहिये क्योंकि इससे नीति तथा देश व्यवहार में अन्तर पड़ता है।

योगाधमनविक्रीतं योगदानप्रतिग्रहम् ।
यत्र वाप्युपधिं पश्येत्तत्सर्वं विनिवर्तयेत् ॥ १६५ ॥

(१६५) छल करके जो रहन, बेचना व व्यवहार है वह सब अनुचित है। और जिस कार्य में छल अनुभव न होवे वह सब व्यर्थ समझना चाहिये।

ग्रहीता यदि नष्टः स्यात्कुटुम्बार्थे कृतो व्ययः ।
दातव्यं बान्धवैस्तत्स्यात्प्रविभक्तैरपि स्वतः ॥१६६॥

(१६६) ऋणी की ऋण लेकर सन्तान के पालन पोषण करने में व्यय करने पश्चात् मृत्यु हो गई तो उस ऋण को उसके भ्राता पुत्र आदि सम्बन्धियों को परिशोध करना चाहिये, क्योंकि वह धन उचित कार्य हेतु लिया गया है।

कुटुम्बार्थेऽध्यधीनोऽपि व्यवहारं समाचरेत् ।
स्वदेशे वा विदेशे वा तं ज्यायान्न विचालयेत् ।१६७।

(१६७) स्वदेश व विदेश में कुटुम्बार्थ गुमास्ता ने जो व्यवहार किया हो तो उस व्यवहार को स्वामी न तोड़े वरन् उसको अङ्गीकार करे।

बलाद्दत्तं बलाद्भुक्तं बलाद्यच्चापि लेखितम् ।
सर्वान्बलकृतानर्थानकृतान्मनुरब्रवीत् ॥ १६८ ॥

(१६८) बात् देना, बलात् (बल पूर्वक) भोग करना, बलात् लेख लिखना आदि ऐसी बातों से जितने कार्य किये गये हैं वह सब सिद्धि नहीं होते।

त्रयः परार्थे क्लिश्यन्ति साक्षिणः प्रतिभूः कुलम् ।
चत्वारस्तूपचीयन्ते विप्र आढ्यो वणिङ् नृपः ॥१६९॥

(१६६) १-प्रतिभू, २-*साक्षी, ३-कुल यह तीनो केवल दूसरों के अर्थ क्लेश भोगते हैं। १-ब्राह्मण, २-साहूकार, ३-व्यवहारी तथा ४-राजा यह चारों अन्य से लाभ प्राप्त करते हैं। अर्थात् पूर्व तीनों को इस कार्य से कोई लाभ नहीं और इन चारों को लाभ है। अतः पहले तीन कार्यों में सम्मिलित न होना चाहिए। तथा दूसरे चारों कार्यों मे प्रयत्न करना चाहिए।

अनादेयं नाददीत परिक्षीणोऽपि पार्थिव।
न चादेयं समृद्धोऽपि सूक्ष्ममप्यर्थ मुत्सृजेत् ॥१७०॥

(१७०) राजा यद्यपि निर्धन हो तो भी जो वस्तु अग्राह्य लेने के अयोग्य है, उसे ग्रहण न करे, तथा यदि बहुत धनी भी हो तो भी ग्राह्य (लेने योग्य) वस्तु सूक्ष्म भी है तो उसे अवश्य ग्रहण करे।

अनादेयस्य चादानादादेयस्य च वर्जनात्।
दौर्बल्यं ख्याप्यते राज्ञः स प्रत्येह च नश्यति॥१७१॥

(१७१) ग्राह्य वस्तु को त्याग करने से तथा अग्राह्य वस्तु को ग्रहण करने से राजा की निर्बलता प्रकट होती है तथा वह राजा इस लोक मे व परलोक में नाश को प्राप्त होता है।

स्वादानाद्वर्णसंसर्गात्त्वबलानां न रक्षणात्।
बलं संजायते राज्ञः स प्रेत्येह च वर्धते ॥ १७२ ॥

(१७२) ग्राह्य वस्तु को ग्रहण करने, अग्राह्य के त्यागने, संवर्णों का शास्त्रानुसार परस्पर विवाह कराने, निर्बल प्रजा की रक्षा करने से राजा बलवान होता है। और वह राज इस लोक तथा परलोक में बढ़ता है। अर्थात् उत्पन्न होता है।

---

* यद्यपि वर्तमान काल में साक्षी देने से लोग लाभ प्राप्ति करते हैं, परन्तु यह अनुचित लाभ है।

तस्माद्यम इव स्वामी स्वयं हित्वा प्रियाप्रिये ।
वर्त्तेत याम्यया वृत्त्या जितक्रोधो जितेन्द्रियः ॥१७३॥

(१७३) अतएव प्रियय वा अप्रि अभिलाषाओं के ध्यान को परित्याग करके अक्रोधी तथा जितेन्द्रिय होकर रहे।

यस्त्वधर्मेण कार्याणि मोहात्कुर्यान्नराधिपः ।
अचिरात्तं दुरात्मान वशे कुर्वन्ति शत्रवः ॥ १७४ ॥

(१७४) जो राजा मोह वा प्रीतिवश अधर्म कार्य को करता है। उस दुरात्मा राजा को उसके शत्रु अपने वश में कर लेते हैं। राजा के लिये पक्षपात तथा मोह व मूर्खता घृणित व्यर्थ हैं।

कामक्रोधो तु संयम्य योऽर्थान्धर्मेण पश्यति ।
प्रजास्तमनुवर्तन्ते समुद्रमिव सिन्धवः ॥ १७५ ॥

(१७५) जो राजा अक्रोधी, अकामी तथा जितेन्द्रिय होकर प्रजा के न्याय में रत रहता है, उसकी प्रजा सदैव उसकी आज्ञा पालन करती है तथा उसके वियोग की इच्छा नहीं करती जैसे समुद्र का वियोग नदी नहीं चाहती।

यः साधयन्तं छन्देन वेदयेद्धनिकं नृपः ।
स राज्ञा तच्चतुर्भागं दाप्यस्तस्य च तद्धनम् ॥१७६॥

(१७६) यदि ऋणदाता ऋणी से अपने धन को निज बल से प्राप्त करने का साधन करे। और ऋणी उस बलात् का निवेदन राजा से करे तो राजा ऋणी से उस ऋण का चतुर्थांश (चौथा भाग) दण्ड स्वरूप लेवे।

कर्मणापि समं कुर्याद्धनिकायाधमर्णिकः ।
समोऽवकृष्टजातिस्तु दद्याच्छ्रेयांस्तु तच्छनैः ॥१७७॥

(१७७) यदि ऋणी ऋणदाता का स्वजाति व नीच जाति हो तथा ऋण परिशोध करने की सामर्थ्य न रखता हो तो ऋणदाता के कार्य को करके ऋण परिशोध करे। यदि ऋणी ऋणदाता से उच्चजाति का है तो वह ऋणदाता का कार्य न करे वरन् धीरे २ जब कुछ मांगे तब देवे।

अनेन विधिना राजा मिथो विवदतां नृणाम् ।
साक्षिप्रत्ययसिद्धानि कार्याणि समतां नयेत् ॥१७८॥

(१७८) इस विधि से जो विवाह परस्पर प्रीति करने वाले मनुष्यों की साक्षियों द्वारा प्रमाणित है राजा उसमें विरुद्ध कार्यों को अमान्य कर सत्य तत्त्व बलात्पर्य को ज्ञान लाग करले।

कुलजे वृत्तसम्पन्ने धर्मज्ञे सत्यवादिनि ।
महापक्षे धनिन्यर्थे निक्षेपं निक्षिपेद्बुधः ॥१७९॥

(१७९) कुलीन, सदाचारी, धर्मज्ञाता, सत्यवादी, संतान वाले धनी के समीप थाती रखना चाहिये। तथा विपरीत गुण वाले को थाती न सौंपे।

यो यथा निक्षिपेद्धस्ते यमर्थं यस्य मानवः ।
स तथैव ग्रहीतव्यो यथा दायस्तथा ग्रहः ॥१८०॥

(१८०) जो मनुष्य जिस विधि से ऋणी से धन देवे उसी विधि से अपना धन प्राप्त करे। क्योंकि जैसे देना वैसे ही ग्रहण करना चाहिये।

यो निक्षेपं याच्यमानो निक्षेप्तुर्न प्रयच्छति ।
स याच्यः प्राड् विपाकेन तन्निक्षेप्तुरसन्निधौ॥१८१॥

(१८१) यदि जिस पुरुष की थाती (निक्षेप, अमानत) सौंपी है वह माँगने पर न देवे। तो राजा थाती रखने वाले से थाती के स्वामी के परोक्ष में प्रश्नोत्तर द्वारा सत्य तत्त्व परिज्ञात कर ले।

साक्ष्यभावे प्रणिधिभिर्वयोरूपसमन्वितैः।
अपदेशैश्च संन्यस्य हिरण्यं तस्य तत्त्वतः ॥१८२॥

(१८२) साक्षी के अभाव में यदि थाती रखने वाला स्वामी व धनी राजा से धर्मयुक्त बात न कहे तो दूसरे उसके समीप थाती सौंपवादे।

स यदि प्रतिपद्येत यथान्यस्तं यथाकृतम्।
न तत्र विद्यते किंचिद्यत्परैरभियुज्यते ॥१८३॥

(१८३) तत्पश्चात् वह दूसरा मनुष्य अपनी थाती को उससे मांगे यदि वह देदे तो उसे सत्यवादी जानना तथा इससे जो अन्य पुरुष (प्रथम थाती सौंपने वाला) अपनी थाती माँगता था उसे मिथ्याभाषी जानना।

तेषां न दद्याद्यदि तु तद्धिरण्यं यथाविधि।
उभौ निगृह्य दाप्यः स्यादिति धर्मस्य धारणा॥१८४॥

(१८४) यदि वह धनी व मनुष्य दूसरी वार रखी हुई थाती को भी न देवे जिस थाती का पूर्ण ज्ञान राजा को प्रथम से है तो राजा उससे दोनों थातियों के धन को उससे प्राप्त करे धर्मानुकूल यह कार्य है।

निक्षेपोपनिधी नित्यं न देयौ प्रत्यनन्तरे।
नश्यतो विनिपाते तावनिपाते त्वनाशिनौ ॥१८५॥

(१८५) जो वस्तु जानी हुई थाती रखी जावे या विना

जानी रखी जावे इन दोनों प्रकार की थातियों को इनके स्वामी के अतिरिक्त उनके पुत्र आदि सम्बन्धियों को न देव।

स्वयमेव तु यो दद्यान्मृतस्य प्रत्यनन्तरे।
न स राज्ञा नियोक्तव्यो न निक्षेप्तुश्च बन्धुभिः ॥१८६॥

(१८६) थाती सौंपने के थोड़े काल पश्चात् उसकी मृत्यु हो गई तो वह धनी वा मनुष्य जिसके समीप उसकी थाती रखी है स्वयं ही उस थाती को उस पुरुष को सौंप दे जिसने उसके धन को धर्मतः प्राप्त किया है। मृतक पुरुष का पुत्र तथा राजा उससे अन्य वस्तु न माँगे अर्थात् यह न कहे कि तुम्हारे पास अमुक वस्तु और थाती स्वरूप है उसे भी दो।

अच्छलेनैव चान्विच्छेत्तमर्थं प्रीतिपूर्वकम्।
विचार्य तस्य वा वृत्तं साम्नैव परिसाधयेत् ॥१८७॥

(१८७) साम उपाय, जो छल से पृथक है, के द्वारा प्रीति पूर्वक जिसको थाती सौंपी गई थी उसको आचरण को पीर ज्ञात कर अपना अर्थ विचारे।

निक्षेपेष्वेषु सर्वेषु विधिः स्यात्परिसाधने।
समुद्रे नाप्नुयात्किंचिद्यदि तस्मान्न संहरेत् ॥१८८॥

(१८८) थाती की विधि वर्णन की तथा अदृश्य वस्तु (बन्द) को जैसी से तैसी ही देवे। म हर को तोड़ कर उसमें से कुछ न लेवे तो किंचितमात्र दोष नहीं।

चौरैर्हृतं जलेनोढमग्निना दग्धमेव वा।
न दद्याद्यदि तस्मात्स न संहरति किंचन ॥ १८९ ॥

(१८९) थाती चोरी गई हो, वा जल द्वारा नष्ट हो ग

हो, वा अग्नि द्वारा भस्म होगई होतो जिसके समीप थाती रखी गई है वह न देवे यदि उसमें से स्वयं कुछ न लिया हो।

निक्षेपस्यापहर्तारमनिक्षेप्तारमेव च।
सर्वैरुपायैरन्विच्छेच्छपथैश्चैव वैदिकैः॥ १९०॥

(१९०) थाती का अपहरण (खयानत) करने वाला या थाती सौंपने का मिथ्या वादी इनकी (१) वेदविधि द्वारा परीक्षा लेकर सत्यासत्य को निर्णय करे।

यो निक्षेपं नार्पयति यश्चानिक्षिप्य याचते।
तावुभौ चोरवच्छास्यौ दाप्यौ वा तत्समं दमम्॥१९१॥

(१९१) जो मनुष्य थाती को नहीं देता है वा जो विना थाती सौंपे माँगता है। दोनों चोर के समान दण्डनीय हैं अथवा थाती के तुल्य धन दण्ड स्वरूप लेना चाहिये।

निक्षेपस्यापहर्तारं तत्समं दापयेद्दमम्।
तथोपनिधिहर्तारमविशेषेण पार्थिवः॥ १९२॥

(१९२) गुप्त (अज्ञात, गोपनीय) तथा मुद्रांकित (मोहर किये हुए) इन दोनों प्रकार की थातियों को जो नहीं देता है। उसको उन दोनों प्रकार की थाती के धन के तुल्य ही अर्थ दण्ड स्वरूप लेवे।

उपधाभिश्च यः कश्चित्परद्रव्यं हरेन्नरः।
ससहायः स हन्तव्यः प्रकाशं विविधैर्वधैः॥ १९३॥

(१९३) जो पुरुष छल द्वारा किसी के धन को अपहरण करता है। सब मनुष्यों के सम्मुख उसको उसके सब सहायकों सहित शारीरिक व आर्थिक दण्ड देकर मारे।

निक्षेपो यः कृतो येन यावांश्च कुलसन्निधौ ।
तावानेव स विज्ञेयाविब्रुवन्दण्डमर्हति ॥१९४॥

(१९४) कुल की उपस्थिति में जितनी थाती रक्खी है उस संख्या के विपरीत कहे तो थाती के तुल्य धन दण्ड स्वरूप दे । क्योंकि वृथा भाषण और थाती को पचा जाने के अपराधों का अपराधी है ।

मिथो दायः कृतः येन गृहीतो मिथ एव वा ।
मिथएव प्रदातव्यो यथा दायस्तथा ग्रहः ॥ १९५ ॥

(१९५) साक्षी विना जिसने थाती रखी है वह उस धनी से विना साक्षी के ही थाती प्राप्त करेगा । क्योंकि जैसा देना वैसा ग्रहण (प्राप्त) करना ।

निक्षिप्तस्य धनस्यैवं प्रीत्योपनिहितस्य च ।
राजा विनिर्णयं कुर्यादक्षिण्वन्न्यासधारिणम् ॥१९६॥

(१९६) जो वस्तु दिखाकर अथवा गिनवा कर किसी के पास धरोहर रक्खी जावे व जो वस्तु मुद्रांकित (गोपनीय) कर थाती रूप सौंपी गई व जो वस्तु प्रीतिपूर्वक सौंपी गई है। राजा इन तीनों प्रकार की धरोहरों का इस प्रकार निर्णय करे कि धरोहरधारी को पीड़ा न पहुँचे ।

विक्रीणीते परस्य स्वं योऽस्वामी स्वाम्यसंमतः ।
न तं नयेत साक्ष्यंतु स्तेनमस्तेनमानिनम् ॥ १९७ ॥

(१९७) यदि कोई धरोहर धरी हुई वस्तु को उसके स्वामी की आज्ञा विना बेचता है। तो बेचने वाले को चोर समझना चाहिये तथा उसे साक्षी न समझे ।

अवहार्यो भवेच्चैव सान्वयः षट्शत दमम् ।
निरन्वयोऽनपसरः प्राप्तः स्याचारकिल्बिषम् ॥१९८॥

(१९८) यदि बेचने वाला उस स्वामी के कुल का हो तो छः सौ पण दण्ड दने योग्य है । तथा यदि वश का न हो तो चोर के समान दण्डनीय है।

अस्वामिना कृतो यस्तु दायो विक्रय एव वा ।
अकृतः स तु विज्ञेयो व्यवहारे यथा स्थितिः ॥१९९॥

(१९९) स्वामी की आज्ञा विना जो वस्तु बेची, मोलली व दी ली जाती है। वह व्यवहार विधि में अनुचित व अमान्य है अर्थात वह वस्तु बेची हुई, मोलली हुई, दी हुई या ली हुई न समझना चाहिये।

संभोगे दृश्यते यत्र न दृश्येतागमः क्वचित् ।
आगमः कारणं तत्र न संभोग इति स्थितिः ॥२००॥

(२००) जिस वस्तु मे उपयोग (व्यय) दीखता है किन्तु आने का प्रमाण (लेख) कहीं नहीं देख पड़ता । तो उसमें आगम (आने का प्रमाण, लेख) ही प्रमाण है संभोग ही ऐसी शास्त्र मर्यादा है।

विक्रयाद्योधनं किंचिद्गृह्णीयात्कुलन्निधौ ।
क्रयेण स विशुद्धं हि न्यायतो लभते धनम् ॥२०१॥

(२०१) व्योहारी के समक्ष मे हाट (पैंठ) से किसी वस्तु को मोल लिया और मोल लेना प्रमाणित हो तो न्यायानुकूल वह उस वस्तु का मोल लेने वाले धन का दावा है।

चार ऋत्विग् मुख्य हैं। अर्थात् होता, उध्वर्यु, ब्रह्मा, उद्गाता यह चारों सब दक्षिणा का अर्ध भाग पावे और मित्रावर्ण प्रस्तोता, ब्रह्माछन्सी प्रस्तोता यह चारों मुख्य ऋत्विगों क आधा भाग पावें। इच्छायाक्य नचिशा, अग्निधीधर, प्रतिहर्त्त यह चारों मुख्य ऋत्विगो का तृतीयांस पावें। मावस्त, अयन्ता पीता, सम्रह्मण्य यह चारा मुख्य ऋत्विगों का चतुर्थांश पावे। इस स्थान पर सब को उपरोक्त विधि से दक्षिणा मिले अत सब का आधा यद्यपि पचास है तो भी ४८ ही लेना, तब प्रथम कही हुई संख्या पूर्ण होगी।

सभूय स्वानि कर्माणि कुर्वद्भिरिह मानवैः।
अनेन विधियोगेन कर्तव्यांशप्रकल्पना ॥२११॥

(२११) अपने कर्म को एकत्र हो पूर्ण करने वाले इस विधि से परस्पर विभाजत करें।

धर्मार्थं येन दत्तं स्यात्कस्मैचिद्याचते धनम्।
पश्चाच्च न तथा तत्स्यान्न देयं तस्य तद्भवेत् ।२१२।

(२१२) किसी दाता ने किसी बालक को धर्मार्थ कुछ दान किया और वह उस धन को ग्रहण करके धर्म म कुछ नहीं लगाता है। तो उस धन को दान दाता उससे फेर लेवें।

यदि संसाधयेत्तत्तु दर्पाल्लोभेन वा पुनः।
राज्ञा दाप्यः सुवर्णं स्यात्तस्य स्तेयस्य निष्कृतिः२१३

(२१३) यदि लोभ वश वह न देवे व दाता देने की प्रतिज्ञा कर फिर न देवे और याचक बलात् धन ग्रहण कर धर्म म नहीं लगावा तो राजा इन दोनों से चोरी के दण्ड म एक सुवर्ण सिक्का दण्ड स्वरूप लेकर दाता को देदे।

दत्तस्यैषोदिता धर्म्या यथावदनपक्रिया ।
अत ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि वेतनस्यानपक्रियाम् ॥२१४॥

(२१४) दी हुई वस्तु को लौटा लेने की विधि को कहा तत्पश्चात् तन न देने की विधि को कहते हैं।

भृतो नार्तो न कुर्याद्यो दर्पात्कर्म यथोदितम् ।
स दण्ड्यःकृष्णलान्यष्टौ न देयं चास्य वेतनम् २१५

(२१५) बलवान तथा निरोगी (हृष्ट पुष्ट) मनुष्य ने एक कार्य करना स्वीकार किया और अहङ्कार वश नहीं करता है तो राजा उससे आठ रत्ती सोना दण्ड लेवे और वेतन उसको दिला दे।

आर्तस्तु कुर्यात्स्वस्थः स न्यथाभाषितमादितः ।
स दीर्घस्यापि कालस्य तल्लभेतैव वेतनम् ॥ २१६ ।

(२१६) कार्यकर्ता रोग ग्रसित होने पर कार्य त्याग दे तथा निरोग होने पर पुनः कार्य करे तो वह पिछले दिनों का भी वेतन पावे।

यथोक्तमार्तः सुस्थो वा यस्तत्कर्म न कारयेत् ।
न तस्य वेतनं देयमल्पोनस्यापि कर्मणः ॥२१७॥

(२१७) अस्वस्थ हो व स्वस्थ हो कार्यकर्ता जिस कार्य को स्वीकार करे और वह कार्य थोड़ा ही शेष रह गया है। उस शेष कार्य को न तो वह स्वयम् ही पूर्ण करता है न अन्य के द्वारा पूर्ण कराता है तो उसे कुछ न देना चाहिये।

एष धर्मोऽखिलेनोक्तो वेतनादान कर्मणः ।
अत ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि धर्मं समयभेदिनाम् ।२१८।

(२१८) वेतन न देने की विधि को कहा। तत्पश्चात् अन्य किसी कार्य के करने में सहमत होकर उसे न करे तो उसका धर्म कहते हैं।

यो ग्रामदेशसंघानां कृत्वा सत्येन संविदम्।
विसंवदेन्नरो लोभात्तं राष्ट्राद्विप्रवासयेत् ॥२१९॥

(२१९) जो मनुष्य किसी शुभ कार्य के करने के अर्थ गाँव, नगर व देश संघ द्वारा परामर्श करे तत्पश्चात् लोभ वश उस कार्य को न करे ऐसे अधर्म पुरुष को राजा अपने राज्य से निकाल बाहर कर दे।

निगृह्य दापयेच्चैनं समयव्यभिचारिणम्।
चतुःसुवर्णान्षण्णिष्कांश्छतमानं च राजतम् ॥२२०॥

(२२०) व उस पूर्वोक्त मनुष्य को पकड़ कर चार सौ पण, छः निष्क तथा एक चाँदी का शतमान दण्ड लेवे। इन सब की तौल प्रथम ही कह चुके हैं।

एतद्दण्डविधिं कुर्याद्धार्मिकः पृथिवी पतिः।
ग्रामजातिसमूहेषु समयव्यभिचारिणाम् ॥ २२१ ॥

(२२१) धर्मात्मा राजा ग्राम जाति व समूह में प्रतिज्ञा भङ्ग कर्त्ताओं को इस उपरोक्त विधि से दण्ड का विधान करे।

क्रीत्वा विक्रीय वा किंचिद्यस्येहानुशयो भवेत्।
सोऽन्तर्दशाहात्तद्द्रव्यं दद्याच्चैवाददीत वा ॥२२२॥

(२२२) × किसी द्रव्य के खरीदने व वेचने के पश्चात्

× २२२ वें श्लोक से विदित होता है कि व्योपार में फेर फारका नियम परमावश्यक है। और इस नियम द्वारा कपट नहीं हो सकता। क्योंकि द्रव्य (वस्तु) की निकृष्टता (खराब हालत) में फेर देने का नियम है।

इसके विषय में यह पश्चाताप हो कि यह व्यौपार ठीक २ नहीं हुआ तो दस दिन के बीच ही में लौटा देना उचित है और वह ग्रहण कर लेवे।

परेण तु दशाहस्य न दद्यान्नापि दापयेत् ।
आददानो ददच्चैव राज्ञा दण्ड्यः शतानि षट्।२२३।

(२२३) दस दिन के व्यतीत हो जाने पर फेर फार नहीं होती और यदि करे तो छः सौ पण दण्ड देवे।

यस्तु दोषवतीं कन्यामनाख्याय प्रयच्छति ।
तस्य कुर्यान्नृपो दण्डं स्वयं षण्णवतिं पणान् ।२२४।

(२२४) जो मनुष्य दोषयुक्त कन्या का दोष न कह कर वर को कन्या दान दे देवे। तो वह छ्यानवें पण दण्डस्वरूप देवे।

अकन्येति तु यः कन्यां ब्रूयाद्द्वेषेण मानवः ।
स शतं प्राप्नुयाद्दण्डं तस्या दोषमदर्शयन् ॥२२५॥

(२२५) जो निर्दोषी कन्या को द्वेष से दोष लगावे और वह उस कन्या के उस लगाये हुये दोष को सिद्ध न कर पावे। तो वह पुरुष सौ पण दण्ड पाने योग्य है ।

पाणिग्रहणिका मन्त्राः कन्यास्वेव प्रतिष्ठिताः ।
नाकन्यासु क्वचिन्नृणां लुप्तधर्मक्रिया हि ताः ।२२६।

(२२६) पाणिग्रहण सम्बन्धी वैदिक मन्त्रों का उपयोग निर्दोषी (विशुद्ध) कन्याओं के विषय में ही करना चाहिये। अकन्या (दोष युक्त कन्या) के विषय में कहीं भी नहीं उपयोग किये गये। क्योंकि वैदिक संस्कारों में जो प्रतिज्ञा की जाती है वह अटल होती है और दोषयुक्त कन्याओं से प्रतिज्ञा निबाहना असंभव है क्योंकि उनकी धर्मक्रिया लुप्त हो जाती है ।

पाणिग्रहणिका मन्त्रा नियतं दारलक्षणम् ।
तेषां निष्ठा तु विज्ञेया विद्वद्भिः सप्तमे पदे ॥२२७॥

(२२७) यथाविधि पाणिग्रहण मन्त्रों द्वारा वर वधू में जो प्रतिज्ञायें होती हैं वही विवाह का ठीक २ लक्षण है सातवाँ भाँवर जो पड़ता है उसी द्वारा विवाह की पूर्णता होती है। तदनन्तर कन्या उस मनुष्य की पत्नी हो जाती है इससे पूर्व नहीं।

यस्मिन्यस्मिन्कृते कार्ये यस्येहानुशयो भवेत्।
तमनेन विधानेन धर्मे पथि निवेशयेत् ॥ २२८ ॥

(२२८) जिस २ कार्य के करने के पश्चात् जिसको उस कार्य में पश्चाताप हो उसको इस पूर्वोक्त विधान द्वारा धर्म मार्ग में नियुक्त करे।

पशुषु स्वामिनां चैव पालनां च व्यतिक्रमे ।
विवादं संप्रवक्ष्यामि यथावद्धर्मतत्त्वतः ॥ २२९ ॥

(२२९) पशुओं के विषय में पशु स्वामी और पशुपालकों अर्थात् अहीरादि इनके विवाद को यथार्थ धर्मानुकूल कहेंगे।

दिवा वक्तव्यता पाले रात्रौ स्वामिनि तद्गृहे ।
योगक्षेमेऽन्यथा चेत्तु पालो वक्तव्यतामियात् ।२३०।

(२३०) दिन में पशु चराने वालों के समीप यदि स्वामी द्वारा सौंपे हुए पशु की रक्षा न हो सके तो वह पशु चराने वाला अपराधी होता है और रात्रि समय में स्वामी के घर में अहीर को सौंपा हुआ पशु की रक्षा न हो सके तो अहीर अपराधी होता है।

गोपः क्षीरभृतो यस्तु स दुह्याद्दशतो वराम् ।
गोस्वाम्यनुमते भृत्यःसा स्यात्पालेऽभृते भृतिः ।२३१।

(२३१) जिस गोपाल (अहीर) का कुछ वेतन नियत नहीं हुआ वह स्वामी की अनुमति से दस गऊ चरावे तो उनमें से एक श्रेष्ठ गौ का दूध उसको वेतन में लेना चाहिए।

नष्टं विनष्टं कृमिभिः श्वाहतं विषमे मृतम्।
हीनं पुरुषकारेण प्रदद्यात्पाल एव तु ॥ २३२ ॥

(२३२) * जो गऊ वा पशु खो जावे, कीड़ों से नष्ट हो जावे, कुत्ते मार डालें, ऊँची नीची भूमि में पैर पड़ने से मर जावे, व पुरुषार्थ द्वारा सेवा न हो सकने से मर जावे तो पशु पालक (अहीर) ही उसका देने वाला है।

विघुष्य तु हृतं चौरैर्न पालो दातुमर्हति।
यदि देशे च काले च स्वामिनः स्वस्य शंसति॥२३३॥

(२३३) यदि बलात्कार चोर पशु ले जावें तो उस पशु को वह न देवे। यदि उसी समय पशु स्वामी को पशुहरण का सम्पूर्ण वृतान्त ज्यों का त्यों कह देवे।

कर्णौ चर्म च बालांश्च वस्तिं स्नायुं च रोचनाम्।
पशुषु स्वामिनो दद्यान्मृतेष्वंमानि दर्शयेत् ॥२३४॥

(२३४) पशु के स्वयं मर जाने पर पशुपालक सींग, खुर आदि अंश पशु स्वामी को दिखा देवे तथा कान, चमड़ा, बाल, चर्बी, स्नायु (नसें) और गोरोचन स्वामी को लाकर देवे।

---

* क्योंकि चरवाहे (अहीर) को गाय व पशु की रक्षार्थ नियत किया जाता है अतः २३२ वें श्लोक में उल्लिखित हानि चरवाहे के आलस्य द्वारा होती है। उसका जिम्मेदार इसी कारण बताया गया है। तथा जो हानि प्राकृतिक अवस्था से हो उसका जिम्मेदार पशु स्वामी है।

अजाविके तु संरुद्धे वृकैः पाले त्वनायति ।
यां प्रसह्य वृको हन्यात्पाले तत्किल्विषे भवेत् ।२३५।

(२३५) भेड़ व बकरी को भेड़िया ने घेरा हो और चरवाहा उसे भेड़िये से न छुड़ावे वरन् भेड़िया बलात् उसे मार डाले तो उस पशु वध का पाप चरवाहे को लगता है।

तासां चेदवरुद्धानां चरन्तीनां मिथो वने ।
यामुत्प्लुत्य वृको हन्यान्न पालस्तत्र किल्विषी ।२३६।

(२३६) ॐ यदि चरवाहे की रक्षा में वन में चरती हुई भेड़, बकरी या गाय को शेर ने मार डाला हो तो चरवाहा उसके पाप का भागी नहीं होता।

धनुःशतं परीहारो ग्रामस्य स्यात्समन्ततः ।
शम्यापातास्त्रयो वाऽपि त्रिगुणो नगरस्य तु ।२३७।

(२३७) गाय आदि पशुओं के चरने के अर्थ गाँव के चारों ओर सौ धनुष (चार सौ हाथ) भूमि राजा त्याग दे (उसमें कृषि न करनी चाहिये) तथा हाथ से लाठी फैंकने से जहाँ गिरे उतनी भूमि की तिगुनी में अन्नादि न बोये और नगर के चारों ओर ग्राम की गोचर भूमि की तिगुनी भूमि छोड़ दे।

तत्रापरिवृतं धान्यं विहिंस्युः पशवो यदि ।
न तत्र प्रणयेद्दण्डं नृपतिःपशुरक्षिणाम् ।२३८।

(२३८) यदि वहाँ छुटी हुई भूमि के समीप बाड़ से न घिरे हुये अन्न को पशु नष्ट कर दें तो राजा वहाँ के पशु-रक्षक को दण्ड न देवे।

ॐ क्योंकि प्रथम से ही रक्षा करना चरवाहे की सामर्थ्य से परे है अतः चरवाहा उसका जिम्मेदार नहीं।

वृतिं तत्र प्रकुर्वीत यामुष्ट्रो न विलोकयेत्।
छिद्रं च वारयेत्सर्वं श्वसूकरमुखानुगम् ॥ २३९ ॥

(२३९) उस क्षेत्र (खेत) के बचाने के अर्थ इतनी ऊँची बाड़ बना दे जिसको ऊँट देख न सके सम्पूर्ण छिद्रों को बन्द करदे जिसमें कुत्ता व सुअर का मुँह उसमें न जा सके और वे अन्न को न खा सकें।

पथि क्षेत्रे परिवृते ग्रामान्तीयेऽथवा पुनः।
स पालः शतदण्डार्हो विपालांश्चरयेत्पशून् ।२४०।

(२४०) मार्ग व ग्राम के समीपवर्ती बाड़ के घिरे हुये क्षेत्र के अन्न को यदि पशु उजाड़ें तो वह चरवाहा सौ पण दण्ड देवे तथा जिन पशुओं के साथ पशुपालक नहीं है उनको खेत का रक्षक स्वयं हटादे।

क्षेत्रेष्वन्येषु तु पशुः सपादं पणमर्हति।
सर्वत्र तु सदो देयः क्षेत्रिकस्येति धारणा ॥२४१॥

(२४१) यदि मार्ग, ग्राम आदि की समीपता से भिन्न अन्य स्थल के खेत को पशु खा जावें तो चरवाहा सौ पण दण्ड देवे और अपराधानुसार जितनी हानि हुइ है उतनी पशुपालक व पशुस्वामी देदे यह मर्यादा है।

अनिर्दशाहां गां सूतां वृषान्देवपशूंस्तथा।
सपालान्वा विपालान्वा न दण्ड्यान्मनुरब्रवीत् ।२४२

(२४२) चरवाहा साथ हो व न हो ऐसी गऊ जिसे ब्याये हुये दश दिन नहीं हुए हैं और वह दश दिन के भीतर खेत नष्ट कर दे अथवा साँड खेत को चर दे तो अदण्डनीय है यह मनुजी ने कहा है।

एतैर्लिंगैर्नयेत्सीमां राजा विवदमानयोः ।
पूर्वभुक्त्या च सततमुदकस्यागमेन च ॥ २५२ ॥

(२५२) इन पूर्वोक्त चिह्नों और पूर्व समय के खेत आदि तथा निरन्तर जल प्रवाह द्वारा राजा सीमा को ज्ञात करने निर्णय करे।

यदि संशय एव स्याल्लिङ्गानामपि दर्शने ।
साक्षिप्रत्यय एव स्यात्सीमावादविनिर्णय ॥२५३॥

(२५३) यदि चिह्नों के दीखने पर भी संशय हो तब साक्षियों (गवाहों) के विश्वास पर ही सीमा विषयक विवाद का निर्णय करे।

ग्रामीयककुलानां च समक्षं सीम्नि साक्षिणः ।
प्रष्टव्याःसीमलिङ्गानि तयोश्चैव विवादिनोः ॥२५४॥

(२५४) ग्राम निवासियों तथा वादी व प्रतिवादी के सामने राजा की साक्षियों से सीमा के चिन्ह पूछने चाहिये।

ते पृष्टास्तु यथा ब्रूयुः समस्ताः सीम्नि निश्चयम् ।
निबध्नीयात्तथा सीमां सर्वांस्तांश्चैव नामतः ॥२५५॥

(२५५) वे सब गवाह एक मत होकर जैसा निश्चय करें राजा उसी के अनुसार सीमा को बाँधे तथा उन सब साक्षियों का नाम भी निर्णय लेख पर लिख ले।

शिरोभिस्ते गृहीत्वोर्वीं स्रग्विणो रक्तवाससः ।
सुकृतैः शापिताः स्वैःस्वैर्नयेयुस्ते समञ्जसम् ॥२५६॥

(२५६) यह सब सीमा सम्बन्धी साक्षी फूलमाला व लाल वस्त्र धारण कर सिर पर मिट्टी का ढेला रख के तथा यह

कर कि यदि हम असत्य भाषण करें तो हमारा सब सुकृत निष्फल हो ठीक-ठीक ज्यों का त्यों कहे।

यथोक्तेन नयन्तस्ते पूयन्ते सत्यसाक्षिणः ।
विपरीतं नयन्तस्तु दाप्याः स्युर्द्विशतंदमम् ॥२५७॥

(२५७) सच साक्षी देने वाले यह लोग शास्त्रानुसार सत्य बोलने के कारण पवित्र हो जाते हैं और इसके विपरीत चलने वाले अर्थात् असत्यभाषी प्रत्येक जन दो सौ पण्ड दण्ड देवे

साक्ष्यभावे तु चत्वारो ग्रामाः सामन्तवासिनः ।
सीमाविनिर्णयं कुर्युः प्रयता राजसन्निधौ ॥२५८॥

(२५८) यदि साक्षी न मिले तो गाँव के आस पास के चार ग्रामों के जमींदार राजा के समीप बुद्धिमानी से तथा धर्मानुकूल सीमा का निर्णय करे।

सामन्तानामभावे तु मौलानां सीम्नि साक्षिणाम् ।
इमानप्यनुयुञ्जीत पुरुषान्वनगोचरान् ॥२५९॥

(२५९) यदि आस पास के ग्राम निवासी व जमींदार न मिले तो उसी गाँव के निवासी जो अन्य ग्राम में वास करते हों उनसे पूछे, यदि ऐसे लोग भी अप्राप्त हों तो समीप के वन के वासी चरवाहों आदि पुरुषों से पूछे।

व्याधाञ्छाकुनिकान्गोपान्कैवर्तान्मूलखानकान् ।
व्यालग्राहानुञ्छवृत्तीनन्यांश्च वनचारिणः ॥ २६० ॥

(२६०) व वनवासी यह हैं—व्याध (शिकारी), शाकुनिक (चिड़ीमार), गोपालक (चरवाहा), मछली पकड़ने वाला, उञ्छवृत्ति वाला तथा वन के अन्य वासियों से पूछ कर सीमाविवाद का निर्णय करे क्योंकि यह सब अपने कार्यार्थ उस गाँव को जाते हुए उसकी सीमा को पहचानते हैं।

समवर्णे द्विजातीनां द्वादशैव व्यतिक्रमे ।
पादेष्ववचनीयेषु तदेव द्विगुणं भवेत् ॥२६९॥

(२६९) द्विजातियों में कोई अपने सवर्ण में एक दूसरे पर मिथ्या दोषारोपण करे तो बारह ही पण दण्ड देवे और यदि सवर्ण से अन्य को अपशब्द (गाली) कहे तो चौबीस पण दण्ड देवे।

एकजातिर्द्विजातीस्तु वाचा दारुणया-क्षिपन् ।
जिह्वायाः प्राप्नुयाच्छेदं जघन्यप्रभवा हि सः ॥२७०॥

(२७०) यदि शूद्र अर्थात् मूर्ख सेवक, विद्वान्, सैनिक, (क्षत्रिय) व व्यापारी को अपशब्द कहे तो उसकी जीभ छेदन करने योग्य है, क्योंकि वह जिन लोगों की सेवा के हेतु नियत हुआ है उनकी सेवा के स्थान पर उनकी मानहानि (अपमान) करता है।

नामजातिग्रहं त्वेषामभिद्रोहेण कुर्वतः ।
निक्षेप्योऽयोमयः शंकुर्ज्वलन्नास्ये दशांगुलः ॥२७१॥

(२७४) जो शूद्र 'अरे तू फलाने ब्राह्मण से नीच' ऐसा अपशब्द ब्राह्मणों आदि द्विजातियों के नाम तथा जाति का सशब्द उच्चारण कर कहे, उसके मुँह में तप्त लोहे की दश अंगुल की कील ठोकनी चाहिये।

धर्मोपदेशं दर्पेण विप्राणामस्य कुर्वतः ।
तप्तमासेचयेत्तैलं वक्त्रे श्रोत्रे च पार्थिवः ॥२७१॥

(२७२) जो अहङ्कार वश ब्राह्मणों को धर्म का उपदेश करे, राजा उसके मुख और कान में तप्त (गरम) डलवावे।

श्रुतं देशं च जातिं च कर्म शारीरमेव च ।
वितथेन ब्रुवन्दर्पाद्दाप्यः स्याद्द्विशतं दमम् ॥२७३

(२७३) अब सवर्ण वालों के दण्ड को कहते हैं कि जो मनुष्य किसी से अहंकार वश यह कहे कि तुम्हारा यह स्थान नहीं है तुम इस देश में उत्पन्न नहीं हुए, तुम्हारी यह जाति नहीं है, तुम्हारे यज्ञोपवीत आदि कर्म नहीं हुए राजा उसे दो सौ पण दण्ड देवे ।

काणं वाप्यथवा खञ्जमन्यं वापि तथाविधम् ।
तथ्येनापि ब्रुवन्दाप्यो दंडं कार्षापणावरम् ॥२७४

(२७४) जो काना व लँगड़ा या इसी प्रकार कोई अन्य अंगहीन है उसको सत्य भाषण में भी अंगहीन न कहना चाहिये और यदि कहे तो एक कार्षापण तक दण्डनीय है ।

मातरं पितरं जायां भ्रातरं तनयं गुरुम् ।
आक्षारयञ्छतं दाप्यः पन्थानं चाददद्गुरोः ॥२७५।

(२७५) माता, पिता, स्त्री, भाई, बेटा, गुरु इन सब से यदि ऐसा कहे कि तुम पातकी हो तथा गुरु के लिए मार्ग न छोड़ने वाला हो तो सौ पण दण्ड देवे ।

ब्राह्मणक्षत्रियाभ्यां तु दंडः कार्यो विजानता ।
ब्राह्मणे साहसः पूर्वः क्षत्रिये त्वेव मध्यमः ।२७६।

(२७६) ब्राह्मण को क्षत्रिय या क्षत्रिय को ब्राह्मण अपशब्द कहे तो ब्राह्मण को पूर्व साहस दण्ड देवे और क्षत्रिय को मध्यम साहस दण्ड देवे ।

विट्शूद्रयोरेवमेव स्वजातिं प्रति तत्त्वतः ।
छेदवर्जं प्रणयनं दंडस्येति विनिश्चयः ॥ २७७ ॥

(२७७) इसी प्रकार वैश्य वा शूद्र अपनी स्वजाति में अपशब्द व कठोर भाषण करे तो जीभ में छेद करने के अतिरिक्त शेष सब दण्ड प्रयोग करना यह शास्त्राज्ञा है।

एष दन्डविधिः प्रोक्तो वाक्पारुष्यस्य तत्वतः ।
अतः ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि दन्डपारुष्यनिर्णयम् ।२७८।

(२७८) यह कठोर भाषण व अपशब्द विषयक दण्ड विधि का यथार्थ तथा वर्णन किया। अब तत्पश्चात् मार-पीट विषयक दण्ड विधान को कहते हैं कि—

येन केनचिदङ्गेन हिंस्याच्चेच्छ्रेष्ठमन्त्यजः ।
छेत्तव्यं तत्तदेवास्य तन्मनोरनुशासनम् ।२७९।

(२७९) अन्त्यज (चाण्डाल आदि) लोग जिस किसी अङ्ग द्वारा द्विजातियों को मारे उनका वह ही अङ्ग काट डालना चाहिये यही मनुजी की आज्ञा है।

पाणिमुद्यम्य दंडं वा पाणिच्छेदनमर्हति ।
पादेन प्रहरन्कोपात्पादच्छेदनमर्हति । २८० ।

(२८०) हाथ व लाठी द्वारा मारे तो उसका हाथ कटवाना चाहिये, यदि क्रोधवश पाँव द्वारा मारे तो पाँव कटवाना चाहिये ।

सहासनमभिप्रेप्सुरुत्कृष्टस्यापकृष्टजः ।
कट्यां कृताङ्को निर्वास्यःस्फिचं वास्यावकर्तयेत् २८१

(२८१) नीच पुरुष श्रेष्ठ पुरुषों के साथ एक आसन पर बैठने की इच्छा करे तो उसकी कमर को चिन्हित कर (दाग देकर निकाल दे अथवा इस प्रकार उसके चूतड़ को कुछ कटवाइ जिससे चिन्ह तो बन जावे परन्तु मरने न पावे।

अवनिष्ठीवतो दर्पाद्द्वावोष्ठौ छेदयन्नृपः।
अवमूत्रयतो मेढ्रमवशर्धयतो गुदम्। २८२।

(२८२) अहंकार से नीच पुरुष श्रेष्ठों के ऊपर थूके तो उसके दोनों ओठ छेद डाले, मूत्र डाले तो लिंग (मूत्रेन्द्रिय) को काट डाले और ऊपर से अपना वायु (पाद) निकाले तो गुदा छेद डाले।

केशेषु गृह्णतो हस्तौ छेदयेदऽविचारयन्।
पादयोर्दाढिकायां च ग्रीवायां वृषणेषु च ।२८३।

(२८३) ब्राह्मण के बाल, पाँव, डाढ़ी, ग्रीवा (गर्दन) अंडकोष (फोतों) को पकड़ने वाले शूद्र के दोनों हाथों को कटवादे। उसको कष्ट होने का विचार न करे,

त्वग्भेदकः शतं दंड्यो लोहितस्य च दर्शकः।
मांसभेत्ता तु षण्निष्कान्प्रवास्यस्त्वस्थिभेदकः ।२८४।

(२८४) त्वचा को छेदने वाला, रक्त निकालने वाला, यह दोनों सौ पण दण्ड देवे तथा मांस पृथक करने वाला छः निष्क दण्ड पावे हड्डी तोड़ने वाले को देश निकाला देवे। यह दण्ड एक सामान जानना चाहिये।

वनस्पतीनां सर्वेषामुपभोगं यथा यथा।
तथा तथा दमः कार्यो हिंसायामिति धारणा ।२८५।

(२८५) सब वृक्षों व वनस्पतियों का जैसा जैसा उपयोग करे वैसा वैसा ही उनको हानि पर दण्ड पावे। मारपीट के विषय में ऐसा ही दण्ड विधान जानना यह शास्त्र मर्यादा है

मनुष्याणां पशूनां च दुःखाय प्रहृते सति।
यथा यथा महद्दुःखं दण्डं कुर्यात्तथा तथा ।२८६।

(२८६) मनुष्यों तथा पशुओं को जैसा २ दुख देवे वैसा वैसा ही दण्ड पावे ।

अङ्गावपीडनायां च व्रणशोणितयोस्तथा ।
समुत्थानव्ययं दाप्यः सर्वदण्डमथापि वा ॥ २८७॥

(२८७) हाथ पाँव आदि अंगों में छेद करने और रक्त निकालने द्वारा पीड़ा पहुंचाने वाला मनुष्य उस चुटहल मनुष्य के स्वास्थ्य लाभ करने तक का सम्पूर्ण (अर्थात भोजन आदि का) व्यय देवे। यदि उस व्यय को न देवे तो वह अपराधी पूर्ण दण्ड पावे

द्रव्याणि हिंस्याद्यो यस्य ज्ञानतोऽज्ञानतोऽपि वा ।
स तस्योत्पादयेत्त ष्टिं राज्ञे दद्याच्च तत्समम् ॥२८८

(२८८) कोई मनुष्य यदि किसी अन्य के द्रव्य को जानकर अथवा अज्ञानता में नष्ट करे तो उसे प्रसन्न व आनन्दित करे और उस धनके तुल्य राजा को दण्ड स्वरुप देवें ।

चर्मचार्मिकभाण्डेषु काष्ठलोष्ठमयेषु च ।
मूल्यात्पञ्चगुणो दण्डः पुष्पमूलफलेषु च ॥२८९॥

(२८९) चमड़ा, चमड़े का वर्तन, मिट्टी व काठ का पात्र फूल फल मूल इनको नष्ट करने वाला मूल्य से (उस वस्तु से पचगुना) दण्ड स्वरूप देवे ।

यानस्य चैव यातुश्च यानस्वामिन एव च ।
दशातिवर्तनान्याहुः शेषे दण्डो विधीयते ॥ २९० ॥

(२९०) सवारी, सारथी, सवारी के स्वामी को दश स्थान पर दण्ड न देना चाहिये, अन्य समय पर दण्ड देना उचित है।

छिन्ननास्ये भग्नयुगे तिर्यक्प्रतिमुखागते ।
अक्षभंगे च यानस्य चक्रभंगे तथैव च ।२६१।

(२६१) नाथ व जुआ के टूटने; ऊँचे नीचे मार्ग के कारण रथ आदि टेढ़ा हो गया हो व सम्मुख कोई रुकावट आगई हो, धुरा टूट गया हो, पहिया टूट जाय।

छेदने चैव यन्त्राणां योक्त्ररश्म्योस्तथैव च ।
आक्रन्दे चाप्युपैहीति न दण्डं मनुरब्रवीत् ।२६२।

(२६२) रथ के बन्धन टूट जावे, रास (जेवड़ा) टूट जाय, कोड़ा टूट जाय तथा सारथी बचो हटो कह रहा हो तो रथी, सारथी, रथ स्वामी किसी को दण्ड न देना चाहिये।

यत्रापवर्तते युग्यं वैगुण्यात्प्राजकस्य तु ।
तत्र स्वामी भवेद्दण्ड्यो हिंसायां द्विशतं दमम् ।२६३

(२६३) जिस स्थान पर सारथी की मूर्खता से रथ इधर उधर चले व उलट जावे उसमें किसी की हानि होने पर रथ का स्वामी अशिक्षित सारथी नौकर रखने के कारण दो सौ पण दण्ड देवे।

प्राजकश्चेद्भवेदाप्तः प्राजको दण्डमर्हति ।
युग्यस्थाः प्राजकेऽनाप्ते सर्वे दण्ड्याःशतं शतम् ।२६४

(२६४) जो सारथी रथ हाँकने में कुशल हो और किसी की मृत्यु हो जावे तो सारथी दो सौ पण दण्ड देवे। यदि सारथी कुशल न हो तो अशिक्षित सारथी को नौकर रखने के अपराध में रथ का स्वामी सारथी तथा रथी (रथ का सवार) यह सब सौ सौ पण दण्ड देवे।

सचेत्तु पथि संरुद्धः पशुभिर्वा रथेन वा ।
प्रमापयेत्प्राणभृतस्तत्र दण्डोऽविचारितः ।२६५।

(२६५) यदि वह सारथी सामने अन्य रथ के आजाने व पशुओं व अन्य से घिरे हुए मार्ग में रथ पीछे न हटाकर कोड़ा मार कर रथ को आगे बढ़ाने के प्रयत्न में किसी की प्राण हानि हो जावे तो वह बिना विचारे दण्डनीय है अथात् राजा उसको अवश्य डंड देवे ।

मनुष्यमारणे क्षिप्रं चौरवत्किल्विषं भवेत् ।
प्राणभृत्सु महत्स्वर्धं गोगजोष्ट्रहयादिषु ।२६६।

(२६६) मनुष्य को हनन करने में चोर की नाईं घोड़ा, हाथी, ऊँट आदि, बड़े पशुओं के वध करने में पाप होता है और 'उत्तम साहस, दंड पाने के योग्य है । गऊ, 'मध्यम साहस' दंड देवे

क्षुद्रकाणां पशूनां तु हिंसायां द्विशतो दमः ।
पञ्चाशत्तु भवेद्दण्डः शुभेषु मृगपक्षिषु ।२६७।

(२६७) और छोटे छोटे पशुओं की हिंसा करने मे दो सौ पण दंड देवे । उत्तम मृग तथा पक्षियों की हिंसा करने में पचास पण दंड देवे

गर्दभाजाविकानां तु दंडः स्यात्पञ्चमाषिकः ।
माषिकस्तु भवेद्दण्डः श्वसूकरनिपातने ।२६८।

(२६८) गधा बकरी भेड़ के मर जाने पर पाँच माशे चाँदी दंड दे । तथा कुत्ता व सुअर के मर जाने मे एक माशा दण्ड हो ।

भार्या पुत्रश्च दासश्च प्रेष्यो भ्राता च सोदरः।
प्राप्तापराधास्ताड्याः स्यु रज्ज्वा वेणुदलेन वा।२६६।

(२६६) स्त्री पुत्र, दास, भृत्य, छोटा सहोदर, भाई (अनुज) शिष्य इनसे अपराध होने पर रस्सी व बाँस की लकड़ी (छड़ी) से ताड़न करे।

पृष्ठतस्तु शरीरस्य नोत्तमाङ्गे कथञ्चन।
अतोऽन्यथा तु प्रहरन्प्राप्तः स्याच्चौरकिल्विषम्।३००।

(३००) परन्तु सिर को छोड़ कर पीठ की ओर मारे इससे विपरीत प्रहार करने वाला चोर के पाप को पावे।

एषोऽखिलेनाभिहितो दंड पारुष्यनिर्णये।
स्तेनस्यातः प्रवक्ष्यामि विधिं दंडविनिर्णये।३०१।

(३०१) यह सब पूर्णतया मारपीट के अपराध के दण्ड निर्णय को कहा अब चोर के दण्ड निर्णय विधिवर्णन करेंगे।

परमं यत्नमातिष्ठेत्स्तेनानां निग्रहे नृपः।
स्तेनानां निग्रहादस्ययशो राष्ट्रं च वर्धते।३०२।

(३०२) चोरों के पकड़ने और उनको दण्ड देने का बड़ा प्रयत्न करे क्योंकि चोरी आदि दुष्कर्मों के निग्रह (रोकने) से राजा का यश और राज्य बढ़ाता है।

अभयस्य हि यो दाता स पूज्यः सततं नृपः।
सत्रं हि वर्धते तस्य सदैवाभयदक्षिणम्।३०३।

(३०३) जो राजा उत्तम प्रबन्ध द्वारा प्रजा को अभय दान देता है। वह सदा पूज्य है क्योंकि उसका (राज्य रूप) यज्ञ, जिसकी दक्षिणा अभय दान ही बढ़ता है।

सर्वतो धर्मषड् भागो राज्ञो भवति रक्षतः ।
अधर्मादपि षड् भागो भवत्यस्य ह्यरक्षतः ।३०४।

(३०४) सब प्रकार प्रजा की रक्षा करने वाला राजा प्रजा के धर्म का छटा भाग पाता है और रक्षा न करने वाले राजा को प्रजा के अधर्म का छटा भाग मिलता है।

यदधीते यद्यजते यद्ददाति यदर्चति ।
तस्य षड् भागभाग्राजा सम्यग्भवति रक्षणात् ।३०५।

(३०५) प्रजा जो अध्ययन यज्ञ दान तथा अन्य धर्म करती है उसका पुण्य का छठा भाग सुरक्षक राजा को प्राप्त होता है।

रक्षन्धर्मेण भूतानि राजा वध्यांश्च घातयन् ।
यजतेऽहरहर्यज्ञैः सहस्रशतदक्षिणैः । ३०६ ।

(३०६) सब प्राणियों की धर्मानुकूल रक्षा करता हुआ और दण्डनीय अपराधियों को उचित दण्ड देता हुआ राजामानो लाख मुद्रा दक्षिणा वाले यज्ञ को प्रति दिन करता है।

योऽरक्षन्बलिमादत्ते करं शुल्कं च पार्थिवः ।
प्रतिभागं च दंडं च स सद्यो नरकं व्रजेत् । ३०७ ।

(३०७) ❀ जो राजा प्रजा की रक्षा न करता हुआ प्रजा से अन्न का छटा भाग कर तथा शुल्क (चुंगी) आदि और दण्ड के भाग को ग्रहण करता है वह राजा शीघ्र ही दुर्गति को प्राप्त हो नरक में जाता है।

❀ राजा का कर आदि सुप्रबन्ध व सुव्यवस्था के अर्थ है जो राजा न्याय तथा रक्षा न करते हुये कर आदि ग्रहण करता है वह राजा नहीं वरन् दस्यु (डाकू) है।

अरक्षितारं राजानं वलिषड्भागहारिणम्।
तमाहुः सर्वलोकस्य समग्रमलहारकम् ॥३०८॥

(३०८) यदि राजा प्रजा की रक्षा न करता हुआ कर आदि को ग्रहण करता रहे तो वह राजा सब लोगों के सब पापों को पाता है अर्थात् अपयश अपमानादि दुःख भोगता है।

अनपेक्षितमर्यादं नास्तिकं विप्रलुम्पकम्।
अरक्षितारमत्तारं नृपं विद्यादधोगतिम्। ३०९।

(३०९) शास्त्र मर्यादा का उल्लंघन करने वाला, नास्तिक, प्रजा की रक्षा न करने वाला प्रजा को पीड़ित करने वाला प्रजा की रक्षा न करके कर आदि को ग्रहण करने वाला राजा अधोगति को प्राप्त होता है।

अधार्मिकं त्रिभिर्न्यायैर्निगृह्णीयात्प्रयत्नतः।
निरोधनेन बन्धेन विविधेन वधेन च ॥ ३१०॥

(३१०) पापियों को कारागार में रखने, बेड़ी आदि डालकर बाँधने तथा विविध प्रकार का शारीरिक व आर्थिक दण्ड देकर इन तीन उपायों से यत्नपूर्वक उनका निग्रह करे अर्थात् उक्त तीन उपायों द्वारा पापी पुरुषों का पाप छुड़ावे।

निग्रहेणहि पापानां साधूनां संग्रहेण च।
द्विजातय इवेज्याभिः पूयन्ते सततं नृपाः ।३११।

(३११) निश्चय करके पापिया (अपराधिया) को दण्ड देने तथा साधू महात्माओं की रक्षा करने से राजा यज्ञ करने वाले (अग्नि होत्री) ब्राह्मण क्षत्रिय तथा वैश्य के समान पवित्र होता है।

क्षन्तव्यं प्रभुणा नित्यं क्षिपतां कार्यिणां नृणाम् ।
बालवृद्धातुराणां च कुर्वतां हितमात्मनः ॥ ३१२ ॥

(३१२) अपना हित चाहने वाला राजा वादी, प्रतिवादी, बालक, वृद्ध, आतुर (दुखी) पुरुषों के वचन को जो वे कष्ट समय आक्षेप करते हुए, भला बुरा कहे उसे सहन कर क्षमा करे क्योंकि—

यः क्षिप्तो मर्षयत्यार्तैस्तेन स्वर्गे महीयते ।
यस्त्वैश्वर्यान्न क्षमते नरकं तेन गच्छति ॥ ३१३॥

(३१३) दुखी पुरुषों (आतुरों) के कठोर आक्षेपों को सुनकर जो राजा सहन करता है वह स्वर्ग में जाता है और जो प्रभुता के मद से सहन नहीं करता है वह नरक में जाता है अर्थात् उस आचरण से दुर्गति पाता है।

राजा स्तेनेन गन्तव्यो मुक्तकेशेन धावता ।
आचक्षाणेन तत्स्तेयमेवंकर्मास्मि शाधि माम् ॥३१४॥

(३१४) ब्राह्मण का सोना चुराने वाला खुले शिर (नंगे मूँड) राजा के सन्मुख दौड़ कर जावे और अपराध को स्वीकार करे।

स्कन्धेनादाय मुसलं लगुडं वापि खादिरम् ।
शक्तिं चोभयतस्तीक्ष्णामायसं दण्डमेव वा ॥ ३१५ ॥

(३१५) मूसल, लाठी, व खैर का डण्डा, दोनों ओर तीक्ष्ण धार वाली बरछी, व लोहे का डण्डा कन्धे पर रख कर इस प्रकार कहे कि मैं ऐसा कर्म करने वाला हूँ मुझको इससे दण्ड दीजिये।

शासमाद्वा विमोक्षाद्वा स्तेनः स्तेयाद्विमुच्यते ।
अशासित्वा तु तं राजा स्तेनस्याप्नोति किल्बिषम् ॥३१६॥

(३१६) राजा उसे दण्ड दे अथवा छोड़ दे तो वह पापी चोरी के पाप से छूट जाता है । और यदि राजा दयालुता के कारण उसे दन्ड न दे तो चोर के पाप को राजा पावे ।

अन्नादे भ्रूणहा मार्ष्टि पत्यौ भार्यापचारिणी ।
गुरौ शिष्यश्च याज्यश्च स्तेनो राजनि किल्बिषम् ॥३१७॥

(३१७) भ्रूणहत्या (गर्भपात) करने वाला, व्यभिचारिणी स्त्री, शिष्य यज्ञ करने द्वारा, तथा चोर यह सब अपने पाप को यथा क्रम भोजन करने वाले, पति, गुरु, राजा इनमें धोते हैं अर्थात् इनको पाप लगता है ।

राजभिः कृतदण्डास्तु कृत्वा पापानि मानवाः ।
निर्मलाः स्वर्गमायान्ति सन्तः सुकृतिनो यथा ।३१८।

(३१८) जिस प्रकार पुन्य कर्म करने वाले स्वर्ग में जाते हैं, उसी तरह अपराधी व पापी राजा से दंडित होने से पवित्र होकर स्वर्ग में जाते हैं ।

यस्तु रज्जुं घटं कूपाद्धरेद्भिद्याच्च यः प्रपाम् ।
स दण्डं प्राप्नुयान्माषं तच्च तस्मिन्समाहरेत् ॥३१९॥

(३१९) कूप पर से रस्सी व घड़ा चुराने वाला, देवशाला व धमशाला (प्याऊ) को तोड़ने वाला एक माशे सोने के दन्ड को प्राप्त हो । और वही घड़ा व रस्सी को उसी कुवाँ पर रख दे ।

धान्यं दशभ्यः कुम्भेभ्यो हरतोऽभ्यधिकं वधः ।
शेषेऽप्येकादशगुणं दाप्यस्तस्य च तद्धनम् ॥३२०॥

(३२०) दश × कुम्भ से अधिक अन्न चुराने वाले को शारीरिक दण्ड देवे, परन्तु चोर व स्वामी के मानादि दशा को देख कर दण्ड को देना चाहिये । यदि इस संख्या के न्यून अन्न की चोरी करे तो चोरी किये अन्न का ग्यारह गुना दण्ड स्वरूप देवे और चोरी जाने वाली वस्तु को उसका स्वामी पावे ।

तथा धरिममेयानां शतादभ्यधिके वधः ।
सुवर्णरजतादीनामुत्तमानां च वाससाम् । ३२१ ।

(३२१) सोना, चाँदी, पट, वस्त्र इन सवों को सौ गंडे से ऊपर चुराने वाले को भी शारीरिक द ंड देना चाहिये । देश, काल, चोर व स्वामी की जाति मानादि को देख द ंडाज्ञा देना चाहिये इसी प्रकार उपरोक्त श्लोक में भी जानना !

पञ्चाशतस्त्वभ्यधिके हस्तच्छेदनमिष्यते ।
शेषे त्वेकादशगुणं मूल्याद्दण्डं प्रकल्पयेत् । ३२२ ।

(३२२) पचास गंडे (पल) से अधिक और सौ गंडे (पल) से न्यून चुराने में हाथ काटना चाहिये । और यदि पचास पल से न्यून चुरावे तो वस्तु के मूल्य का ग्यारह गुना अधिक धन द ंड देवे ।

पुरुषाणां कुलीनानां नारीणां च विशेषतः ।
मुख्यानां चैव रत्नानां हरणे वधमर्हति ।३२३।

(३२३) कुलीन पुरुष वा विशेष कर बड़े कुल की स्त्रियाँ तथा उत्तम, उत्तम रत्नों में से किसी एक के चुराने व हरण कर गुप्त कर देने से वध करने योग्य होता है ।

×२०० गंडे पैसों के तोल को द्रोण कहते हैं और २० द्रोण का एक कुम्भ होता है ।

महापशूनां हरणे शस्त्राणामौषधस्य च।
कालमासाद्य कार्यं च दण्डं राजा प्रकल्पयेत् ।३२४।

(३२४) हाथी, घोड़ा, भैंस, गऊ आदि बड़े बड़े पशु व शस्त्र और घृत आदि औषधियाँ इनमें से किसी एक को चुराने में काल तथा कार्य को देखकर राजा तीनों दण्डों में से उचित दंड को नियत करे।

गोषु ब्राह्मणसंस्थासु छुरिकायाश्च भेदने।
पशूनां हरणे चैव सद्यः कार्योऽर्धपादिकः ।३२५।

(३२५) ब्राह्मण की गऊ अपहरण कर लेने सवारी के हेतु बाँझ गऊ को छुरी छेदने तथा इसी प्रकार बकरा भेड़ आदि पशुओं के चुराने में तुरन्त आधा पाँव काटने का दण्ड देना चाहिये।

सूत्रकार्पासकिण्वानां गोमयस्य गुडस्य च।
दध्नः क्षीरस्य तक्रस्य पानीयस्य तृणस्य च ।३२६।

(३२६) सूत कपास (रुई) महुआ, गोबर, गुड़, दही दूध मट्ठा जल तृण (घास) आदि।

वेणुवैदलभांडानां लवणानां तथैव च।
मृन्मयानां च हरणे मृदो भस्मन एव च ।३२७।

(३२७) मोटे बाँस के टुकड़े से बना हुआ जल पात्र; मिट्टी का पात्र, राख लवण (नमक)

मत्स्यानां पक्षिणां चैव तैलस्य च घृतस्य च।
मांसस्य मधुनश्चैव यच्चान्यत्पशुसंभवम् ।३२८।

(३२८) मछली, पक्षी, तेल, घी, माँस, मधु, विविध

मृगचर्म, बारहसिंगा के सींग आदि व अन्य पदार्थ जो व्यवहार में आते हैं।

अन्येषां चैवमादीनां मद्यानामोदनस्य च।
पक्वान्नानां च सर्वेषां तन्मूल्याद्द्विगुणो दमः।३२६

(३२६) इसी प्रकार अन्य पदार्थ हैं अर्थात् मद्य, मोदक (लड्डू) दाल, भात आदि पकवानों में से किसी एक वस्तु के चुराने में उस वस्तु के मूल्य का दुगुना दंड होना चाहिए।

पुष्पेषु हरिते धान्ये गुल्मवल्लीनगेषु च।
अन्येष्वपरिपूतेषु दंडःस्यात्पञ्चकृष्णलः।३३०।

(३३०) फूले हुये खेत में स्थित हरित धान्य और गुल्म लता वृक्ष आदि के फल व एक मनुष्य के ले जाने योग्य धान्य इनमें से किसी एक वस्तु के चुराने में देश काल को देखकर पाँच कृष्णल अर्थात् एक माशा सोना चाँदी दण्ड देवे।

परिपूतेषु धान्येषु शाकमूलफलेषु च।
निरन्वये शतं दण्डः सान्वयेऽर्धशतं दमः। ३३१।

(३३१) परिपक्व तथा शोधित धान्य, शाक, मूल व फल इनमें से किसी एक वस्तु के चुराने में यदि चोर स्वामी के वश का हो अर्थात् स्वदेशवासी आदि सम्बन्ध रखता हो तो पचास पण दण्ड और सम्बन्धी व वश का न हो तो सौ पण दण्ड देवे

स्यात्साहसं त्वन्वयवत्प्रसभं कर्म यत्कृतम्।
निरन्वयं भवेत्स्तेयं हृत्वापव्ययते च यत्॥ ३३२॥

(३३२) स्वामी के सम्मुख कुटुम्बियों के समान

पूर्वक वस्तु ले जावे तो वह साहस कहाता है और यदि स्वामी की पीठ पीछे सम्बन्धियों से भिन्न पुरुष ले जावे और चुरा कर मुकर जाये तो वह चोरी कहलाती है।

यस्त्वेतान्युपक्लृप्तानि द्रव्याणि स्तेनयेन्नरः।
तमाद्यं दंडयेद्राजा यश्चाग्निं चोरयेद्गृहात् ।३३३।

(३३३) जो मनुष्य दूसरे की वस्तु चुरावे, यज्ञशाला से वा अग्निहोत्र की अग्नि तथा गृह की अग्नि चुरावे तो वह प्रथम साहस दण्ड पावे और अग्नि के द्वितीय बार स्थित करने में जो कुछ व्यय हो वह अग्नि के स्वामी को देवे।

येन येन यथाङ्गेन स्तेनो नृषु विचेष्टते।
तत्तदेव हरेत्तस्य प्रत्यादेशाय पार्थिवः ।३३४।

(३३४) जिस जिस अंग से दूसरे दूसरे की वस्तु को चुरावे उस अंग को कटवा लेना चाहिये जिससे फिर ऐसा काम न करें।

पिताचार्यः सुहृन्माता भार्या पुत्रः पुरोहितः।
नादण्ड्यो नाम राज्ञोऽस्ति यः स्वधर्मे न तिष्ठति ३३५

(३३५) पिता, आचार्य, सुहृदय, माता, स्त्री, पुत्र और पुरोहित इनमें से जो स्वधर्म में स्थित न हो वह दण्डनीय है अर्थात् वह भी दंड योग्य हैं। राजा के समीप अपराधी होने की दशा में सब मनुष्य दंड देने योग्य हैं।

कार्षापणं भवेद्दण्ड्यो यत्रान्यः प्राकृतो जनः।
तत्र राजा भवेद्दण्ड्यः सहस्रमिति धारणा ।३३६।

(३३६) जिस अपराध में राजा के अतिरिक्त साधारण

लोग कर्षापण दण्ड के योग्य होते हैं उस २
सहस्रपण दण्ड पाने के योग्य है। ऐसी शास्त्र मर्या

अष्टापद्यं तु शूद्रस्य स्तेये भवति किल्बिषं
पोडशैव तु वैश्यस्य द्वात्रिंशत्क्षत्रियस्य च

(३३७) जो शूद्र, वैश्य, क्षत्रिय तथा ब्राह्मण भले या बुरे गुणों से अनभिज्ञ हैं उनको चोरी में वैसा है उसका अठगुना, सोलह गुना, बत्तीस गुना,

ब्राह्मणस्य चतुःषष्टिः पूर्णं वापि शतं भवेत्।
द्विगुणा वा चतुः षष्टिस्तद्दोषगुणविद्धि सः ३३८

(३३८) चौसठ गुना, सौगुना, एक सौ अट्टाईस दण्ड क्रमानुसार १-शूद्र, २—वैश्य, ३-क्षत्रिय, ब्राह्मण को दे चाहिये। जब वह वस्तुओं के गुण दूषों को जानते हों।

वानस्पत्यं मूलफलं दार्वग्न्यार्थं तथैव च।
तृणं च गोभ्यो ग्रासार्थमस्तेयं मनुरब्रवीत् ३३९

(३३९) जो वृक्ष आदि अरक्षक दशा में हैं उस वृक्ष का मूल, फल, फूल, यज्ञ समिधा (हवन के लिए लकड़ी) तथा गऊ के हेतु तृण आदि इन सब को लेवे वह अदण्डनीय है क्योंकि मनुजी के विचार से यह अधर्म नहीं है।

योऽदत्तादायिनो हस्ताल्लिप्सेत ब्राह्मणो धनम्।
याजनाध्यापनेनापि यथा स्तेनस्तथैव सः ३४०

(३४०) जो ब्राह्मण चोर को पढ़ाकर तथा उसके द्वारा यज्ञ कराके द्रव्य लेने की इच्छा रखता है। वह ब्राह्मण चोर समान है।

द्विजोध्वगः क्षीणवृत्तिर्द्वाविक्षू द्वे च मूलके ।
आददानः परक्षेत्रान्न दण्डं दातुमर्हति ॥३४१॥

(३४१) ब्राह्मण क्षत्रिय, वैश्य यह सब देश पर्यटन कर रहे हों और इनके पास भोजनार्थ कुछ न हो यदि यह मार्ग के समीपी खेत के दो गन्ने दो मूली लेलेवें तो भी अदण्डनीय हैं।

असंदितानां संदाता संदितानां च मोक्षकः ।
दासाश्वरथहर्ता च प्राप्तः स्याच्चौरकिल्विषम् ॥३४२॥

(३४२) दूसरे के छूटे हुए घोड़े को अहंकार वश बाँधने हारा व घुड़साल में बँधे हुए घोड़े आदि को छोड़ने हारा और दास, घोड़ा, रथ इनको हरने वाला चोर के पाप को पाता है।

अनेन विधिना राजा कुर्वाणः स्तेननिग्रहम् ।
यशोऽस्मिन्प्राप्नुयाल्लोके प्रेत्य चानुत्तमं सुखम् ।३४३।

(३४३) इस विधि चोरों को दण्ड देने वाला राजा इस लोक में यश वा परलोक में उत्तम सिद्धि को पाता है।

ऐन्द्रं स्थानमभिप्रेप्सुर्यशश्चाक्षयमव्ययम् ।
नोपेक्षेत क्षणमपि राजा साहसिकं नरम् ॥३४४॥

(३४४) इन्द्र की पदवी प्राप्त करने का इच्छुक तथा अक्षय यश प्राप्त करने की अभिलाषा रखने वाला राजा पक्षपात से भी बलात्कार करने वाले मनुष्य की सहानुभूति न करे।

वाग्दुष्टात्तस्कराच्चैव दंडेनैव च हिंसतः ।
साहसस्य नरः कर्ता विज्ञेयः पापकृत्तमः ॥३४५॥

(३४५) वाग्दुष्ट (अपशब्द कहने वाला) व चोर व डण्डे से मारने वाला इन सभों से साहस (सन्सर्ग) करने वाला पापी है।

साहसे वर्तमाने तु यो मर्षयति पार्थिवः ।
स विनाशं व्रजत्याशु विद्वेषं चाधिगच्छति ॥३४६॥

(३४६) जो राजा बलात्कार करने वाले मनुष्य के अपराध को सहन कर लेता है अर्थात् उसे दण्ड नहीं देता वह शीघ्र ही नाश व विद्वेष को पाता है ।

न मित्रकारणाद्राजा विपुलाद्वा धनागमात् ।
समुत्सृजेत्साहसिकान्सर्वभूतभयावहान् ॥३४७॥

(३४७) सब प्राणियों के भय देने वाले व बलात्कार करने वाले मनुष्य से अधिक धन मिलने के कारण कभी उसे क्षमा न करे अर्थात् वह अधिक धन देवे तो भी उसे दण्ड देवे ।

शस्त्रं द्विजातिभिर्ग्राह्यं धर्मो यत्रोपरुध्यते ।
द्विजातीनां च वर्णानां विप्लवे कालकारिते ॥३४८॥

(३४८) धर्म नाश हो जाने की दशा में विप्लव काल में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, तीनों वर्ण अस्त्र शस्त्र धारण करें ।

आत्मनश्च परित्राणे दक्षिणानां च संगरे ।
स्त्रीविप्राभ्युपपत्तौ च घ्नन्धर्मेण न दुष्यति ॥३४९॥

(३४९)–आत्मा के परित्राणार्थ (कष्ट से बचने के हेतु) यज्ञ करने के हेतु सामग्री एकत्र करने, तथा स्त्रियों व ब्राह्मणों को कष्ट मुक्त के हेतु, किसी को मारने से पाप नहीं होता ।

गुरुं वा बालवृद्धौ वा ब्राह्मणं वा बहुश्रुतम् ।
आततायिनमायान्तं हन्यादेवाविचारयन् । ३५० ।

(३५०) चाहे गुरु व बालक, वृद्ध ब्राह्मण व विद्वान् ही क्यों न होवे परन्तु+आतताई होने की दशा में बिना सोचे उसको अवश्य वध करे । कुछ विचार न करना चाहिये ।

नाततायिवधे दोषो हन्तुर्भवति कश्चन ।
प्रकाशं वाऽप्रकाशं वा मन्युस्तं मन्युमृच्छति ।३५१।

(३५१) आतताई के वध में उसके मारने वाले को पाप नहीं होता जो मनुष्य प्रकट वा अप्रकट गुप्त) दशा में क्रोधोन्मत्त होकर मारता है उसको वैसा ही क्रोध का फल मिलता है।

परदाराभिमर्शेषु प्रवृत्तान्नृन्महीपतिः ।
उद्वेजनकरैर्दण्डैश्छिन्नयित्वा प्रवासयेत् ।३५२।

(३५२) जो मनुष्य परस्त्री रमण (दूसरे की स्त्री से मैथुन) करने वाले हैं उत्साह (उद्वेग) दिलाने वाले हैं दण्ड द्वारा उनके शरीर को छिन्न (चिह्नित) करके देश से निकाल दे ।

तत्समुत्थो हि लोकस्य जायते वर्णसंकरः ।
येनमूलहरोऽधर्मः सर्वनाशाय कल्पते ।३५३।

(३५३) संसार में स्त्रियों के व्यभिचार से वर्ण शङ्कर उत्पन्न होते हैं और इस वर्ण शङ्कर से मूल नाशक अधर्म उत्पन्न होता है जिससे सृष्टि का नाश होता है।

+आतताई के अर्थ विश्वासघाती व कृतघ्नी के हैं अर्थात् अग्नि लगाने वाला विष देने वाला, धन सम्पत्ति, धान्य खेत स्त्री का अपहरण करने वाला आदि आततार्ई कहलाते हैं।

परस्य पत्न्या पुरुषः संभाषां योजयन्रहः ।
पूर्वमाचारितो दोषैः प्राप्नुयात्पूर्वसाहसम् ॥३५४

(३५४) परस्त्री से एकान्त में जो मनुष्य बातें करता है और प्रथम ही से उसका दोष प्रकट है उस मनुष्य को पूर्व साहस दण्ड देना चाहिये।

यस्त्वनाचारितः पूर्वमभिभाषेत कारणात् ।
न दोषं प्राप्नुयात्किंचिन्न हि तस्य व्यति क्रमः ॥३५५

(३५५) जिस मनुष्य का दोष प्रथम कभी ज्ञात नहीं हुआ यदि वह किसी विशेष कारण वश परस्त्री से एकान्त में परामर्श करता है तो वह अदण्डनीय है।

परस्त्रियं योऽभिवदेत्तीर्थेऽरण्ये वनेऽपि वा ।
नदीनां वापि संभेदे स संग्रहणमाप्नुयात् ॥३५६

(३५६) जल में जाने मार्ग तथा घास फूस युक्त तथा मनुष्यों से विलग पर जो गाँव के बाहर हो, वन, तथा नदी संगम इन स्थानो मे परस्त्री से वार्तालाप व परामर्श करे तो संग्रहण का दण्ड पाने योग्य है।

उपचारक्रिया केलिः स्पर्शो भूषणवाससाम् ।
सह खट्वासनं चैव सर्वं संग्रहणं स्मृतम् ॥ ३५७

(३५७) माला पहनना, सुगन्धित वस्तु इत्र लगाना, वस्त्र तथा आभूषण भेजना, स्पर्श करना, हास्य करना, आलिंगन आदि करना, एक शय्या पर बैठना यह सब समग्रहण कहलाता है। इसको मनु आदि ऋषियों ने कहा।

स्त्रियं स्पृशेददेशे यः स्पृष्टो वा मर्षयेत्तथा ।
परस्परस्यानुमते सर्वं संग्रहणं स्मृतम् ॥३५८

(३५८) जिस पुरुष ने स्त्री की जंघादि को स्पर्श किया (छुआ) ग्रहण किया (पकड़ा) और पुरुष ने उस पर क्रोध न किया तो मनु आदि ऋषियों के विचार से यह पारस्परिक प्रीति संग्रहण कहलाती है।

अब्राह्मणः संग्रहणे प्राणान्तं दण्डमर्हति ।
चतुर्णामपि वर्णानां दारा रक्ष्यतमाः सदा ।३५९।

(३५९) ब्राह्मण के अतिरिक्त अन्य जाति वालों को संग्रहण के अपराधी होने पर प्राणदण्ड देना चाहिये, क्योंकि चारों वर्णों की स्त्री रक्षणीय हैं।

भिक्षुका वन्दिनश्चैव दीक्षिताः कारवस्तथा ।
संभाषणं सह स्त्रीभिः कुर्युरप्रतिवारिताः ।३६०।

(३६०) भिक्षुक, वन्दी (भाट), दीक्षित (जिसने यज्ञार्थ दीक्षा ली है) पाचक (रसोई बनाने वाला) यह सब भिक्षा आदि अपने कर्मों के हेतु स्त्रियों से सम्भाषण (वार्तालाप) करें तो इनको न वर्जना चाहिये।

न संभाषां परस्त्रीभिः प्रतिषिद्धः समाचरेत् ।
निषिद्धो भाषमाणस्तु सुवर्णं दंडमर्हति ।३६१।

(३६१) एक बार वर्जित करने पर भी यदि वह मनुष्य उस स्त्री से सम्भाषण करे तो एक स्वर्ण (१६ माशा) सोना दण्ड देवे।

नैष चारणदारेषु विधिर्नात्मोपजीविषु ।
सज्जयन्ति हि ते नारीर्निगूढाश्चारयन्ति च ।३६२।

(३६२) नट तथा चारण (गाने बजाने वाले) की स्त्री

तथा जो पुरुष स्त्री के दुराचरण द्वारा ही निर्वाह करते हैं उन स्त्रियों के हेतु उपरोक्त नीति का नियम नहीं है। क्योंकि लोग स्वयं ही अपनी स्त्रियों को गुप्त रीति से सब स्थानों भेजते हैं।

किञ्चिदेव तु दाप्यः स्यात्संभाषां ताभिराचरन् ।
प्रैष्यासु चैकभक्तासु रहः प्रव्रजितासु च ।३६३।

(३६३) परन्तु ते। भी वे परस्त्रियाँ हैं अतः उन्हीं के साथ वार्तालाप करने से वह पुरुष किंचित दंड पावे। दासी तथा एक घर में जिस स्त्री को राख रक्खा है वह, सन्यासी की स्त्री इन्हीं के साथ सम्भाषण करने वाला किंचित दंड पावे।

योऽकामां दूषयेत्कन्यां स सद्यो वधमर्हति ।
सकामां दूषयंस्तुल्यो न वधं प्राप्नुयान्नरः ।३६४।

(३६४) जो स्वजाति कन्या कामेच्छा नहीं करती और पुरुष उससे काम क्रीड़ा करता है उसके मूत्रेन्द्रिय के। तुरन्त ही छिन्न काट देना चाहिये। परन्तु * ब्राह्मण को यह दंड नहीं देना चाहिये क्योंकि उसे शारीरिक दंड देना वर्जित है। जो मनुष्य कामेच्छित स्वजाति कन्या से रति करे, उसे मूत्रेन्द्रिय छिन्न करने का दण्ड न देवे।

(३६९) जो कन्या अन्य कन्या के गुप्त स्थान (मूत्रस्थान) में अँगुली डाल कर कामक्रीड़ा करे तो उसको दो सौ पण दण्ड देना चाहिए और अँगुली डालने वाली कन्या का पिता दूना शुल्क (मुआवजा) देवे।

या तु कन्यां प्रकुर्यात्स्त्री सा सद्यो मौण्ड्यमर्हति ।
अंगुल्योरेव वा छेदं खरेणोद्वहनं तथा ।३७०।

(३७०) जो स्त्री छोटी कन्या के गुप्त स्थान में अँगुली डालकर काम क्रीड़ा करे उसका मूड़ मुड़ाना, व अँगुलिये काटना, व खर (गदहा) पर चढ़ाकर नगर में राजपथ पर घुमाना चाहिए। परन्तु अपराध की अवस्था ज्ञात कर योग्य दण्ड निश्चय करना उचित है।

भर्तारं लंघयेद्या तु स्त्री ज्ञातिगुणदर्पिता ।
तां श्वभिः खादयेद्राजा संस्थाने बहुसंस्थिते ।३७१।

(३७१) जाति व गुण के दर्प (अहंकार) से अपने पति को त्याग देने वाली स्त्री को राजा बहुत मनुष्यों की उपस्थिति में कुत्तों से भोजन करावे अर्थात् नुचवावे।

पुमांसं दाहयेत्पापं शयने तप्त आयसे ।
अभ्यादध्युश्च काष्ठानि तत्र दह्येत पापकृत् ।३७२।

(३७२) उपरोक्त परस्त्री से (अर्थात् जाति व गुण के अहंकार से अपने पति को त्याग देने वाली स्त्री से) रति करने वाले मनुष्य को लोहे की तप्त (गरम) शय्या पर सुलाकर चारों ओर लकड़ी रख कर अग्नि लगा दे जिससे वह पापी भस्म हो जावे।

संवत्सराभिशस्तस्य दुष्टस्य द्विगुणो दमः ।
व्रात्यया सह संवासे चाण्डाल्या तावदेव तु ।३७३।

(३७३) यदि कोई पुरुष ऐसे मनुष्य की जिसका यज्ञोपवीत संस्कार नियत समय पर नहीं हुआ है वह चाण्डाल की स्त्री से भोग करके एक बार छूट जावे तत्पश्चात् वह दूसरी बार भोग करे तो उसे दुगुना दण्ड देना चाहिये।

शूद्रो गुप्तमगुप्तं वा द्वैजातं वर्णमावसन्।
अगुप्तमङ्गसर्वस्वैर्गुप्तं सर्वेण हीयते॥ ३७४॥

(३७४) * ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य की स्त्री पति आदि से सुरक्षित हो या न हो, उससे भोग करने वाले शूद्र की मूत्रेन्द्रिय काट लेनी व सारी सम्पति हरण कर (छीन) लेनी चाहिये व प्राणदण्ड देना चाहिये परन्तु अरक्षित स्त्री से भोग करने में मूत्रेन्द्रिय छिन्न करना व सारी सम्पत्ति हरण कर लेना यही दण्ड देवे और सुरक्षित से भोग करने में उपरोक्त तीनों दण्ड देवे।

वैश्यः सर्वस्वदण्डः स्यात्संवत्सरनिरोधतः।
सहस्रं क्षत्रियो दंड्यो मौड्यं मूत्रेण चार्हति।३७५।

(३७५) सुरक्षित ब्राह्मणी से भोग करने में वैश्य को एक वर्ष पर्यन्त कारागार में रखना चाहिये, तत्पश्चात् सारी सम्पति हरण कर लेनी चाहिये और इसी अपराध में क्षत्रिय को सहस्र पण दण्ड देवे तथा गधे के मूत्र से सिर मुँड़वा देवे।

ब्राह्मणीं यद्यगुप्तां तु गच्छेतां वैश्यपार्थिवौ।
वैश्यं पञ्चशतं कुर्यात्क्षत्रियं तु सहस्रिणम्॥ ३७६॥

(३७६) पति आदि से अरक्षित ब्राह्मणी से भोग करने वाले क्षत्रिय व वैश्य को यथाक्रम पाँचसौ व सहस्रपण दण्ड देवे।

---

*धर्मशास्त्र में व्यभिचार प्रतिरोध का इतना ध्यान रक्खा गया है। अब जहाँ इसकी आज्ञा हो वह क्षेपक(सम्मिश्रण)समझना चाहिए।

उभावपि तु तावेव ब्राह्मण्या गुप्तया सह ।
विप्लुतौ शूद्रवद्दण्ड्यौ दग्धव्यौ वा कटाग्निना ।३७७।

(३७७) पति आदि द्वारा सुरक्षित ब्राह्मणी से भोग करने वाले क्षत्रिय व वैश्य दोनों शूद्र के समान दण्डनीय हैं अर्थात् सब अङ्ग छिन्न करने चाहिये, चाहे लाल कुश से ढक कर वैश्य को और सरहरी से ढककर क्षत्रिय को जलाना चाहिये यह दण्ड पतिव्रता व सद्गुणी स्त्री से भोग करने में जानना चाहिये।

सहस्रं ब्राह्मणो दण्ड्यो गुप्तां विप्रां बलाद् व्रजन् ।
शतानि पञ्च दण्ड्यःस्यादिच्छन्त्या सह संगतः ।३७८।

(३७८) पति आदि से सुरक्षित ब्राह्मणी से बलात्कार करने वाले ब्राह्मण को सहस्र पण दण्ड देना चाहिये। और उस ब्राह्मणी की इच्छा से भोग करने वाले ब्राह्मण को पाँच सौ पण दण्ड देना चाहिये।

मौण्ड्यं प्राणान्तिको दण्डो ब्राह्मणस्य विधीयते ।
इतरेषां तु वर्णानां दण्डः प्राणान्तिको भवेत् ।३७९।

(३७९) वध के स्थान पर ब्राह्मण का मूँड मुड़ाना ही दण्ड है तथा अन्य वर्णों का वध करना चाहिये।

न जातु ब्राह्मणं हन्यात्सर्वपापेष्वपि स्थितम् ।
राष्ट्रादेनं बहिः कुर्यात्समग्रधनमक्षतम् ॥ ३८० ॥

(३८०) यदि ब्राह्मण (अर्थात् विद्वान पुरुष) बहुत पापों का अपराधी हो तो भी उसका वध न करे, वरन् शारीरिक दण्ड भी न देकर अपने राज्य से निकाल दे।

न ब्राह्मणवधाद्भूयानधर्मो विद्यते भुवि।
तस्मादस्य वधं राजा मनसापि न चिन्तयेत् ॥३८१॥

(३८१) संसार में विद्वान अर्थात् ब्राह्मण के वध से अधिक कोई पाप नहीं क्योंकि इससे अध्ययन-क्रम को हानि पहुँचती है। अतः राजा ब्राह्मण को वध करने का विचार मन में भी न लावे।

वैश्यश्चेत्क्षत्रियां गुप्तां वैश्यां वा क्षत्रियो व्रजेत्।
यो ब्राह्मण्यामगुप्तायां तावुभौ दंडमर्हतः ॥३८२॥

(३८२) पति आदि से सुरक्षित वैश्य की स्त्री से क्षत्रिय भोग करे व वैसी ही क्षत्राणी से वैश्य भोग करे तो जो दण्ड अरक्षित ब्राह्मणी से भोग करने वाले को कहा है वही दण्ड देना

सहस्रं ब्राह्मणो दण्डं दाप्यो गुप्ते तु ते व्रजन्।
शूद्रायां क्षत्रियविशोः सहस्रो वै भवेद्दमः ॥३८३॥

(३८३) पति आदि से सुरक्षित क्षत्रिय व वैश्य की स्त्री से भोग करने वाले ब्राह्मण को हजार पण दण्ड देना चाहिये। तथा पति आदि से सुरक्षित शूद्र की स्त्री से भोग करने वाले क्षत्रिय व वैश्य को भी सहस्र पण दण्ड देना चाहिए।

क्षत्रियायामगुप्तायां वैश्ये पञ्चशतं दमः।
मूत्रेण मौंड्यमिच्छेत्तु क्षत्रियो दण्डमेव वा ॥३८४॥

(३८४) पति आदि से अरक्षित क्षत्राणी से भोग करने में वैश्य को पाँच सौ पण दण्ड देना चाहिये। और उससे भोग करने वाले क्षत्रिय को गधे के मूत्र द्वारा मूँड मुँडवा देने का भी दण्ड यथेष्ट है।

अगुप्ते क्षत्रियावैश्ये शूद्रां वा ब्राह्मणो व्रजन् ।
शतानि पञ्च दंड्यः स्यात्सहस्रं त्वन्त्यजस्त्रियम् ।३८५।

(३८५) पति आदि से अरक्षित क्षत्रिय, वैश्य वा शूद्र की स्त्री से भोग करने वाले ब्राह्मण को पाँच पण दण्ड देना चाहिये। तथा चाण्डालादि की स्त्री से भोग करने वाले ब्राह्मण को सहस्र पण दण्ड देना चाहिये।

यस्य स्तेनः पुरे नास्तिमान्यस्त्रीगो न दुष्टवाक् ।
न साहसिकदंडघ्नौ स राजा शक्रलोकभाक् ।३८६।

(३८६) १–चोर, २–अन्य की स्त्री से भोग करने वाला, ३—खोटे वचन भाषी, ४—बलात्कार करने वाला, ५—डण्डे (लाठी) से आघात करने वाला, यह सब जिस राजा के राज्य में नहीं हैं, वह राजा इन्द्रलोक को पाता है।

एतेषां निग्रहो राज्ञः पञ्चानां विषये स्वके ।
साम्राज्यकृत्सजात्येषु लोके चैव यशस्करः । ३८७ ।

(३८७) अपने राज्य में इन पाँचों को दण्ड देने वाला राजा राजाओं में सबसे अधिक साम्राज्य को पदवी प्राप्त करता है और इस संसार में यश भी पाता है।

ऋत्विजं यस्त्यजेद्याज्यो याज्यं चर्त्विक्त्यजेद्यदि ।
शक्तं कर्मण्यदुष्टं च तयोर्दण्डः शतं शतम् ।३८८।

(३८८) अपने कर्म में दक्ष तथा दुष्कर्मों से पृथक् ऋत्विज और यजमान इन दोनों में से एक को परित्याग करे तो परित्याग करने वाले को सौ पण दण्ड देना चाहिये।

न माता न पिता न स्त्री न पुत्रस्त्यागमर्हति ।
त्यजन्नपतितानेतान्राज्ञा दंडयः शतानि षट् ।३८९।

(३८९) माता पिता व स्त्री और पुत्र जो अपने वर्ण से भ्रष्ट हो गये हों उनमें से किसी एक को त्याग करे तो वह छः सौ पण दण्ड के योग्य होता है।

आश्रमेषु द्विजातीनां कार्ये विवदतां मिथः ।
न विब्रूयान्नृपो धर्मं चिकीर्षन्हितमात्मनः ॥३९०॥

(३९०) गृहस्थादि आश्रम में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, की परस्पर में शास्त्र के अर्थ व कार्य की बहस अर्थात् शास्त्रार्थ) होती हो तो भला चाहने वाला राजा साहस करके ऐसा न बोले कि इस शास्त्र का यह अर्थ है।

यथार्हमेतानभ्यर्च्य ब्राह्मणैः सह पार्थिवः ।
सान्त्वेन प्रशमय्यादौ स्वधर्मं प्रतिपादयेत् ॥ ३९१ ॥

(३९१) यथाविधि शास्त्रार्थ करने वालों की पूजा करके तथा ब्राह्मणोंसहित उन्हें शांत करके राजा अपने धर्म को वर्णनकरे

प्रातिवेश्यानुवेश्यौ च कल्याणे विंशतिद्विजे ।
अर्हावभोजयन्विप्रो दंडमर्हति माषकम् ॥ ३९२ ॥

(३९२) यदि उत्तम कार्य में शांति के हेतु ब्राह्मण भोजन कराना हो और वैश्य अपने घर के सामने वा एक घर छोड़कर दूसरे घर में रहने वाले ब्राह्मण को भोजन न करावे तो एक मासा चाँदी दण्ड देवे।

श्रोत्रियः श्रोत्रियं साधुं भूतिकृत्येष्वभोजयन् ।
तदन्नं द्विगुणं दाप्यो हिरण्यं चैव माषकम् ।३९३।

(३६३) विवाहादि आनन्दोत्सवोंमें अपने घर के सामने वा एक घर छोड़कर अन्य घरवासी, वेदपाठी ब्राह्मण को भोजन न करावे तो एक माशा सोना और भोजन का दुगुना दण्ड स्वरूप देवे।

अन्धो जड़ः पीठसर्पी सप्तत्या स्थविरश्च यः।
श्रोत्रियेषूपकुर्वंश्च न दाप्यो केनचित्करम् ॥३६४॥

(३६४) राजा को निम्नाङ्कित (अधोलिखित) मनुष्यों से चाहे कोषधन शून्य ही क्यों न हो, कर न लेना चाहिये। अन्धा, लङ्गड़ा, सत्तर वर्ष का बूढ़ा, धन व भोजन से वेदाध्ययनी पुरुषों की सेवा करने वाला।

श्रोत्रियं व्याधितार्तौ च बालवृद्धावकिञ्चनम्।
महाकुलीनमार्यं च राजा संपूजयेत्सदा ॥३६५॥

(३६५) वेदज्ञाता, व्याधिपीड़ित, बाल, वृद्ध, कंगाल, महाकुलीन, और दानी इन लोगों को राजा को सदा पूजा करनी चाहिये।

शाल्मलीफलके श्लक्ष्णे नेनिज्यान्नेजकः शनैः।
न च वासांसि वासोभिर्निर्हरेन्न च वासयेत् ॥३६६॥

(३६६) सेमर के चिकने पाटा पर धीरे से धोबी कपड़े धोवे और एक का वस्त्र दूसरे को न देवे तथा बहुत दिवसों तक अपने घर में न रखे।

तन्तुवायो दशपलं दद्यादेकपलाधिकम्।
अतोऽन्यथा वर्तमानो दाप्यो द्वादशकं दमम् ॥३६७॥

(३६७) तन्तुकार (वस्त्र बुनने वाला) अपने परिश्रम (बुनवाई) के हेतु दशपल (गड्डे) के सूत लेवे तो ११ गड्डे

बील कर वस्त्र देवे उससे न्यून देवे तो बारह पण दण्ड के राजा को देखकर सूत के स्वामी को प्रसन्न करे।

शुल्कस्थानेषु कुशलाः सर्वपण्यविचक्षणाः।
कुर्युरर्घं यथापण्यं ततो विंशं नृपो हरेत्। ३९८।

(३९८) राज्यकर का ज्ञाता तथा प्रत्येक पदार्थ के वेचने में कुशल पुरुष जिस वस्तु का जो मूल्य निर्धारित करे उसमें जो लाभ हो उसका २० वाँ भाग राजा आयकर (इनकम टैक्स) लेवे

राज्ञः प्रख्यात भाण्डानि प्रतिषिद्धानि यानि च।
तानि निर्हरतो लोभात्सर्वहरं हारंन्नृपः। ३९९।

(३९९) राजा के योग्य जो वस्तु है वा जिस वस्तु को अन्य के हाथ वेचने को वर्जित किया है, उन वस्तुओं को लोभ वश दूसरे स्थान पर वेचे तो उसकी सारी सम्पत्ति राजा हरण कर लेवे।

शुल्कस्थाने परिहरन्नकाले क्रियविक्रयी।
मिथ्यावादी च संस्थाने दाप्योऽष्टगुणमत्ययम्।४००।

(४००) जिस स्थान पर राज कर लिया जाता है उस स्थान को त्याग ने वाला, असमय वेचने व खरीदने वाला घटि तौला (कम तौलने वाला) राजकर का अठगुना दण्ड स्वरूप देवे

आगमं निर्गमं स्थानं तथा वृद्धिक्षयावुभौ।
विचार्य सर्वपण्यानां कारयेत्क्रयविक्रयौ। ४०१।

(४०१) प्रत्येक वस्तु के आय-व्यय तथा वृद्धि (बढ़ी)

---

* गवर्नमेंट (सरकार) बत्तीसवाँ भाग इनकम टैक्स लेती है और मनु जी ने बीसवाँ भाग कहा है।

लय (घटी) की दशा को देखकर बेचना व मोल लेना चाहिये, क्योंकि तनिक सी अज्ञानता से हानि हो जाती है।

पञ्चरात्रे पञ्चरात्रे पक्षे पक्षेऽथवा गते।
कुर्वीत चैषां प्रत्यक्षमर्घसंस्थापनं नृपः ॥ ४०२ ॥

(४०२) वस्तुओं की दर प्रति सप्ताह, व पाँच दिन में नियत होनी चाहिये और उसका अधिकार राजा के हाथ में होना चाहिये।

तुलामानं प्रतीमानं सर्वं च स्यात्सुलक्षितम्।
षट्सु षट्सु च मासेषु पुनरेव परीक्षयेत् ॥ ४०३ ॥

(४०३) माशा, तोला, सेर, पाँच सेरी आदि व प्रस्थ, द्रोण आदि के बाटों की न्यूनाधिक्ता (कमी वेशी) को राजा देखे तत्पश्चात् छठे मास में इनकी परीक्षा करे और सब बाँटादि पर राजमुद्रा का चिह्न अङ्कित कर दे।

पणं यानं तरे दाप्यं पौरूषोऽर्धपणं तरे।
पादं पशुश्च योषिच्च पादार्धं रिक्तकः पुमान् ।४०४।

(४०४) नाव द्वारा नदी पार करने का कर इस प्रकार लेवे कि सवारी पर एक पण, बोझ सहित मनुष्य पर आधा पण, स्त्री तथा पशुओं पर चौथाई, पण और बोझ ढोने वाले कुली से पण का आठवाँ भाग।

भाण्डपूर्णानि यानानि तार्यं दाप्यानिसारतः।
रिक्तभाण्डानि यत्किंचित्पुमांसश्चापरिच्छदः ।४०५।

(४०५) सामान से लदी हुई गाड़ियों का कर समान के अनुसार होना चाहिये अर्थात् यदि गाड़ी में बहुमूल्य व अधिक तौल का भारी सामान हो, तो उससे अधिक कर लेना

ाहिये और जिस गाड़ी मे अल्प व अल्प मूल्य वोल का सामान
ो उससे अल्प कर लेनी चाहिये, तथा रिक्त (खाली) गाड़ियाँ वा
से मनुष्यों से जिनके पास सामान न हो अल्प (थोड़ा) कर लेना
ाहिए।

दीर्घाध्वनि यथादेशं यथाकालं तरो भवेत् ।
नदीतीरेषु तद्विद्यात्समुद्रे नास्ति लक्षणम् । ४०६ ।

(४०६) ×नदी में नाव का कर नदी के वहाव व ऋतु कालादि के अनुसार निर्धारित (नियत) करना चाहिये। और समुद्र में पोतों (जहाजों में) का चलना वायु के अधीन है अतः समुद्र द्वारा यात्रा व व्यापार करने वालों से एक वार उचित कर निर्धारित करदेना चाहिये। उसमें वहाव व ऋतु काल का विचार नहीं होता।

गर्भिणी तु द्विमासादिस्तथा प्रव्रजितो मुनिः ।
ब्राह्मणा लिङ्गिनश्चैव न दाप्यास्तारिकं तरे । ४०७ ।

(४०७) दो मास से अधिक की गर्भिणी स्त्री, संन्यासी वानप्रस्थ, ब्राह्मण, ब्रह्मचारी इन सबसे नदी पार करने का कर न लेना चाहिये।

यन्नावि किञ्चद्दासानां विशीर्येतापराधतः ।
तद्दासैरेव दातव्यं समागम्य स्वतोंऽशतः ॥ ४०८ ॥

(४०८) यदि मल्लाहों के आलस्य से कोई वस्तु नष्ट हो जावे तो उस पदार्थ का मूल्य सब मल्लाहों को मिलकर देना चाहिये, क्योंकि प्रत्येक मल्लाह नाव के अन्तर्गत पदार्थों का धर्मतः रक्षक है तथा उत्तरदाता है।

× श्लोक ४०६ से स्पष्ट विदित होता है कि मनु के समय समुद्र मे पोत, जहाज) चलते थे और उससे आर्य राजा अपना कर भी लेते थे

एप नोयायिनामुक्तौ व्यवहारस्य निर्णयः ।
दाशापराधतस्तोये दैविके नास्ति निग्रहः ।४०६।

(४०६) दैवी विपत्ति (अर्थात् आँधी तूफान आदि) के आने से व चट्टानों, मगर मच्छ आदि से टक्कर कर नाव भग्न (टूट) हो जाने से जो हानि होती है उसके देनदार मल्लाह नहीं हैं, क्योंकि उनका कोई अपराध नहीं है ।

वाणिज्यं कारयेद्वैश्यं कुसीदं कृषिमेव च ।
पशूनां रक्षणं चैव दास्यं शूद्रं द्विजन्मनाम् ।४१०।

(४१०) वैश्य का कर्म कृषि करना, व्याज लेना, पशु पालना है । इन सब कर्मों को वैश्य से करावे । ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्य की सेवा शूद्रों से करावे ।

क्षत्रियं चैव वैश्यं च ब्राह्मणो वृत्तिकर्षितौ ।
बिभृयादानृशंस्येन स्वानि कर्माणि कारयन् ।४११।

(४११) यदि कोई क्षत्रिय व वैश्य जीविका विहीन व्याकुल हो तो ब्राह्मण को उचित है कि दया से काम करा के उनका पालन करे ।

दास्यं तु कारयँल्लोभाद्ब्राह्मणः संस्कृतान्द्विजान् ।
अनिच्छतः प्राभवत्याद्राज्ञा दण्ड्यःशतानि षट् ।४१२।

(४१२) जो ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य यथाविधि संस्कार के पश्चात् कार्य करना नहीं चाहते उनसे कोई ब्राह्मण लोभ वश अपने प्रभाव द्वारा कार्य करावे तो राजा उस ब्राह्मण पर छः सौ पण दण्ड करे ।

शूद्रं तु कारयेद्दास्यं क्रीतमक्रीतमेव वा ।
दास्यायैव हि सृष्टोऽसौ ब्राह्मणस्य स्वयंभुवा ।४१३।

(४१३) ❀ ब्रह्मा ने शूद्र को ब्राह्मणों के सेवार्थ बनाया है इस हेतु शूद्र चाहे मोल लिया हुआ हो चाहे वेतनभोगी हो या वेतनभोगी न हो उससे बराबर कार्य लेना चाहिये।

न स्वामिना निसृष्टोऽपि शूद्रो दस्याद्विमुच्यते।
निसर्गजं हि कत्तस्य कस्तस्मात्तदुपोहति ॥ ४१४ ॥

(४१४) यदि स्वामी दास कर्म से दास को मुक्त नहीं करता तो वह दास दासकर्म से मुक्त नहीं होता क्योंकि दासकर्म शूद्र के स्वभाव से उत्पन्न है, इस संबंध को कौन छुड़ा सकता है।

ध्वजाहृतो भक्तदासो गृहजः क्रीतदत्रिमौ।
पैत्रिको दंडदासश्च सप्तैते दासयोनयः॥ ४१५ ।

(४१५) युद्ध में जय किया हुआ, भोजन पर सेवकाई करने वाला, किसी अपराध के पलटे में सेवकाई करने वाला, गृह-दास से उत्पन्न, क्रीत (मोल लिया हुआ), दान में मिला हुआ, पैत्रिक दास, और भक्त यह सब दास हैं।

भार्या पुत्रश्चदासश्चत्रय एवाधनाःस्मृताः।
यत्ते समधिगच्छन्ति यस्य ते तस्य तद्धनम् । ४१६ ।

(४१६) अपनी स्त्री के पुत्र व दास यह सब जिस धनको एकत्र करें वह सब धन उनके स्वामी का है और वह स्वामी की जीवितावस्था में उसके अधिकारी नहीं हैं।

विस्रब्ध ब्राह्मणः शूद्राद्द्रव्योपादानमाचरेत्।
नहि तस्यास्ति किञ्चित्स्वं भर्तृहार्यधनो हि सः ।४१७।

❀ वेदमन्त्र तथा प्रकृति ने स्पष्ट बतला दिया है कि पाँव केवल शरीर के ऊपरी भाग को उठाकर ले जाने के हेतु बनाये गये हैं और मुख्य सारे काम शरीर के अङ्गों से लेता।

(४१७) ब्राह्मण दास शूद्र से धन ले लेवे, इसमें कुछ विचार न करे क्यों कि वह धन कुछ उसकी सम्पति नहीं है दास तो निर्धन है, वह जो धन एकत्र करे उस धन पर स्वामित्व उसके स्वामी का है।

वैश्यशूद्रौ प्रयत्नेन स्वानि कर्माणि कारयेत्।
तौ हि च्युतौ स्वकर्मभ्यः क्षोभयेतामिदं जगत् ४१८।

(४१८) वैश्य और शूद्र यह दोनों अपने कार्य से निष्कर्म न होने पावें यदि यह दोनों अपने धर्म से च्युत हों तो जगत् को क्षोभित (दुष्कर्मी) कर दे

अहन्यहन्यवेक्षेत कर्मान्तान्वाहनानि च।
आयव्ययौ च नियतावाकरान्कोशमेव च ॥ ४१९ ॥

(४१९) कार्य की पूर्ति, सवारी, कर-प्राप्ति, व्यय, कोष व चांदी सोने की खान इन सब को राजा नित्य देखे।

एवं सर्वानिमान्राजा व्यवहारान्समापयन्।
व्यपोह्य किल्विषं सर्वं प्राप्नोति परमां गतिम् ।४२०।

(४२०) इस विध से राजा सब कामों को करता हुआ पाप से मुक्त होकर परमगति को पाता है।
मनुजी के धर्मशास्त्र और भृगुजी की संहिता का आठवाँ अध्याय समाप्त हुआ।

—०—

नवमोऽध्यायः।

—※—

पुरुषस्य स्त्रियाश्चैव धर्मे वर्त्मनि तिष्ठतोः।
संयोगे विप्रयोगे च धर्मान्वक्ष्यामि शाश्वतान् ॥ १ ॥

(१) धर्मानुसार कर्म करने वाले पुरुष स्त्रियों के संयोग वियोग के प्राचीन नियमों को वर्णन करते हैं कि किस समय स्त्री से कैसा व्यवहार करना चाहिये।

अस्वतन्त्राः स्त्रियः कार्याः पुरुषैः स्वैर्दिवानिशम् ।
विषयेषु च सज्जन्त्यः संस्थाप्या आत्मनो वशे ।२।

(२) रात दिन स्त्री को पति के अधिकार में रहना चाहिये तथा जो स्त्री विषय की इच्छा रखती है उसको कभी स्वतन्त्रता न देनी चाहिये, वरन् वह पति ही के साथ रहे।

पिता रक्षति कौमारे भर्ता रक्षति यौवने ।
रक्षन्ति स्थविरे पुत्रा न स्त्री स्वातन्त्र्यमर्हति । ३ ।

(३) कुमारावस्था (बालापन) में पिता, यौवनावस्था में पति, और वृद्धावस्था में पुत्र को रक्षा करनी चाहिये। क्योंकि स्त्रियाँ स्वतन्त्र होने के योग्य नहीं।

कालेऽदाता पिता वाच्यो वाच्यश्चानुपयन्पतिः ।
मृते भर्तरि पुत्रस्तु वाच्यो मातुररक्षिता ॥ ४ ॥

(४) उचित समय पर कन्यादान न देने से कन्या का पिता, रजोदर्शन से निवृत्ति होने पर ऋतुकाल में उससे भोग न करने से उसका पति, तथा वृद्धावस्था में पति के देहान्त हो जाने पर पुत्र अपनी माता की रक्षा न करें तो वह तीनों पापी होते हैं।

सूक्ष्मेभ्योऽपिप्रसङ्गेभ्यः स्त्रियो रक्ष्या विशेषतः ।
द्वयोर्हि कुलयोः शोकमावहेयुररक्षिताः ॥ ५ ॥

(५) थोड़े सम्भोग से भी स्त्रियों की रक्षा करनी चाहिये।

स्त्रियाँ अरक्षितावस्था में रहने से दोनों कुल (अर्थात् पतिकुल व पिताकुल) को शोकित करती हैं।

इमं हि सर्ववर्णानां पश्यन्तो धर्ममुत्तमम्।
यतन्ते रक्षितुं भार्यां भर्तारो दुर्बला अपि ॥६॥

(६) सब वर्णों के उत्तम धर्म को देखते हुये निर्बल पति भी स्त्री की रक्षा के अर्थ परिश्रम तथा प्रयत्न करते हैं।

स्वां प्रसूतिं चरित्रं च कुलमात्मानमेव च।
स्वं च धर्मं प्रयत्नेन जायां रक्षन्हि रक्षति ॥७॥

(७) उचित रीति से स्त्री की रक्षा करने से अपने कुल, सन्तान आत्मा व धर्म की रक्षा होती है।

पतिर्भार्यां संप्रविश्य गर्भो भूत्वेह जायते।
जायायास्तद्धि जायात्वं यदस्यां जायते पुनः ॥८॥

(८) पति का वीर्य अपनी स्त्री के गर्भ में प्रविष्ट होकर सन्तान रूप से संसार में उत्पन्न होता है। स्त्री में विशेष धर्म यही है कि उससे दूसरी बार सन्तान उत्पन्न होती है।

यादृशं भजते हि स्त्री सुतं सूते तथाविधम्।
तस्मात्प्रजाविशुद्ध्यर्थं स्त्रियं रक्षेत्प्रयत्नतः ॥९॥

(९) स्त्री जैसे गुण वाले पुरुष से सम्बन्ध रखती है उसी प्रकार की सन्तान उत्पन्न होती है। अतः उत्तम सन्तान उत्पन्न करने के हेतु स्त्री की रक्षा करनी चाहिये।

न कश्चिद्योषितः शक्तः प्रसह्य परिरक्षितुम्।
एतैरुपाययोगैस्तु शक्यास्ताः परिरक्षितुम् ॥१०॥

(१०) कोई मनुष्य शक्ति से रोक कर स्त्री को वश में नहीं

रख सकता, वरन् निम्नांकित विषयों द्वारा स्त्री को अपने वश मे रख सकता है।

अर्थस्य सग्रहे चैनां व्यये चैव नियोजयेत् ।
शौचे धर्मेऽन्नपक्त्यां च पारिणह्यस्य वेक्षणे ॥११॥

(११) एकत्रित धन को व्यय करने, गृहस्थी का सारा प्रबन्ध, खाने पहनने घर आदि के बनाने का अधिकार देने और शुद्ध व पवित्र रहने से स्त्री वश मे रहती है।

अरक्षिता गृहे रुद्धाः पुरुषैराप्तकारिभिः ।
आत्मानमात्मना यास्तु रक्षेयुरताः सुरक्षिताः ॥१२॥

(१२) आज्ञा-पूर्वक यथार्थ कार्य्य करने वाले, सेवक पुरुषों से गृह मे रोकी हुई स्त्रियाँ अरक्षित हैं, किन्तु जो अपनी रक्षा स्वयं करती हैं वे ही सुरक्षित हैं।

पानं दुर्जनसंसर्गः पत्या च विरहोऽटनम् ।
स्वप्नोऽन्यगेहवासश्च नारीणांदूषणानि षट् ॥१३॥

(१३) स्त्रियों के हेतु छः कर्म दूषित हैं:—१-मद्यपान, २-दुष्ट सङ्ग, ३-पति वियोग, ४-इधर उधर घूमना, ५-असमय सोना, ६-दूसरे के घर मे वास करना।

नैता रूपं परीक्षन्ते नासां वयसि संस्थितिः ।
सरूपं वा विरूपं वा पुमानित्येव भुञ्जते ॥१४॥

(१४) स्त्रियाँ रूप व आयु का विचार नहीं करती वरन् पौरुष का विचार करती है—अर्थात् चाहे सुरूप हो चाहे कुरूप जिसमे पौरुष है उससे ही भोग करती है।

पौंश्चल्याच्चलचित्ताच्च नैस्नेह्याच्च स्वभावतः ।
रक्षिता यत्नतोऽपीह भर्तृष्वेता विकुर्वते ॥१५॥

(१५) पुंश्चली, चञ्चल चित्त वाली तथा स्नेह से शून्य (रहित) स्त्री अपने नष्ट स्वभाव से उत्तम रीति से सुरक्षित होने पर भी अपनी कुटिलता से पति के चित्त को शोकित कर देती है।

एवं स्वाभावं ज्ञात्वाऽऽसां प्रजापतिनिसर्गजम् ।
परमं यत्नमातिष्ठेत्पुरुषो रक्षणं प्रति ॥ १६ ॥

(१६) स्त्रियों के इस स्वभाव को जान कर धर्मशास्त्र के बनाने वाले प्रजापति ने उनकी रक्षा को पुरुषों का आवश्यकीय कार्य नियत किया।

शय्यासनमलंकारं कामं क्रोधमनार्जवम् ।
द्रोहभावं कुचर्यां च स्त्रीभ्यो मनुरकल्पयत् ॥ १७ ॥

(१७) शयन की शय्या व बैठने का आसन, शृंगार के हेतु आभूषण आदि काम, क्रोध, प्राकृतिक (स्वाभाविक) कटुता, पारस्परिक द्रोहभाव, दुराचार, मनुजी ने स्त्रियों के गुण कल्पित किये हैं।

नास्ति स्त्रीणां क्रिया मन्त्रैरिति धर्मे व्यवस्थितिः ।
निरिन्द्रिया ह्यमन्त्राश्च स्त्रियोऽनृतमिति स्थितिः ॥१८॥

(१८) * स्त्रियों के संस्कार मन्त्रों के बिना होने चाहिए क्योंकि स्त्रियों के लिये इन्द्रिय और मन्त्र का अधिकार नहीं है तथा मिथ्याभाषण करना स्त्रियों का स्वाभाविक गुण है।

तथा च श्रुतयो बहुशो निगीता निगमेष्वपि ।
स्वालक्षण्यपरीक्षार्थं तासां शृणुत निष्कृतीः ॥ १९ ॥

(१९) उपनिषद् की श्रुतियों और वेद मन्त्रों में बहुत स्थल

* १८ वां श्लोक सम्मिलित किया हुआ है क्योंकि विवाहादि सब संस्कार मन्त्रों द्वारा होते हैं।

और स्त्रियों के दुर्गुणों का वर्णन है क्योंकि उसकी वास्तविकता (यथार्थ) को जानना दुष्कर (कठिन) है। केवल वेद में प्रायश्चित्त देखना चाहिये।

यन्मे माता प्रलुलुभे विचरन्त्यपतिव्रता।
तन्मे रेतः पिता वृङ्क्तामित्युस्येतन्निदर्शनम् ॥२०॥

(२०) अपनी माता का आन्तरिक दुराचार देखकर कहना चाहिये कि मेरी माता ने पतिव्रत भङ्ग करके अन्य पुरुष से सहवास (भोग) किया है तो माता के रुचिरूप अन्य पुरुष को मेरा पिता पवित्र करे।

ध्यायत्यनिष्टं यत्किञ्चित्पाणिग्राहस्य चेतसा।
तस्यैष व्यभिचारस्य निह्नवः सम्यगुच्यते ॥२१॥

(२१) ✻ जो स्त्री मन में अपने पति का अनिष्ट विचारती उस कुत्सित इच्छा का पवित्र करने वाला प्रथमोक्त मन्त्र है तु आदि ऋषियों ने कहा है—

यादृग्गुणेन भर्त्रा स्त्री संयुज्येत यथाविधि।
तादृग्गुणा सा भवति समुद्रेणेव निम्नगा ॥२२॥

(२२) जिस विधि से व जैसे पुरुष से स्त्री सम्भोग पाती है वैसी ही आप होती है जैसे समुद्र से नदी।

अक्षमाला वसिष्ठेन संयुक्ताऽधमयोनिजा।
शारङ्गी मन्दपालेन जगामाभ्यर्हणीयताम् ॥२३॥

✻ श्लोक १९ से २१ तक वाममार्गियों के काल के मिलाये हुए हैं क्योंकि वेद में इस विषय का कहीं भी उल्लेख नहीं है।

(२३) ※अधम जाति से उत्पन्न अक्षमाला नाम की स्त्री से वसिष्ठऋषि ने सम्भोग किया। तथा वह शारंगी और मन्दपाल से युक्त होकर पूज्यता को प्राप्त हुई।

एताश्चान्याश्च लोकेऽस्मिन्नपकृष्टप्रसूतयः ।
उत्कर्षं योषितः प्राप्ता स्वैः स्वैर्भर्तृगुणैः शुभैः॥२४॥

(२४) इनके अतिरिक्त अन्य सभी स्त्रियां अधम जाति से उत्पन्न होकर इस लोक में अपने पतियों की श्रेष्ठता से श्रेष्ठता को पहुँच गईं।

एषोदिता लोकयात्रा नित्यं स्त्रीपुंसयोः शुभा ।
प्रेत्येह च सुखोदर्कान्प्रजाधर्मान्निबोधत ॥२५॥

(२५) स्त्री पुरुषों के प्राचीन सदाचार को कहा। अब इस लोक में तथा परलोक में व भविष्यत् में सुखार्थ जो प्रजा का धर्म है उसको कहते हैं।

प्रजनार्थं महाभागाः पूजार्हा गृहदीप्तयः ।
स्त्रियः श्रियश्च गेहेषु न विशेषोऽस्ति कश्चन ॥२६॥

(२६) घरकी उत्पत्ति के अर्थ महाभागा व पूजा योग्य घर की तेजवती स्त्री तथा लक्ष्मी हैं। इन दोनों में विशेषता कुछ नहीं है दोनों एक समान है।

उत्पादनमपत्यस्य जातस्य परिपालनम् ।
प्रत्यहं लोकयात्रायाः प्रत्यक्षं स्त्रीनिबन्धनम् ॥२७॥

(२७) पुत्र व पुत्री की उत्पत्ति, तत्पश्चात् उनका लालन

※ २३ वां श्लोक भी सशयात्मक है क्योंकि वसिष्ठ जी से पहले मनु हुए हैं।

पालन तथा प्राचीन लौकिक (सांसारिक) नियम इन सबों का मर्यादि प्रमाण स्त्रियाँ ही हैं।

अपत्यं धर्मकार्याणि शुश्रूषा रतिरुत्तमा ।
दाराधीनस्तथा स्वर्गः पितृणामात्मनश्च ह ॥२८॥

(२८) सन्तानोत्पत्ति, धर्मकार्य, उत्तम सेवा तथा अपना व अपने वृद्धों का स्वर्ग यह सब स्त्रियों के आधीन हैं।

पतिं या नोभिचरति मनोवाग्देहसंयुता ।
सा भर्तृलोकानाप्नोति सद्भिः साध्वीति चोच्यते॥२९॥

(२९) जो स्त्री मन, वचन कर्म के पापों से रहित होकर अपने भर्त्ता (पति) को छोड़ अन्य पुरुष से भोग नहीं करती है वह पतिलोक को पाती है और संसार में उत्तम पुरुष (साधुजन) उसको साध्वी (सदाचारिणी) कहते हैं।

व्यभिचारात्तु भर्तुः स्त्री लोके प्राप्नोति निन्द्यताम् ।
शृगालयोनिं चाप्नोति पापरोगैश्च पीड्यते ॥३०॥

(३०) अन्य पुरुष से भोग करने से (व्यभिचार से) स्त्री संसार में निन्दा के योग्य होती है और शृगाल (गीदड़) की योनि पाती है तथा पाप रोगों से पीड़ित व क्लेशित होती है।

पुत्रं प्रत्युदितं सद्भिः पूर्वजैश्च महर्षिभिः ।
विश्वजन्यमिमं पुण्यमुपन्यासं निबोधत ॥३१॥

(३१) साधु (उत्तम) पूर्वज महर्षियों ने पुत्र के विषय में संसार के भले के हेतु जिस शुद्ध (पवित्र) धर्म को कहा है उसको कहते हैं।

भर्तुः पुत्रं विजानन्ति श्रुतिद्वैधं तु भर्तरि ।
आहुरुत्पादकं केचिदपरे क्षेत्रिणं विदुः ॥३२॥

(३२) पिता का पुत्र है ऐसा सब जानते हैं और पिता के विषय में दो प्रकार के गुण हैं। कोई कहता है कि वीर्यवान् का पुत्र है तथा कोई कहता है कि लक्ष्मी (क्षेत्र) का पुत्र है।

क्षेत्रभूता स्मृता नारी बीजभूतः स्मृतः पुमान् ।
क्षेत्रबीजसमायोगात्संभवः सर्वदेहिनाम् ॥ ३३ ॥

(३३) स्त्री क्षेत्र (लक्ष्मी) का पुत्र है और वीर्य पिता का रूप है,लक्ष्मी तथा वीर्य के संयोगसे सब शरीरधारियोंकी उत्पत्तिहै

विशिष्टं कुत्रचिद्बीजं स्त्रीयोनिस्त्वेव कुत्रचित् ।
उभयं तु समं यत्र सा प्रसूतिः प्रशस्यते ॥ ३४ ॥

(३४) कहीं वीर्य विशिष्ट (उत्तम) है कहीं क्षेत्र (लक्ष्मी) विशिष्ट है जहाँ दोनों की समानता है वह सन्तान अति उत्तम है

बीजस्य चैव योन्याश्च बीजमुत्कृष्टमुच्यते ।
सर्वभूतप्रसूतिर्हि बीजलक्षणलक्षिता । ३५ ।

(३५) बीज और क्षेत्र (लक्ष्मी) दोनों में से बीज उत्कृष्ट है। सब जीवों की उत्पत्ति वीर्य के लक्षण से जानी जाती है।

यादृशं तूप्यते बीजं क्षेत्रे कालोपपादिते ।
तादृग्रोहति तत्तस्मिन्बीजं स्वैर्व्यञ्जितं गुणैः ।३६।

(३६) बीज रोपने के समय जैसा बीज खेत में रोपा (बोया) जाता है। वैसा ही अपने गुणों सहित उत्पन्न होता है।

इयं भूमिर्हि भूतानां शाश्वती योनिरुच्यते ।
नच योनिगुणान्कांश्चिद्बीजं पुष्यति पुष्टिषु ।३७।

(३७) जितने पञ्च भौतिक जीवधारी हैं उनकी उत्पत्ति का द्वार क्षेत्र (खेत लक्ष्मी) है, कोई वस्तु बोने तथा उपजने के

गुण के रिक्त बीज की कुछ परिपुष्टता नहीं करती है, अतएव बीज ही मुख्य तथा श्रेष्ठ है।

भूमावित्येककेदारे कालोप्तानि कृषीवलैः।

नानारूपाणि जायन्ते बीजानीह स्वभावतः ॥३८॥

(३८) खेत में किसान कृषि के समय गेहूँ आदि जैसा बीज बोता है वह अपने स्वभाव से भिन्न २ रूप का उपजता है पृथिवी तो एक ही रूप की है परन्तु बीज एक रूप का नहीं, अतएव बीज ही श्रेष्ठ है।

व्रीहयः शालयो मुद्गास्तिला माषास्तथा यवाः।

यथा बीजं प्ररोहन्ति लशुनानीक्षवस्तथा ॥ ३९ ॥

(३९) जैसे साठी, धान, मूँग, तिल, माष (उड़द), जौ, गेहूँ, ईख, लहसुन आदि बीज बोने के उपरान्त विभिन्न रूप से उपजते हैं।

अन्यदुप्तं जातमन्यदित्येतन्नोपपद्यते।

उप्यते यद्धि यद्बीजं तत्तदेव प्ररोहति ॥ ४० ॥

(४०) एक वस्तु को बोया और दूसरी वस्तु उत्पन्न हुई ऐसा नहीं होता, वरन् जो बोते हैं वही उगता है।

तत्प्राज्ञेन विनीतेन ज्ञानविज्ञानवेदिना।

आयुष्कामेन वप्तव्यं न जातु परयोषिति ॥ ४१ ॥

(४१) सहनशील, विनीत, बुद्धिमान, पूर्ण, ज्ञान-विज्ञान अर्थात् वेदशास्त्रों के ज्ञाता व दीर्घजीवी होने की अभिलाषा करने वाले जो पुरुष हैं वे परस्त्री में अपने बीज को न डालें।

अत्र गाथा वायुगीताः कीर्तयन्ति पुराविदः।

यथा बीजं न वप्तव्यं पुंसां परपरिग्रहे ॥ ४२ ॥

(४२) परस्त्री में बीज न डालना चाहिये इस पुराज्ञाता ऋषि का कहा हुआ वचन जो विशेष छन्द से सम्मिलित है वर्णन किया है, वरन् इसको व्यवहार में भी लाये हैं।

नश्यतीषुर्यथा विद्धः खे विद्धमनुविद्ध्यतः ।
तथा नश्यति वै चिप्रं बीजं परपरिग्रहे ॥ ४३ ॥

(४३) किसी ने आकाश पर पक्षी को बाण मारा दूसरे मनुष्य ने उसी पक्षी पर तीर मारा तो दूसरे पुरुष का तीर व्यर्थ गया क्योंकि आखेट तो प्रथम धनुर्धारी को मिलता है उसी तरह परस्त्री में बीज निष्फल जाता है अर्थात् जिसकी स्त्री है उसी को सतान लाभ होता।

पृथोरपीमां पृथिवीं भार्यां पूर्वविदो विदुः ।
स्थाणुच्छेदस्य केदारमाहुः शल्यवतो मृगम् ।४४।

(४४)*पूर्व में राजा पृथु ने इस पृथिवी को लिया फिर बहुत से राजाओं ने लिया तो भी यह पृथिवी राजा पृथु ही की स्त्री है, और उसने ऊँची नीची भूमि को सम किया उसी का खेत है, जिसने प्रथम तीर से मारा उसी का आखेट है, यह पूर्व कालज्ञाताओं ने कहा है।

एतावानेव पुरुषो यज्जायात्मा प्रजेति ह ।
विप्राः प्राहुस्तथा चैतद्यो भर्ता सा स्मृताङ्गना । ४५।

(४५) एक ही पुरुष नहीं होता वरन् अपना शरीर, स्त्री व सन्तान यह सब सम्मिलित होने से पुरुष कहाता है। ब्राह्मणों ने कहा है कि जो पति है वही स्त्री है।

---

* ४४ वा श्लोक सम्मिलित किया हुआ है क्योंकि पुराण काल का इतिहास है।

न निष्क्रयविसर्गाभ्यां भर्तुर्भार्या विमुच्यते ।
एवं धर्मं विजानीमः प्राक्प्रजापतिनिर्मितम् ।४६।

(४६) स्त्री बचने व त्यागने से स्त्री के धर्म से पृथक् नहीं होती प्रथम ही श्री ब्रह्माजी ने यह धर्म की व्यवस्था की यह सब हम जानते हैं ऐसा मनुजी ने कहा है ।

सकृदंशो निपतति सकृत्कन्या प्रदीयते ।
सकृदाह ददानीति त्रीण्येतानि सतां सकृत्॥ ४७ ॥

(४७) अंशविभाग, कन्यादान, अन्यदान सत्पुरुष एक बार ही करते हैं, यदि दूसरी बार करें तो उनके वचनों का विश्वास नहीं रहता क्योंकि जिसकी प्रतिज्ञा भंग हो जाती है वह झूठा है ।

यथा गोऽश्वोष्ट्रदासीषु महिष्यजाविकासु च ।
नोत्पादकः प्रजाभागी तथैवान्याङ्गनास्वपि ।।४८।।

(४८) जिस प्रकार, गऊ घोड़ा, ऊँट, दासी, भैंस, बकरी, भेड़ इनमें बच्चा उत्पन्न करने वाला बच्चे को नहीं पाता वैसे ही परस्त्री में सन्तान उत्पन्न करने वाला सन्तान का स्वामी नहीं होता ।

येऽक्षेत्रिणो बीजवन्तः परक्षेत्रप्रवापिणः ।
ते वै सस्यस्य जातस्य न लभन्ते फलं क्वचित् ।४९।

(४९) जो दूसरे के खेत में बीज बोते हैं वह उसके फल के स्वामी नहीं हो सकते वैसे ही परस्त्री में सन्तान उत्पन्न करने वाला सन्तान का स्वामी नहीं होता ।

यदन्यगोषु वृषभो वत्सानां जनयेच्छतम् ।
गोमिनामेव ते वत्सा मोघं स्कन्दितमार्षभम् । ५०।

(५०) दूसरे की गऊ में अन्य का बैल बछड़ा उत्पन्न करे तो गऊ का स्वामी उस बछड़े को पाता है और बैल का वीर्य निष्फल जाता है।

तथावाक्षेत्रिणो बीजं परक्षेत्रप्रवापिणः।
कुर्वन्ति क्षेत्रिणामर्थं न बीजी लभते फलम ॥५१॥

(५१) इसी तरह दूसरों के खेत में बीज डालने वाला खेत के स्वामी का कार्य करता है और उसके फल रो नहीं प्राप्त कर सकता।

फलं त्वनभिसंधाय क्षेत्रिणां बीजनां तथा।
प्रत्यक्षं क्षेत्रिणामर्थो बीजाद्योनिर्गरीयसी ॥५२॥

(५२ इस स्त्री में जो उत्पन्न हो वह हमारा और तुम्हारा दोनों का हो, ऐसे विचार को हृदय में न रखकर जो उत्पन्न किया पुत्र क्षेत्र वाली का होता है, बीज से क्षेत्र श्रेष्ठ है।

क्रियाभ्युपगमात्त्वेतद्बीजार्थं यत्प्रदीयते।
तस्येह भागिनौ दृष्टवौ बीजी क्षेत्रिक एव च ॥५३॥

(५३) इस स्त्री में जो उत्पन्न हो वह हमारा और तुम्हारा दोनों का हो, ऐसा चित्त में ठान कर जो उत्पन्न किया उसके भागी बीज वाला और खेत वाला दोनों होते हैं।

ओघवाताहृतं बीजं यस्य क्षेत्रे प्ररोपति।
क्षेत्रिकस्यैव तद्बीजं नवप्ता लभते फलम् ॥५४॥

(५४) बीज वायु से उड़कर जिसके खेत में पड़ा उसका फल खेत वाला ही पाता है, बीज वाला नहीं पाता।

एष धर्मो गवाश्वस्य दास्युष्ट्राजाविकस्य च।
विहंगमहिषीणां च विज्ञेयः प्रसवं प्रति। ५५।

(५५) गऊ, घोड़ा, ऊँट, बकरी, भेड़, पक्षी, भैंस, तथा दासी इनकी उत्पत्ति में इसी धर्म को जानना।

एतद्वः सारफल्गुत्वं बीजयोन्योः प्रकीर्तितम्।
अतः परं प्रवक्ष्यामि योषितां धर्ममापदि। ५६।

(५६) भृगुजी कहते हैं कि आप लोगों से बीज व क्षेत्र (खेत) की श्रेष्ठता व अधमता को कहा अब तदुपरान्त स्त्रियों का आपद् धर्म कहते हैं।

भ्रातुर्ज्येष्ठस्य भार्या या गुरुपत्न्यनुजस्य सा।
यवीयसस्तु या भार्या स्नुषा ज्येष्ठस्य सा स्मृता।५७।

(५७) बड़े भ्राता की स्त्री छोटे भाई की गुरुपत्नी कहाती है और छोटे भाई की स्त्री बड़े भाई की पतोहू कहलाती है

ज्येष्ठो यवीयसो भार्यां यवीयान्वाग्रजस्त्रियम्।
पतितौ भवतो गत्वा नियुक्तावप्यनापदि ॥५८॥

(५८) आपत्काल न हो और पिता आदि की आज्ञा से भी यदि बड़े भाई की स्त्री से छोटा भाई और छोटे भाई की स्त्री से बड़ा भाई भोग करे तो दोनों पतित होते हैं अर्थात् वर्णाश्रम की पदवी से गिर जाते हैं।

देवराद्वा सपिण्डाद्वा स्त्रिया सम्यङ् नियुक्तया।
प्रजेप्सिताधिगन्तव्या संतानस्य परिक्षये ॥५९॥

(५९) यदि सन्तान न हो तो अपने कुल के वृद्धों की आज्ञा लेकर पति कुल के सम्बन्धी या देवर से पुत्र उत्पन्न करे।

विधवायां नियुक्तस्तु घृताक्तो वाग्यतो निशि।
एकमुत्पादयेत्पुत्रं न द्वितीयं कथंचन ॥६०॥

(६०) पिता की आज्ञा पाकर शरीर पर घी लगाकर

मूक होकर विधवा स्त्री में पुत्र उत्पन्न करे और एक पुत्र के अतिरिक्त दूसरा कभी उत्पन्न न करे।

द्वितीयमेके प्रजनं मन्यन्ते स्त्रीषु तद्विदः।
अनिर्वृ'त्तं नियोगार्थं पश्यन्तो धर्मतस्तयोः ॥६१॥

(६१) बहुत से आचार्य विधवा स्त्री में दूसरी सन्तान को भी उचित जानते हैं और धर्म के अनुकूल समझते हैं, क्योंकि एक सन्तान कतिपय दशा में शून्य तुल्य होती है। परन्तु दूसरी सन्तान आदि के लियेभी कुल वृद्धों की आज्ञा की आवश्यकता है

विधवायां नियोगार्थे निर्वृ'त्ते तु यथाविधि।
गुरुवच्च स्नुषावच्च वर्तेयातां परस्परम् ॥ ६२ ॥

(६२) जब गर्भस्थिति हो चुके तब बड़ा भाई गुरु समान और छोटे भाई की स्त्री पतोहू के समान इस तरह दोनों परस्पर रहें। परन्तु इस बात को उस समय जानना जब भाई की स्त्री में पिता आदि की आज्ञा हुई हो।

नियुक्तौ यौ विधिं हित्वा वर्तेयातां तु कामतः।
तावुभौ पतितौ स्यातां स्नुषागगुरुतल्पगौ ॥६३॥

(६३) कुलके वृद्धों की आज्ञा से नियोग करने पर यदि कामाशक्ति से नियोग करे तो वह व्यभिचार में परिगणित है क्योंकि नियोग केवल सन्तानोत्पत्ति के अर्थ है, विषय-भोग के हेतु नहीं ऐसा मनुष्य गुरुपत्नी से व्यभिचार करने वाला कहाता है

नान्यस्मिन्विधवा नारी नियोक्तव्या द्विजातिभिः।
अन्यस्मिन्हि नियुञ्जाना धर्मं हन्युः सनातनम् ।६४।

(६४) ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य देवर तथा सम्बन्धी को त्याग

कर अन्य से नियोग करने की आज्ञा न दें क्योंकि इससे वर्ण-शंकर सन्तान उत्पन्न होती है और धर्म का नाश होता है।

नोद्वाहिकेषु मन्त्रेषु नियोगः कीर्त्यते क्वचित् ।
न विवाहविधावुक्तं विधवावेदनं पुनः ॥ ६५ ॥

(६५) विवाह के मन्त्र में नियोग का वर्णन नहीं और न विधवा स्त्री के साथ भोग उचित है और जिस प्रकार विधवा अपने वर्ण में स्थित है वैसे ही नियोग भी अपने वर्ण में होना चाहिये, दूसरे वर्ण से विवाह और नियोग अयोग्य तथा अनुचित है।

अयं द्विजैर्हि विद्वद्भिः पशुधर्मो विगर्हितः ।
मनुष्याणामपि प्रोक्तो वेने राज्यं प्रशासति ।६६।

(६६) राजा वेन के राज्य में प्रत्येक वर्ण से विवाह और नियोग की घोषणा की गई, चूंकि यह पशु तुल्य कार्य है-- यद्यपि राजा वेन ने इसे उचित समझा परन्तु ब्राह्मणों ने इसको अनुचित बतलाया।

स महीमखिलां भुञ्जन्राजर्षिप्रवरः पुरा ।
वर्णानां सङ्करं चक्रे कामोपहतचेतनः । ६७ ।

(६७) पूर्व काल में राजर्षियों में श्रेष्ठ राजा वेन ने जिसकी बुद्धि कामासक्ति के कारण बिगड़ गई थी, सारी पृथिवी का स्वामी होकर वर्णों को संकर किया (मिलाया)।

ततः प्रभृति यो मोहात्प्रमीतपतिकां स्त्रियम् ।
नियोजयत्यपत्यार्थं तं विगर्हन्ति साधवः । ६८ ।

(६८) उस दिन से जो मोहवश सन्तान की इच्छा से विधवा से भोग करने की आज्ञा देता है साधु लोग उसकी बुराई करते हैं।

यस्या म्रियेत कन्याया वाचा सत्ये कृते पतिः ।
तामनेन विधानेन निजो विन्देत देवरः । ६६ ।

(६६) विधवा स्त्री में पुत्रोत्पत्ति व अनुत्पत्ति को वर्णन किया अब उसकी दूसरी अवस्था वर्णन करते हैं कि जिसे कन्या को देने का वचन दे चुके हैं यदि वह पुरुष कन्या के विवाह के पूर्व मर जावे तो उसके सगे भाई उस का विवाह नीचे लिखी विधि से करें।

यथाविध्यधिगम्यैनां शुक्लवस्त्रां शुचिव्रताम् ।
मिथो भजेतप्रसवात्सकृत्सकृदृतावृतौ॥ ७० ॥

(७०) पवित्रता से व्रत करने वाली श्वेतवस्त्रधारिणी कन्या का विवाह शास्त्र की रीति अनुसार करके रजोदर्शन पश्चात् गर्भ-स्थति होने वाली रातों में एक २ वार उस समय तक भोग करे जब तक गर्भ न स्थित हो जाय, उससे जो सन्तान होगी वह उसकी होगी जिसको वह कन्यादान पर प्रथम दी गई थी।

न दत्त्वा कस्यचित्कन्यां पुनर्दद्याद्विचक्षणः ।
दत्त्वा पुनः प्रयच्छन्हि प्राप्नोति पुरुषानृतम् ।७१।

(७१) जिस कन्या को एक वार किसी को दे चुके हों तो उसको दूसरी वार किसी को न देना चाहिये, जो पुरुष देता है वह बहुत बड़ा पापी अर्थात् झूठा हो जाता है, फिर उसका विश्वास नहीं रहता, क्योंकि दी हुई वस्तु पर अधिकार नहीं होता

विधिवत्प्रतिगृह्यापि त्यजेत्कन्यां विगर्हिताम् ।
व्याधितां विप्रदुष्टां वा छद्मना चोपपादिताम् ।७२।

(७२) घृणा योग्य, व्याधियुक्त, दुष्ट प्रकृति और छद्म वेष (कपटी) स्त्री का विवाह करके भी परित्याग करना चाहिये।

की आज्ञा छः वर्ष पर्यन्त माने और कामार्थ (व्यापारादि) व यशार्थ परदेश गये हुए स्वामी की आज्ञा तीन वर्ष पर्यन्त माने ॐ

संवत्सरं प्रतीक्षेत द्विषन्तीं योषितं पतिः ।
ऊर्ध्वं संवत्सरात्त्वेना दायं हृत्वा न संवसेत् । ७७ ।

(७७) पुरुष एक वर्ष पर्यन्त लड़ाई झगड़ा व विवाद करने वाली स्त्री की प्रतीक्षा करे, उसके पश्चात् भी यदि विवाद व विग्रह करती रहे तो आभूषणादि धन जो दिया है उसको हरण कर उससे भोग करना त्याग दे परन्तु भोजन वस्त्र दिये जावे ।

अतिक्रामेत्प्रमत्तं या मत्तं रोगार्तमेव वा ।
सा त्रीन्मासान्परित्याज्या विभूषणपरिच्छदा । ७८ ।

(७८) प्रमत्त (जुआरी), मत्त (नशेबाज) रोगी पति का अनादर जो स्त्री करती है उसको तीन मास पर्यन्त वस्त्र और आभूषण न देना चाहिये ।

उन्मत्तं पतितं क्लीवमबीजं पापरोगिणम् ।
न त्यागोऽस्ति द्विषन्त्याश्च न च दायापवर्तनम् ।७९।

(७९) उन्मत्त, वर्णाश्रम मे पतित, क्लीव (नपु सक) अबीज अर्थात् किसी पाप रोग के कारण वीर्यहीन, पापरोगी ऐसे पति से विग्रह करने वाली स्त्री को त्याग करना परन्तु उसका धन अपहरण न करना ।

मद्यपोऽसाधुवृत्ता च प्रतिकूला च या भवेत् ।
व्याधिता वाधिवेत्तव्या हिंस्रार्थघ्नी च सर्वदा ॥८०॥

ॐ तदनन्तर क्या करना चाहिये इसका उल्लेख नारदस्मृति मे मनुजी के मतानुसार आया है और इस स्थान पर भी ७४ वें श्लोक से संयुक्त कर पढ़ना चाहिये ।

(८०) मद्यपा (मद्य पीने वाली), साधुओं की सेवा न करने वाली, शत्रुता करने वाली, बहुत सी व्याधि वाली, घात करने वाली, नित्य धन अपव्यय व नाश करने वाली स्त्री होवे तो दूसरा विवाह करना चाहिये।

वन्ध्याष्टमेऽधिवेद्याब्दे दशमे तु मृतप्रजा।
एकादशे स्त्रीजननी सद्यस्त्वप्रियवादिनी। ८१।

(८१) (१) वन्ध्या (बाँझ) स्त्री (२) मृतप्रजा (जिसकी सन्तान न जीती हो), कन्याजननी (पुत्री ही उत्पन्न करने वाली ऐसी स्त्री होने पर यथाक्रम आठवें, दशवें व (३) ग्यारहवें वर्ष दूसरा विवाह करना चाहिये और अप्रियवादिनी (कटुभाषिणी) स्त्री के ऊपर तो तुरन्त ही दूसरा विवाह करना चाहिये।

या रोगिणी स्यात्तु हिता संपन्ना चैव शीलत।
सानुज्ञाप्याधिवेत्तव्या नावमान्या च कर्हिचित्।८२।

(८२) जो स्त्री रोगिणी हो परन्तु हितचिंतिका व शीलवती हो तो उसकी आज्ञा से दूसरा विवाह करना चाहिये, परन्तु उसकी अवमानना (अनादर) कभी भी न करनी चाहिये।

अधिविन्ना तु या नारी निर्गच्छेद्रुषिता गृहात।
सा सद्यसन्निरोद्धव्या त्याज्या वा कुलसन्निधौ। ८३।

(८३) जिस स्त्री पर पुरुष ने दूसरा विवाह किया वह स्त्री क्रोधित हो घर से निकल जाती तो उसको रोक कर घर में रखना व कुटुम्ब के समक्ष त्याग करना चाहिये।

प्रतिषिद्धापि चेद्या तु मद्यमभ्युदयेष्वपि।
प्रेक्षासमाजगच्छेद्वा सा दण्ड्या कृष्णलानिषट्।८४।

(८४) क्षत्रिय आदि की स्त्री, पति आदि से सुरक्षित हो और विवाहादि उत्सव के कार्यों में भी वर्जित वस्तु (मद्य आदि) पान करे अथवा जनसाधारण के समाज (नृत्य आदि) में चली जावे तो छः रत्ती सोना दण्ड देवे।

यदि स्वाश्चापराश्चैव विन्देरन्योषितो द्विजाः।
तासां वर्णक्रमेण स्याज्ज्यैष्ठ्यं पूजा च वेश्मच ।८५।

(८५) ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य यह सब अपने वर्ण की और अन्य वर्ण की स्त्रियों से पाणिग्रहण करें तो इन स्त्रियों की पदवी व ज्येष्ठता व घर यह सब बातें वर्ण क्रमानुसार उचित व योग्य होती हैं।

भर्तुः शरीरशुश्रूषां धर्मकार्यं च नैत्यिकम्।
स्वा चैवं कुर्यात्सर्वेषां नास्वजातिः कथंचन ।८६।

(८६) सब वर्णों में जो अपने वर्ण की स्त्री है वही पति की सेवा शुश्रूषा, तथा प्राचीन धर्म के कार्य करें, अन्य वर्ण की स्त्रियाँ न करें।

यस्तु तत्कारयेन्मोहात्सजात्या स्थितयाऽन्यया।
यथा ब्राह्मणचाण्डालः पूर्वदृष्टस्तथैव सः ।८७।

(८७) जो पुरुष अपने वर्ण की स्त्री के अभाव में इन दोनों कार्यों को मोह वश अन्य जाति (वर्ण) की स्त्री से कराता है वो जैसा ब्राह्मणी में शूद्र से चाण्डाल उत्पन्न होता है वैसा ही वह है, यह ऋषियों ने कहा है।

उत्कृष्टायाभिरूपाय वराय सदृशाय च।
अप्राप्तामपि तां तस्मै कन्यां दद्याद्यथाविधि ।८८।

(८८) अपने कुल में अति उत्तम आचार, रूपवान् (सुन्दर)

सवर्ण का पुत्र (लड़का) मिले तब पुत्री छोटी भी हो अर्थात् विवाह योग्य न हुई हो तो भी उसका विवाह शास्त्र के अनुसार कर देना चाहिये।

काममामरणात्तिष्ठेद्गृहे कन्यर्तुमत्यपि ।
न चैवैनां प्रयच्छेत्तु गुणहीनाय कर्हिचित् । ८९ ।

(८९) कन्या,रजस्वला होने के उपरान्त भी मरण पर्यंत घर में रहे परन्तु उस कन्या को कभी गुणहीन पुरुष को न देवे।

त्रीणि वर्षाण्युदीक्षेत कुमार्युतुमती सती ।
ऊर्ध्वं तु कालादेतस्माद्विन्देत सदृशं पतिम् । ९० ।

(९०) रजस्वला कन्या तीन वर्ष पर्यंत उत्तम वरकी प्रतीक्षा में रहे तत्पश्चात् अपने ही सदृश पति को प्राप्त हो।

अदीयमाना भर्तारमधिगच्छेद्यदि स्वयम् ।
नैनः किंचिदवाप्नोति न च यं साधिगच्छति ।९१।

(९१) पिता आदि विवाह न करते हों और कन्या स्वयं वर को ग्रहण करे तो उस कन्या व वर को दोष नहीं।

अलंकारं नाददीत पित्र्यं कन्या स्वयंवरा ।
मातृकं भ्रातृदत्तं वा स्तेना स्याद्यदि तं हरेत् । ९२ ।

(९२) स्वयं (अपनी ओर से) पति को वरने वाली कन्या माता, पिता, भ्राता आदि के दिये हुये आभूषण को न लेवे, यदि लेवे तो चोर कहाती है।

पित्रे न दद्याच्छुल्कं तु कन्यामृतुमतीं हरन् ।
स हि स्वाम्यादतिक्रामेदृतूनां प्रतिरोधनात् । ९३ ।

(९३) ऋतुमती (रजस्वला) कन्या से विवाह करने वाला पति कन्या के पिता को कुछ शुल्क (अर्थात् पलटा, बदला) न

करना चाहिये जिसमें परस्पर वियोग न हो यह विधि केवल, प्रेम और न्याय है।

एष स्त्रीपुंसयोरुक्तो धर्मो वो रतिसंहितः।
आपद्यपत्यप्राप्तिश्च दायभागं निबोधत॥ १०३॥

(१०३) मनुजी ने स्त्री पुरुषों का धर्म पारस्परिक प्रेम विधियों सहित वर्णन करके आपत्तिकाल में नियोग द्वारा सन्तान उत्पन्न करने की विधियां को बतला कर अंश विभाग को भी इस रीति पर वर्णन किया है।

ऊर्ध्वं पितुश्च मातुश्च समेत्य भ्रातरः समम्।
भजेरन्पैतृकं रिक्थमनीशास्ते हि जीवतोः॥१०४॥

(१०४) माता पिता की मृत्यु के उपरान्त सब मिलकर पैतृक सम्पत्ति के समान भाग करें माता पिता की जीवितावस्था में सब लड़के आसक्त हैं।

ज्येष्ठ एव तु गृह्णीयात्पित्र्यं धनमशेषतः।
शेषास्तमुपजीवेयुर्यथैव पितरं तथा॥ १०५॥

(१०५) सारे पैतृक धन को बड़ा पुत्र ही लेवे और छोटा और मझला भाई सब ज्येष्ठ भ्राता के आधीन रहें जिस

(१०७) जिसकी उत्पत्ति से पिता ऋण से मुक्त हो जाता है और मुक्ति पाता है वही पुत्र धर्मतः उत्पन्न हुआ है और सब कामाशक्ति से उत्पन्न हुये हैं, ऋषियों ने कहा है।

पितेव पालयेत्पुत्राञ्ज्येष्ठो भ्रातृन्यवीयसः ।
पुत्रवच्चापि वर्तेञ्ज्येष्ठे भ्रातरि धर्मतः ॥ १०८ ॥

(१०८) पिता की नाईं बड़ा पुत्र सब भाइयों का पालन पोषण करे और बड़े भाई के समीप सब छोटे भाई पुत्र की नाईं रहें

ज्येष्ठः कुलं वर्धयति विनाशयति वा पुनः ।
ज्येष्ठः पूज्यतमो लोके ज्येष्ठः सद्भिरगर्हितः ।१०९।

(१०९) बड़ा पुत्र ही कुल वृद्धि करता है और नाश भी करता है, ससार में बड़े आदर के योग्य है, साधु लोगों ने उसकी बुराई नहीं की है।

यो ज्येष्ठो ज्येष्ठवृत्तिः स्यान्मातेव स पितेव स ।
अज्येष्ठवृत्तिर्यस्तु स्यात्स संपूज्यस्तु बन्धुवत्॥११०॥

(११०) जो ज्येष्ठता पाता है वह माता पिता के तुल्य है और जो ज्येष्ठता नहीं पाता वह भाई की नाईं आदरणीय है।

एवं सह वसेयुर्वा पृथग्वा धर्मकाम्यया ,
पृथग्विवर्धते धर्मस्तस्माद्धर्म्या पृथक्क्रिया । १११ ।

(१११) इस विधि से सब एकत्र होकर रहें व धर्म करने की अभिलाषा से पृथक् २ रहें क्योंकि पृथक् २ रहने से धर्म मे वृद्धि होती है अतएव पृथक् रहना धर्म मे सम्मिलित है।

ज्येष्ठस्य विंश उद्धारः सर्वद्रव्याच्च यद्वरम् ।
ततोऽर्धं मध्यमस्य स्यात्तुरीयं तु यवीयसः ।११२।

(११२) सारी सम्पत्ति में से उत्तम द्रव्य और बीसवाँ

करना चाहिये जिसमें परस्पर वियोग न हो यह विधि केवल प्रेम और न्याय है।

एष स्त्रीपुंसयोरुक्तो धर्मो वो रतिसंहितः।
आपद्यपत्यप्राप्तिश्च दायभागं निबोधत ॥ १०३ ॥

(१०३) मनुजी ने स्त्री पुरुषों का धर्म पारस्परिक प्रेम विधियों सहित वर्णन करके आपत्तिकाल मे नियोग द्वारा सन्तान उत्पन्न करने की विधियों को जतला कर अंश विभाग को भी इस रीति पर वर्णन किया है।

ऊर्ध्वं पितुश्च मातुश्च समेत्य भ्रातरः समम्।
भजेरन्पैतृकं रिक्थमनीशास्ते हि जीवतोः ॥१०४॥

(१०४) माता पिता की मृत्यु के उपरान्त सब मिलकर पैतृक सम्पत्ति के समान भाग करें माता पिता की जीवितावस्था में सब लड़के आसक्त हैं।

ज्येष्ठ एव तु गृह्णीयात्पित्र्यं धनमशेषतः।
शेषास्तमुपजीवेयुर्यथैव पितरं तथा ॥ १०५ ॥

(१०५) सारे पैतृक धन को बड़ा पुत्र ही लेवे और छोटा और मझला भाई सब ज्येष्ठ भ्राता के आधीन रहें जिस प्रकार पिता के आधीन रहते हैं।

ज्येष्ठेन जातमात्रेण पुत्री भवति मानवः।
पितॄणामनृणश्चैव स तस्मात्सर्वमर्हति ॥ १०६ ॥

(१०६) ज्येष्ठ उत्पन्न होने के कारण मनुष्य पुत्रवान् कहलाता है और पितृ-ऋण से मुक्त हो जाता है, इससे बड़ा पुत्र सब धन लेने योग्य होता है।

यस्मिन्नृणं सन्नयति येन चानन्त्यमश्नुते।
स एव धर्मजः पुत्रः कामजानितरान्विदुः ॥ १०७ ॥

(१०७) जिसकी उत्पत्ति से पिता ऋण से मुक्त हो जाता है और मुक्ति पाता है वही पुत्र धर्मतः उत्पन्न हुआ है और सब कामाशक्ति से उत्पन्न हुये हैं, ऋषियों ने कहा है।

पितेव पालयेत्पुत्राञ्ज्येष्ठो भ्रातॄन्यवीयसः ।
पुत्रवच्चापि वर्तेरञ्ज्येष्ठे भ्रातरि धर्मतः ॥ १०८ ॥

(१०८) पिता की नाईं बड़ा पुत्र सब भाइयों का पालन पोषणकरे और बड़े भाई के समीप सब छोटे भाई पुत्रकी नाईं रहें

ज्येष्ठः कुलं वर्धयति विनाशयति वा पुनः ।
ज्येष्ठः पूज्यतमो लोके ज्येष्ठः सद्भिरगर्हितः ।१०९।

(१०९) बड़ा पुत्र ही कुल वृद्धि करता है और नाश भी करता है, संसार में बड़े आदर के योग्य है, साधु लोगों ने उसकी बुराई नहीं की है।

यो ज्येष्ठो ज्येष्ठवृत्तिः स्यान्मातेव स पितेव सः ।
अज्येष्ठवृत्तिर्यस्तु स्यात्स संपूज्यस्तु बन्धुवत्॥११०॥

(११०) जो ज्येष्ठता पाता है वह माता पिता के तुल्य है और जो ज्येष्ठता नहीं पाता वह भाई की नाईं आदरणीय है।

एवं सह वसेयुर्वा पृथग्वा धर्मकाम्यया ।
पृथग्विवर्धते धर्मस्तस्माद्धर्म्या पृथक्क्रिया । १११ ।

(१११) इस विधि से सब एकत्र होकर रहें व धर्म करने की अभिलाषा से पृथक् २ रहें क्योंकि पृथक् २ रहने से धर्म में वृद्धि होती है अतएव पृथक् रहना धर्म में सम्मिलित है।

ज्येष्ठस्य विंश उद्धारः सर्वद्रव्याच्च यद्वरम् ।
ततोऽर्धं मध्यमस्य स्यात्तुरीयं तु यवीयसः ।११२।

(११२) सारी सम्पत्ति में से उत्तम द्रव्य और बीसवाँ

भाग बड़े को, इसका आधा अर्थात चालीसवाँ भाग मझले को और इसका आधा भाग छोटे को, शेष को समान भागों में कर देना चाहिये।

ज्येष्ठश्चैव कनिष्ठश्च संहरेतां यथोदितम् ।
येऽन्ये ज्येष्ठकनिष्ठाभ्यां तेषां स्यान्मध्यमं धनम् ।।११३।

(११३) बड़े और छोटे को जैसा कहा है वैसा ही देना परन्तु मझले भाई को धन भी मध्य अवस्था का देना चाहिये।

सर्वेषां धनजातानामाददीताग्र्यमग्रजः ।
यच्च सातिशयं किंचिद्दशतश्चाप्नुयाद्वरम् ।।११४।।

(११४) सारी सम्पत्ति में जो धन श्रेष्ठ है और समान पदार्थों में जो धन उत्तम है, गऊ आदि पशुओं में प्रति दश में एक पशु इन दोनों वस्तुओं को बड़ा भाई लेवे। परन्तु इस प्रकार का विभाग इस समय जानना चाहिये, जब बड़ा भाई गुणवान् हो और अन्य भाई गुणहीन हों।

उद्धारो न दशस्वस्ति संपन्नानां स्वकर्मसु ।
यत्किंचिदेव देयं तु ज्यायसे मानवर्धनम् । ११५ ।

(११५) सब भाई अपने कर्म में सलग्न हों तो जो विभाग ऊपर कह आये हैं वह करना, वरन् ज्येष्ठ का आदर स्थिर रखने के अर्थ कुछेक छोटी वस्तु अधिक देना।

एवं समुद्धृतोद्धारे समानंशान्प्रकल्पयेत् ।
उद्धारेऽनुद्धृते त्वेषामियं स्यादंशकल्पना ।।११६।।

(११६) इस भाँति बड़े पुत्र को उद्धार नाम भाग देकर शेष सम्पत्ति व धन के समान भाग करना और उक्त भाग न दे तो आगामी जो भाग स्थित व नियत करेंगे वह करे।

एकाधिकं हरेज्ज्येष्ठः पुत्रोऽध्यर्धं ततोऽनुजः ।
अंशमंशं यवीयांस इति धर्मो व्यवस्थितः ॥११७॥

(११७) बड़ा भ्राता दो भाग लेवे, मझला डेढ़ भाग लेवे, सबसे छोटा एक भाग लेवे, यह धर्म की व्यवस्था है।

स्वेभ्योऽशेभ्यस्तु कन्याभ्यः प्रदद्युर्भ्रातरः पृथक् ।
स्वात्स्वादंशाच्चतुर्भागं पतिताः स्युरदित्सवः ॥११८॥

(११८) सब भाई पृथक २ अपने भाग का चतुर्थांश भगिनी को देवें, न देवें तो पतित होते हैं।

अजाविकं सैकशफं न जातु विषमं भजेत् ।
अजाविकं तु विषमं ज्येष्ठस्यैव विधीयते ॥११९॥

(११९) बकरी, भेंड व खुर वाले (अर्थात् घोड़ा आदि) यह सब विषम हों (अर्थात् चार भाई पाँच घोड़े हों) तो विषम का भाग न करना चाहिये–जो शेष है वह बड़ा लेवे।

यवीयाञ्ज्येष्ठभार्यायां पुत्रमुत्पादयेद्यदि ।
समस्तत्र विभागः स्यादिति धर्मो व्यवस्थितः ॥१२०॥

(१२०) छोटा भाई भ्रातृजाया भाभी में पुत्र उत्पन्न करे तो उस पुत्र के साथ चचा लोग समान भाग विभक्त करें, उसको बड़े भ्राता के समान भाग न देवें यह धर्म व्यवस्था है।

उपसर्जनं प्रधानस्य धर्मतो नोपपद्यते ।
पिता प्रधानं प्रजने तस्माद्धर्मेण तं भजेत् ॥ १२१ ।

(१२१) श्रेष्ठ को अधम करना धर्म-विरुद्ध है; उत्पत्ति में पिता प्रधान (श्रेष्ठ) है अतः धर्मतः पिता की सेवा-शुश्रूषा करे

पुत्रः कनिष्ठो ज्येष्ठायां कनिष्ठायां च पूर्वजः ।
कथं तत्र विभागः स्यादिति चेत्संशयो भवेत् ॥१२२॥

(१२२) एक के दो स्त्रियाँ हों तथा लघु स्त्री से प्रथम पुत्र उत्पन्न हो और ज्येष्ठ पत्नी के पीछे जन्मे तो अब इस स्थान पर विभाग किस प्रकार करना चाहिये, ऐसी संशयात्मक अवस्था में न्याय विधान को भविष्य में श्लोक कहेंगे।

एकं वृषभमुद्धारं संहरेत स पूर्वजः।
ततोऽपरे ज्येष्ठवृषास्तदूनानां स्वमातृतः ॥१२३॥

(१२३) एवम् विवाह से जो पुत्र पीछे उत्पन्न हुआ है वह एक अच्छा बैल उद्धार लेवे और शेष भाई उस उत्तम बैल से छोटा बैल उद्धार लेवें। माता के विवाह क्रम से पुत्र की ज्येष्ठता जानना चाहिये।

ज्येष्ठस्तु जातो ज्येष्ठायां हरेत वृषभषोडशाः।
ततः स्वमातृतः शेषा भजेरन्निति धारणा ॥१२४॥

(१२४) ज्येष्ठ स्त्री में प्रथम पुत्र उत्पन्न हुआ हो वो १५ गऊ और एक बैल लेवे तदनन्तर लघु पत्नी में जो पुत्र उत्पन्न हुये हैं वह अपनी माता के विवाह क्रम से ज्येष्ठता को पाकर सम्भवत शेष गऊओं का भाग लेवें।

सदृशस्त्रीषु जातानां पुत्राणामविशेषतः।
न मातृतो ज्यैष्ठ्यमस्ति जन्मतो ज्यैष्ठ्यमुच्यते ॥१२५॥

(१२५) अपने सदृश वर्ण की स्त्री से जितने पुत्र उत्पन्न हुये हैं उनमें माता के विवाह की गणना से ज्येष्ठता नहीं है वरन उत्पत्ति की गणना ज्येष्ठता है।

जन्मज्यैष्ठ्येन चाह्वानं सुब्रह्मण्यास्वपि स्मृतम्।
यमयोश्चैव गर्भेषु जन्मतो ज्येष्ठता स्मृता ॥१२६॥

(१२६) ऐसा नहीं कि केवल अंश विभाग ही में उत्पत्ति से

ज्येष्ठवा है। वरन् विष्टोम यज्ञ में इन्द्र को बुलाने के अर्थ स्व-आख्यरय नाम मन्त्र प्रथमोत्पन्न पुत्र के नाम से कहा जाता है कि अमुक बालक का पिता यज्ञ करता है ऐसा ऋषियों ने कहा। और जो दो यमज पुत्र एक साथ ही उत्पन्न होते हैं इस स्थान पर यद्यपि वीर्य से स्थापित गर्भस्थ बालक प्रथम उत्पन्न होगा तो भी जो प्रथम जन्मेगा वही ज्येष्ठ कहलावेगा।

अपुत्रोऽनेन विधिना सुतां कुर्वीत पुत्रिकाम् ।
यदपत्यं भवेदस्यां तन्मम स्यात्स्वधाकरम् ॥१२७॥

(१२७) कन्यादान के समय जामाता (दामाद) से ऐसा परामर्श करे कि हमारे घर में पुत्र नहीं है उस पुत्रिका से जो प्रथम जन्मेगा वह हमारा श्राद्ध कर्म करने वाला हो इस प्रकार पुत्री के पुत्र को स्थानापन्न समझे।

अनेन तु विधानेन पुरा चक्रेऽथ पुत्रिकाः ।
विवृद्ध्यर्थं स्ववंशस्य स्वयं दक्षः प्रजापतिः ॥१२८॥

(१२८) पूर्व समय में सन्तानोत्पत्ति के हेतु दक्ष प्रजापति ने इसी प्रकार कन्या को पुत्र कर स्थानापन्न माना है।

ददौ स दश धर्माय कश्यपाय त्रयोदश ।
सोमाय राज्ञे सत्कृत्य प्रीतात्मा सप्तविंशतिम् ॥१२९॥

(१२९) प्रसन्नता व आदर सहित दक्ष प्रजापति ने दस कन्या धर्म को व तेरह कन्या कश्यप ऋषि को और चन्द्रमा को सत्ताईस कन्या दीं।

यथैवात्मा तथा पुत्रः पुत्रेण दुहिता समा ।
तस्यामात्मनि तिष्ठन्त्यां कथमन्यो धनं हरेत् ॥१३०॥

(१३०) अपनी आत्मा के समान पुत्र है और पुत्र समान कन्या है अतएव आत्मा समान कन्या उपस्थित होने पर किस प्रकार अन्य पुरुष धन को लेवे।

मातुस्तु यौतुकं यत्स्यात्कुमारीभाग एव सः ।
दौहित्र एव च हरेदपुत्रस्याखिलं धनम् ॥ १३१ ॥

(१३१) माता की मृत्यु के उपरान्त उसका यौतुक नाम धन जिसका आगे वर्णन करेंगे उसकी कुमारी कन्या पाती है और जिसके पुत्र न हो उसका सब धन नाती ले अर्थात् पुत्री का पुत्र पाता है।

दौहित्रो ह्यखिलं रिक्थमपुत्रस्य पितुर्हरेत् ।
स एव दद्याद्द्वौ पिण्डौ पित्रे मातामहाय च ॥१३२॥

(१३२) जो मनुष्य पुत्र हीन हो उसका सारा धन नाती (दौहित्र) पावे और वह दो पिण्ड देवे एक पिता को और दूसरा अपने नाना को।

पौत्रदौहित्रयोर्लोके न विशेषोऽस्ति धर्मतः ।
तयोर्हि मातापितरौ संभूतौ तस्य देहतः ॥ १३३ ॥

(१३३) संसार में पौत्र और दौहित्र अर्थात पोता और नाती में कोई विशेष अन्तर नहीं है दोनों एक समान हैं क्योंकि एक के पिता की और एक के माता की उत्पत्ति एक ही से है।

पुत्रिकायां कृतायां तु यदि पुत्रोऽनुजायते ।
समस्तत्र विभागः स्याज्ज्येष्ठता नास्ति हि स्त्रियाः ॥१३४

(१३४)पुत्रहीन पुरुष के पुत्रिका करने पश्चात् अर्थात् पु को पुत्र का स्थानापन्न मान लेने के अनन्तर यदि पुत्र उ हुआ हो तो उस स्थान पर उस पुत्री के साथ पुत्र का स

भाग होता है, क्योंकि स्त्रियों को ज्येष्ठता नहीं है इससे ज्येष्ठांश न पावेगी।

अपुत्रायां मृतायां तु पुत्रिकायां कथंचन।
धनं तत्पुत्रिकाभर्ता हरेतैवाऽविचारयन् ॥ १३५ ॥

(१३५) यदि पुत्रिका से पुत्र उत्पन्न नहीं हुआ और पुत्रिका मर जावे तो उसके मरने के पश्चात् उसका पति उसके धन को लेवे इसमें कुछ विचार न करे।

अकृता वाकृता वापि यं विन्देत्सदृशात् सुतम्।
पौत्री मातामहस्तेन दद्यात्पिण्डं हरेद्धनम् ॥ १३६ ॥

(१३६) पुत्री को पुत्रिका करके माना हो वा न माना हो परन्तु वह पुत्री अपने सदृश वर्ण के पति से पुत्र उत्पन्न करती है तो वह पुत्र निस्सन्तान नाना के धन सम्पत्ति को लेवे और नाना का पिण्ड देवे उसके कारण नाना पुत्रवान कहलाता है।

पुत्रेण लोकाञ्जयति पौत्रेणानन्त्यमश्नुते।
अथ पुत्रस्य पौत्रेण ब्रध्नस्याप्नोति विष्टपम् । १३७ ।

(१३७) पुत्र के द्वारा इन्द्रलोक आदि को जीतता है और पोते के द्वारा अनन्त फल को पाता है और प्रपौत्र (परपोता) के द्वारा सूर्यलोक को पाता है।

पुन्नाम्नो नरकाद्यस्मात्त्रायते पितरं सुतः।
तस्मात्पुत्र इति प्रोक्तः स्वयमेव स्वयंभुवा ॥ १३८ ।

(१३८) पुन्नाम नरक का है उसके अर्थ रक्षा करने वाले के हैं क्योंकि पुत्र पिता को नरक से रक्षा करता है इस कारण से पुत्र कहाता है इस बात को श्री ब्रह्माजी ने कहा है।

पौत्रदौहित्रयोर्लोके विशेषो नोपपद्यते ।
दौहित्रोऽपि ह्यमुत्रैनं संतारयति पौत्रवत् ॥१३६॥

(१३६) संसार में पोता और नाती दोनों एक समान हैं। नाती भी नाना को परलोक में पोते की भाईं मुक्ति दिलाता है।

मातुः प्रथमतः पिण्ड निर्वपेत्पुत्रिकासुतः ।
द्वितीयं तु पितुस्तस्यास्तृतीयं तत्पितुः पितुः ॥१४०॥

(१४०) पुत्रिका का यह पुत्र पहिला पिण्ड माता को देवे दूसरा पिण्ड नाना को और तीसरा पिण्ड बाप को देवे।

उपपन्नो गुणैः सर्वैः पुत्रो यस्य तु दत्रिमः ।
स हरेतैव तद्रिक्थं संप्राप्तोऽप्यन्यगोत्रतः ॥१४१॥

(१४१) दूसरे गोत्र से भी पुत्र आया हो और सर्वगुण सम्पन्न हो तो जिसका वह दत्तक हुआ है उसकी सारी सम्पत्ति धन भी पाता है।

गोत्ररिक्थे जनयितुर्न हरेद्दत्रिमः क्वचित् ।
गोत्ररिक्थानुगः पिण्डो व्यपैति ददतः स्वधा ॥१४२॥

(१४२) उत्पत्तिकर्ताके गोत्र और धन सम्पत्ति को दत्तक पुत्र नहीं पाता, वरन् जिसका दत्तक पुत्र हुआ है उसके गोत्र तथा धन सम्पत्ति को पाता है और उसी को पिण्ड देता है, जिससे उत्पन्न हुआहै उसको पिण्ड नहीं देता।

अनियुक्तासुतश्चैव पुत्रिण्याप्तश्च देवरात् ।
उभौ तौ नार्हतो भागं जारजातककामजौ ॥१४३॥

(१४३) विधवा स्त्री ने पिता आदि की आज्ञा के बिना देवर आदि से जो पुत्र उत्पन्न किया और किसी स्त्री ने पुत्रकी अनुपस्थिति में ससुर आदि की आज्ञा से देवर आदि सेपुत्र

उत्पन्न किया वह दोनों प्रकार के लड़के भाग नहीं पाते क्योंकि पहला पुत्र दूसरे पति से उत्पन्न हुआ है।

नियुक्तायामपि पुमान्नार्यां जातोऽविधानतः ।
नैवार्हः पैतृकं रिक्थं पतितोत्पादितो हि सः ।१४४।

(१४४ ससुर आदि के आज्ञानुसार स्त्री अनुचित रीति से पुत्र उत्पन्न करे तो वह पुत्र पिता के धन को नहीं पाता, क्योंकि वह × पतित से उत्पन्न हुआ है।

हरेत्तत्र नियुक्तायां जातः पुत्रो यथौरसः ।
क्षेत्रिकस्य तु तद्बीजं धर्मतः प्रसवश्च सः ।१४५।

(१४५) जो पुत्र नियोग द्वारा उत्पन्न हुआ हो वह सत्य पुत्र से अर्थात् विवाह द्वारा उत्पन्न सन्तान के समान भागों का भागी है क्योंकि वह वास्तविक स्वामी अर्थात् क्षेत्र वाले का बीज है और धर्मतः उत्पन्न हुआ है।

धनं यो बिभृयाद्भ्रातुर्मृतस्य स्त्रियमेव च ।
सोऽपत्यं भ्रातुरुत्पाद्य दद्यात्तस्यैव तद्धनम् ।१४६ ।

(१४६) मृत भाई की स्त्री से नियोग करके पुत्र उत्पन्न करे और भ्राता का सारा धन उस पुत्र को देवे।

या नियुक्तान्यतः पुत्रं देवराद्वाऽप्यवाप्नुयात् ।
तं कामजमरिक्थीयं वृथोत्पन्नं प्रचक्षते ।१४७।

(१४७)*स्त्री ससुर आदिकी आज्ञानुसार देवर या सपिण्ड

× पतित उसको कहते हैं कि जो अपने व्यभिचार के कारण वर्ण की पदवी से गिर गया है।

*१४७ वें श्लोक में जो काम में उत्पन्न होने वाले पुत्र को पैत्रिक धनका न मिलना लिखा है वहाँ काम से उत्पन्न होने से

अर्थात् सम्बन्धी से पुत्र उत्पन्न करे। कामासक्ति से उत्पन्न पुत्र पैतृक धन का उत्तराधिकारी नहीं। यह ऋषि लोग कहते हैं।

एतद्विधानं विज्ञेयं विभागस्यैकयोनिषु।
बह्वीषु चैकजातानां नानास्त्रीषु निबोधत॥ १४८॥

(१४८) यदि कोई पुरुष अपने सदृश वर्ण की कई स्त्रियों से विवाह करे तो अंश विभाग की विधि उपरोक्त कथानुसार ही जाने। यदि भिन्न २ वर्णों की स्त्रियों से सन्तान उत्पन्न हो तो पैतृक धन का विभाग निम्नलिखित रीति पर करे।

ब्राह्मणस्यानुपूर्व्येण चतस्रस्तु यदि स्त्रियः।
तासां पुत्रेषु जातेषु विभागेऽयं स्मृतो विधिः॥ १४९॥

(१४९) क्रमानुसार चारों वर्णों की स्त्रियाँ जब ब्राह्मण के घर में हों और उन स्त्रियों से जो पुत्र उत्पन्न हों उनके अंश विभाग को आगे कहेंगे।

कीनाशो गोवृषो यानमलंकारश्च वेश्म च।
विप्रस्यौद्धारिकं देयमेकांशश्च प्रधानतः॥ १५०॥

(१५०) प्रत्येक द्रव्य तथा घोड़ा, साँड, रथ आदि सवारी, उत्तम आभूषण व वस्त्र में जो सर्वोत्तम हो उनमें से एक २ वस्तु ब्राह्मणी के पुत्र को देकर शेष को निम्नलिखित विधि से विभक्त करे।

त्र्यंशं दायाद्धरेद्विप्रो द्वावंशौ क्षत्रियासुतः।
वैश्याजः सार्धमेवांशमंशं शूद्रासुतो हरेत्॥ १५१॥

यह तात्पर्य है कि विषय भोग की इच्छा से भोग किया जावे और सन्तानोत्पन्न करने का विचार ध्यान में न लाकर केवल इन्द्रिय तृप्ति के प्राप्ति करने की रीतियाँ कार्यरूप में परिणत की जावें।

(१५१) ब्रह्माजी के पुत्र को तीन भाग, क्षत्राणी के पुत्र को दो भाग वैश्य के पुत्र को डेढ़ भाग और शूद्रा के पुत्र को एक भाग मिलना चाहिये अर्थात् ६-४-३-२ की निसबत होनी चाहिये

सर्वं वा रिक्थजातं तद्दशधा परिकल्प्य च।
धर्म्यं विभागं कुर्वीत विधिनानेन धर्मवित् ॥१५२॥

(१५२) अथवा जो विधि आगे कहेंगे उसके अनुसार धर्म ज्ञाता पुरुष सारी सम्पत्ति को दस भागों में विभाजित करके धर्मानुसार अंश विभाग करें।

चतुरोऽशान्हरे द्विप्रस्त्रीनंशान्क्षत्रियासुतः।
वैश्यपुत्रो हरेद्द्व्यंशमंशं शूद्रासुतो हरेत् ॥ १५३ ॥

(१५३) ब्रह्माजी का पुत्र चार भाग क्षत्रिय का पुत्र तीन भाग वैश्य का पुत्र दो भाग और शूद्रा का एक भाग लेवे।

यद्यपि स्यात्तु सत्पुत्रोऽप्यसत्पुत्रोऽपि वा भवेत्।
नाधिकं दशमाद्दद्याच्छूद्रापुत्राय धर्मतः ॥ १५४ ॥

(१५४) ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य इन तीनों वर्णों की स्त्रियों में ब्राह्मणी से पुत्र उत्पन्न हुआ हो परन्तु धर्मतः शूद्रा के पुत्र को दश भाग से अधिक न देवे।

ब्राह्मणक्षत्रियविशां शूद्रापुत्रो न रिक्थभाक्।
यदेवास्य पिता दद्यात्तदेवास्य धनं भवेत्। १५५।

(१५५) ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्य इन तीनों वर्णों के धन को शूद्रा का पुत्र नहीं ले सकता उसका पिता जो कुछ देवे वही उसका धन है।

समवर्णासु ये जाताः सर्वे पुत्रा द्विजन्मनाम्।
उद्धारं ज्यायसे दत्त्वा भजेरन्नितरे समम् ॥ १५६॥

(१५६) ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य के पुत्र जो समवर्ण की स्त्री से उत्पन्न हुये हों। वह बड़े को उद्धार नाम का स्वत्व देकर शेष को समान भागों में विभक्त कर लें।

शूद्रस्य तु सवर्णैव नान्या भार्या विधीयते ।
तस्यां जाताः समांशाः स्युर्यदि पुत्रशतं भवेत् ।१५७।

(१५७) शूद्र के लिये केवल अपने वर्ण की स्त्री है अन्य वर्ण की नहीं है इसी लिये यद्यपि सौ पुत्र होवें तो भी बराबर भाग पाते हैं।

पुत्रान्द्वादश यानाह नृणां स्वायंभुवो मनुः ।
तेषां षड्बन्धुदायादाः षडऽदायादबान्धवाः ॥१५८॥

(१५८) ब्रह्माजी के पुत्र मनुजी ने मनुष्यों के जो बारह प्रकार के पुत्र कहे हैं उनमें से प्रथम के छः बन्धु और दायाद कहलाते हैं, और अन्य के छः इसके प्रतिकूल हैं, अर्थात् न बन्धु हैं और न पैतृक धन भागी हैं।

औरसः क्षेत्रजश्चैव दत्तः कृत्रिम एव च ।
गूढोत्पन्नोऽपविद्धश्च दायादा बान्धवाश्च षट् ॥१५९॥

(१५९) वह बारह यह हैं औरस, क्षेत्रज, दत्तक, कृत्रिम, गूढोत्पन्न, आपविद्ध, यह छः बान्धव वा दायाद कहलाते हैं।

कानीनश्च सहोढश्च क्रीतः पौनर्भवस्तथा ।
स्वयंदत्तश्च शौद्रश्च षड्दायादबान्धवाः ॥ १६० ॥

(१६०) कानीन, सहोढ, क्रीत, पौन भेव, स्वयम् दत्त, शूद्र यह छः अदायाद बन्धु कहलाते हैं जिनको पैतृक धन का स्वत्व प्राप्त नहीं।

यादृशं फलमाप्नोति कुप्लवैः संतरञ्जलम्।
तादृशं फलमाप्नोति कुपुत्रैः संतरंस्तमः। १६१।

(१६१) निकृष्ट नाव पार चढ़ कर नदी के पार होने वाला जैसे कुफल को प्राप्त होता है वैसा ही कुफल कुपुत्र से वृद्धावस्था में दोषों से बचने के समय प्राप्त होता है।

यद्येकरिक्थिनौ स्यातामौरसक्षेत्रजौ सुतौ।
यस्य यत्पैतृकं रिक्थं स तद्गृह्णीत नेतरः ॥ १६२ ॥

(१६२) जिस पुरुष वा वीर्य रोग आदि के कारण क्षीण हो गया है उसकी स्त्री में निस्सन्तान देवर ने पिता आदि की आज्ञा से पुत्र उत्पन्न किया तत्पश्चात् औषधोपचारादि से वीर्य की दृढ़ता होकर उस पुरुष ने अपनी स्त्री से पुत्र उत्पन्न किया तब उसके धनके उत्तराधिकारी क्षेत्रज और औरस नाम के दो पुत्र हुये इस पर मनुजी कहते हैं कि जिसके वीर्य से जो उत्पन्न हुआ हो वह उसके धन को पावे अर्थात् क्षेत्र को उस दशा में अपने माता पिता का भाग मिले और जिसकी स्त्री में नियोग द्वारा उत्पन्न हुआ है उसको भाग न मिले।

एक एवौरसः पुत्रः पित्र्यस्य वसुनः प्रभुः।
शेषाणामानृशंस्यार्थं प्रदद्यात्तु प्रजीवनम्। १६३।

(१६३) एक ही औरस से नाम पुत्र अपने पिता की सारी सम्पत्ति का स्वामी है वह अन्य भ्राताओं को दया से भोजन व वस्त्र देवे।

षष्ठं तु क्षेत्रजस्यांशं प्रदद्यात्पैतृकाद्धनात्।
औरसो विभजन्दायं पित्र्यं पञ्चममेव वा॥ १६४।

(१६४) पिता आदि की आज्ञा से सन्तान उत्पन्न करने वाला पुत्रवान हो तो क्षेत्रज व औरस दोनों पुत्र अपने पिता के धन

के ६ भाग वा ५ भाग करें एक भाग को क्षेत्रज लेवे शेष धन को औरस लेवे। यदि क्षेत्रज गुणवान हो तो धन के ५ भाग करना चाहिये और यदि गुणहीन हो तो ६ भाग करना चाहिये।

औरसक्षेत्रजौ पुत्रौ पितृरिक्थस्य भागिनौ ।
दशापरे तु क्रमशो गोत्ररिक्थांशभागिनः ॥ १६५ ॥

(१६५) क्षेत्रज तथा औरस यह दोनो पिता के धन को ले सकते हैं शेष जो दश पुत्र हैं वह गोत्र तथा धन दोनों को तथा क्रम लेने वाले हैं।

स्वक्षेत्रे संस्कृतायां तु स्वयमुत्पादयेद्धि यम् ।
तमौरसं विजानीयात्पुत्रं प्रथमकल्पितम् ॥ १६६ ॥

(१६६) जो पुत्र अपनी विवाहित स्त्री से उत्पन्न हो वह औरस नाम पुत्र कहाता है और सब पुत्रों से श्रेष्ठ है।

यस्तल्पजः प्रमीतस्य क्लीबस्य व्याधितस्य वा ।
स्वधर्मेण नियुक्तायां स पुत्रः क्षेत्रजः स्मृतः ॥ १६७ ॥

(१६७) जो सन्तान क्लीव (नपुंसक) व्याधि रोगी और मृतक की स्त्री से शास्त्र की आज्ञानुसार नियोग द्वारा उत्पन्न की जाती है वह क्षेत्रज सन्तान उस स्त्री कुल की कहलाती है।

माता पिता वा दद्यातां यमद्भिः पुत्रमापदि ।
सदृशं प्रीतिसंयुक्तं स ज्ञेयो दत्रिमः सुतः ॥ १६८ ॥

(१६८) जब माता पिता आपत्ति काल में अपने सदृश वर्ण की स्त्री से उत्पन्न लड़के को अपने सजातीय को प्रीतवश दे दें तो यह दत्तक पुत्र कहलाता है।

सदृशं तु प्रकुर्याद्यं गुणदोषविचक्षणम् ।
पुत्रं पुत्रगुणैर्युक्तं स विज्ञेयश्च कृत्रिम ॥ १६९ ॥

(१६९) जो अपने वर्ण वाला और गुण दोषों के जानने में विद्वान् तथा बेटे के गुणों के अनुसार कृत्रिम नाम वाला पुत्र समझना चाहिये।

उत्पद्यते गृहे यस्य न च ज्ञायेत कस्य सः ।
स गृहे गूढ उत्पन्नस्तस्य स्याद्यस्य तल्पजः । १७० ॥

(१७०) घर में उत्पन्न हुआ परन्तु यह नहीं ज्ञात है कि किसके वीर्य से उत्पन्न हुआ तो जिसकी स्त्री से जन्मा है उसका गूढोत्पन्न नाम कहाता है।

मातापितृभ्यामुत्सृष्टं तयोरन्यतरेण वा ।
य पुत्र परिगृह्णीयादपविद्धः स उच्यते ॥ १७१ ॥

(१७१) माता पिता दोनों ने अथवा एक ने जिस पुत्र का परित्याग कर दिया उस पुत्र को दूसरे ने अपना पुत्र बनाया तो वह पुत्र लेने वाले का अपविद्ध नाम पुत्र कहाता है।

पितृवेश्मनि कन्या तु यं पुत्रं जनयेद्रहः ।
तं कानीनं वदेन्नाम्ना वोढुः कन्यासमुद्भवम् ॥१७२॥

(१७२) * बिना विवाह हुये कन्या ने पिता ही के घर पर पुत्र उत्पन्न किया तब उस कन्या से पाणिग्रहण करने वाले पुरुष का कानीन नाम पुत्र कहाता है।

---

* १७२ श्लोक में जिस कानीन पुत्र का वर्णन है वह पैतृक धर्म का उत्तराधिकारी नहीं है वह १६० वें श्लोक में बतला चुके हैं क्योंकि यह अनुचित पुत्र है और धर्म विरुद्ध समझना चाहिये।

या गर्भिणी संस्क्रियते ज्ञाताऽज्ञातापि वा सती ।
वोढुः स गर्भो भवति सहोढ इति चोच्यते ॥१७३॥

(१७३) × यदि कोई कन्या गर्भवती हो चाहे चाहे लोग जानते हों वा न जानते हों तत्पश्चात् उसका विवाह हो जावे और विवाहोपरान्त उस गर्भ से पुत्र उत्पन्न हो तो वह पुत्र पाणिग्रहण करने वाले का सहोढ नाम पुत्र कहलाता है।

क्रीणीयाद्यस्त्वपत्यार्थं मातापित्रोर्यमन्तिकात् ।
स क्रीतकः सुतस्तस्य सदृशोऽसदृशोऽपि वा ॥१७४॥

(१७४) जब माता पिता किसी लड़के को पुत्र बनाने की इच्छा से धन देकर मोल लेवें चाहे उस लड़के का पिता उसका समवर्ण समगुणी हो वा न हो तो यह लड़का मोल लेने वाले का क्रीत नाम (अर्थात् मोल लिया हुआ) पुत्र कहलाता है।

या पत्या वा परित्यक्ता विधवा स्वयेच्छया।
उत्पादयेत्पुनर्भूत्वा स पौनर्भव उच्यते । १७५ ।

(१७५) जो स्त्री पति से परित्यक्त की गई हो वह अथवा विधवा अपनी इच्छा से दूसरे की पत्नी होकर उस मनुष्य से पुत्रोत्पन्न करे वह पुत्र उत्पन्न करने वाले का पौनर्भव नाम कहाता है।

सा चेदक्षतयोनिः स्याद्गतप्रत्यागतापि वा ।
पौनर्भवेन भर्त्रा सा पुनः संस्कारमर्हति । १७६ ।

× १७३ वें श्लोक में जो सहोढ नाम पुत्र कहा है वह भी १६० वें श्लोक के अनुसार अनुचित सूत्र हैं और पैतृक धन का उत्तराधिकारी नहीं है।

(१७६) ॐ अक्षत योनि स्त्री अर्थात् जिस स्त्री का विवाह तो हो गया है परन्तु उनसे भोग नहीं हुआ है दूसरे पति की शरण में जावे तो वह पुन विवाह करने योग्य होती है अथवा कुमार पति को परित्याग कर दूसरे पति की शरण लेकर यदि भोग से बची रही हो और फिर कुमार पति की शरण में आवे तो उसके साथ फिर विवाह करना चाहिये।

मातापितृविहीनो यस्त्यक्तो वा स्यादकारणात्।
आत्मानं स्पर्शयेद्यस्मै स्वयदत्तस्तु स स्मृतः ॥१७७॥

(१७७) माता पिता ने अकारण जिस पुत्र को परित्याग कर दिया हो अथवा जिसके माता पिता मर गये हों वह पुत्र अपने आप को दे देवे तो वह उस पुरुष का स्वयं दत्त नाम पुत्र कहलाता है।

यं ब्राह्मणस्तु शूद्रायां कामादुत्पादयेत्सुतम् ।
स पारयन्नेव शवस्तस्मात्पारशवः स्मृतः ॥१७८॥

(१७८) काम वश वा प्रेमवश होकर विवाह की हुई शूद्रा स्त्री में जो पुत्र उत्पन्न हुआ वह जीवित ही मृतक समान है इससे वह पुत्र ब्राह्मण का शूद्र अथवा पारासव नाम पुत्र कहलावा है।

दास्यां वा दासदास्यां वा यः शूद्रस्य सुतो भवेत् ।
सोऽनुज्ञातो हरेदंशमिति धर्मो व्यवस्थितः ॥१७९॥

(१७९) दासी अथवा दासी की दासी में शूद्र से जो पुत्र

ॐ१७६ वे श्लोक में मनुजीने इसको स्पष्ट कर दिया है किपाणिग्रहण होते ही बिना भोग किए पति मर जावे तो उस स्त्रीका दूसरी बार विवाह करना उचित है। और यह स्त्री अक्षतयोनि कहलाती है।

हुआ है वह पिता के आदेश से भाग पा सकता है यह धर्मानुकूल है।

क्षेत्रजादीन्सुतानेतानेकादश यथोदितान ।

पुत्रप्रतिनिधीनाहुः क्रियालोपान्मनीषिण । १८० ।

(१८०) जो ग्यारह प्रकार के पुत्र क्षेत्रज आदि हैं उनको पण्डितों ने कुल व वर्ण नाश न होने के कारण पुत्र मान लिया है।

य एतेऽभिहिता पुत्राः प्रसङ्गादन्यबीजजा ।

यस्य ते बीजतो जातास्तस्य ते नेतरस्य तु ॥१८१॥

(१८१) अन्य के वीर्य से जो पुत्र उत्पन्न हुये कहे हैं वह सब औरस नाम पुत्र के अभाव में हैं अन्यथा जो जिसके वीर्य से उत्पन्न हुआ है उसी का पुत्र कहलाता है दूसरे का नहीं।

भ्रातृणामेकजातानामेकश्चेत्पुत्रवान्भवेत ।

सर्वास्तांस्तेन पुत्रेण पुत्रिणो मनुरब्रवीत् । १८२ ।

(१८२) एक पिता से उत्पन्न चार या पाँच भ्राताओं में एक भ्राता भी पुत्रवान हो तो उसके होने से सब भ्राता पुत्रवान कहलाते हैं यह मनुजी ने कहा है।

सर्वा सामेक:पत्नीनामेका चेत्पुत्रिणी भवेत् ।

सर्वास्तास्तेन पुत्रेण प्राह पुत्रवतीर्मनुः ॥१८३॥

(१८३) यदि एक पुरुष के चार या पाँच स्त्रियाँ हों और उनमें एक पुत्रवती हो तो शेष स्त्रियाँ भी पुत्रवती होती हैं यह मनुजी की आज्ञा है।

श्रेयस· श्रेयसोऽलाभे पापीयान्रिक्थमर्हति ।

बहवश्चेत्तु सदृशाः सर्वे रिक्थस्य भागिनः ॥१८४॥

(१८४)बारह प्रकार के पुत्रों में पूर्व पूर्व के अभाव में उत्तर उत्तर (दूसरे दूसरे) के पुत्र धन को पाते हैं यदि बहुत पुत्र एक सदृश हों तो धन भी एक सदृश पाते हैं।

न भ्रातरो न पितरः पुत्रा रिक्थहराः पितुः।
पिता हरेदपुत्रस्य रिक्थं भ्रातर एव च ॥ १८५ ॥

(१८५) माता व पिता धन को नहीं पाते पुत्र ही धन है पुत्र अभाव में माता व भ्राता धन को पाते हैं।

त्रयाणामुदकं कार्यं त्रिषु पिण्डः प्रवर्तते।
चतुर्थः संप्रदातैषां पञ्चमो नोपपद्यते ॥ १८६ ॥

(१८६) पिता पितामह (दादा) तथा प्रपितामह (परदादा) यह तीनों वृद्ध श्राद्ध अधिकारी हैं और चौथा देने वाला प्रपौत्र (परपोता) है पाँचवा कोई नहीं। इससे स्पष्ट प्रकट है कि मनुजी की नीति के अनुसार तो यही पितृ जीवित रह सकते हैं।

अनन्तरः सपिण्डाद्यस्तस्य तस्य धनं भवेत्।
अत ऊर्ध्वं सकुल्यः स्यादाचार्यः शिष्य एव वा ॥१८७॥

(१८७) सपिण्ड अर्थात् सात पीढ़ी में जो मृतक का समधी हो वह धन को पाता है यदि सपिण्ड न हो तो सात पीढ़ी के ऊपर संतान धन को पाती है, यदि वह भी न हो तो आचार्य धन को पाता है, यदि आचार्य भी न हो तो शिष्य धन को पाता है।

सर्वेषामप्यभावे तु ब्राह्मणा रिक्थभागिनः
त्रैविद्याः शुचयो दान्तास्तथा धर्मो न हीयते ॥१८८॥

(१८८) यह सब न हों तो वेदपाठी जितेन्द्रि पुत्रवान् ब्राह्मण लोग धन पाते हैं इस रीति से धर्म का नाश नहीं होता।

अहार्यं ब्राह्मणद्रव्यं राज्ञा नित्यमिति स्थितिः ।
इतरेषां तु वर्णानां सर्वाभावे हरेन्नृपः ॥ १८९ ॥

(१८९) निः सन्तान ब्राह्मण के धन को राजा कभी न लेवे और अन्य वर्णों के धन पर उपरोक्त उत्तराधिकारियों के अभाव में राजा का स्वत्व है।

संस्थितस्यानपत्यस्य सगोत्रात्पुत्रमाहरेत् ।
तत्र यद्रिक्थजातं स्यात्तत्तस्मिन्प्रतिपादयेत् ॥ १९० ॥

(१९०) निः सन्तान की मृत्यु के उपरान्त उसकी स्त्री सुसर आदि की आज्ञानुसार अपने सगोत्री मनुष्य से पुत्रोत्पन्न करे तो उस पुत्र को सब धन दे देवे।

द्वौ तु यौ विवदेयातां द्वाभ्यां जातौ स्त्रिया धने ।
तयोर्यद्यस्य पित्र्यं स्यात्तत्स गृह्णीत नेतरः ॥ १९१ ॥

(१९१) एक स्त्री के दो पुरुषों से दो पुत्र उत्पन्न हों और माता के धन के हित विवाद करते हों तो जिसके पिता ने जो धन उस स्त्री को दिया हो वह धन वही पावे।

जनन्यां संस्थितायां तु समं सर्वे सहोदराः ।
भजेरन्मातृकं रिक्थं भगिन्यश्च सनाभयः ॥ १९२ ॥

(१९२) माता की मृत्यु के उपरान्त सब सहोदर (सगे) भाई और कुमारी भगिनि समान भाग करके माता का धन विभक्त कर लेवें।

यास्तासां स्युर्दुहितरस्तासामपि यथार्हतः ।
मातामह्या धनात्किंचित्प्रदेयं प्रीतिपूर्वकम् ॥ १९३ ॥

(१९३) माता के धन को पुत्री पावे और पुत्री के पुत्र को भी कुछ धन नीति के कारण देना चाहिये।

अध्यग्न्यध्यावाहनिकं दत्तं च प्रतिकर्मणि ।
भ्रातृमातृपितृप्राप्तं षड्विधं स्त्रीधनं स्मृतम् ॥१९४॥

(१९४) पाणिग्रहण के समय अग्नि के समक्ष पिता आदि ने जो धन आदि दिया हो, और विदा के समय जो धन आदि दिया जाता है, व प्रसन्नता पूर्वक जो पति देता, भ्राता ने जो दिया हो पिता ने जो दिया हो माता ने जो दिया यह छ प्रकार के धन ऋषियों ने स्त्री धन वर्णन किये हैं।

अन्वाधेयं च यद्दत्तं पत्या प्रीतेन चैव यत् ।
पत्यौ जीवति वृत्तायाः प्रजायास्तद्धनं भवेत् ॥१९५॥

(१९५) जो धन प्रसन्नता पूर्वक पति ने दिया हो तथा पति की मृत्यु के उपरान्त जो धन उसके कुल से मिला हो इन दोनों प्रकार के धनों के माता पिता की मृत्यु के पश्चात् पुत्र उत्तराधिकारी होते हैं।

ब्राह्मदैवार्षगान्धर्वप्राजापत्येषु यद्वसु ।
अप्रजायामतीतायां भर्तुरेव तदिष्यते ॥ १९६ ॥

(१९६) १ ब्राह्मण, २ दैव, ३ आर्ष, ४-गान्धर्व, ५-प्राजापत्य इन पाँच प्रकार के विवाह में जो धन स्त्री को मिला हो तो उस स्त्री के निसंतान मृत्यु हो जाने के पश्चात् उसका पति पाता है।

यत्त्वस्याः स्याद्धनं दत्तं विवाहेष्वासुरादिषु ।
अप्रजायामतीतायां मातापित्रोस्तदिष्यते ॥ १९७ ॥

(१६७) × असुर, पिशाच और राक्षस इन तीन प्रकार के विवाह में जो धन स्त्री को मिला हो तो उस स्त्री के निःसन्तान मृत्यु हो जाने के पश्चात् उसके माता पिता उस धन को पाते हैं पति नहीं पाता।

स्त्रियां तु यद्भवेद्वित्तं पित्रा दत्तं कथंचन।
ब्राह्मणी तद्धरेत्कन्या तदपत्यस्य वा भवेत्। १९८।

(१९८) ब्राह्मण के घर में चारों वर्णों की विवाहित स्त्रियाँ हों उनमें ब्राह्मणी कन्या रखती हो और अन्य वर्णों की स्त्रियाँ निःसन्तान विधवा हों और उनको किसी प्रकार पिता ने धन दिया हो तो उस धन को उन स्त्रियों की मृत्यु के उपरान्त ब्राह्मणी की कन्या पावे यदि कन्या न हो तो कन्या का पुत्र पावे।

न निर्हारं स्त्रियः कुर्युः कुटुम्बाद्बहुमध्यगात्।
स्वकादपि च वित्ताद्धि स्वस्य भर्तुरनाज्ञया।।१९९।

(१९९) भाई आदि कुटम्बियों का जो साधारण धन है उसको स्त्री आदि आभूषण बनवाने को न लेवे और पति की आज्ञा के विना पति के दिये हुये धन को भी न लेवे। इससे यह सिद्ध हुआ कि यह स्त्रियों के धन नहीं हैं

पत्यौ जीवति यः स्त्रीभिरलङ्कारो धृतो भवेत्।
न तं भजेरन्दायादा भजमाना पतन्ति ते।।२००।।

(२००) जो अलङ्कार पति की जीवितावस्था में स्त्री ने धारण (पहिरा) किया हो। यदि उत्तराधिकारी लोग उसको विभक्त करें तो वह सब धर्म के विरुद्ध करते हैं क्योंकि वह स्त्री धन है।

× १९७ वें श्लोकसे स्पष्ट प्रगट होता है कि यह तीन प्रकार के विवाह अनुचित है क्योंकि इसमें स्त्री को पति का अर्धाङ्ग नहीं मानागया है। अन्यथा पति को उपस्थिति में अन्य का स्वत्वन होता

अनंशौ क्लीबपतितौ जात्यन्धबधिरौ तथा ।
उन्मत्तजड़मूकाश्च ये च केचिन्निरिन्द्रियाः ।२०१।

(२०१) क्लीब (नपुन्सक), पतित, जन्म अन्धा, बहिरा, व्याधि आदि से उत्पन्न हुआ, उन्मत्त, जड़ मूक (गूँगा) वा किसी अङ्ग या इन्द्रिय हीन, जो ऐसे पुरुष हैं वह भाग नहीं पाते ।

सर्वेषामपि तु न्याय्यं दातुं शक्त्या मनीषिणा ।
ग्रासाच्छादनमत्यन्तं पतितो ह्यददद्भवेत् ॥ २०२ ॥

(२०२) २०१ वें श्लोक में वर्णित पुरुषों में से प्रत्येक का भाग लेने वाला भोजन व वस्त्र जीवन पर्यन्त देवे यदि न देवे तो सर्वथा पापी होता है ।

यद्यर्थिता तु दारैः स्यात्क्लीबादीनां कथंचन ।
तेषामुत्पन्नतन्तूनामपत्यं दायमर्हति ॥ २०३ ॥

(२०३) क्लीब आदि को विवाह करने की इच्छा हो तो विवाह करके योग्यतानुसार उस स्त्री में पुत्रोत्पन्न कराके उस पुत्र को भाग देवे ।

यत्किंचित्पितरि प्रेते धनं ज्येष्ठोऽधिगच्छति ।
भागो यवीयसां तत्र यदि विद्यानुपालितः ॥२०४॥

(२०४) पिता की मृत्यु के उपरान्त बड़े भाई ने पैतृक धन विभक्त होने से पूर्व कुछ धन एकत्र किया तो उसमें से सब छोटे भाई पावें यदि वे विद्वान हों ।

अविद्यानां तु सर्वेषामीहातश्चेद्धनं भवेत् ।
समस्तत्र विभागः स्यादपित्र्य इति धारणा ।२०५।

(२०५) सब मूर्ख भाईयों ने परिश्रम से धन संचित किया हो

तो उनमें समान भाग करना चाहिये। वह धन पैतृक धन नहीं है यह शास्त्र का निश्चय है।

विद्याधनं तु यद्यस्य तत्तस्यैव धनं भवेत् ।
मैत्र्यमौद्वाहिकं चैव मधुपर्किकमेव च ॥ २०६ ॥

(२०६) जो धन विद्या मित्रता, और विवाह आदि से प्राप्त हो वह जिस को मिले उसका है, उसमें किसी भाई वा भाग लेने वाले का भाग नहीं होता, जो संचित करे वही उसका स्वामी है।

भ्रातॄणां यस्तु नेहेत धनं शक्तः स्वकर्मणा ।
सनिर्भाज्यः स्वकादंशात्किंचिद्दत्वोपजीवनम् ।२०७।

(२०७) सब भ्राताओं में जो भ्राता अपने कार्य में सबसे अधिक चतुर और पैतृक धन का अंश लेने की इच्छा नहीं करता है उसको अपने भाग से कुछ धन देकर अंशसे अनाधिकारी कर देना चाहिये क्योंकि उसके पुत्र पीछे से विवाद करेंगे कि हमारे पिता ने अपना अंश नहीं लिया है हमको उसका भाग दो।

अनुपघ्नन्पितृद्रव्यं श्रमेण यदुपार्जितम् ।
स्वयमीहितलब्धं तन्नाकामो दातुमर्हति ॥ २०८ ॥

(२०८) पैतृक धन व्यय न कर केवल अपने ही परिश्रम से जो धन संचित करे उसको यदि अपनी इच्छा न हो तो अपने भ्राताओं को न देवे अर्थात् इस धन में से भ्राताओं को भाग न देवे।

पैतृकं तु पिता द्रव्यमनवाप्तं यदाप्नुयात् ।
न तत्पुत्रैर्भजेत्सार्धमकामः स्वयमर्जितम् ॥ २०९ ॥

(२०९) पिता के धनको किसी ने हरण कर लिया और पिता

ने पुनः प्राप्त न कर पाया हो और पुत्र उस धन को अपने परिश्रम से प्राप्त न कर लेवे तो उसका भाग अपने पुत्रों को न देवे और इच्छा हो तो देवे क्योंकि वह धन अपने प्रयत्न और परिश्रम से प्राप्त हुआ है पिता का पैतृक धन नहीं है।

विभक्ताः सह जीवन्तो विभजेरन्पुनर्यदि।
समस्तत्र विभागः स्याज्ज्यैष्ठ्यं तत्र न विद्यते॥२१०॥

(२१०) एक बार धन विभक्त हो गया फिर स्वेच्छापूर्वक एकत्र सम्मिलित होकर रहे और धन विभाजित करें तो बड़े भ्राता का वह भाग देवे सो उसकी ज्येष्ठता के कारण से प्रथम अंश विभाग में दिया जाता है।

येषां ज्येष्ठः कनिष्ठो वा हीयेतांशप्रदानतः।
म्रियेतान्यतरो वापि तस्य भागो न लुप्यते॥२११॥

(२११) भ्राताओं में बड़ा वा छोटा भ्राता संन्यासी आदि हो जाने के कारण अंश विभाग के समय अपना अंश (हिस्सा) न ले अथवा मृत्युवत हो गया हो तो उसका भाग लोप न करना चाहिये वरन् उसका भाग भी पृथक् करना उचित है।

सोदर्या विभजेरंस्तं समेत्य सहिताः समम्।
भ्रातरो ये च संसृष्टा भगिन्यश्च सनाभयः॥२१२॥

(२१२) सब भ्राता व भगिनी जो उत्तराधिकारी हैं उस सहोदर भाई को बराबर बाँट लें।

---

२०६ वें श्लोक से स्पष्ट प्रकट होता है कि मनुजीकी आज्ञा है कि पैतृक धन में तो सन्तान का स्वत्व है और स्वयं उपार्जित धन में पिता की इच्छा है वह जिसे चाहे दे सकता है सन्तरका कोई स्वत्व नहीं।

यो ज्येष्ठो विनिकुर्वीत लोभाद्भ्रातॄन्यवीयसः ।
सोऽज्येष्ठः स्यादभागश्च नियन्तव्यश्च राजभिः ॥२१३॥

(२१३) जो बड़ा भ्राता लोभवश छोटे भ्राता को उसका भाग नहीं देता वह ज्येष्ठ भ्राता नहीं कहला सकता और राजा का धर्म है कि उसे दण्ड देवे।

सर्वे एव विकर्मस्था नार्हन्ति भ्रातरो धनम् ।
न चादत्वा कनिष्ठेभ्यो ज्येष्ठ कुर्वीत यौतुकम् ।२१४।

(२१४) यदि सब भ्राता निरर्थक कार्यों में संलग्न रहें तो पैतृक धन के उत्तराधिकारी नहीं। बड़ा भाई छोटे भाई का भाग दिये बिना केवल अपने अधिकार में न करे।

भ्रातॄणामविभक्तानां यद्युत्थानं भवेत्सह ।
न पुत्रभागं विषमं पिता दद्यात्कथंचन ।२१५।

(२१५) सब भ्राता मिलकर धन संचित करें तो पिता को उचित है कि अंश विभाजित करते समय सबको समान भाग देवे न्यूनाधिक न दे।

ऊर्ध्वं विभागाज्जातस्तु पित्र्यमेव हरेद्धनम् ।
संसृष्टास्तेन वा ये स्युर्विभजेत स तैः सह ।२१६।

(२१६) पिता ने पुत्रों से पृथक होकर फिर पुत्र उत्पन्न किया हो तो वह पुत्र केवल पिता ही का धन पाता है और उनके साथ प्रथम पृथक भाई सम्मिलित होकर रहे हों तो उसके साथ धन विभाजित होने के पश्चात जो पुत्र उत्पन्न हुआ है वह भी भाग लेवे।

अनपत्यस्य पुत्रस्य माता दायमवाप्नुयात् ।
मातर्यपि च वृत्तायां पितुर्माता हरेद्धनम् ।२१७।

यदि पुत्र नि सन्तान हो तो उसका धन उसकी माता लेवे।

ऋणे धने च सर्वस्मिन्प्रविभक्ते यथाविधि।
पश्चाद्दृश्येत यत्किंचित्तत्सर्वं समतां नयेत् ॥२१८॥

(२१८) ऋण धन के देने के पश्चात् जो कुछ धन शेष रहे उसके समान भाग करें।

वस्त्रं पत्रमलंकारं कृतान्नमुदकं स्त्रियः।
योगक्षेमं प्रचारं च न विभाज्यं प्रचक्षते। २१९।

(२१९) वस्त्र, सवारी, अलकार, आभूषण, शीशा के पात्र आदि, कृतान्न (बना हुआ खाद्य अन्न), पानी का कुवाँ घर के पुरोहित आद सम्बन्धी पशुओं के आने जाने का मार्ग इनको विभाजित न करना चाहिये।

अयमुक्तो विभागो वः पुत्राणां च क्रियाविधिः।
क्रमशः क्षेत्रजादीनां द्यूतधर्मं निबोधत। २२०।

(२२०) भृगुजी कहते हैं कि हे ऋषि लोगों! क्षेत्र आदि पुत्रों के धन विभाग को आप लोगों से कहा अब उसके अनन्तर द्यूत के विषय मे वर्णन करते हैं।

द्यूतं समाह्वयं चैव राजा राष्ट्रान्निवारयेत्।
राज्यान्तकरणावेतौ द्वौ दोषौ पृथिवीक्षिताम्। २२१।

(२२१) द्यूत और (१) समाह्वय नाम द्यूत क्रीड़ा वाले (जुआरिया) को राजा अपने राज्य में न होने दे क्योंकि यह दोनों राज्य को नष्ट भ्रष्ट करते हैं।

प्रकाशमेतत्तास्कर्यं यद्देवनसमाह्वयौ।
तयोर्नित्यं प्रतीघाते नृपतिर्यत्नवान्भवेत्। २२२।

(२२२) दोनों प्रकार के द्यूत गुप्त व प्रकट चोरी है और इसके कारण राजा कलङ्कित होता है और हानि पहुँचती है राजा का धर्म है कि दोनों प्रकार के जुआरियों का सत्यानाश करे।

अप्राणिभिर्यत्क्रियते तल्लोके द्यूतमुच्यते ।
प्राणिभिः क्रियते यस्तु स विज्ञेयः समाह्वयः॥२२३॥

(२२३) पाँसा कौड़ी आदि जड़ वस्तु से दाँव लगाकर बाजी लगाना द्यूत कहलाता है, और जीवधारी वस्तुओं जैसे घोड़ा बकरी भेड़ आदि से दाँव लगाकर बाजी कर समाह्वय कहलाता है।

द्यूतं समाह्वयं चैव यः कुर्यात्कारयेत वा ।
तान्सर्वान्घातयेद्राजा शूद्रांश्च द्विजलिङ्गिनः ॥२२४॥

(२२४)*इन दोनों को जो करे और करावे उसको, और जो शूद्र ब्राह्मण क्षत्रियों के चिन्हों को धारण करने वाला है, उसका राजा सत्यानाश करदे।

कितवान्कुशीलवान्क्रूरान्पापण्डस्थांश्चमानवान् ।
विकर्मस्था ञ्छौण्डिकांश्च क्षिप्रं निर्वासयेत्पुरात्।२२५।

(२२५) जुआरी, नर्तक, गायक संसार से शत्रुता करने वाला, पाखण्डी, क्रूर, गर्हित काम करने वाला, मद्य बनाने वाला, इन सबको राजा शीघ्र ही नगर से बाहर निकाल दे।

---

२२३ वें श्लोक को देखो इसका अर्थ लिखा है।

* २२४श्लोक में शूद्र अर्थात् अनपढ़ जो विद्वानों का वेष धारण करके जन साधारण को छलवा देते हैं वह भी जुआरियों ही के तुल्य मनुजी बतलाते हैं।

एते राष्ट्रे वर्तमाना राज्ञः प्रच्छन्नतस्कराः ।
विकर्मक्रियया नित्यं बाधन्ते भद्रिकाः प्रजाः ॥२२६॥

(२२६) यह सब गुप्त चोर हैं खोटे कार्यों से उत्तम प्रजा को कष्ट व हानि पहुंचाते हैं।

द्यूतमेतत्पुरा कल्पे दृष्टं वैरकरं महत् ।
तस्माद् द्यूतं न सेवेत हास्यार्थमपि बुद्धिमान् ॥२२७॥

(२२७) बड़ी शत्रुता करने वाला जुआरी ही है यह पूर्व काल में अनुभव किया गया है इससे बुद्धिमान् पुरुष हंसी के मिस से भी इसका व्यवहार न करें।

प्रच्छन्नं वा प्रकाशं वा तन्निषेवेत यो नरः ।
तस्य दंडविकल्पः स्याद्यथेष्टं नृपतेस्तथा ॥२२८॥

(२२८) गुप्त वा प्रगट रीति से जुआरी पुरुषों को राजा जिस प्रकार का दण्ड देने की इच्छा करे वही दण्ड देवे !

क्षत्रविट्शूद्रयोनिस्तु दण्डं दातुमशक्नुवन् ।
आनृण्यं कर्मणा गच्छेद्विप्रो दद्याच्छनैः शनैः ॥२२९॥

(२२९) क्षत्रिय वैश्य शूद्र यह सब अर्थ दण्डके धन के देने की सामर्थ्य न रखते हों तो कार्य करके अर्थ दण्ड से ऋण की नाईं मुक्ति पावे और ब्राह्मण धीरे-धीरे देवे, कार्य न करे

स्त्री बालोन्मत्तवृद्धानां दरिद्राणां च रोगिणाम् ।
शिफाविदलरज्ज्वाद्यैर्विदध्यान्नृपतिर्दमम् ॥२३०॥

(२३०) स्त्री बालक, वृद्ध, उन्मत्त दरिद्री, रोगी, इनको बांस आदि की छड़ी से ताड़ना करना और रस्सी से बांधना इन दण्डों के सजा देवे।

ये नियुक्तास्तु कार्येषु हन्युः कार्याणि कर्मिणाम् ।
धनोष्मणा पच्यमानास्तान्निःस्वान्कारयेन्नृपः ।२३१।

(२३१) यदि कोई पुरुष कार्य के सम्पादन करने को नौकर रख गया हो और वह उस कार्य को जान बूझ कर नष्ट कर दे तो राजा उसका सब धन ले ले।

कूटशासनकर्तॄंश्च प्रकृतीनां च दूषकान् ।
स्त्रीबालब्राह्मणघ्नांश्च हन्याद्द्विट्सेविनस्तथा ।२३२।

(२३२) राजाज्ञा उल्लंघन करने वाले, राज कर को हानि व दोष देने वाले, स्त्री व स्वामी व ब्राह्मण को ताड़ना (मारने) करने वाले, शत्रु सेवा करने वाले जो पुरुष हैं राजा इन सबों को नष्ट भ्रष्ट कर दे।

तीरितं चानुशिष्टं च यत्र क्वचन यद्भवेत् ।
कृतं तद्धर्मतो विद्यान्न तद्भूयो निवर्तयेत ॥२३३॥

(२३३) जिस स्थान पर किसी विवाद में न्यायपूर्वक जो अन्तिम निर्णय न्यायाधीश ने कर दिया है उसको मान्य समझे और फिर उसको दूसरे प्रकार न करे।

अमात्याः प्राड्विवाको वा यत्कुर्युः कार्यमन्यथा ।
तत्स्वयं नृपतिः कुर्यात्तान्सहस्रं च दण्डयेत् ।२३४।

(२३४) परन्तु अमात्य (मन्त्री) व न्यायाधीश जिस विवाद को न्याय प्रतिकूल निर्णय करे उसको राजा स्वयम् देखे और यदि राजा के निरीक्षण में उनका अन्तिम निर्णय नीति विरुद्ध जचे तो राजा उनसे सहस्र पण दण्ड लेवे।

ब्रह्महा च सुरापश्च स्तेयी च गुरुतल्पगः ।
एते सर्वे पृथग्ज्ञेया महापातकिनो नराः ॥ २३५ ॥

(२३५) × ब्राह्मणको मारने वाला, मद्य पीने वाला, ब्राह्मण का सोना सोलह मासा के परिमाण का चुराने वाला, गुरुपत्नी या माता से भोग करने वाला यह चारों महापापी कहलाते हैं।

चतुर्णामपि चैतेषां प्रायश्चित्तमकुर्वताम् ।
शारीरं धनसंयुक्तं दण्डं धर्म्यं प्रकल्पयेत् ।२३६।

(२३६) यह चारों प्रायश्चित न करें तो धन संयुक्त शारीरिक दण्ड निम्नलिखित विधान से देनी चाहिए।

गुरुतल्पे भगः कार्यः सुरापाने सुराध्वजः ।
स्तेये च श्वपदं कार्यं ब्रह्महण्यशिराः पुमान् ।२३७।

(२३७) १-गुरुपत्नी से रमण करने वाला, २-मद्य पीने वाला ३-ब्राह्मण का सोलह मासा सोना चुराने वाला, ४-ब्रह्म हत्या करने वाला, इन चारों के मस्तक पर यथा क्रम निम्नांकित चिन्ह अङ्कित करना चाहिये अर्थात् १-भग के आकार का चिन्ह २-मद्य व मद्यपात्र (गिलास) के आकार का चिन्ह, ३-कुत्ते के पाँव के आकार का चिन्ह, ४-सिर हीन पुरुष आकृति का चिन्ह।

असंभोज्या ह्यसंयाज्या असंपाठ्याऽविवाहिनः ।
चरेयुः पृथिवीं दीनां सर्वधर्मबहिष्कृताः ।२३८।

(२३८) उक्त चिन्हांकित पुरुषों के भोजन, यज्ञ, पाठ, विवाहादि कर्म कराना चाहिये यह सब सारे धर्मों से पृथक् होकर दरिद्री (दीन) व, चिन्तित, व भयावह होकर पृथ्वी पर विचरें

× २३५ श्लोक में शराब पीना महापातक में परिगणित किया है और अनेक श्लोकों में मनुष्यों का भक्ष्य बतलाया है। इससे स्पष्ट प्रकट है कि जिस श्लोक में मद्य व माँस व व्यभिचार को दूषित नहीं बतलाया है वह श्लोक मिलाया हुआ है।

ज्ञातिसम्बन्धिभिस्त्वेते त्यक्तव्याः कृतलक्षणाः ।
निर्दया निर्नमस्कारास्तन्मनोरनुशासनम् ॥२३९॥

(२३९) सजाती, सम्बन्धी, भ्राता आदि सब परित्याग कर दें, उन पर दया न करें और नमस्कार करें यह मनुजी महाराज की आज्ञा है कि यह लोग जाति बिरादरी से सर्वदा पृथक कर दिये जावें।

प्रायश्चित्तं तु कुर्वाणाः सर्ववर्णा यथोदितम् ।
नांक्या राज्ञा ललाटे स्युर्दाप्यास्तूत्तमसाहसम् ।२४०।

(२४०) जो चारों वर्ण के महापापी प्रायश्चित्त करना स्वीकार करें तो राजा उनके मस्तक पर चिह्न अंकित न करे वरन् उनसे सहस्र पण दण्ड स्वरूप ले।

आगःसु ब्राह्मणस्यैव कार्यो मध्यमसाहसः ।
विवास्यो वा भवेद्राष्ट्रात्सद्रव्यः सपरिच्छदः ॥२४१॥

(२४१) अपराधी ब्राह्मण से मध्यम साहस दण्ड लेवे अथवा अपराधी ब्राह्मण को खाद्य पदार्थों व धन सहित उसे अपने राज सीमा से बाहर निकाल दे।

इतरे कृतवन्तस्तु पापान्येतान्यकामतः ।
सर्वस्वहारमर्हन्ति कामतस्तु प्रवासनम् ॥ २४२ ॥

(२४२) क्षत्रिय आदि तीनों वर्ण अनिच्छा से इन पापों को करे तो उसकी सारी सम्पत्ति व धन को दण्ड स्वरूप हरण करे। और यदि इच्छा से किया हो तो मूत्रेन्द्रिय के छिन्न करने वा प्राण दण्ड का विधान करना चाहिये।

नाददीत नृपः साधुर्महापातकिनो धनम् ।
आददानस्तु तल्लोभात्तेन दोषेण लिप्यते ॥२४३॥

(२४३) जो राजा साधु होवे वह महा पापियों के धन को लोभ वश अपने लिये न लेवे।

अप्सु प्रवेश्य तं दण्डं वरुणायोपपादयेत्।
श्रुतवृत्तोपपन्ने वा ब्राह्मणे प्रतिपादयेत् ॥२४४॥

(२४४ दण्ड के धन का (अर्थात् दण्ड का द्रव्य व पदार्थ को) पानी में डालकर वरुण देवता के आधीन करे अथवा उस ब्राह्मण को दे दे जो वेद शास्त्र का ज्ञाता हो और तदनुसार कर्म करने वाला हो।

ईशो दण्डस्य वरुणो राज्ञां दण्डधरो हि सः।
ईशः सर्वस्य जगतो ब्राह्मणो वेदपारगः ॥ २४५ ॥

(२४५) क्योंकि महापापी को दण्ड देने से जो धन प्राप्त है उस धन का स्वामी वरुण देवता है और वेद में पारगत ब्राह्मण सारे जगत् का स्वामी है।

यत्र वर्जयते राजा पापकृद्भ्यो धनागमम्।
तत्र कालेन जायन्ते मानवा दीर्घजीविनः ॥ २४६ ॥

(२४६) जिस देश का राजा पापियोंके पाप द्वारा सचितधन को नहीं लेता उस देशके मनुष्यों की आयु अत्याधिक होजाती है।

निष्पद्यन्ते च सस्यानि यथोप्तानि विशां पृथक्।
बालाश्च न प्रमीयन्ते विकृतं न च जायते। २४७।

(२४७) जिस प्रकार वैश्य लोग जो अन्न बोते हैं वह पृथक उपजता है उसी प्रकार उस राजा के राज में बालक भी नहीं मरते और न कोई अगहीन बालक उत्पन्न होता है।

ब्राह्मणान्बाधमानं तु कामादवरवर्णजम्।
हन्याच्चित्रैर्वधोपायैरुद्वेजनकरैर्नृपः। २४८।

(२४८) जो क्षत्रिय व वैश्य व शूद्र ब्राह्मण को जान बूझ कर हत्या करे उसको विविध प्रकार के कष्ट जिनमें उद्विग्नता व शोक संयुक्त हो राजा उसके द्वारा प्राणदण्ड देवे।

यावानऽवध्यस्य वधे तावान्वध्यस्य मोक्षणे।
अधर्मो नृपतेर्दृष्टो धर्मस्तु विनियच्छतः ।२४९।

(२४९) जो प्राणदण्ड के अयोग्य है उसके वध में जितना पाप होता है उतना ही पाप प्राणदण्ड के योग्य पुरुष को छोड़ देने से होता है।

उदितोऽयं विस्तरशो मिथो विवदमानयोः।
अष्टादशसु मार्गेषु व्यवहारस्य निर्णयः ।२५०।

(२५०) अब भृगुजी कहते हैं कि हे ऋषि लोगों! अठारह प्रकार के विवादों में पारस्परिक व्यवहार करने वालों के विवाद के दण्ड व निर्णय विधान को वर्णन किया।

एवं धर्म्याणि कार्याणि सम्यक्कुर्वन्महीपतिः।
देशानलब्धांल्लिप्सेत लब्धांश्च परिपालयेत् ।२५१।

(२५१) राजा इस विधि से धर्मयुक्त सब कर्मों को भली भांति करता हुआ उन देशों को विजय करने की अभिलाषा करे जो जीते नहीं गये हैं और फिर जीते हुये प्रदेशों की रक्षा करने की अभिलाषा करे।

सम्यङ्निविष्टदेशस्तु कृतदुर्गश्च शास्त्रतः।
कण्टकोद्धरणे नित्यमातिष्ठेद्यत्नमुत्तमम् । २५२ ।

(२५२)देश में शास्त्रानुसार दुर्ग आदि बना कर और उसमें निवास करके देश को पीड़ित करने वाले मनुष्यों का नाश करे।

रक्षणादार्यवृत्तानां कण्टकानां च शोधनात् ।
नरेन्द्रास्त्रिदिवं यान्ति प्रजापालनतत्पराः ।२५३।

(२५३) राजा प्रजा के पालन में सलग्न व तत्पर होकर अच्छे लोगों की रक्षा करे और काँटे निकालने से स्वर्ग को प्राप्त करता है ।

अशासंस्तस्करान्यस्तु बलिं गृह्णाति पार्थिवः ।
तस्य प्रक्षुभ्यते राष्ट्रं स्वर्गाच्च परिहीयते ।२५४।

(२५४) जो राजा चोर आदिकों को दण्ड न देकर देश की रक्षा नहीं करता और अपना राजकर व अंश बराबर ग्रहण करता है तो वह राजा अपनी प्रजा के शाप से धर्म से पतित होकर अवश्य नाश हो जाता है।

निर्भयं तु भवेद्यस्य राष्ट्रं बाहुबलाश्रितम् ।
तस्य तद्वर्धते नित्यं सिच्यमान इव द्रुमः ।२५५।

(२५५) जिस राजा का बाहुबल पाकर प्रजा अभय रहती है उसका राजा नित्य उन्नति पाता है जैसे सींचा हुआ वृक्ष।

द्विविधांस्तस्करान्विद्यात्परद्रव्यापहारकान् ।
प्रकाशांश्चाप्रकाशांश्च चारचक्षुर्महीपतिः ।२५६।

(२५६) राजा गुप्त व प्रकट चोरी का उत्तम प्रबन्ध करे और भिन्न २ रीतियों द्वारा परीक्षा लेता रहे ।

प्रकाशवञ्चकास्तेषां नानापण्योपजीविनः ।
प्रच्छन्नवञ्चकास्त्वेते ये स्तेनाटविकादयः ।२५७।

(२५७) भिन्न २ प्रकार के द्रव्यों को मिश्रित कर बेचने वाले स्पष्ट चोर हैं तथा जन शून्य स्थान में और मनुष्यों के सो जाने की दशा में अन्य के धन को चुराने वाले गुप्त चोर हैं।

उत्कोचकाश्चोपधिका वञ्चकाः कितवास्तथा ।
मङ्गलादेशवृत्ताश्च भद्राश्च चणिकैः सह ॥२५८॥

(२५८) अवश्यस्ता वाले मनुष्यों से धन अपहरण कर घृणित पापकर्म में लगाने वाला, व भय देकर धन अपहरण करने वाला, सोने आदि में समिश्रण द्वारा धन उपार्जित करने वाला, द्यूत खेलने वाला, स्त्री व धन व पुत्र आदि का मगल दिखला धन हरण करने वाला, कुकर्मी होने पर भी अपने शुभ कर्मों को प्रगट कर धन हरण करने वाला, हस्त (हाथ) रेखा का भला बुरा बतलाने वाला।

असम्यकारिणश्चैव महामात्राश्चिकित्सकाः ।
शिल्पोपचारयुक्ताश्च निपुणाः पण्ययोषित ॥२५९॥

(२५९) हाथों के शिल्प द्वारा जीवन निर्वाह करने वाला वैद्यक करने वाला, दोनों उस अवस्था में जब कि अपने कार्य को भली भाँति सम्पादित न करे और धन लेवे, चित्रकारी द्वारा कालयापन करने वाला बिना कहे चित्र खिचवाने की उत्सुकता दिलाकर दूसरे का धन अपहरण करने वाला, और पर स्त्री यह सब दूसरे को अपने वश में कर लेने में चतुर हैं।

एवमादीन्विजानीयात्प्रकाशांल्लोककण्टकान् ।
निगूढचारिणश्चान्याननार्यानार्यलिङ्गिनः ॥२६०॥

(२६०) इन सबको और उनके समान दूसरों को प्रकट में लोक के काटे जानना चाहिये और गुप्त नाशकर्ता (निगूढवादी) अन्य हैं जो कि भले मनुष्य नहीं हैं परन्तु भले मनुष्यों के रूप में रहते हैं।

तान्विदित्वा सुचरितैर्गूढैस्तत्कर्मकारिभिः ।
चारैश्चानेकसंस्थानैः प्रोत्साद्य वशमानयेत् ॥२६१॥

(२६१) इन सब को कापटिक आदि गुप्तचरों द्वारा (जो कि विविध स्थानों पर स्थित हैं और जिनका वर्णन सातवें अध्याय में हुआ है । और उन मनुष्यों द्वारा जो गुप्त रीति से नाश कर्ता है जानकर उनको कष्ट देकर अपने आधीन करे ।

तेषां दोषानभिख्याप्य स्वे स्वे कर्मणि तत्त्वतः ।
कुर्वीत शासनं राजा सम्यक्सारापराधतः ॥ २६२ ॥

(२६२) राजा प्रत्येक अपराधी के अपराध के दोष को पृथक् २ बतला कर उचित रीति से अपराध का दण्ड अपराधी को ऐसा देवे जिसमें किंचित् अन्याय न हो ।

नहि दण्डादृते शक्यः कर्तुं पापविनिग्रहः ।
स्तेनानां पापबुद्धीनां निभृतं चरतां क्षितौ । २६३ ।

(२६३) चोर व अपराधी जो विनीत व प्रार्थी का रूप धारण किये संसार में विचरते हैं उनके अपराध का प्रतिरोध दण्ड बिना दिये असाध्य है इससे दण्ड अवश्य देना चाहिये ।

सभाप्रपापूपशालावेशमद्यान्नविक्रयाः ।
चतुष्पथाश्चैत्यवृक्षाः समाजाः प्रेक्षणानि च ॥२६४॥

(२६४) चोरों के एकत्रित होने के स्थान कुवाँ, मिठाई बनने का स्थान, मद्य तथा अन्न विक्रय की दूकान, चौक वेश्या का घर, वृक्षों की जड़, उत्सवमेला आदि ।

जीर्णोद्यानान्यरण्यानि कारुकावेशनानि च ।
शून्यानि चाप्यगाराणि वनान्युपवनानि च ॥२६५॥

(२६५) प्राचीन उद्यान (बाग) व अरण्य (जङ्गल), शिल्पियों के पुराने घर, जन शून्य घर, ग्राम आदि का वन, तथा नवीन उपवन ।

एवंविधान्नृपो देशान्गुल्मैः स्थावरजङ्गमैः ।
तस्करप्रतिषेधार्थं चारैश्चाप्यनुचारयेत् ॥२६६॥

(२६६) ऐसे स्थानों पर सेना द्वारा राजा चोर आदि को पकड़े क्योंकि चोर आदि ऐसे स्थानों पर खाद्य पदार्थों तथा विषय भोग की तृप्ति साधनों की खोज में प्रायः रहा करते हैं।

तत्सहायैरनुगतैर्नानाकर्मप्रवेदिभिः ।
विद्यादुत्सादयेच्चैव निपुणैः पूर्वतस्करैः ॥२६७॥

(२६७) चोरों के रूप रंग व विवाद से जानकर (अनुभवित) उनके प्राचीन मित्र, तथा उनके छल से परित्राण पाने योग्य जो गुप्तचर के रूप में हैं उनके द्वारा चोरों का भेद ज्ञात कर चोरों को विनष्ट करना चाहिये।

भक्ष्यभोज्योपदेशैश्च ब्राह्मणानां च दर्शनैः ।
शौर्यकर्मापदेशैश्च कुर्युस्तेषां समागमम् ॥ २६८ ॥

(२६८) जो गुप्तचर नियोजित (स्थित) किये हैं वह चोरों को अधो लिखित (नीचे लिखी) रीतियों द्वारा एकत्रित करके दण्ड देवे (१) आज हमारे घर में भोज है (२)इस देश में एक ऐसा ब्राह्मण है कि जिसके दर्शन मात्र से सब इच्छायें पूर्ण होती हैं और वह सर्व ज्ञाता है। (३) एक ऐसा पुरुष है जो हजारों से युद्ध करेगा उसको देखिये।

ये तत्र नोपसर्पेयुर्मूलप्रणिहिताश्च ये ।
तान्प्रसह्य नृपो हन्यात्समित्रज्ञातिबान्धवान् ॥२६९॥

(२६९) जो चोर पकड़े जाने के भय से खाने पीने के स्थानों पर जावे व चोरों व उक्त वेषधारी गुप्तचरों के समीप न जावे तो राजा उनको उसी प्रकार से पहिचान कर बलात् उनको

बुलाकर उनके जाति सम्बन्धी व बान्धवों सहित नष्ट कर दे यह न विचारे कि उनको दुःख होगा।

न होढेन विना चौरं घातयेद्धार्मिको नृपः।
सहोढं सोपकरणं घातयेदविचारयन्॥२७०॥

(२७०)विना चोरी की वस्तु मिले राजा उन्हें दण्ड न दे। किन्तु यदि माल और सब्बल समेत यदि पकड़े जावें तो अवश्य दंड देवे

ग्रामेष्वपि च ये केचिच्चौराणां भक्तदायकाः।
भाण्डावकाशदाश्चैव सर्वांस्तानपि घातयेत् ॥२७१॥

(२७१) गाँव में जो कोई चोरों को भोजन घर आदि सब प्रकार की सामग्री से सहायता करे राजा इनको भी नाश करदे।

राष्ट्रेषु रक्षाधिकृतान्सामन्तांश्चैव चोदितान्।
अभ्याघातेषु मध्यस्थाञ्छिष्याच्चौरानिव द्रुतम् ॥२७२॥

(२७२) राज में रक्षा करने वाले सामन्त और गाँव के चारों ओर के निवासी यह दोनों प्रकार के मनुष्य आदि चोरों को चोरी करने का आदेश करें तो राजा उनको भी चोरों के समान भी दण्ड देवे।

यश्चापि धर्मसमयात्प्रच्युतो धर्मजीवनः।
दण्डेनैव तमप्योषेत्स्वकाद्धर्माद्धि विच्युतम् ॥२७३॥

(२७३) जो ब्राह्मण अपने नित्य नैमित्तिक कर्मों के स्थान पर दूसरों के हेतु जप यज्ञादि कर्म करके जीवन निर्वाह करता हुआ अपने धर्म से प्रतिक्षण प्रथक और च्युत रहता हो राजा उस ब्राह्मण को भी दण्ड देवे।

ग्रामघाते हिताभङ्गे पथि मोषाभिदर्शने।
शक्तितो नाभिधावन्तो निर्वास्याः सपरिच्छदाः ॥२७४॥

(२७४) जो पुरुष चोरों से गाँव नष्ट भ्रष्ट होने व कुल भंग करने व पथ में चोरों के दिखलाई देने पर सामर्थ्यवान् व बलशाली होने पर उनके पकड़ने के हेतु प्रयत्न न करने वाला हो।

राज्ञः कोषापहर्तृंश्च प्रतिकूलेषु च स्थितान ।
घातयेद्विविधैर्दण्डैररीणां चोपजापकान् ।२७५।

(२७५) राजकोष को हरने वाला, राजाज्ञा के प्रतिकूल कार्य करने वाला और राजा के शत्रु से मित्रता करने वाला हो उनको आर्थिक व शारीरिक दोनों प्रकार के प्राण दण्ड देना चाहिये।

संधिं छित्वा तु ये चौर्यं रात्रौ कुर्वन्ति तस्कराः ।
तेषां छित्वा नृपो हस्तौ तीक्ष्णे शूले निवशयेत् ।२७६

(२७६) जो चार संधिछिन्न (नकबजनी) कर रात्रि में चोरी करते हैं उनके दोनों हाथ काटने के पश्चात् तीक्ष्ण शूल पर बैठावे।

अंगुलीग्रन्थिभेदस्य छेदयेत्प्रथमे ग्रहे ।
द्वितीये हस्तचरणौ तृतीये वधमर्हति । २७७ ।

(२७७) जो चोर प्रथम बार ग्रन्थि भेदे (गिरह काटे) व प्रथम बार गृह में छिद्र करे (नकब लगावे) उसका अगूंठा तर्जनी अंगुली काटना चाहिये और दूसरी बार यही दोनों अपराध करे तो हाथ पाँव काटना चाहिये और तीसरी बार में वध करना उचित है।

अग्निदान्भक्त दांश्चैव तथा शस्त्रावकाशदान् ।
संनिधातृंश्च मोषस्य हन्याच्चौरमिवेश्वरः ॥२७८।

(२७८) जो पुरुष चोर को अग्नि व भात व शस्त्र व अवकाश देता है और जो चोरी की हुई वस्तुओं को रखने वाला है उनको राजा चोर के समान हनन (नाश) करे।

तड़ागभेदकं हन्यादप्सु शुद्धवधेन वा ।
यद्वापि प्रतिसंस्कुर्याद्दाप्यस्तूत्तमसाहसम् ॥२७६॥

(२७६) जब कोई पुरुष स्वच्छ व उत्तम तड़ाग (तालाब.) को जिससे जन साधारण को स्नान करने व पशु आदि के पानी पिलाने का लाभ पहुँचता है, नाश करे वा बिगाड़े तो राजा उसको वध करे और यदि वह तालाब को दूसरी बार वैसा ही बनवादे तो एक सहस्रपण दण्ड स्वरूप लेकर छोड़ दे।

कोष्ठागारायुधागारदेवतागारभेदकान् ।
हस्त्यश्वरथहर्तृंश्च हन्यादेवाऽविचारयन् ॥ २८० ॥

(२८०) राज कोप का गृह, शस्त्रागार (मेगजीन) पाठशाला को जो पुरुष छिन्न करे (तोड़े) राजा तुरन्त बिना सोचे उसे वध कर डाले।

यस्तु पूर्वनिविष्टस्य तड़ागस्योदकं हरेत् ।
आगमं वाप्यपां भिद्यात्सदाप्यः पूर्वसाहसम् ॥२८१॥

(२८१) किसी पुरुष ने प्रजा के हितार्थ तालाब बनवाया और अन्य पुरुष उसका जल लेवे और जल आने के मार्ग में मेंड़ लगा कर अवरुद्ध (बन्द) कर दे तो वह पुरुष प्रथम साहस दण्ड के योग्य है।

समुत्सृजेद्राजमार्गे यस्त्वऽमेध्यमनापदि ।
स द्वौ कार्षापणौ दद्यादमेध्यं चाशु शोधयेत् ।२८२।

(२८२) आपद समय के अतिरिक्त राज मार्ग में यदि प्रहित (अपवित्र) वस्तु डाले तो दो कार्षापण दण्ड देवे और जिस अपवित्र वस्तु को राज मार्ग पर डाला है उसे शीघ्र ही वहाँ बाहर ले जावे।

आपद्गतोऽथवा वृद्धा गर्भिणी बाल एव वा ।
परिभाषणमर्हन्ति तच्च शोध्यमिति स्थितिः ।२८३।

(२८३) यदि कोई आपद पीड़ित, वृद्ध (बूढ़ा), गर्भिणी स्त्री व बालक उपरोक्त अपराध करे तो उससे वाणी मात्र से यह कहना चाहिये कि तुमने यह क्या किया दण्ड पाने योग्य नहीं है परन्तु वे उस अपवित्र वस्तु को अवश्य वहां से पृथक् कर दी दें।

चिकित्सकानां सर्वेषां मिथ्या प्रचरतां दमः ।
अमानुषेषु प्रथमा मानुषेषु तु मध्यमः ॥ २८४ ॥

(२८४) जो पुरुष चिकित्सा में अज्ञान होने पर भी स्वार्थ साधन के हेतु पशु चिकित्सा करता है उससे पूर्व साहस अर्थात् सौ पण दंड स्वरूप प्राप्त करे और अनपढ़ मनुष्यों की चिकित्सा करे तो उससे पाँच सौ पण दण्ड स्वरूप लेवे।

संक्रमध्वजयष्टीनां प्रतिमानां भेदकः ।
प्रतिकुर्याच्च तत्सर्वं पञ्चदद्याच्छतानि च ॥२८५॥

(२८५) जो जल में उतरने के अर्थ लकड़ी लगायी है व राज ध्वजा व बाजार के बाट, व गज, आदि नाप के वस्तुओं के तोड़ने वाले को पाँच सौ पण दण्ड करना चाहिये और वह वस्तु उसके व्यय से ठीक करानी चाहिये।

अदूषितानां द्रव्याणां दूषणे भेदने तथा ।
मणीनामपवेधे च दण्डः प्रथमसाहसः ॥ २८६ ॥

(२८६) दूषण रहित द्रव्यों (पदार्थों) को सदोष कहने और तोड़ने में और मणि आदि के नष्ट करने के हेतु छिद्र करने में, प्रथम साहस दण्ड देवे।

समैर्हि विषमं यस्तु चरेद्वै मूल्यतोऽपि वा ।
समाप्नुयाद्दमं पूर्वं नरः मध्यममेव वा ॥ २८७ ॥

(२८७) समान मूल्य देने वालों में एक को उत्तम वस्तु और दूसरे को गर्हित वस्तु व किसी को अधिक मूल्य वाली वस्तु व किसी को न्यून मूल्य वाली वस्तु देने वाला पाँच सौ पण दण्ड के देवे। अपराध के अनुसार ही दण्ड देना चाहिये।

बन्धनानि च सर्वाणि राजा मार्गे निवेशयेत् ।
दुःखिता यत्र दृश्येरन्विकृताः पापकारिणः ॥२८८॥

(२८८) सारे बन्दीगृहों (कैद खानों) को राजमार्ग पर बनवाना चाहिये कि उसको देखने से पाप कर्म करने वालों को दुख हो अर्थात् क्षुधातुर, प्यासे, नख व सिर व दाढ़ी के केश (बाल) बढ़े हुए, कृश (दुबले) शरीर, हथकड़ी व बेड़ी पहिरे हुए बन्दियों (कैदियों) को देखकर सब प्राणी पापकर्मों से भयभीत होंगे और विचारेंगे कि जब हम अधर्म कर्म करेंगे तो हमारी भी यही दशा होगी।

प्राकारस्य च भेत्तारं परिखाणां च पूरकम् ।
द्वाराणां चैव भङ्क्तारं क्षिप्रमेव प्रवासयेत् ॥२८९॥

(२८९) दुर्ग प्राकार (किले की दीवार) को छिन्न करने (तोड़ने) वाले को दुर्ग परिखा (खाई) के भरने वाले को व दुर्ग द्वार नष्ट करने वाले को शीघ्र ही अपने देश से निर्वासित कर दे (निकाल दे)

अभिचारेषु सर्वेषु कर्तव्यो द्विशतो दमः ।
मूलकर्मणि चानाप्तैः कृत्यासु विविधासु च ॥२९०॥

(२९०) भिन्न भिन्न प्रकार के धोखा देने वाले कार्य अर्थात

मारण-मोहन उच्चाटन जिससे धूर्त लोग दूसरों को हानि पहुंचाते हैं यदि उनके करने में थोड़ी हानि हुई हो तो सौ पण दण्ड करे और यदि उनके करने से किसी पुरुष की हत्या हो गयी हो तो इस प्रकार की धूर्तता करने वाले को प्राण दण्ड देना चाहिये।

अबीजविक्रयी चैव बीजोत्कृष्टं तथैव च।
मर्यादाभेदकश्चैव विकृतं प्राप्नुयाद्वधम्। २९१।

(२९१) निकृष्ट बीज को धोखा दे उत्तम बतला कर बेचने वाला, उत्तम और निकृष्ट बीज एकत्र सम्मिश्रण कर बेचने वाला, राज नियम के प्रतिकूल कार्य करने वाला इन सबका हाथ या कान काट देना चाहिये।

सर्वकण्टकपापिष्ठं हेमकारं तु पार्थिवः।
प्रवर्त्तमानमन्याये छेदयेल्लवशः क्षुरैः। २९२।

(२९२) सब दुष्टों में बड़ा दुष्ट हेमकार (सुवर्ण कार, सुनार) है वह जब अपराध करे तो अपराध के अनुसार थोड़े थोड़े अंगों को छुरी से छेदन करे।

सीताद्रव्यापहरणे शस्त्राणामौषधस्य च।
कालमासाद्य कार्यं च राजा दडं प्रकल्पयेत्।२९३।

(२९३) सीता (हला), फड़ुहा आदि जो कृषि सम्बन्धी अस्त्र हैं, शस्त्र औषधि इन्हों के चुराने में देश काल व कर्म को देख कर राजा दण्ड विधान करे।

स्वाम्यमात्यौ पुरं राष्ट्रं कोशदण्डौ सुहृत्तथा।
सप्तप्रकृतयो ह्येताः सप्तांगं राज्यमुच्यते ॥ २९४ ॥

(२९४) राज्य के सात अंग हैं-१-राजा, २-अमात्य (मन्त्री)

३-राजधानी, ४-राज्य, ५-कोष, ६-दण्ड, ७-राजा के सम्बन्धी वा सेना आदि यह सात राज्य की प्रकृति वा मुख्य अंग भी कहलाते हैं।

सप्तानां प्रकृतीनां तु राज्यस्यासां यथाक्रम्।
पूर्वं पूर्वं गुरुतरं जानीयाद्व्यसनं महत् ॥२९५॥

(२९५) इन सातों यथाक्रम पूर्व पूर्व को गुरुता (श्रेष्ठता) है और पूर्व के अन्त के होने में अधिक कष्ट होता है अर्थात् मन्त्री के अभाव में राजा को, राजधानी के अभाव में मन्त्री को, राष्ट्र के अभाव में राजधानी निवासियों को, कोष के अभाव में देश को, दण्ड के अभाव में कोष को तथा संबंधी व सेना के अभाव में दंड का।

सप्ताङ्गस्येह राज्यस्य विष्टब्धस्य त्रिदण्डवत्।
अन्योन्यगुणवैशेष्यान्न किंचिदतिरिच्यते ॥२९६॥

(२९६) इस लोक में परस्पर एकत्र सप्तांग राज्य में पारस्परिक विचित्र सहायता से त्रिदण्ड की नाईं कोई अङ्ग निष्फल व अधिक नहीं है। यद्यपि प्रथम अङ्ग को अधिक कहा तो भी इन सातों अङ्गों के बीच एक अंग के कार्य को दूसरा अंग स्वयं नहीं कर सकता इससे अंग को भी आवश्यकता होती है इस कारण से अधिक अंग होने का निषेध है इसमें यती के त्रिदण्ड की उपमा दी है। जैसे तीनों दण्ड एकत्र कर ऊपर चार अंगुल गऊ के बाल से बाँधने से परस्पर सम्बन्धित हो जाते हैं और त्रिदण्ड धारण से शास्त्रार्थ में कोई दण्ड अधिक नहीं है वैसे ही उपरोक्त सप्तांगी राज्य को जानना चाहिये।

तेषु तेषु तु कृत्येषु तत्तदङ्गं विशिष्यते।
येन तत्साध्यते कार्यं तत्तस्मिञ्छ्रेष्ठमुच्यते ॥२९७॥

(२६७) जिस अङ्ग से जो उत्तम कार्य साधन हो वही उस कार्य में श्रेष्ठ होता है।

चारेणोत्साहयोगेन क्रिययैव च कर्मणाम्।
स्वशक्तिं परशक्तिं च नित्यं विद्यान्महीपतिः ।२६८।

(२६८) राजा चारण (दूत जासूस) द्वारा उसके हृदय के उत्साह अर्थात् साहस व धैर्य से अपनी तथा शत्रु की शक्ति तथा विद्या को नित्य अनुमान करता रहे।

पीडनानि च सर्वाणि व्यसनानि तथैव च।
आरभेत ततः कार्यं संचिन्त्य गुरुलाघवम् ।२६६।

(२६६) कार्य पथ में पड़ने वाले कष्ट, देश व जाति की प्रकृति और छोटे बड़े कार्य का विचार कर यथार्थ विधि से आरम्भ करे।

आरभेतैव कर्माणि श्रान्तः श्रान्तः पुनः पुनः।
कर्माण्यारभमाणं हि पुरुषं श्रीर्निषेवते ।३००।

(३००) यदि कार्य करते थक जावे तो विश्राम करने के पश्चात् फिर उस आरम्भ किये हुये कार्य को करे क्योंकि धन कार्य करने वालों की चेरी (दासी सेवक) हैं।

कृतं त्रेतायुगं चैव द्वापरं कलिरेव च।
राज्ञो वृत्तानि सर्वाणि राजा हि युगमुच्यते ।३०१।

(३०१) कलियुग, द्वापर, त्रेता और सतयुग राजा के विचार के अनुसार वर्तते हैं जैसा नियम व प्रबन्ध राजा प्रचलित करता है वैसा ही युग होता है।

कलिः प्रसुप्तो भवति स जाग्रद्द्वापरं युगम्।

(३०२) जब राजा मूर्खता व आलस्य वश कार्य का प्रबन्ध करे तब कलियुग होता है, तब जानकर कार्य न करे तो द्वापर होता है, जब कार्य करता है तब त्रेता होता है और जब शास्त्रानुसार कार्य करता है तब सतयुग होता है इससे राजा प्रत्येक चण कार्य करता है यह सिद्धान्त है चारों युगों का न होना सिद्धान्त नहीं है।

इन्द्रस्यार्कस्य वायोश्च यमस्य वरुणस्य च।
चन्द्रस्याग्नेः पृथिव्याश्च तेजोवृत्तं नृपश्चरेत्। ३०३।

(३०३) राजा इन्द्र, सूर्य, वायु, यमराज, वरुण, चन्द्रमा अग्नि, पृथिवी इनके गुण को ग्रहण करे और दुष्ट लोगों को नाश करके प्रीति व तेज का अंकुर उत्पन्न करे।

वार्षिकांश्चतुरो मासान्यथेन्द्रोऽभिप्रवर्षति।
तथाभिवर्षेत्स्वं राष्ट्रं कामैरिन्द्रव्रतं चरन्। ३०४।

(३०४) जिस प्रकार चार मास वर्षा ऋतु (बरसात) में राजा इन्द्र जल वर्षा करते हैं उसी प्रकार राजा इन्द्र का कार्य करता हुआ प्रजा की हार्दिक इच्छा पूर्ण करे।

अष्टौ मासान्यथादित्यस्तोयं हरति रश्मिभिः।
तथा हरेत्करं राष्ट्रान्नित्यमर्कव्रतं हि तत्। ३०५।

(३०५) जिस भाँति सूर्य अपनी किरणों द्वारा आठ मास पर्यन्त जल को भूमि से सींचते हैं उसी प्रकार राजा सूर्य का कार्य करता हुआ राज्य से कर ग्रहण करे।

प्रविश्य सर्वभूतानि यथा चरति मारुतः।
तथा चरैः प्रवेष्टव्यं व्रतमेतद्धि मारुतम्॥ ३०६॥

(३०६) जिस प्रकार वायु सारे प्राणियों में प्रवेश करके परि-

भ्रमण करती है उसी प्रकार राजा वायु का कार्य करता हुआ गुप्तचरों चारण आदि के द्वारा सारे राज्य में प्रविष्ट होकर परिभ्रमण करे।

यथा यमः प्रियद्वोष्यौ प्राप्ते काले नियच्छति।
तथा राज्ञा नियन्तव्याः प्रजास्तद्धियमव्रतम् ॥३०७॥

(३०७) जिस प्रकार यम राजा मित्र व शत्रु दोनों को मृत्यु काल उपस्थित होने पर मारता है उसी प्रकार राजा सारी प्रजा को अपराध के अनुसार यमराज का कार्य करता हुआ दण्ड देवे।

वरुणेन यथा पाशैर्बद्ध एवाभिदृश्यते।
तथा पापन्निगृह्णीयाद्व्रतमेतद्धि वारुणम् ॥३०८॥

(३०८) जिस प्रकार वरुण दुष्टों को बाँधते हैं उसी प्रकार राजा वरुण का कार्य करता हुआ पापी अपराधियों के निग्रहार्थ बाँधे

परिपूर्णं यथा चन्द्रं दृष्ट्वा हृष्यन्ति मानवाः।
तथा प्रकृतयो यस्मिन्स चान्द्रव्रतिको नृपः ॥३०९॥

(३०९) जिस प्रकार चन्द्रमा के दर्शन मात्र से मनुष्यों को हर्ष व आनन्द होता है उसी प्रकार सब जीव राजा के दर्शन से प्रसन्न रहें इस प्रकार राजा रहा करे।

प्रतापयुक्तस्तेजस्वी नित्यं स्यात्पापकर्मसु।
दुष्टसामन्तहिंस्रश्च तदाग्नेयं व्रतं स्मृतम् ॥३१०॥

(३१०) पाप कर्मों में सदैव प्रतापवान और तेजवान रहे अर्थात् अपराधियों को अवश्य दण्ड देवे और अग्निव्रत अर्थात् सदैव ऊपर की ओर चलने वाला और बुरी सम्मति देने वालों को दण्ड देता रहे।

यथा सर्वाणि भूतानि धरा धारयते समम् ।
तथा सर्वाणि भूतानि बिभ्रतः पार्थिवं व्रतम् ॥३११॥

(३११) जिस प्रकार पृथिवी सब प्राणियों को अपने ऊपर सदैव एक ही अवस्था में स्थित रखती है उसी तरह राजा पृथ्वी का व्रत धारण करता हुआ सब प्राणियों को धारण करे।

एतैरुपायैरन्यैश्च युक्तो नित्यमतन्द्रितः ।
स्तेनान्राजा निगृह्णीयात्स्वराष्ट्रे पर एव च ।३१२।

(३१२) इन उपायों तथा अन्य उपायों से संयुक्त रह कर सदैव आलस्य से दूर रहे और अपने तथा अन्य के राज्य से चोरों को नष्ट भ्रष्ट करे।

परामप्यापदं प्राप्तो ब्राह्मणान्न प्रकोपयेत् ।
ते ह्येनं कुपिता हन्युः सद्यः सबलवाहनम् ॥३१३॥

(३१३) राजा दारुण आपद समय में भी ब्राह्मणों को कुपित न करे क्योंकि उनके कोप करने से राज्य सेना सवारियों सहित नाश हो जाता है।

यै कृतः सर्वभक्षोऽग्निरपेयश्च महोदधिः ।
क्षयी चाप्यायितः सोमः को न नश्येत्प्रकोप्यतान् ।३१४।

(३१४) जिन ब्राह्मणों ने अग्नि को क्ष सर्व-भक्षी और महासागर को खारी तथा चन्द्रमा को कुष्ठी रोग वाला, किया उन ब्राह्मणों को कोपित करा के कौन न नाश होगा।

लोकानन्यान्सृजेयुर्ये लोकपालांश्च कोपिताः ।
देवान्कुर्युरदेवांश्च कः क्षिण्वंस्तान्समृध्नुयात् ।३१५।

क्षसर्वेक वस्तु खाने (जलाने) वाली।

(३१५) जो ब्राह्मण क्रोध वश एक राजा को सिंहासन से च्युत कर दूसरे राजा को राज्य दे दे और विद्वानों को शास्त्रार्थ में मूर्ख प्रमाणित कर दे उस ब्राह्मण को कष्ट देकर कौन पुरुष धन व राज्य प्राप्त कर सकता है।

यानुपाश्रित्य तिष्ठन्ति लोका देवाश्च सर्वदा।

ब्रह्म चैव धनं येषां को हिंस्यात्तञ्जिजीविषुः ।३१६।

(३१६) जिन ब्राह्मणों का धन वेद ही है उन्हीं की शरण में लोक व देवता रहते हैं उन ब्राह्मणों का जीवन आशा रखने वाला कौन पुरुष मार सकता है।

अविद्वांश्चैव विद्वांश्च ब्राह्मणो दैवतं महत्।

प्रणीतश्चाप्रणीतश्च यथाग्निर्दैवतं महत्। ३१७।

(३१७) * ब्राह्मण चाहे विद्वान् व अविद्वान् हो अग्नि के समान बड़ा देवता है।

श्मशानेष्वपि तेजस्वी पावको नैव दुष्यति।

हूयमानश्च यज्ञेषु भूय एवाभिवर्धते । ३१८।

(३१८) तेजस्वी अग्नि स्मशान में भी दूषित नहीं होती अर्थात् दोष को नहीं प्राप्त करती है फिर भी यज्ञ में हवि को प्राप्त होती है अर्थात् प्रत्येक अवस्था में बढ़ती ही है।

एवं यद्यप्यनिष्टेषु वर्तन्ते सर्वकर्मसु।

सर्वथा ब्राह्मणाः पूज्याः परमं दैवतं हितत्।३१९।

---

*३१७ श्लोकमें अविद्वान् से तात्पर्य सासारिक ज्ञान शून्य ब्राह्मण से है अन्यथा ब्रह्मविद्या का न जानने वाला ब्राह्मण कहलाता है

(३१९) यद्यपि ब्राह्मण सांसारिक कर्मों में बहुत दोष भी करता है तो भी ईश्वर ज्ञानी होने से पूजने योग्य देवता है।

क्षत्रिय स्यातिवृद्धस्य ब्राह्मणान्प्रति सर्वशः।
ब्रह्मैव संनियन्तृस्यात्क्षत्रं हि ब्रह्मसंभवम् ॥ ३२० ॥

(३२०) क्षत्रिय सब पदार्थों से वृद्ध हो परन्तु ब्राह्मण को अपने आधीन नहीं कर सकता क्योंकि उसकी उत्पत्ति ब्राह्मण से है इस कारण ब्राह्मण क्षत्रियों को अपने आधीन कर सकते हैं।

अद्भ्योऽग्निर्ब्रह्मतः क्षत्रमश्मनो लोहमुत्थितम्।
तेषां सर्वत्रगं तेजः स्वासु योनिषु शाम्यति ॥ ३२१ ॥

(३२१) जल से अग्नि, व ब्राह्मण से क्षत्रिय, व पत्थर से लोहे का तेज बढ़ता है और वह अन्य पदार्थों को सब स्थान पर भस्म व आधीन करता व काटता है परञ्च जब अपने सत्य तत्व से मिलता है तब शान्त हो जाता है।

नाब्रह्म क्षत्रमृध्नोति नाक्षत्रं ब्रह्म वर्धते।
ब्रह्म क्षत्रं संपृक्तमिह चामुत्र वर्धते ॥ ३२२ ॥

(३२२) ब्राह्मण व क्षत्रिय एक दूसरे से पृथक् होकर उन्नति नहीं कर सकते हैं और दोनों एकत्र होकर इस लोक में उन्नत होते हैं।

दत्त्वा धनं तु विप्रेभ्यः सर्वदण्डसमुत्थितम्।
पुत्रे राज्यं समासृज्य कुर्वीत प्रायणं रणे ॥ ३२३ ॥

(३२३) दण्ड द्वारा प्राप्त सारे धन को ब्राह्मण को देकर और राज्य पुत्र को देकर युद्ध में शरीर त्याग करे।

एवं चरन्सदा युक्तो राजधर्मेषु पार्थिवः।
हितेषु चैव लोकस्य सर्वान्भृत्यान्नियोजयेत् । ३२४ ।

(३२४) इस विध राजा नित्य राज कर्मों को करता हुआ लोक के हितार्थ सब कर्मचारियों को नियत करे।

एषोऽखिलः कर्मविधिरुक्तो राज्ञः सनातनः ।
इमं कर्मविधिं विद्यात्क्रमशो वैश्यशूद्रयोः ॥३२५॥

(३२५) अब आगे के क्रमानुसार वैश्य तथा शूद्रों के धर्मों को कहेंगे राजा के लिये नित्य के कर्म का उपदेश हो चुका।

वैश्यस्तु कृतसंस्कारः कृत्वा दारपरिग्रहम् ।
वार्तायां नित्ययुक्तः स्यात्पशूनां चैव रक्षणे ॥३२६॥

(३२६) वैश्य सस्कार करवा कर विवाह करके पशु रक्षा व कृषि आदि में सदा रत (संलग्न) रहे।

प्रजापतिर्हि वैश्याय सृष्ट्वा परिददे पशून् ।
ब्राह्मणाय च राज्ञे च सर्वाः पारिददे प्रजा ॥३२७॥

(३२७) परमात्मा ने पशु के पालने के अर्थ वैश्य को नियत किया और प्रजा के पालन व रक्षार्थ ब्राह्मण और क्षत्रिय को उत्पन्न किया।

न च वैश्यस्य कामः स्यान्न रक्षेयं पशूनिति ।
वैश्ये चेच्छति नान्येन रक्षितव्याः कथंचन ॥३२८॥

(३२८) वैश्य यह इच्छा न करे कि पशु रक्षा न करेंगे, कृषि आदि करता हुआ भी पशुओं की अवश्य रक्षा करे और जब तक वैश्य पशुओं की रक्षा करे तब तक अन्य वर्ण न करें।

मणिमुक्ताप्रवालानां लोहानां तान्तवस्य च ।
गन्धानां च रसानां विद्यादर्घबलाबलम् ॥३२९॥

(३२९) मणि, मुक्ता (मोती), प्रवाल (मूँगा), लोहा, सूत व

८ सुगन्धित द्रव्य तथा रस इन सबों का मूल्य देश काल को समझ कर न्यूनाधिक नियत करे।

बीजानामुप्तिविच्च स्यात्क्षेत्रदोषगुणस्य च।
मानयोगं च जानीयात्तुलायोगांश्च सर्वशः ॥३३०॥

(३३०) खेत का दोष व गुण व बीज बोने की विद्या, प्रस्थ व वरुण आदि योगों का ज्ञाता तथा तोला मापा आदि तोल परिमाण संख्याओं का ज्ञाता वैश्य होवे।

सारासारं च भाण्डानां च गुणागुणान्।
लाभालाभं च पण्यानां पशूनां परिवर्धनम् ॥३३१॥

(३३१) वर्तनों का सारा सार, देशों का गुण अवगुण, बेचने वाली वस्तु की लाभहानि पशुओं की वृद्धि इनसबको जाने।

भृत्यानां च भृतिं विद्याद्भाषाश्च विविधा नृणाम्।
द्रव्याणां स्थानयोगांश्च क्रयविक्रयमेव च ॥३३२॥

(३३२) भृत्यों (नौकरों) का वेतन, बहुप्रकार के मनुष्यों की भाषा धन आदि द्रव्यों के स्थान का योग (उपाय) और क्रय (खरीदना) विक्रय (बेचना) इन सब को जाने।

धर्मेण च द्रव्यवृद्धावातिष्ठेद्यत्नमुत्तमम्।
दद्याच्च सर्वभूतानामन्नमेव प्रयत्नतः ॥ ३३३ ॥

(३३३) द्रव्य की वृद्धि में धर्मयुक्त उत्तम उपाय करे सब जीवों के खाने पीने का उत्तम रीति से प्रयत्न करें।

विप्राणां वेदविदुषां गृहस्थानां यशस्विनाम्।
शुश्रूषैव तु शूद्रस्य धर्मो नैश्रेयसः परः ॥३३४॥

(३३४) वेदपाठी व सदाचारी गृहस्थ ब्राह्मणों की सेवा शूद्रों को मोक्ष प्राप्त कराने का सर्वोत्तम साधन है।

शुचिरुत्कृष्टशुश्रूर्षीर्मृदुवागऽनहंकृत ।
ब्राह्मणाद्यश्रयो नित्यमुत्कृष्टां जातिमश्नुते ॥३३५॥

(३३५) शुचिता, वृद्धों, व विद्वानों की सेवा सुश्रुषा, प्रिय भाषण, अहङ्कार का परित्याग, सदैव ब्राह्मणों की शरण में रहना, यह सब कार्य शूद्रों को उत्तम जाति प्राप्त कराने वाले हैं।

एषोऽनापदि वर्णानामुक्तः कर्मविधिः शुभः ।
आपद्यपि हि हि यस्तेषां क्रमशस्तन्नि वोधत ॥३३६॥

(३३६) आपद समय न होने पर यह नियम चारों वर्णों के हेतु कहा। अब आपद् (विपत्ति) समय में इन्होंने उचित कर्मों को यथाक्रम कहते हैं।

मनुजी के धर्मशास्त्र और भृगुजी की संहिता का नवाँ अध्याय समाप्त हुआ।

दशमोऽध्यायः ।

अधीयीरंस्त्रयो वर्णाःस्वकर्मस्था द्विजातयः ।
प्रब्रूयाद्ब्राह्मणस्त्वेषां नेतराविति निश्चयः ॥ १ ॥

(१) ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य तीनों वर्ण अपने कर्मों में स्थित होकर वेद की आज्ञानुसार निजधर्म को करते हुए वेद को पढ़ें। ब्राह्मण तो दूसरों को वेदाध्ययन करावे किन्तु क्षत्रिय व वैश्य न करावें यदि यह दोनों वेदाध्ययन करावें तो प्रायश्चित्त करें।

सर्वेषां ब्राह्मणो विद्याद्वृत्त्युपायान्यथाविधि ।
प्रब्रूयादितरेभ्यश्च स्वयं चैव तथा भवेत् । २ ।

(२) ब्राह्मण सब लोगों की जीविका विधि को वेद के अनुसार जान और दूसरों को समझावे और स्वयम् भी वैसा ही आचरण करे।

वैशेष्यात्प्रकृतिश्रैष्ठ्यान्नियमस्य च धारणात् ।
संस्कारस्य विशेषाच्च वर्णानां ब्राह्मणः प्रभुः ।३।

(३) श्रेष्ठ जाति और उत्तम स्थान से उत्पत्ति और नियम के धारण और उत्तम संस्कार इन कारणों से ब्राह्मण सर्वश्रेष्ठ है और सब वर्णों का गुरु तथा प्रभु है।

ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यस्त्रयो वर्णा द्विजातयः ।
चतुर्थ एकजातिस्तु शूद्रो नास्ति तु पञ्चमः ।४।

(४) ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य यह तीनों वर्ण× द्विजन्मा कहलाते हैं और चौथा वर्ण शूद्र एक जन्मा कहलाता है। अन्य पाँचवाँ वर्ण नहीं है।

सर्ववर्णेषु तुल्यासु पत्नीष्वक्षतयोनिषु ।
आनुलोम्येन संभूता जात्या ज्ञेयास्त एव ते ।५।

(५) सब वर्णों में इन स्त्रियों से, जो सजातीय, विवाहित व पाणिग्रहण समय अक्षत योनि हों, जो सन्तान उत्पन्न होती है वह समान वर्णों (अर्थात् माता पिता के वर्ण वाली) कहलाती है

× द्विज के अर्थ दो जन्म वाले हैं पहला जन्म तो माता पिता द्वारा होता है और दूसरा जन्म गुरु और विद्या के द्वारा होता है। जिसका दूसरा जन्म न हो वह शूद्र है।

स्त्रीष्वनन्तरजातासु द्विजैरुत्पादितान्सुतान् ।
सदृशानेव तानाहुर्मातृदोषविगर्हितान् ॥ ६ ॥

(६) * द्विज और एक जाति का अन्तर वाली स्त्री से जो सन्तान उत्पन्न होवे वह आप सदृश कहलाती है परन्तु उसमें माता का दोष विगर्हित है।

अनन्तरासु जातानां विधिरेषः सनातनः ।
द्वयेकान्तरासु जातानां धर्म्यंविद्यादिमं विधिम् ॥७॥

(७) एक जाति के अन्तर में उत्पन्न सन्तान के प्राचीन विधि को कहा अब दो एक जाति के अन्तर से उत्पन्न सन्तान की विधि को कहते हैं।

ब्राह्मणाद्वैश्यकन्यायामम्बष्ठो नाम जायते ।
निषादः शूद्रकन्यायां य पारशव उच्यते ॥ ८॥

(८) ब्राह्मण से विवाहित वैश्या (वैश्य कन्या) में अम्बष्ठी नाम संतान उत्पन्न होती है और ब्राह्मण से विवाहित शूद्र कन्या में निषाद जाति वाला उत्पन्न होता है निषाद को पारशव भी कहते हैं।

क्षत्रियाच्छूद्रकन्यायां क्रूराचारविहारवान् ।
क्षत्रशूद्रवपुर्जन्तुरुग्रो नाम प्रजायते ॥ ९ ॥

---

*महाभारत पर्व अध्याय ४६ श्लोक ४ व अध्याय ४७ श्लोक ७, ८, १३, व १७ के अनुसार ब्राह्मण से ब्राह्मणी व क्षत्राणी में ब्राह्मण तथा ब्राह्मण व वैश्यों में वैश्य क्षत्रिय से क्षत्राणी व वैश्यानी में क्षत्रिय, वैश्य से वैश्या व शूद्रानी में वैश्य वर्ण की गणना होती है।

(६)+क्षत्रिय से विवाहित शूद्र कन्या में क्रूराचारी विहारवान, क्षत्रिय शूद्रांग वाला उग्र नाम जाति वाला होता है।

विप्रस्य त्रिषु वर्णेषु नृपतेर्वर्णयोर्द्वयो ।
वैश्यस्य वर्णे चैकस्मिन्षडेतेऽपसदाः स्मृताः ॥१०॥

(१०) ब्राह्मण ने क्षत्राणी आदि तीन वर्ण की स्त्री में, और क्षत्रिय से वैश्य आदि दो वर्ण की स्त्री में जो संतान उत्पन्न होती है वह षड् (छह) अपसद अर्थात् निकृष्ट कहलाती है।

क्षत्रियाद्विप्रकन्यायां सूतो भवति जातितः ।
वैश्यान्मागधवैदेहौ राजविप्राङ्गनासुतौ ॥११॥

(११) अनुलोम को वर्णन करके प्रति लोम को कहते हैं— क्षत्रिय के ब्राह्मण की कन्या में सूत जाति वाला होता है और वैश्य से क्षत्रिया में मागध और वैश्या से ब्रह्माणी कन्या में वैदेह जाति वाला होता है।

शूद्रादायोगवः क्षत्ता चण्डालश्चाऽधमो नृणाम् ।
वैश्यराजन्यविप्रासु जायन्ते वर्णसंकराः ॥१२॥

+अमवष्ट, पारशव,उग्र आदि किसी विशेष जाति का विलग नाम नहीं है क्योंकि प्रत्येक प्रकार की सन्तान चारों में से किसी एक वर्ण की होती है। आवष्टों कतिपय राजाओं का नाम भी था महाभारत कर्ण पर्व छठा अध्याय क्षत्रियों में एक जाति अम्बष्टु है चित्र गुप्त के पुत्र का अमवष्टो उपनाम हुआ था, और चित्र गुप्तवंशी भविष्य पुराण के अनुसार वाच्यम पृष्ठ १६३२ के क्षत्रिय वर्ण से चित्रगुप्त को पारासर स्मृति वा शेष पुराण में चौदह यम में एक यम स्थिर किया है और यम का वर्णन शतपथ ब्राह्मण यजुर्वेद मण्डल के मन्त्र ४-२-२३ में क्षत्रिय लिखा है,

झल्लो मल्लश्च राजन्याद्व्रात्यान्निच्छिविरेव च।
नटश्च करणश्चैव खसो द्रविड एव च ॥ २२ ॥

(२२) व्रात्यक्षत्रिय से क्षत्राणी में मल्ल जाति वाले होते हैं उनका नाम झल्ल, मल्ल, निच्छिव, नट, करण, वखस, द्रविड़ है।

वैश्यात्तु जायते व्रात्यात्सुधन्वाचार्य एव च।
कारूषश्च विजन्मा च मैत्रः सात्वत एव च ॥२३॥

(२३) व्रात्या वैश्य से वैश्या कन्या में सुधन्व आचार्य जाति वाले होते हैं उनको कारूष, विजन्मा, मैत्र, सात्वता जाति वाले कहते हैं।

व्यभिचारेण वर्णानामवेद्यावेदनेन च।
स्वकर्मणां च त्यागेन जायन्ते वर्णसंकराः ॥२४॥

(२४) अन्य जाति पुरुष से अन्य जाति की स्त्री में भोग विवाह के अयोग्य है उससे विवाह करना, निज कर्मों का त्याग इन सब बातों से वर्णसङ्कर उत्पन्न होते हैं।

संकीर्णयोनयो ये तु प्रतिलोमाऽनुलोमजाः।
अन्योन्यव्यतिषक्ताश्च तान्प्रवक्ष्याम्यशेषतः ॥२५॥

(२५) अनुलोम और प्रतिलोम करके पारस्परिक सम्बन्ध से जो संकीर्ण (वर्ण सङ्कर) योनि है उसको मैं कहूँगा।

सूतो वैदेहकश्चैव चाण्डालश्च नराधमः।
मागधः क्षत्तृजातिश्च तथाऽयोगव एव च ॥२६॥

(२६) सूत, वैदेहक, चाण्डाल, मागध, क्षत्ता, आयो, गव

एते षट् सदृशान्वर्णाञ्जनयन्ति स्वयोनिषु ।
मातृ जात्यां प्रसूयन्ते प्रवरासु च योनिषु ॥ २७ ॥

(२७) यह छः जब समान वर्ण की स्त्री में अपने समान वर्ण का पुत्र उत्पन्न करते हैं। यहाँ पिता और माता के एक वर्ण होने में उस वर्ण की सन्तान की उत्पति जाननी चाहिये।

यथा त्रयाणां वर्णानां द्वयोरात्मास्य जायते ।
आनन्तर्यात्स्वयोन्यां तु तथा बाह्येष्वपि क्रमात्॥२८॥

(२८) जिस प्रकार ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य तीनों वर्ण में से दो में से दो में अपनी नाईं उत्पन्न होता है इसी तरह आनन्तर (खारिज) जाति में भी क्रम से होता है।

ते चापि बाह्यान्सुबहूंस्ततोऽप्यधिकदूषितान् ।
परस्परस्य दारेषु जनयन्ति विगर्हितान् ॥२९॥

(२९) आयो गव आदि छः सवर्णी स्त्री में अनुलोम करके भी अति दुष्ट पुत्र उत्पन्न करते हैं जैसे आयो गव क्षताकी स्त्री में अपने से नीच को उत्पन्न करता है और क्षता भी आयो गवकी स्त्री में अपने में नीच को उत्पन्न करता है इस प्रकार अन्य *जाति के लोगों से भी जानना चाहिये।*

यथैव शूद्रो ब्राह्मण्यां बाह्यं जन्तुं प्रसूयते ।
तथा बाह्यंतर बाह्यश्चातुर्वर्ण्ये प्रसूयते ॥ ३० ॥

(३०) जैसे शूद्र ब्राह्मणी में चांडाल को उत्पन्न करता है वैसे ही चारों वर्ण की स्त्रियां में अपने से भी नीच पुत्र को करता है।

प्रतिकूलं वर्तमाना बाह्या बाह्यतरान्पुनः ।
हीनाहीनान्प्रसूयन्ते वर्णान्पञ्चदशैव तु ॥३१॥

(३१) शूद्र से उत्पन्न ब्राह्मण, क्षत्रिय व वैश्य की स्त्री में आयोगवा, चाण्डाल तीनों चारों वर्णों की स्त्रियाँ और अपनी सवर्ण स्त्री में आप से नीचातिनीच पन्द्रह पुत्र उत्पन्न करते हैं और अनुलोमज से हैं। वैश्य व क्षत्रिय से उत्पन्न मागध वैदेहक सूत यह तीनों चारों वर्ण की स्त्री व अपने सवर्ण स्त्री से आप से नीच पन्द्रह पुत्र उत्पन्न करते हैं। इस प्रकार तीस पुत्र हुये अथवा १–चाण्डाल, २–क्षता ३–आयो, ४–गव, ५–वैदेहिक, ६–मागध, ७–सूत यह छः पूर्व पूर्व २ से अन्त २ के उत्तम हैं यही छटवाँ कृत लोम करके पुत्रोत्पन्न करे तो पन्द्रह पुत्र उत्पन्न होते हैं जैसे चाण्डाल से पाँचों वर्ण की स्त्रियों में पाँच पुत्र उत्पन्न हुये, आयोगव से तीनों स्त्री में तीन पुत्र उत्पन्न हुये, वैदेहक से दोनों वर्ण की स्त्री में दो पुत्र त्पन्न हुये, मागध से एक वर्ण की स्त्री में एक पुत्र उत्पन्न हुआ, सूत से आगे कोई नहीं है। इससे कोई प्रीति लोम उत्पन्न नहीं होता इस रीति से पन्द्रह पुत्र उत्पन्न हुये श्लोक में भृगुजी ने पुनः शब्द का उल्लघन किया उसका अर्थ यह है कि १–सूत, २–मागध, ३–आयो, ४–गव, ५–क्षता, ६–चांडाल

नोट–श्लोक २२से २६ तक वर्णन में पहुँचा न केवल ब्रह्मचर्याश्रम के समाप्त होने तक रहती है तत्पश्चात् दूर हो जाती क्योंकि हमसिद्धान्तों के अनुसार व्याघ्र पारशव थे परन्तु तदुपरान्त ऋषि होगये।

(२) उत्पत्ति से वर्ण केवल ब्रह्मचर्याश्रम की समाप्ति तक उतना ही गृहस्थाश्रम में गुरुकुल की व्यवस्थानुसार वर्ण होता है और जो यहाँ शूद्र और ब्राह्मण लिये गये हैं वह सब गुणकर्म से जानने चाहिये।

(३१) यह छः कर्म अन्तिम २ से पूर्व पूर्व के उत्तम हैं यह छहों प्रतिलोम विधि से पुत्रोत्पन्न करें तो १५ पुत्र उत्पन्न हुये हैं, सूत से पाँचो वर्णों की स्त्री में पाँच मागध से चारों वर्णों की स्त्री में चार वैदेहक से तीनों वर्णों की स्त्री में तीन, अयोगव से दोनों वर्णों की स्त्री में दो, क्षत्ता से एक वर्ण की स्त्री में एक, चाण्डाल से कोई नीच नहीं है इससे अनुलोम नहीं होता इस प्रकार पन्द्रह हुये। दोनों जोड़ने से ३० हुये।

प्रसाधनोपचारज्ञमदासं दासजीवनम्।
सैरिन्ध्रं वागुरावृत्तिं सूते दस्युरयोगवे ॥ ३२ ॥

(३२) केशों को ठीक व शुद्ध (साफ) करने वाला, जूठा भोजन खाने के अतिरिक्त नहलाना धुलाना आदि सेवा के कार्यों का ज्ञाता, कपट आदि द्वारा अथवा हिरन आदि के वध द्वारा उपजीवी सैरिन्ध्र नाम पुत्र को आयोगव की स्त्री में दस्यु नाम जाति वाला पुरुष (जिसका लक्षण ४५ वें श्लोक में कहेंगे) उत्पन्न करता।

मैत्रेयकं तु वैदेहो माधूकं संप्रसूयते।
नॄन्प्रशंसत्यजस्रं यो घण्टाताडोऽरुणोदये ॥ ३३ ॥

(३३) आयोगव की स्त्री में वैदेहिक से, मैत्रेय नाम पुत्र प्रियभाषी उत्पन्न होता है जो प्रातःकाल को घंटा बजाकर राजा आदि की प्रशंसा करता है।

निषादो मार्गवं सूते दासं नौकर्मजीविनम्।
कैवर्तमिति यं प्राहुरार्यावर्तनिवासिनः ॥ ३४ ॥

---

३१ वें श्लोक में यह दिखलाया है कि संस्कार भ्रष्ट पुरुषों की सन्तान भी वैसी पतित (गिरती) होती है।

(३४) निषाद से आयोगव की स्त्री में मल्लाही जीविका वाला दास नाम व मार्गव नाम पुत्र उत्पन्न होता है जिसको आर्यावर्त निवासी कैवर्त कहते हैं।

मृतवस्त्रभृत्सु नारीषु गर्हितान्नाशनासु च।
भवन्त्यायोगवीष्वेते जातिहीनाः पृथक् त्रयः॥३५॥

(३५) सैरिन्ध्री, मार्गव व मत्रेयी तीनों नीच जाति आयोगव की उस स्त्री में पिता की विभिन्नता से पृथक पृथक पैदा होते हैं जो कि कफन उतार कर और द्वेप स्वभाव वाले हैं गर्हितभोजन करने वाले हैं।

कारावरो निषादात्तु चर्मकारः प्रसूयते।
वैदेहिकादन्ध्रमेदौ बहिर्ग्रामप्रतिश्रयौ॥ ३६॥

(३६) निषाद से वैदेहिक की स्त्री में अन्ध्र जाति वालापुत्र और निषाद की स्त्री में भेद जाति वाला पुत्र उत्पन्न होता है यह दोनों गाँव के बाहर वास करने वाले होते हैं।

चण्डालात्पाण्डुसोपाकस्त्वक्सारव्यवहारवान्।
आहिण्डको निषादेन वैदेह्यामेव जायते॥ ३७॥

(३७) चाण्डाल से वैदेहक की स्त्री में बाँस के व्यापार द्वारा जीवन निर्वाह करने वाला पाण्डु व सोपाक जाति वाला उत्पन्न होता है और उसी स्त्री में निषाद से आहिण्डक जाति वाला पुत्र होता है।

चण्डालेन तु सोपाको मूलव्यसनवृत्तिमान्।
पुक्कस्यां जायते पापः सदा सज्जनगर्हितः॥ ३८॥

(३८) चाण्डाल से पुक्कस की स्त्री में सोपाक जातिवाला पुत्र उत्पन्न होता है जो कि राजाज्ञा के अनुसार वध योग्य

पुरुषों के लिये वधिक का कार्य करने वाला और उसी द्वारा जीविका निर्वाह करने वाला और पापी सदैव साधु लोगों द्वारा गर्हित कहलाने वाला होता है।

निषादस्त्री तु चण्डालात्पुत्रमन्त्यावसायिनम् ।
श्मशानगोचरं सूते बाह्यानामपि गर्हितम् । ३९ ।

(३९) चाण्डाल से निषाद की स्त्री में श्मशान भूमि का वासी सबसे गर्हित कहलाने वाला अन्त्यावसायि नाम जातिवाला पुत्र उत्पन्न होता है।

संकरे जातयस्त्वेताः पितृमातृप्रदर्शिताः ।
प्रच्छन्ना वा प्रकाशा वा वेदितव्याः स्वकर्मभिः॥४०॥

(४०) *वर्णसंकर जाति में माता पिता से इतनी जातियों का बखान किया वह जाति प्रकट हों वा गुप्त हों परन्तु अपने २ कार्यों (कर्मों) द्वारा जाती जानने योग्य होती है।

सजातिजानन्तरजा षट् सुता द्विजधर्मिणः ।
शूद्राणां तु सधर्माणः सर्वेऽपध्वंसजाः स्मृताः॥ ४१ ॥

(४१) ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्यों से अपनी अपनी जाति की स्त्री में जो पुत्र उत्पन्न होते हैं और ब्राह्मण से क्षत्राणी व क्षत्रिय से वैश्या म व वैश्या से शूद्रा में जो पुत्र उत्पन्न होते हैं वह छहा द्विज के कर्म वाले होते हैं अर्थात् जनेऊ आदि संस्कारों के योग्य होते हैं इसके अतिरिक्त जो प्रतिलोम से उत्पन्न है वह सब शूद्र के धर्म वाले कहलाते हैं।

तपोबीजप्रभावैस्तु ते गच्छन्ति युगेयुगे ।
उत्कर्षं चापकर्षं च मनुष्येष्विह जन्मतः ॥ ४२ ॥

---

* क्योंकि जन्म का हाल सब किसी को ज्ञात नहीं हो सकता अतः मनुजी ने कर्मों द्वारा वर्णों की पहिचान बतलाई है।

(४२)×प्रत्येक युग तप तथा बीज के कारण उत्तम व नीच वर्ण वाले लोग गिने जाते हैं अर्थात् समान वर्ण माता पिता से उत्पन्न उसी वर्ण के कहलाते हैं यदि उनमें उसी वर्ण के गुण हों।

शनकैस्तु क्रियालोपादिमाः क्षत्रियजातयः।

वृषलत्वं गता लोके ब्राह्मणादर्शनेन च ॥४३॥

(४३) धीरे धीरे क्रिया के लोप होने से और ब्राह्मण के न देखने से निम्नांकित क्षत्रिय संसार वृषल (शूद्र) हो गये।

पौण्ड्रकाश्चौण्ड्रविडाः काम्बोजा यवनाः शकाः।

पारदाः पह्लवाश्चीना किराता दरदाः खशाः ॥४४॥

(४४) ॐ पौण्ड्रक, औड्र, द्रविड़, काम्बोज, यवन, शक, पारद

+४२ वें श्लोक में जो तप व बीज व उत्कर्षता व अपकर्षता बतलाई गई है उसका तात्पर्य यह है कि प्रथम आश्रम में अर्थात् २५ वर्ष की आयु पर्यन्त तो माता पिता के वर्ण वाला होता है शेष तीन आश्रमों में अपने गुण कर्मानुसार वर्ण वाला होता है इससे स्पष्ट तथा गुण व कर्म को वर्ण चिह्न मानना चाहिये क्यों कि शास्त्रोंमें लिखा है कि ब्राह्मण का आठवर्ष में यज्ञोपवीत हो, क्षत्रिय का ग्यारह वर्ष में हो तो यह सब बीज के कारण होते हैं क्योंकि प्रथम आश्रम में गुण कर्म होने में पिता का वर्ण पाया जाता है और अन्य आश्रमों में अपने गुण कर्म से जानना।

ॐ ४४ वाँ श्लोक स्पष्ट बतला रहा है कि किसी समय में सारे संसार में वैदिक धर्म और आर्य चिह्न प्रचिलित रहे हैं और धीरे २ लोग उससे पतित होगये। संसार में दो प्रकृति के मनुष्य हैं एक उत्तम दूसरे नीच उत्तम वह है कि जो संसार से नित्य स्वामी अर्थात् परमेश्वर की आज्ञाओं पर चलने वाले हैं और नीच वह है जो उसकी आज्ञा को न मान कर मनुष्य पूजा व मूर्तिपूजा में

पड़ गये हैं और हिमा आदि पाह्लवा चीन, किरात, दरद खस इन देशों के निवासी क्षत्रिय लोग जनेऊ आदि सस्कारों तथा स्वाध्याय (वेदाध्ययन) यह कर्म न करने से शूद्र हो गये।

मुखबाहूरुपज्जानां या लोकेजातयो बहिः ।
म्लेच्छवाचश्चार्यवाचः सर्वे ते दस्यवः स्मृताः ॥४५॥

(४५) ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र इन चार वर्णों के कार्यों को त्याग देने से जितनी जाति चाहे उनका नाम संस्कृत विद्या का हो वा अन्य भाषा का हो वह सब जातियाँ (फ़िरकः)

दस्यु कहलाते हैं।

ये द्विजानामपसदा ये चापध्वंसजाः स्मृताः ।
ते निन्दितैर्वर्तयेयुर्द्विजानामेव कर्मभिः ॥४६॥

(४६) द्विजों से जो अापसद आदि जो अानुलोम द्वारा, उत्पन्न हुए हैं और जिनका वर्णन दशवें श्लोक में हुआ और भी जो प्रतिलोम से उत्पन्न होते हैं यह सब द्विजों के निन्दित कर्म द्वारा कालयापन करें।

पापों को करते हैं क्योंकि प्रत्येक स्वामी का एक नियम होता है इसी प्रकार उस नित्य परमेश्वर का नियम वेद है और वेद के अनुसार आचरण वाले आर्य और उसके विरुद्धाचरिणी दस्यु कहलाते हैं। क्योंकि वेद परमेश्वर के गुणों विशेषणों (सिफ़ात) को हानि नहीं पहुँचाता और न कोई अन्य वस्तु को परमेश्वर के साथ सम्मिलित करता है अतएव वही ईश्वरीय आज्ञा का बताने वाला है शेष ग्रन्थ (पुस्तकें) जिसमें लोगों के भाग आदि उल्लिखित हैं मनुष्यों द्वारा रचित है उसमें जो बात वेद के अनुसार है वह जानने योग्य है और जो वेद के विरुद्ध वह सर्वथा अमान्य व असत्य है।

सूतानामश्वसारथ्यमम्बष्ठानां चिकित्सनम् ।
वैदेहकानां स्त्रीकार्यं मागधानां वणिक्पथः ॥ ४७ ॥

(४७) सूत का कार्य रथवान (सारथि) करना, अम्बष्टों का कार्य चिकित्सा करना, वैदेहक कार्य नाचना, मागध का कार्य वाणिज्य ।

मत्स्यघातो निषादानां त्वष्टिस्त्वायोगवस्य च ।
मेदान्ध्रचुञ्चुमद्गूनामारण्यपशुहिंसनम् ॥ ४८ ॥

(४८) निषाद का कार्य मछली मारना, आयोगव का कार्य लकड़ी काटना, हेड़ अन्ध्र, चुन्च, मार्गव इनकी जीविका पशु हिंसा करना ।

क्षत्त्रुग्रपुक्कसानां तु बिलौकोवधबन्धनम् ।
धिग्वणानां चर्मकार्यं वेणानां भाण्डवादनम् ॥४९॥

(४९) ॐ क्षत्ता उग्र पुक्कस की जीविका बिल में रहने वाले जीवों का वध करना व उनका बन्धन करना, धिग्वण की जीविका चमड़े का कार्य करना, वेणुजाति का काय मृदङ्ग आदि बजाना ।

चैत्यद्रुमश्मशानेषु शैलेषूपवनेषु च ।
वसेयुरेते विज्ञाता वर्तयन्तः स्वकर्मभिः ॥५०॥

(५०) यह सब लोग प्रसिद्ध वृक्षों (पेड़ों) की जड़ में जो पत्थर पहाड़ वन में अपने कर्मों के अनुसार जीविका निर्वाह करते रहें ।

ॐ ४७ वें श्लोक से ४९ श्लोक तक वर्ण संस्कारों के कार्यों का वर्णन है कोई वर्णाश्रमी यह न समझे कि यह हमारा धर्म है ।

चाण्डालश्वपचानां तु बहिर्ग्रामात्प्रतिश्रयः ।
अपपात्राश्च कर्तव्या धनमेषां श्वगर्दभम् ॥५१॥

(५१) चाण्डाल व स्वपच यह दोनों ग्राम के बाहर बसें पात्र (बरतन) आदि से वञ्चित हैं और उनका धन कुत्ता व गर्दभ (गदहा) है ।

वासांसि मृतचैलानि भिन्नभाण्डेषु भोजनम् ।
कार्ष्णायसमलंकारः परिव्रज्या च नित्यशः ॥५२॥

(५२) पुरुष के वस्त्र पहने, टूटे फूटे बरतनों में भोजन करें लोहे के आभूषण पहरें और सदैव घूमते रहें (गश्त लगाते रहें)

न तैः समयमन्विच्छेत्पुरुषो धर्ममाचरन् ।
व्यवहारो मिथस्तेषां विवाहः सदृशैः सह ॥५३॥

(५३) धर्मात्मा पुरुष इन लोगों के साथ दर्शन आदि व्यवहार न करे इनका विवाह परस्पर होता है और व्यवहार भी अपने ही में करें ।

अन्नमेषां पराधीनं देयं स्याद्भिन्नभाजने ।
रात्रौ न विचरेयुस्ते ग्रामेषु नगरेषु च ॥ ५४ ॥

(५४) इनका भोजन दूसरों के अधीन है । फूटे बरतन में अन्न देना चाहिये और यह लोग रात्रि में गाँव व नगर में घूमने न पावें ।

दिवा चरेयुः कार्यार्थं चिन्हिता राजशासनैः ।
अबान्धवं शवं चैव निर्हरेयुरिति स्थितिः ॥ ५५ ॥

(५५) यह लोग जाति चिन्ह के सहित राजा की आज्ञा के कार्यार्थ दिन में फिरें और जिस मृतक का कोई सम्बन्धी न हो उसको ले जावें यह शास्त्र का नियम है ।

वध्यांश्च हन्युः सततं यथाशास्त्र नृपाज्ञया ।
वध्यवासांसि गृह्णीयुः शय्याश्चाभरणानि च ॥ ५६ ॥

(५६) यह लोग राजा की आज्ञा से शास्त्र विधि के अनुसार वध योग्य पुरुषों को वध करें और उन्हीं वध्य (मकतल) पुरुषों के वस्त्र, शय्या, आभूषणों को लेवें।

वर्णापेतमविज्ञातं नरं कलुषयोनिजम् ।
आर्यरूपमिवानार्यं कर्मभिः स्वैर्विभावयेत् ॥ ५७ ॥

(५७) जो पुरुष नीच जाति से उत्पन्न हुआ हो वर्ण से पृथक् होकर रहे तो, परन्तु जानने में न आता हो, आर्यरूप हो परन्तु अनार्य हो तो उसके कर्मों से उसकी जाति को जाने।

अनार्यता निष्ठुरता क्रूरता निष्क्रियात्मता ।
पुरुषं व्यञ्जयन्तीह लोके कलुषयोनिजम् ॥५८॥

(५८) अनार्य (आर्य न होना) अर्थात् सत्य (नेकी) से घृणा करना, निष्ठुर व क्रूर होना, शास्त्रानुसार कर्म न करना यह बातें मनुष्य की उत्पत्ति नीच कुल में बतलाती हैं।

पित्र्यं वा भजते शीलं मातुर्वोभयमेव वा ।
न कथंचन दुर्योनिः प्रकृतिं स्वां नियच्छति ॥५९॥

(५९) मनुष्य माता पिता के स्वभाव को ग्रहण करता है या दोनों की सम्मिलित प्रकृति सीखता है परन्तु नीच कुल का मनुष्य अपनी नीचता से दुष्ट प्रकृति को नहीं छोड़ता।

कुले मुख्येऽपि जातस्य यस्य स्याद्योनिसङ्करः ।
संश्रयत्येव तच्छीलं नरोऽल्पमपि वा बहु ॥६०॥

(६०) जो पुरुष उत्तम कुल में नीच कुल की माता से उत्पन्न होता है वह अपने पिता के सारे गुणों को ग्रहण करता है।

यत्र त्वेते परिध्वंसाज्जायन्ते वर्णदूषकाः ।
राष्ट्रिकैः सह तद्राष्ट्रं क्षिप्रमेव विनश्यति ॥६१॥

(६१) जिस राज्य में वर्णों को दूषित करने वाले वर्ण संकर उत्पन्न होते हैं वह राज्य प्रजासहित शीघ्र नाश हो जाता है।

ब्राह्मणार्थे गवार्थे वा देहत्यागोऽनुपस्कृतिः ।
स्त्रीबालाभ्युपपत्तौ च बाह्यानां सिद्धिकारणम् ॥६२॥

(६२) वर्णों के पृथक् मनुष्यों के हेतु ब्राह्मण, गऊ, बालक स्त्री की रक्षा के अर्थ प्राण दे देना सिद्धि का पूर्ण कारण है।

अहिंसा सत्यमस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः ।
एतं सामासिकं धर्मं चातुर्वर्ण्येऽब्रवीन्मनुः ॥ ६३ ॥

(६३) अहिंसा (किसी जीव को न मारना), सत्य बोलना, चोरी न करना, शुचिता, इन्द्रिय निग्रह इन सब धर्मों का मनुजी ने चार वर्णों के अर्थ कहा है।

शूद्रायां ब्राह्मणाज्जातः श्रेयसा चेत्प्रजायते ।
अश्रेयान् श्रेयसीं जातिं गच्छत्यासप्तमाद् युगात् ।६४।

(६४) शूद्रा स्त्री में ब्राह्मण के वीर्य से पुत्री उत्पन्न हो पाराशवी कहाती है फिर उस पुत्री से ब्राह्मण विवाह कर पुत्री उत्पन्न करे इसी प्रकार छः बार पुत्री उत्पन्न हो और ब्राह्मण से विवाह करे तो अन्त की सन्तान ब्राह्मण हो जाती है।

शूद्रो ब्राह्मणतामेति ब्राह्मणश्चैति शूद्रताम् ।
क्षत्रियाज्जातमेवन्तु विद्याद्वैश्यात्तथैव च ॥ ६५ ॥

× शूद्र ब्राह्मण हो जाता है और ब्राह्मण शूद्र बन

× वर्ण का अधिकार गृहस्थाश्रम में होता है यदि ब्राह्मण क्षत्रिय व वैश्य का पुत्र वेदानुकूल उपनयन संस्कार व वेद आरंभ

सकता है इसी प्रकार क्षत्रिय और ब्राह्मण भी शूद्र हो सकते हैं। अपने वर्ण से गिर कर दूसरे वर्णों में चले जाते हैं।

अनार्यायां समुत्पन्नो ब्राह्मणात्तु यदृच्छया।
ब्राह्मण्यामप्यनार्यात्तु श्रेयस्त्वं क्वेति चेद्भवेत् ॥६६॥

(६६) शूद्रों में ब्राह्मण से उत्पन्न व ब्राह्मणी में शूद्र से उत्पन्न इन दोनों में कौन श्रेष्ठ है इसका उत्तर आगामी श्लोक में देते हैं।

जातो नार्यामनार्यायामार्यादार्यो भवेद्गुणैः।
जातोऽप्यनार्यादार्यायामनार्यइति निश्चयः॥ ६७॥

(६७) उत्तम बीज योने से नीची योनी में उत्पन्न हुआ अर्थात् ब्राह्मण से शूद्रों में उत्पन्न हुआ यज्ञादि उत्तम कर्मों के करने से श्रेष्ठ हो सकता है और नीच बीज से ऊँची योनी में उत्पन्न हुआ श्रेष्ठ नहीं।

तावुभावप्यसंस्कार्याविति धर्मो व्यवस्थितः।
वैगुण्याज्जन्मनः पूर्व उत्तरः प्रतिलोमतः ॥६८॥

(६८) यह सिद्धान्त नहीं है कि दोनों संस्कार योग्य नहीं हैं क्योंकि प्रथम नीच जाति में उत्पन्न हुआ है और दूसरा प्रति-लोम है।

संस्कार न करे तो वह द्विज नहीं हो सकते और जब द्विज न हुए तो वह शूद्र कहलावेंगे और शूद्र के पुत्र के यथाविधि वैदिक रीति व सब संस्कार होकर उपनयन और वेदारम्भ हो जावे तो वह द्विज होकर गुण तथा कर्म के अनुसार ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्य की पदवी पाता है।

* ६७ व ६८ श्लोक सम्मिलित किए हुए हैं क्योंकि व्यास आदि नीच योनि में उत्पन्न हुये और उनके संस्कार होकर बड़े ऋषि हो गये। इससे गुण तथा कर्म श्रेष्ठता है।

सुबीजं चैव सुक्षेत्रे जातं संपद्यते यथा ।
तथार्य्याज्जात आर्य्यायां सर्वं संस्कारमर्हति ॥ ६९ ॥

(६९) जिस प्रकार उत्तम बीज उत्तम खेत पड़ने से उत्तम अन्न उपजता है उसी प्रकार से श्रेष्ठ मनुष्य से श्रेष्ठ स्त्री में उत्पन्न हुआ पुत्र सब संस्कारों के योग्य होता है।

बीजमेके प्रशंसन्ति क्षेत्रमन्ये मनीषिणः ।
बीजक्षेत्रे तथैवान्ये तत्रेयंतु व्यवस्थितिः ॥ ७० ॥

(७०) कोई पण्डित बीज को श्रेष्ठ कहते हैं कोई खेत को और कोई दोनों को श्रेष्ठ कहते हैं। इस अध्यायमें अब जो विषय वर्णन करेंगे उसको जानना।

अक्षेत्रे बीज मुत्सृष्टमन्तरैव विनश्यति ।
अबीजकमपि क्षेत्रं केवलं स्थण्डिलं भवेत् ॥ ७१ ॥

(७१) ऊसर भूमि में जो बीज पड़ता है वह निष्फल जाता है अर्थात् जमता नहीं है और खेत अच्छा है परन्तु उसमें बीज नहीं है तो वह केवल स्थण्डिल (चबूतरा) ही है उसमें अन्न नहीं उपजता है इससे दोनों की श्रेष्ठता है उत्तम बीज उत्तम खेत में पड़े तो उत्तम अन्न उपजे। पूर्व ही कह आये हैं वही माननीय है कि दोनों को श्रेष्ठता है।

यस्माद्बीजप्रभावेण तिर्यग्जा ऋषयोऽभवन् ।
पूजिताश्च प्रशस्ताश्च तस्माद्बीजं प्रशस्यते ॥७२॥

(७२) जिस कारण से नीच वर्ण से उत्पन्न होकर भी बहुत लोग पूजा योग्य ऋषि हो गये। वही बीज उत्तम जानना चाहिए, क्योंकि खेत और बीज में बीज श्रेष्ठ है।

(७६) शस्त्र (हथियार) अस्त्र (जो मन्त्र पढ़ कर फेंका जाय) का धारण करना क्षत्रियों का कर्म है और व्यापार करना व गऊ आदि पशुओं की रक्षा व खेती करना वैश्य का काम है। पढ़ना, यज्ञ करना, तथा दान देना यह धर्म क्षत्रिय व वैश्य दोनों का है।

वेदाभ्यासो ब्राह्मणस्य क्षत्रियस्य च रक्षणम् ।
वार्ता कर्मैव वैश्यस्य विशिष्टानि स्वकर्मसु ॥८०॥

(८०) अपने अपने कर्मों में एक एक श्रेष्ठ कर्म तीनों का है अर्थात् ब्राह्मण को पढ़ना क्षत्रिय का संसार की रक्षा करना और वैश्य को वाणिज्य (व्यापार) करना।

अजीवंस्तु यथोक्तेन ब्राह्मणः स्वेन कर्मणा ।
जीवेत्क्षत्रियधर्मेण स ह्यस्य प्रत्यनन्तरः ॥८१॥

(८१) जब ब्राह्मण को अपने कर्म द्वारा निर्वाह करना कठिन हो तो वह क्षत्रिय के कर्म द्वारा निर्वाह करे क्योंकि ब्राह्मण और क्षत्रिय में अति न्यून अन्तर है।

उभाभ्यामप्यजीवंस्तु कथं स्यादिति चेद्भवेत् ।
कृषिगोरक्षमास्थाय जीवेद्वैश्यस्य जीविकाम् ॥८२॥

(८२) यदि ब्राह्मण और क्षत्रिय के कर्मों से जीवन निर्वाह न हो सके तो वैश्य के कर्मों द्वारा निर्वाह करे परन्तु यह निर्वाह विपत्ति काल के लिये उचित है प्रत्येक समय नहीं।

वैश्यवृत्त्यापि जीवंस्तु ब्राह्मणः क्षत्रियोऽपि वा ।
हिंसाप्रायां पराधीनां कृषिं यत्नेन वर्जयेत् ॥८३॥

(८३)+ब्राह्मण व क्षत्रिय भी वैश्य के धर्म से निर्वाह करते हुये जहाँ तक सम्भव हो कृषि (खेती) न करें जो कि अन्य के आधीन है अर्थात् हल आदि के बिना कुछ फल प्राप्त नहीं होता

कृषिं साध्विति मन्यन्ते सा वृत्तिः सद्विगर्हिता।
भूमिं भूमिशयांश्चैव हन्ति काष्ठमयोमुखम् ॥८४॥

(८४) कृषि को उत्तम कहता है सो सत्य नहीं है क्योंकि भूमि को और भूमि के भीतर के निवासी जीवों को काठ और लोहे का मुख रखने वाला (हल, सीता) नाश करता है इससे साधु लोगों ने उस जीविका की निन्दा की है।

इदं तु वृत्तिवैकल्यात्त्यजतो धर्मनैपुणम्।
विट्पण्यमुद्धृतोद्धारं विक्रेयं वित्तवर्धनम् ॥८५॥

(८५) ब्राह्मण क्षत्रिय अपनी जीविका से निर्वाह न कर सकें तो वैश्य की जीविका से निर्वाह करे तथा आगामी में जो वस्तु बेचना वर्जित करेंगे उनके अतिरिक्त धन की उन्नति देने वाली वस्तुओं को बेचें।

सर्वान्रसानपोहेत कृतान्नं च तिलैः सह।
अश्मनो लवणं चैव पशवो ये च मानुषाः ॥८६॥

(८६) सब रस, रसों, तिल, पत्थर, नमक, पशु व मनुष्य इन सब को न बेचे। रस के वर्जने से नमक का निषेध सिद्ध है पत्थर जो नमक का निषेध किया तो दोष का बड़प्पन प्रकट करने के लिये कहा वह भी प्रायश्चित को बढ़ाई के हेतु है इसी प्रकार इनके निषेध को पृथक् २ जान लेना चाहिये।

+ ८३ वें श्लोक में जो कृषि को वर्जित किया है वह केवल ब्राह्मण के लिए है अन्यथा सारे कर्मों में कृषि उत्तम है क्योंकि इसने परमेश्वर का आश्रय लिया है।

(९६) ॐ यदि नीच जाति वा अयोग्य पुरुष लोभवश उत्तम काम वाले पुरुषों के कर्म से निर्वाह करे तो राजा उसकी सारी सम्पत्ति हरण करके उसे राज्य से बाहर कर दे।

वरं स्वधर्मो विगुणो न पारक्यः स्वनुष्ठितः।
परधर्मेण जीवन्हि सद्यः पतित जातितः।९७।

(९७) अपने वर्ण का धर्म चाहे हीन तथा गुण रहित हो वह भी श्रेष्ठ है और दूसरे वर्ण का धर्म चाहे लाभदायक भी हो परन्तु वैसी योग्यता न होने से अपने का जाति से च्युत (पतित) कर देने वाला है।

वैश्योऽजीवन्स्वधर्मेण शूद्रवृत्त्यापि वर्तयेत्।
अनाचरन्नकार्याणि निवर्तेत च शक्तिमान्।९८।

(९८) वैश्य अपने कर्म से निर्वाह न कर सके तो शूद्र के कर्म से निर्वाह करे और जो कर्म करने योग्य नहीं हैं उसको न करे।

अशक्नुवस्तु शुश्रूषां शूद्रः कर्तुं द्विजन्मनाम्।
पुत्रदारात्ययं प्राप्तो जीवेत्कारुककर्मभिः।९९।

(९९) शूद्र द्विजन्मानओं की सेवा न कर सके, और उसकी स्त्री व सन्तान क्षुधा से पीडित हो, तो रसोई करने वालों के कर्म से निर्वाह करे।

यैः कर्मभिः प्रचरितैः शुश्रूष्यन्ते द्विजातयः।
तानि कारुककर्माणि शिल्पानि विविधानि च।१००।

ॐ ९६ श्लोक में होने के योग्य के कर्म से इस हेतु वर्जित किया है कि जिसमें छल व हानि न हों क्योंकि 'नीम हकीम खतरे जान, और 'नीम मुल्ला खतरा ईमान, प्रसिद्ध है।

(१००) जिन कर्मों से द्विजन्माओं की सेवा हो सके वह कर्म अर्थात् बढ़ई चित्रकार, आदि विविध प्रकार के कर्म करे।

वैश्यवृत्तिमनातिष्ठन्ब्राह्मणः स्वे पथि स्थितः।
अवृत्तिकर्षितः सीदन्निमं धर्मं समाचरेत् ।१०१।

(१०१) जो ब्राह्मण वैश्य के कर्म को न करे और जीविका विहीन कष्ट पाकर अपने धर्म में स्थित हो वह उस कर्म को करे जो आगे कहेंगे।

सर्वतः प्रतिगृह्णीयाद्ब्राह्मणस्त्वनयं गतः।
पवित्रं दुष्यतीत्येतद्धर्मतो नोपपद्यते ।१०२।

(१०२) विपत्ति के समय यदि ब्राह्मण अपने कर्म को न त्यागे और सबसे दान ग्रहण करना स्वीकार करे यद्यपि सबसे दान लेने में पवित्र ब्राह्मण को दोष लगता है परन्तु विपत्ति काल में लेने से धर्म से पतित नहीं होता।

नाध्यापनाद्याजनाद्वा गर्हिताद्वा प्रतिग्रहात्।
दोषो भवति विप्राणां ज्वलनाम्बुसमा हि ते ।१०३।

(१०३) इसी प्रकार पढ़ाना, यज्ञ कराना, निन्दनीय मनुष्यों से धन लेना इनसे ब्राह्मण को दोष नहीं होता क्योंकि ब्राह्मण जल तथा अग्नि के समान है।

जीवितात्ययमापन्नो योऽन्नमत्ति यतस्ततः।
आकाशमिव पङ्केन न स पापेन लिप्यते ।१०४।

(१०४) जो ब्राह्मण आपद काल में इधर-उधर से भोजन करता है वह पाप से लिप्त नहीं होता जैसे आकाश पंक (कीच) भी है पर उससे लिप्त नहीं होता।

अजीगर्तः सुतं हन्तुमुपासर्पद्बुभुक्षितः ।
न चालिप्येत पापेन क्षुत्प्रतीकारमाचरन् ॥ १०५ ॥

(१०५)× अपनी आत्मा की रक्षा का कार्य करने से पाप नहीं होता अजीगर्त ऋषि ने क्षुधा के कारण अपने पुत्र को राजा के पास बेच डाला और राजा उसको यज्ञ में मारने लगे।

श्वमांसमिच्छन्नार्तोऽत्तुं धर्माधर्मविचक्षणः ।
प्राणानां परिरक्षार्थं वामदेवो न लिप्तवान् ॥१०६॥

(१०६) धर्म और अधर्म के ज्ञाता वामदेव ऋषि क्षुधासे पीड़ित होकर आत्मरक्षार्थं कुत्ते का मॉस खाने की इच्छा करने पर भी पाप से लिप्त नहीं हुए।

भरद्वाजः क्षुधार्त्तस्तु सपुत्रो विजने वने ।
बह्वीर्गाः प्रतिजग्राह वृधोस्तक्ष्णो महातपाः ॥१०७॥

(१०७) भरद्वाज ऋषि अपने पुत्र सहित जब अति क्षुधातुर हो गये वन में एक वृद्धो नाम बढ़ई से बहुत सी गऊओं का दान लिया।

क्षुधार्तश्चात्तु मभ्यागाद्विश्वामित्रः श्वजाघनीम् ।
चण्डालहस्तादादाय धर्माधर्मविचक्षणः ॥१०८॥

(१०८)*धर्म अधर्म के ज्ञाता विश्वामित्र ऋषिने क्षुधा से पीड़ित होकर चाण्डाल के हाथ से कुत्ते की रान खाने को लेली

× १०५ वाँ श्लोक सम्मिलित किया हुआ है क्योंकि मनुष्य वध का किसी में विधान नहीं पर यज्ञ के लिये राजा का खरीदना और ऋषि का बेचना दोनों असत्य हैं यह लोगों ने पाप करने के लिये लिखा है।

*१०७ व १०८ वें श्लोक सम्मिलित किये गये हैं क्योंकि ग्रीष्म, शीत क्षुधा, प्यास सहने का नाम ही तप है और जो नन्हीं को

प्रतिग्रहाद्याजनाद्वा तथैवाध्यापनादपि ।
प्रतिग्रहः प्रत्यवरः प्रेत्य विप्रस्य गर्हितः ।१०६।

(१०६) ब्राम्हण को विपत्ति काल होने की दशा में यज्ञ कराना और पढ़ाना इन दोनों कर्मों के द्वारा दान लेना परलोक में निन्दनीय है।

याजनाध्यापने नित्यं क्रियेते संस्कृतात्मनाम् ।
प्रतिग्रहस्तु क्रियते शूद्रादप्यन्त्य जन्मनः । ११० ।

(११०) यज्ञ कराने और पढ़ने से अपनी आत्मा का सस्कार होता है यदि इसके द्वारा क्षत्रिय व वैश्य से दान ग्रहण किया जावे तो घृणा योग्य है और शूद्र से दान लिया जावे तो और भी बुरा है।

जपहोमैरपैत्येनो याजनाध्यापनै कृतम् ।
प्रतिग्रहनिमित्तं तु त्यागेनतपसैव च । १११ ।

(१११) यज्ञ कराने और पढ़ाने से जो पाप होता है वह जप और हवन से जाता है और धन ग्रहण करने से जो पाप होता है वह तप और दान की वस्तु के परित्याग करने से जाता है।

शिलोञ्छमप्याददीत विप्रोऽजीवन्यतस्ततः ।
प्रतिग्रहाच्छिलं श्रेयांस्ततोऽप्युञ्छः प्रशस्यते ।११२।

(११२) ब्राम्हण अपनी जीविका से निर्वाह न कर सके तो

सहार नहीं सकता वह किसी प्रकार ऋषि कहलाने योग्य नहीं होता। ऐसी बातें वाममार्गियों ने अपने अनुचित कर्मों को उचित व प्रचलित कराने के हेतु सम्मिलित किये हैं।

१-शिल और २-उन्छ के द्वारा निर्वाह करे दान से शिल और शिल से उन्छ श्रेष्ठ है।

सीदद्भिः कुप्यमिच्छद्भिर्धने वा पृथिवीपतिः।
याच्यः स्यात्स्नातकैर्विप्रैरदित्संस्त्यागमर्हति ।११३।

(११३) निर्धन ब्राह्मण धर्म व सन्तान के हेतु कष्ट पाकर सोने चाँदी के अतिरिक्त अन्न, वस्त्र, तथा यज्ञार्थ सोना चाँदी उसी क्षत्रिय से मांगे क्योंकि शास्त्रानुसार जो कर्म करता हो और जो राजा उसको देने की अनिच्छा करें उसको त्याग करे।

अकृतं च कृतात्क्षेत्राद्गौरजाविकमेव च।
हिरण्यं धान्यमन्नं च पूर्वं पूर्वमदोषवत् ।११४।

(११४) ※ खेती रखने वाले खेत से बिना खेती रखने वाले खेत का दाना लेना निर्दोष है। गऊ, बकरा, भेड़, सोना, अन्न, विद्वान् इन्हीं में पहला पहले से दूसरा दूसरे से निर्दोष है अतः पूर्व पूर्व के अभाव में दूसरा दूसरे को लेना चाहिये।

सप्त वित्तागमा धर्म्या दायो लाभः क्रयो जयः।
प्रयोगः कर्मयोगश्च सत्प्रतिग्रह एव च ।११५।

(११५) विभाग में नौकरी करने से गुप्त धन मिला जो मोल लिया गया जो जाति से मिला, जो व्यवहार करने से मिला

१—शिल से तात्पर्य यह है कि खेती काटने के पश्चात् जो अन्न के दाने खेतों में पड़े रहते हैं उन्हें सचय करना।

२—उन्छ के अर्थ-दुकान में जब बिक चुका हो तत्पश्चात् जो अन्न कण पड़ा रह गया है उसे संचित करना।

※ ११४ वें श्लोक में जो वस्तु सरलता पूर्वक जो कार्य देने वाली हो और जिससे निर्वाह हो सके फिर दान की आवश्यकता न हो उसको उत्तम (श्रेष्ठ) बतलाया है।

जो कर्म करने पर मिला, जो उत्तम पुरुषों से दान लेने से मिला इन सात प्रकार के धन का लेना धर्मानुसार है।

विद्या शिल्पं भृतिः सेवा गोरक्ष्यं विपणिः कृषिः।
धृतिर्भैक्ष्यं कुसीदं च दश जीवनहेतवः॥ ११६॥

(११६) विद्या अर्थात् वेदों के अतिरिक्त अन्य विद्याएँ और लिखना आदि, वेतन, सेवा, पालन पोषण, गऊ, क्रयविक्रय कृषि करना, धैर्य भिक्षा, व्याज लेना यह दश कारण निर्वाहक हैं अर्थात् विपत्ति समय में जो कर्म अपने अर्थवर्जित हो उसके द्वारा भी निर्वाह करे।

ब्राह्मणः क्षत्रियो वापि वृद्धिं नैव प्रयोजयेत्।
कामं तु खलु धर्मार्थं दद्यात्पापीयसेऽल्पिकाम्॥११७॥

(११७) ब्राह्मण व क्षत्रिय व्याज न लेवे वा पापी को धर्मार्थ थोड़ा व्याज लेकर इच्छित धन देवें।

चतुर्थमाददानोऽपि क्षत्रियो भागमापदि।
प्रजा रक्षन्परं शक्त्या किल्बिषात्प्रतिमुच्यते॥११८॥

(११८) क्षत्रिय अपनी सामर्थ्यानुसार प्रजा की रक्षा करता हुआ आपद काल में प्रजा से चतुर्थांश लेकर पाप से छूटता है।

स्वधर्मो विजयस्तस्य नाहवे स्यात्पराङ्मुखः।
शस्त्रेण वैश्यान्रक्षित्वा धर्म्यमाहारयेद्बलिम्॥११९॥

(११९) शस्त्र द्वारा विजय करना युद्ध से पराङ्मुख न होना, यह दोनों कार्य राजा के धर्म हैं और शास्त्रों से वैश्यों की की रक्षा करके उनसे धर्मानुसार कर लेवे।

धान्येऽष्टमं विशां शुल्कं विंशं कार्षापणं वरम्।
कर्मोपकरणाः शूद्राः कारवः शिल्पिनस्तथा॥१२०॥

(१२०) आपत्तिकाल की दशा मे व धान में वैश्यों से बीस रुपिया बढने में आठवाँ भाग लेवे और महान आपत्ति समय में तो चौथा भाग कह आये हैं। आपत्ति काल न हो तो बारहवाँ भाग लेवे। सोना व पशु इनका पचासवाँ भाग लेवे और आपत्ति समय हो तो बीसवाँ भाग लेवे। शूद्र व रसोई बनाने वाला, बढई आदि से आपत्तिकाल में कर न लेवे उसके पलटे में कार्य करा लेवे।

शूद्रस्तु वृत्तिमाकाङ्क्षन्क्षत्रमाराधयेद्यदि ।
धनिनं वाप्युपाराध्य वैश्यं शूद्रो जिजीविषेत्॥१२१॥

(१२१) शूद्र ब्राह्मण की सेवा से निर्वाह न कर सके और अन्य जीविका की इच्छा करे तो क्षत्रिय की सेवा व धनवान वैश्य की सेवा करके निर्वाह करे।

स्वर्गार्थमुभयार्थं वा विप्रानाराधयेत्तु सः ।
जातब्राह्मणशब्दस्य सा ह्यस्य कृतकृत्यता ॥१२२॥

(१२२ शूद्र स्वर्ग व जीविका व स्वर्ग दोनों के अर्थ ब्राह्मण की सेवा करने वाला है इस प्रकार संसार में प्रसिद्ध होना ऐसा है कि शूद्र करने योग्य सब कर्मों को कर चुका है।

विप्रसेवैव शूद्रस्य विशिष्टं कर्म कीर्त्यते ।
यदतोऽन्यद्धि कुरुते तद्भवत्यस्य निष्फलम् ॥१२३॥

(१२३) *ब्राह्मणों की सेवा करना शूद्रों का सबसे बढ़कर

---

* शूद्र के अर्थ मूर्ख और ब्राह्मण के विद्वान् के हैं मूर्ख का सबसे बड़ा कार्य विद्वानों की सेवा है जिस प्रकार प्रपादन का कार्य जिधर आँख मार्ग दिखलाता है उसी ओर सारे शरीर को ले चलता है और जब पाँव आँख के विरुद्ध चलता है तो ठोकर खाता है।

धर्म है और जो शूद्र इसको छोड़ कर दूसरा कार्य करता है वह अपने जीवन को निष्फल खोता है।

प्रकल्प्या तस्य तैर्वृत्तिः स्वकुटुम्बाद्यथार्हतः।
शक्तिं चावेक्ष्य दाक्ष्यं च भृत्यानां च परिग्रहम्॥१२४॥

(१२४) ब्राह्मण अपने सेवक शूद्र की सेवा से बल और कार्य करने में प्रसन्नता और स्त्री व सन्तान आदि पर दृष्टिपात कर उसके व्यय को विचार कर अपने घर से उसकी जीविका नियत करे।

उच्छिष्टमन्नं दातव्यं जीर्णानि वसनानि च।
पुलाकाश्चैव धान्यानां जीर्णाश्चैव परिच्छदाः॥१२५॥

(१२५) जो शूद्र अपना सेवक और अपनी शरण में है उसको झूठा अन्न और जीर्ण वस्त्र बिना पत्र धान्य, पुरानी शय्या (चारपाई) घर की पुरानी सामिग्री देनी चाहिये।

न शूद्रे पातकं किञ्चिन्न च संस्कारमर्हति।
नास्याधिकारो धर्मेस्ति न धर्मात्प्रतिषेधनम्॥१२६॥

(१२६) शूद्र के लिये कोई पाप इससे अधिक नहीं है कि वह विद्वानों की सेवा न करे और उसका कोई संस्कार नहीं क्यों कि संस्कार के न होने से ही तो वह शूद्र हुआ है और अग्निहोत्रादि वेदोक्त कर्मों का अधिकारी नहीं क्योंकि इन कर्मों के ज्ञानार्थ विद्या का अभ्यास नहीं किया और न धर्म करने का ही निषेध है यदि शूद्र धर्म करके अपनी उन्नति का प्रयत्न करना चाहे तो उसे कोई प्रतिरोध नहीं।

धर्मेप्सवस्तु धर्मज्ञाः सतां वृत्तिमनुष्ठिताः।
मन्त्रवर्ज्यं न दुष्यन्ति प्रशंसां प्राप्नुवन्ति च॥१२७॥

(१२०) आपत्तिकाल की दशा में व धान में वैश्यों से बीस रुपिया बढ़ने में आठवाँ भाग लेवे और महान आपत्ति समय में तो चौथा भाग कह आये हैं। आपत्ति काल न हो तो बारहवाँ भाग लेवे। सोना व पशु इनका पचासवाँ भाग लेवे और आपत्ति समय हो तो बीसवाँ भाग लेवे। शूद्र व रसोई बनाने वाला, बढ़ई आदि से आपत्तिकाल में कर न लेवे उसके पलटे में कार्य करा लेवे।

शूद्रस्तु वृत्तिमाकाङ्क्षन्क्षत्रमाराधयेद्यदि ।
धनिनं वाप्युपाराध्य वैश्यं शूद्रो जिजीविशेत्॥१२१॥

(१२१) शूद्र ब्राह्मण की सेवा से निर्वाह न कर सके और अन्य जीविका की इच्छा करे तो क्षत्रिय की सेवा व धनवान वैश्य की सेवा करके निर्वाह करे।

स्वर्गार्थमुभयार्थं वा विप्रानाराधयेत्तु सः ।
जातोब्राह्मणशब्दस्य सा ह्यस्य कृतकृत्यता ॥१२२॥

(१२२ शूद्र स्वर्ग व जीविका व स्वर्ग दोनों के अर्थ ब्राह्मण की सेवा करने वाला है इस प्रकार संसार में प्रसिद्ध होना ऐसा है कि शूद्र करने योग्य सब कर्मों को कर चुका है।

विप्रसेवैव शूद्रस्य विशिष्टं कर्म कीर्त्यते ।
यदतोऽन्यद्धि कुरुते तद्भवत्यस्य निष्फलम् ॥१२३॥

(१२३) *ब्राह्मणों की सेवा करना शूद्रों का सबसे बढ़कर

* शूद्र के अर्थ मूर्ख और ब्राह्मण के विद्वान् के हैं मूर्ख का सबसे बड़ा कार्य विद्वानों की सेवा है जिस प्रकार प्रपादन का कार्य जिधर आँख मार्ग दिखलाता है उसी ओर सारे शरीर को ले चलता है और जब पाँव आँख के विरुद्ध चलता है तो ठोकर खाता है।

धर्म है और जो शूद्र इसको छोड़ कर दूसरा कार्य करता है वह अपने जीवन को निष्फल खोता है।

प्रकल्प्या तस्य तैर्वृत्तिः स्वकुटुम्बाद्यथार्हतः।
शक्तिं चावेक्ष्य दाक्ष्यं च भृत्यानां च परिग्रहम्॥१२४॥

(१२४) ब्राह्मण अपने सेवक शूद्र की सेवा में यत्न और कार्य करने में प्रसन्नता और स्त्री व सन्तान आदि पर दृष्टिपात कर उसके व्यय को विचार कर अपने घर से उसकी जीविका नियत करे।

उच्छिष्टमन्नं दातव्यं जीर्णानि वसनानि च।
पुलाकाश्चैव धान्यानां जीर्णाश्चैव परिच्छदाः॥१२५॥

(१२५) जो शूद्र अपना सेवक और अपनी शरण में है उसको झूठा अन्न और जीर्ण वस्त्र बिना पत्र धान्य, पुरानी शय्या (चारपाई) घर की पुरानी सामिग्री देनी चाहिये।

न शूद्रे पातकं किञ्चिन्न च संस्कारमर्हति।
नास्याधिकारो धर्मेऽस्ति न धर्मात्प्रतिषेधनम्॥१२६॥

(१२६) शूद्र के लिये कोई पाप इससे अधिक नहीं है कि वह विद्वानों की सेवा न करे और उसका कोई संस्कार नहीं क्योंकि संस्कार के न होने से ही तो वह शूद्र हुआ है और अग्नि-होत्रादि वेदोक्त कर्मों का अधिकारी नहीं क्योंकि इन कर्मों के ज्ञानार्थ विद्या का अभ्यास नहीं किया और न धर्म करने का ही निषेध है यदि शूद्र धर्म करके अपनी उन्नति का प्रयत्न करना चाहे तो उसे कोई प्रतिरोध नहीं।

धर्मेप्सवस्तु धर्मज्ञाः सतां वृत्तिमनुष्ठिताः।
मन्त्रवर्ज्यं न दुष्यन्ति प्रशंसां प्राप्नुवन्ति च॥१२७॥

(१२७) अपने धर्म का ज्ञाता, धर्मेच्छा करने वाला, द्विजों के अनुसार आचार करने वाला, जो शूद्र है वह मन्त्र से एक पञ्चयज्ञ को करे और उनको परित्याग न करे वो इस लोक में यश प्राप्त करता है।

यथायथा हि सद्वृत्तमातिष्ठत्यनसूयकः ।

तथातथेमं चामुं च लोकं प्राप्नोत्यऽनिन्दितः॥१२८॥

(१२८) दूसरे के गुण की निन्दा न करने वाला शूद्र जिस जिस प्रकार साधु (भले) लोगों के आचरण को करता है उसी तरह इस लोक में बड़ा कहाता है और परलोक में स्वर्ग पाता है।

शक्तेनापि हि शूद्रेण न कार्यो धनसञ्चयः ।

शूद्रो हि धनमासाद्य ब्राह्मणानेवबाधते ॥ १२९ ॥

(१२९) शूद्र सामर्थ्य रखने पर भी धन सञ्चय न करे क्योंकि शूद्र के पास धन हो जाने से वह ब्राह्मणों को हानि पहुँचाता है अर्थात् जब मूर्ख के पास धन होता है तो वह विद्वानों की सेवा परित्याग कर देता है और उन्हें तुच्छ समझने लगता है अतः धन से शूद्र का धर्म नाश हो जाता है।

एते चतुर्णां वर्णानामापद्धर्माः प्रकीर्तिताः ।

यान्सम्यगनुतिष्ठन्तो व्रजन्ति परमां गतिम् ॥१३०॥

(१३०) यह चारों वर्णों के आपदकाल का धर्म कहा गया, जिसके करने से कोई लाभ नहीं परन्तु विपत्ति को निवारण करने के हेतु उचित समझा गया है पर जो इसको त्याग देवे अर्थात् कष्ट को सहन करले वह परमगति अर्थात् मोक्ष के मार्ग पर चलता है।

एष धर्मविधिः कृत्स्नश्चातुर्वर्ण्यस्य कीर्तितः ।
अत परं प्रवक्ष्यामि प्रायश्चित विधिं शुभम् ॥१३१॥

(१३१) चारों वर्णों के धर्म और आपद्धर्म काल का वर्णन करके आगामी अध्याय में प्रायश्चित्त का वर्ण उचित रीत पर करेंगे जिससे गिरेहुये वर्ण भ फिर अपने सत्यमार्गपर आसकें

मनुजी के धर्मशास्त्र और भृगुजी की संहिता का दशवाँ अध्याय समाप्त हुआ।

एकादशोऽध्यायः ।

सांतानिकं यक्ष्यमाणमध्वग सर्ववेदसम् ।
गुर्वर्थं पितृमात्रर्थं स्वाध्यायाध्यु पतापिनः ॥ १ ॥

(१,৩ १—विवाह की इच्छा करने वाला, २— ज्योतिष्टोमादि यज्ञ की इच्छा करने वाला, ३—बटोही, ४—सब धन दक्षिणा वाले विश्वजित नाम यज्ञ को करने वाला,५—विद्या, ६—गुरु व ७—माता व पिता इन तीनों को भोजन व वस्त्र देने वाला, ८—वेदाध्ययन समय भोजन वस्त्र की आवश्यकता रखने वाला, ९—रोगी, ।

नवैतानस्नातकान्विद्याद्ब्राह्मणान्धर्मभिक्षुकान् ।
निःस्वेभ्यो देयमेतेभ्यो दानं विद्या विशेषतः ॥ २ ।

(२) यह नो प्रकार के ब्राह्मण स्नातक अर्थात् ब्रह्मचारी

---

৩ क्योंकि इस अध्याय में प्रायश्चित्तों का वर्णन होगा अतएव प्रथम दान पत्र ब्राह्मणों को वर्णन किया है।

कहलाते हैं। और धर्म भिक्षा का स्वाभाव रखते हैं, यह सब निर्धन हों तो उनकी विद्या के योग्य सोना आदि देना चाहिये।

एतेभ्यो हि द्विजाग्रेभ्यो देयमन्नं सदक्षिणम्।
इतरेभ्यो बहिर्वेदि कृतान्नं देय मुच्यते ॥ ३ ॥

(३) यह नौ प्रकार के ब्राम्हण सब श्रेष्ठ हैं इनको वेदी में अन्न दक्षिणा सहित देना चाहिये और इनके अतिरिक्त जो ब्राम्हण हैं उनको वेदी के बाहर पक्वान्न देना कहते हैं।

सर्वरत्नानि राजा तु यथार्हं प्रतिपादयेत्।
ब्राह्मणान्वेदविदुषो यज्ञार्थं चैव दक्षिणाम् ॥ ४ ॥

(४) राजा को वेद पढ़ने पढ़ाने वाले ब्राम्हण को उसकी विद्या के अनुसार उत्तम उत्तम रत्न देना चाहिये और यज्ञार्थ दक्षिणा भी देनी चाहिये।

कृतदारोऽपरान्दारान्भिक्षित्वा योऽधिगच्छति।
रतिमात्रं फलं तस्य द्रव्यदातुस्तु संततिः ॥ ५ ॥

(५) प्रथम स्त्री उपस्थित हो और भिक्षा द्वारा धन संचय करके उस धन से दूसरा विवाह करे तो उसे केवल रति (भोग, रमण) का फल मिलता है और सन्तान उसी की है जिसने धन दिया।

धनानि तु यथाशक्ति विप्रेषु प्रतिपादयेत्।
वेदवित्सु विविक्तेषु प्रेत्य स्वर्गं समश्नुते ॥ ६ ॥

(६) * योग्यतानुसार धन वेद ज्ञाता व एकान्तवासी ब्राम्हण को देना चाहिये उसके देने से अगले जन्म में सुख मिलता है और इस लोक में भी यश प्राप्त होता है।

---

* एकान्तवासी ब्राम्हण से अभिप्राय वानप्रस्थ वा सन्यासी से है क्योंकि गृहस्थी के हेतु धन शब्द नहीं आसकता।

यस्य त्रैवार्षिकं भुक्तं पर्याप्तं भृत्यवृत्तये ।
अधिकं चापि विद्येत स सोमं पातुमर्हति ॥७॥

(७) जिस पुरुष के समीप सेवक तथा पुत्रादिक अपने अपने आश्रम में रहने वालों के तीन वर्ष के व्यय के योग्य अन्न संचित है। वह सोम यज्ञ करने के योग्य है।

अतः स्वल्पीयसी द्रव्ये यः सोमं पिबति द्विजः ।
स पीतसोमपूर्वोऽपि न तस्याप्नोति तत्फलम् ॥८॥

(८) इससे न्यून धन रखने वाला सोम यज्ञ करे तो उसका फल नहीं प्राप्त होता।

शक्तः परजने दाता स्वजने दुःखजीविनी ।
मध्वापातो विषास्वादः सधर्मप्रतिरूपकः ॥९॥

(९) अन्य मनुष्यों को अन्न देने में सामर्थ्यवान् है पर अपने स्वजनों को भोजन नहीं देता और वे स्वजन दुःख से निर्वाह कर रहे हैं ऐसा मनुष्य धर्म करने वाला नहीं है पहले अपयश होता है पीछे नरक प्राप्त होता है।

भृत्यानामुपरोधेन यत्करोत्यौर्ध्वदैहिकम् ।
तद्भवत्यसुखोदर्कं जीवितश्च मृतस्य च ॥१०॥

(१०) जो मनुष्य सेवक, भृत्य, सन्तानादि स्वजनों को कष्ट देकर परलोकार्थ दानादि कर्म करता है। वह दान उसके जीवन पर्यन्त ही है मृत्यु के उपरान्त दुखदाई होता है।

यज्ञश्चेत्प्रतिरुद्धः स्यादेकेनाङ्गेन यज्वनः ।
ब्राह्मणस्य विशेषेण धार्मिके सति राजनि ॥११॥

(११) धर्मात्मा राजा के विद्यमान होने पर जिस ब्राह्मण सेवा क्षत्रिय की कोई एक सामग्री उपस्थित न हो।

यो वैश्यः स्याद्बहुपशुर्हीनक्रतुरसोमपः ।
कुटुम्बात्तस्य तद्द्रव्यमाहरेद्यज्ञसिद्धये ॥१२॥

(१२) जो वैश्य बहुत से पशु गाय आदि रखता हो परन्तु कोई यज्ञ न करता हो और न निरोग्यता के हेतु यज्ञ द्वारा सशोधित सोमरस पीता हो उस वैश्य से बलात् धनापहरण कर यज्ञ करना चाहिये परन्तु धन केवल यज्ञ की सामग्री के योग्य लाना चाहिये।

आहरेत्त्रीणि वा द्वे वा कामं शूद्रस्य वेश्मनः ।
न हि शूद्रस्य यज्ञेषु कश्चिदस्ति परिग्रहः ॥१३॥

(१३) जब यज्ञ के दो अंग व तीन अंग (अर्थात् सामग्री) धन बिना पूर्ण नहीं होते और वैश्य से भी धन प्राप्त नहीं होता तो शूद्र के गृह से बलात् धनापहरणकर यज्ञ करना वर्जित नहीं

योऽनाहिताग्निः शतगुरयज्वा च सहस्रगुः ।
तयोरपि कुटुम्बाभ्यामाहरेदविचारयन् ॥१४॥

(१४) जो मनुष्य अग्निहोत्री नहीं है और सौ गऊ रखता है अथवा यज्ञ नहीं करता और सहस्र गऊ रखता है इन दोनों के गृह से यज्ञांग पूर्णार्थ धन लेवे इसमें कुछ विचार न करे।

आदाननित्याच्चादातुराहरेदप्रयच्छतः ।
तथा यशोऽस्य प्रथते धर्मश्चैव प्रवर्धते ॥१५॥

(१५) जो ब्राह्मण नित्य दान लेता है और बावली, कुआँ

---

१२ से १५ श्लोक पर्यन्त जो बलात् धनापहरण कर यज्ञ करने की जो आज्ञा दी है उसका तात्पर्य यह है कि यज्ञ के बिना संसार की जल वायु अशुद्ध होकर प्राणियों को हानि पहुँचाती है और सम्पत्तिशाली व वैभव सम्पन्न होने पर भी जो अपने कर्त्तव्य कर्म से विमुख है उसका दण्ड देना और उस धन को यज्ञ में व्यय करना अति उत्तम समझा गया है।

व तालाव नहीं खुदाता है व यज्ञ नहीं करता व दान नहीं देता है उससे यज्ञांग पूर्णार्थ धन मांगा और वह नहीं देता है तो उसके गृह से बलात् धनापहरण करले इससे धन लेने वाले को यश प्राप्त होता है और धर्म की उन्नति होती है।

तथैव सप्तमे भुक्ते भुक्तानि षडनश्नता।
अश्वस्तनविधानेन हर्तव्यं हीनकर्मणः ॥ १६ ॥

(१६) दिन में दो वार भोजन करने की शास्त्र में आज्ञा है जो किसी ब्राह्मण ने छः वार भोजन नहीं किया अर्थात् तीन दिन उपवास करने के पश्चात् चौथे दिन एक वार के योग्य भी भोजन न हो तो हीन कर्म करने वाले से बलात् धन अपहरण करना पाप नहीं। ,

खलात्क्षेत्रादगाराद्वा यतो वाप्युपलभ्यते।
आख्यातव्यं तु तत्तस्मै पृच्छते यदि पृच्छति ॥१७॥

(१७) खलान (खलिहान) से, वा क्षेत्र (खेत) से, वा गृह से अथवा जहाँ से प्राप्त होवे वहाँ से अन्न ले लेना और जब अन्न का स्वामी पूछे कि तुमने कहाँ से अन्न लिया है तो सत्य २ कह देना चाहिये।

ब्राह्मणस्वं न हर्तव्यं क्षत्रियेण कदाचन।
दस्युनिष्क्रययोस्तु स्वमजीवन्हर्तुमर्हति ॥ १८ ॥

(१८) क्षत्रिय ब्राह्मण का धन कभी न लेवे और आपद्-काल में घृणित कर्म करने वाले,शास्त्रोक्त कर्मों के परित्याग करने वाले जो ब्राह्मण व क्षत्रिय हैं उनके गृह से धन ले लेना चाहिये

योऽसाधुभ्योऽर्थमादाय साधुभ्यः संप्रयच्छति।
स कृत्वा प्लवमात्मानं संतारयति तावुभौ ॥ १९ ॥

(१६) जो मनुष्य साधु लोगों से धन लेकर साधु लोगों को देता है वह अपने को नाव बना कर दोनों को उतारता है ।

तद्धनं यज्ञशीलानां देवस्वं तद्विदुर्बुधाः ।
अयज्वनां तु तद्वित्तमासुरस्वं तदुच्यते ॥ २० ॥

(२०) यज्ञ करने वालों का धन देवताओं का धन है और यज्ञ न करने वाले का धन राक्षस का धन कहलाता है। ऐसा पण्डितों ने कहा है ।

न तस्मिन्धारयेद्दण्डं धार्मिकः पृथिवीपतिः ।
क्षत्रियस्य हि बालिश्याद्ब्राह्मणः सीदति क्षुधा ॥२१॥

(२१) ऐसे उपरोक्त कर्म में राजा दण्ड न देवे क्योंकि राजा के बाल्यावस्था से ब्राह्मण क्षुधा से अति दुःखी होता है ।

तस्य भृत्यजनं ज्ञात्वा स्वकुटुम्बान्महीपतिः ।
श्रुतिशीले च विज्ञाय वृत्तिं धर्म्यां प्रकल्पयेत् ॥२२॥

(२२) राजा ब्राह्मण के भृत्य (नौकर) व कुटुम्ब व वेदपाठ व शील को जानकर धर्मानुसार वृत्ति (वजीफा) नियत करदे ।

कल्पयित्वास्य वृत्तिं च रक्षेदेनं समन्ततः ।
राजा हि धर्मषड्भागं तस्मात्प्राप्नोति रक्षितात्॥२३॥

(२३) ब्राह्मणकी वृत्ति नियत करके उसकी रक्षा सब ओर से करे। उस रक्षा से ब्राह्मण जो धर्म करेगा उसका छटवाँ भाग राजा पावेगा ।

न यज्ञार्थं धनं शूद्राद्विप्रो भिक्षेत कर्हिचित् ।
यजमानो हि भिक्षित्वा चण्डालः प्रेत्य जायते ॥२४॥

(२४) ब्राह्मण यज्ञार्थ शूद्र से कभी धन याचना न करे यदि

धन याचना कर उस धन से यज्ञ करे तो दूसरे जन्म में चाण्डाल होता है।

यज्ञार्थमर्थं भिक्षित्वा यो न सर्वं प्रयच्छति।
स याति भासतां विप्रः काकतां वा शतं समाः।२५।

(२५) यज्ञार्थ भिक्षा द्वारा धन संचित करके सारा धन यज्ञ से न लगावे तो सौ जन्म पर्यन्त भाप नाम पक्षी और कौवा होता है

देवस्वं ब्राह्मणस्वं वा लोभेनोपहिनस्ति यः।
स पापात्मा परे लोके गृध्रोच्छिष्टेन जीवति।२६।

(२६) जो मनुष्य लोभवश ब्राह्मण का धन व विद्वान का धन नाश करता है वह पापी परलोक में गृद्ध पक्षी की जूठन से जीवन निर्वाह करता है।

इष्टिं वैश्वानरीं नित्यं निर्वपेदब्दपर्यये।
क्लृप्तानां पशुसोमानां निष्कृत्यर्थमसंभवे।२७।

(२७) वर्ष में एक बार वैश्वानर यज्ञ करना असम्भव हो तो वर्षान्त में प्रायश्चित्तार्थ अग्निहोत्र करता रहे।

आपत्कल्पेन यो धर्मं कुरुतेऽनापदि द्विजः।
स नाप्नोति फलं तस्य परत्रेति विचारितम्।२८।

(२८) आपद् काल न होने पर भी जो ब्राह्मण आपद्काल के धर्म को करता है वह परलोक में उसके फल को नहीं प्राप्त करता है।

विश्वैश्च देवैः साध्यैश्च ब्राह्मणैश्च महर्षिभिः।
आपत्सु मरणाद्भीतैर्विधेः प्रतिनिधिः कृतः।२९।

(२९) मृत्युसे भयभीत विश्वेदेव, साधुगण, ब्राह्मण बड़े ऋषि

लोग इन सबने आपत्तिकाल में उत्तम धर्म के विरुद्ध आचरण किया है।

प्रभुः प्रथमकल्पस्य योऽनुकल्पेन वर्तते ।
न सांपरायिकं तस्य दुर्मतेर्विद्यते फलम् ॥ ३० ॥

(३०) मुख्य धर्म के करने में सामर्थ्यवान् होकर विरुद्ध धर्म करने वाला परलोक में उस विरुद्ध धर्म (प्रतिनिधि धर्म) का फल नहीं पाता।

न ब्राह्मणोऽवेदयेत किंचिद्राजनि धर्मवित् ।
स्ववीर्येणैव ताञ्छिष्यान्मानवानऽपकारिणः॥ ३१ ॥

(३१) धर्म ज्ञाता ब्राह्मण राजासे कुछ न कहे वरन् अपनी सामर्थ्य अपकारी मनुष्यों को दण्ड दे।

स्ववीर्याद्राजवीर्याच्च स्ववीर्यं बलवत्तरम् ।
तस्मात्स्वेनैव वीर्येण निगृह्णीयादरीन्द्विजः ॥ ३२ ॥

(३२) राजा के पराक्रम से अपना पराक्रम श्रेष्ठ है। अतः ब्राह्मण अपने द्वारा पराक्रम शत्रुओं (विरोधियों) को आधीन करे

श्रुतीरथर्वाङ्गिरसीः कुर्यादित्यविचारयन् ।
वाक् शस्त्रं वै ब्राह्मणस्य तेन हन्यादरीन्द्विजः॥३३॥

(३३) अथर्व व अङ्गिरा ऋषि ने जो मारण प्रयोग कहा उसको करे इसमें कुछ विचार न करे। ब्राह्मण की वाणी ही शस्त्र है उससे शत्रु को हने।

क्षत्रियो बाहुवीर्येण तरेदापदमात्मनः ।
धनेन वैश्यशूद्रौ तु जपहोमैर्द्विजोत्तमः ॥ ३४ ॥

(३४) क्षत्रिय अपने बाहुबल से, वैश्य व शूद्र दोनो धन से और ब्राह्मण जप तथा हवन से आपत्तिकाल (विपत्ति) का अन्त करे।

विधात शासिता वक्ता मैत्रो ब्राह्मण उच्यते ।
तस्मै नाकुशलं ब्र्याम्न शुष्कां गिरमीरयेत् ॥३५॥

(३५) जो ब्राह्मण शास्त्रोक्त कर्म करने वाला पुत्र तथा शिष्य को पढ़ाने वाला प्रायश्चित्तादि को कहने वाला और सब प्राणियो का मित्र है। उसको शुष्क (कठिक, कटु) और हृदय को दुख देने वाली बात न कहना चाहिये।

न वै कन्या न युवतिर्नाल्पविद्यो न वालिशः ।
होता स्यादिग्निहोत्रय नार्तो नासंस्कृतस्तथा ॥३६॥

(३६) कन्या स्त्री, अल्प विद्या वाला मूर्ख रोगी' यज्ञोपवित न रखने वाला, यह सब प्रातः सायं समय अग्निहोत्र न करे।

नरके हि पतन्त्येते जुह्वन्तः स च यस्य तत् ।
तस्माद्वैतानकुशलो होता स्याद्वेदपारगः ॥ ३७ ॥

(३७) यदि यह सब अग्निहोत्र करें तो नरक में जाते हैं और जिसकी अग्नि है अर्थात् यजमान है वह भी नरक में जाता है। अतएव जो वेदपारङ्गव व अग्निहोत्र कर्म ज्ञाता हो वही यमराज का हवन करे।

प्राजापत्यमदत्त्वश्वमग्न्याधेतस्य दक्षिणाम् ।
अनाहिताग्निर्भवति ब्राह्मणो विभवे सति ॥ ३८ ॥

(३८) ब्राह्मण का अग्नि होत्र की दक्षिणा जो घोड़ा है उसको वैभव सम्पन्न होने पर भी न देवे तो अग्निहोत्र का फल उस ब्राह्मण को नहीं होता।

पुण्यान्यन्यानि कुर्वीत श्रद्दधानो जितेन्द्रियः ।
न त्वल्पदक्षिणैर्यज्ञैर्यजेतेह कथंचन ॥ ३९ ॥

(३६) मनुष्य जितेन्द्रिय होकर श्रद्धा सहित अन्य पुण्य कर्म करे परन्तु अल्प दक्षिणा से यज्ञ न करे।

इन्द्रियाणि यशः स्वर्गमायुः कीर्तिं प्रजाः पशून् ।
हन्त्यल्पदक्षिणो यज्ञस्तस्मान्नाल्पधनो यजेत् ॥ ४० ॥

(४०) थोड़ी दक्षिणा वाला यज्ञ, इन्द्रिय, यश, स्वर्ग आयु, कीर्त्ति, सन्तान, पशु इन सब को नाश करतो है उससे थोड़े धन वाला यज्ञ न करे।

अन्नहीनो दहेद्राष्ट्रं मन्त्रहीनस्तु ऋत्विजः ।
दीक्षितं दक्षिणाहीनो नास्ति यज्ञसमो रिपुः ॥

(४१) अन्न रहित मख राष्ट्र को, मन्त्र रहित ऋत्विज को एवं दक्षिणा विरहित यज्ञ यज्ञकर्ता को नष्ट करता है। एतदर्थ यज्ञ परम शत्रु भी है।

अग्निहोत्र्यपविध्याग्नीन्ब्राह्मणःक मकारतः ।
चान्द्रायणं चरेन्मसं वीरहत्यासमं हि तत् ॥ ४१ ॥

(४१) अग्निहोत्री ब्राह्मण स्वेच्छा से सायं प्रातः हवन न करे तो पुत्र हत्या का पाप होता है उस पाप से निवृत्त होने के लिये एक मास चन्द्रायण व्रत करे।

ये शूद्रादधिगम्यार्थमग्निहोत्रमुपासते ।
ऋत्विजस्ते हि शूद्राणां ब्रह्मवादिषु गर्हिताः ॥४२॥

(४२) जो ब्राह्मण शूद्र से धन लेकर अग्निहोत्र करता है वह शूद्र ही का ऋत्विज होता है उसको कुछ फल नहीं होता और वेद पाठी ब्राह्मणों में निन्दित कहलाता है।

तेषां सततमज्ञानां वृषलाग्न्युपसेविनाम् ।
पदा मस्तकमाक्रम्य दाता दुर्गाणि सन्तरेत् ॥ ४३ ॥

(४४) वह शूद्र ऋत्विजों को द्रव्य देने से उनके हाथ पर पैर रखकर नरक को तरता है और ऋत्विजको कुछ फल नहीं होता।

अकुर्वन्विहितं कर्म निन्दितं च समाचरन्।
प्रसक्तश्चेन्द्रियार्थेषु प्रायश्चित्तीयते नरः ॥४४॥

(४४) शास्त्रोक्त कर्म न करने से व निन्दित कर्म करने से व इन्द्रियासक्त होने से, मनुष्य प्रायश्चित के योग्य होता है।

अकामतः कृते पापे प्रायश्चित्तं विदुर्बुधाः।
कामकारकृतेऽप्याहुरेके श्रुतिनिदर्शनात् ॥४५॥

(४५) पण्डितों ने अनिच्छा के पाप करने में प्रायश्चित को कहा स्वेच्छा से पाप करने में भी वेद की आज्ञा से प्रायश्चित है।

अकामतः कृतं पापं वेदाभ्यासेन शुध्यति।
कामतस्तु कृतं मोहात्प्रायश्चित्तैः पृथग्विधैः ॥४६॥

(४६) जो पाप अनिच्छा से अज्ञानसे होता है उसकी निवृत्ति बार २ वेद के अर्थ सहित पढ़ने से होती है तथा जो पाप स्वेच्छानुसार किया जाता है उसकी प्रायश्चित की विधि पृथक् है।

प्रायश्चित्तीयतां प्राप्य दैवात्पूर्वकृतेन वा।
नसंसर्गं व्रजेत्सद्भिः प्रायश्चित्तेऽकृते द्विजः ॥४७॥

(४७) यदि पूर्व जन्म के कर्मों से प्रायश्चित योग्य हो तो जब तक प्रायश्चित्त न करे तब तक सज्जन पुरुष उसके साथ भोजन व संसर्ग व सहवास न करे।

(प्रायोनाम तपः प्रोक्तं चित्तं निश्चय उच्यते।
तपोनिश्चयसंयुक्तं प्रायश्चित्तमिति स्मृतम् ॥४८॥ (क)

(४८) (क) प्रायः तप अर्थ का वाचक है तथा निश्चय अर्थ है (चित्त का—इसलिये निश्चयात्मक होने से प्रायश्चित कहा है।)

इह दुश्चरितैः केचित्केचित्पूर्वकृतैस्तथा ।
प्राप्नुवन्ति दुरात्मानो नरा रूपविपर्ययम् ॥ ४८ ॥

(४८) कोई इस जन्म के पापों से और पूर्व जन्म के पापों से दुर्दशा पाता है।

सुवर्णचौरः कौनख्यं सुरापः श्यावदन्तताम् ।
ब्रह्महा क्षयरोगित्वं दौश्चर्म्यं गुरुतल्पगः ॥ ४९ ॥

(४९) १-सुवर्ण चोर, २-मद्यपीने वाला, ३-ब्रह्महत्या करने वाला, ४-गुरुपत्नी से रमण करने वाला, यथाक्रम १-कुनखी, २—जन्म से काले दाँत वाला, ३-कुष्ट रोगी व ४-गर्हित त्वचा पाता है।

पिशुनः पौतिनासिक्यं सूचकः पूतिवक्त्रताम् ।
धान्यचौरोऽङ्गहीनत्वमातिरेक्यं तु मिश्रकः ॥५०॥

(५०) १-पिशुन (चुगलखोर), २-सूचक (इंगित से कर्मज्ञाता) ३-धान्यचोर, ४-मिश्रक, (मिलावट करने वाला) यह सब क्रमानुसार १-नासिका (नाक) की दुर्गन्धि, २-मुख की दुर्गन्धि, ३-किसी अङ्गहीन, ४-कोई अंग अधिक इन दोषों को प्राप्त होते हैं।

अन्नहर्तामयावित्वं मौक्यं वागपहारकः ।
वस्त्रापहारकः श्वैत्र्यं पंगुतामश्वहारकः ॥ ५१ ॥

(५१) १-वस्त्र चोर, २-जानते पर भी मूक (चुप) रहने वाला, ३-वस्त्र चोर, ४-अश्वचोर यह सब क्रमानुसार आमरोगी, २-गूँगा, ३-श्वेतकुष्टी, (सफेद कोढ़ी), पङ्गु (लँगड़ा) होते हैं।

(दीपहर्ता भवेदन्धः काणो निर्वापको भवेत् ।
हिंसया व्याधिभूयस्त्वमरोगित्वमहिंसया ॥५१॥(ख)

(५१) (ख) दीपतस्कर अन्धा, दीपनिर्वाणकर्ता बधिर, हिंसक रुग्ण एव अहिंसक निरोगी होता है ।)

एवं कर्मविशेषेण जायन्ते सद्विगर्हिताः ।
जडमूकान्धबधिरा विकृताकृतयस्तथा ॥ ५२ ॥

(५२) उपरोक्त विधि से कुकर्मों द्वारा विगर्हित दशा (घृणा योग्य दृश्य) को प्राप्त होता है यथा जड़, मूक (गूँगा), अन्ध बधिर (बहिरा) और विकृत (कुरूप) को प्राप्त होता है ।

चरितव्यमतो नित्यं प्रायश्चित्तं विशुद्धये ।
निन्द्यैर्हि लक्षणैर्युक्ता जायन्तेऽनिष्कृतैनसः ॥५३॥

(५३) अतएव सदा पाप से मुक्त होने के हेतु प्रायश्चित्त और उत्तम कर्म करना चाहिये और जो लोग प्रायश्चित्त नहीं करते वह घृणित लक्षणों युक्त होते हैं ।

ब्रह्महत्या सुरापानं स्तेयं गुर्वङ्गनागमः ।
महान्ति पातकान्याहुः संसर्गश्चापि तैः सह ॥५४॥

(५४) ब्रह्महत्या, सुरापान, ब्राह्मण का दस माशा व अधिक सोना चुराना, माता से रति करना, यहचार महापाप हैं और महापापियों का संसर्ग करना पाँचवाँ महापाप है ।

अनृतं च समुत्कर्षे राजगामि च पैशुनम् ।
गुरोश्चालीकनिर्बन्धः समानि ब्रह्महत्यया ॥ ५५ ॥

(५५) अयोग्य होकर झूठमूठ ही अपने को योग्य कहना, राजा के सन्मुख पिशुनता (झूंठी चुगली खाना) करना गुरु के समीप असत्य भाषण करना, यह ब्रह्महत्या के समान महापातक है।

ब्रह्मोज्झता वेदनिन्दा कौटसाक्ष्यं सुहृद्वधः ।
गर्हितानाद्ययोर्जग्धिः सुरापानसमानि षट् ॥५६॥

(५६) पढ़े हुए वेद को भूलना, वेद की निन्दा करना, असत्य साक्षी देना, सुहृद् को वध करना, विष्ठा आदि गर्हित वस्तुओं का भक्षण करना यह सब सुरापान के समान महापाप है ।

निक्षेपस्यापहरणं नराश्वरजतस्य च ।
भूमिवज्रमणीनां च रुक्मस्तेयसमं स्मृतम् ॥५७॥

(५७) निक्षेप (धरोहर, थाती), मनुष्य, घोड़ा, चाँदी, भूमि, हीरा मणि इनका चुराना सोना चुराने के समान है।

रेतः सेकः स्वयोनीषु कुमारीष्वन्त्यजासु च ।
सख्युः पुत्रस्य च स्त्रीषु गुरुतल्पसमं विदुः ॥५८॥

(५८) सगी बहिन, कुँवारी कन्या, अन्त्यज (चाण्डाल) की स्त्री, मित्रपत्नी, पुत्र की स्त्री इनके साथ रति (भोग, रमण) करना, गुरुपत्नी वा माता से रति करने के समान महापाप है।

गोवधोऽयाज्यसंयाज्यपरदारात्मविक्रयाः ।
गुरुमातृपितृत्यागः स्वाध्यायाग्न्योः सुतस्य च ॥५९॥

(५९) गो हत्या करना, अयोग्य को यज्ञ कराना, परस्त्री से लोभ देकर व बलात्कार रति करना, अपने आप को बेच डालना गुरु व माता- व पिता, व स्वाध्याय (वेदपाठ) व अग्नि होत्र तथा अपने पुत्र को त्याग देना ।

परिवर्तितानुजेऽनूढे परिवेदनमेव च।
तयोर्दानं च कन्यायास्तयोरेव च याजनम् ॥ ६० ॥

(६०) ज्येष्ठ भ्राता का विवाह होने पर लघु भ्राता का विवाह हो जाना, उन दोनों भ्राताओं को कन्या देना और उनको यज्ञ करना।

कन्याया दूषणं चैव वार्धुष्यं व्रतलोपनम्।
तडागारामदाराणामपत्यस्य च विक्रयः ॥ ६१ ॥

(६१) कन्या को दूषित करना, ब्याज पर निर्वाह करना, ब्रह्मचर्याश्रम में व्यभिचार करना, तालाब, आराम (बाग) कुँवा, स्त्री और पुत्र को विक्रय करना (बेचना)।

व्रात्यता बान्धवत्यागो भृत्याध्यापनमेव च।
भृत्या चाध्ययनादानमपण्यानां च विक्रयः ॥ ६२ ॥

(६२) × समय पर यज्ञोपवीत न होना चाचा आदि गुरुजनों की सेवा शुश्रूषा न करना, धन लेकर पढ़ाना, धन देकर पढ़ना तिल आदि जो बेचने योग्य हैं उनको बेचना।

सर्वाकरेष्वधीकारो महायन्त्रप्रवर्तनम्।
हिंसौषधीनां स्त्र्याजीवोऽभिचारो मूलकर्म च ॥ ६३ ॥

(६३)*सोना चाँदी आदि धातुओं की खानों पर अधि-

× ६२ वें श्लोक में समय पर जनेऊ न होने का पाप इस हेतु कहा है कि इसके बिना वेदों का पढ़ना उचित नहीं और वेद पढ़े बिना मनुष्य सदैव दुखी रहता है। जिससे दुखी रहे वही पाप है।

*६३ वें श्लोक में मशीन (पुरज़ा) बनाने को इस हेतु पाप बतलाया है कि उसके वश रहने से सब लोगों को हानि पहुँचती है और जिससे किसी को बिना अपराध व अकारण हानि पहुँचे वह पाप है।

कार होना; और महायन्त्रों (बड़ी बड़ी कलों) व औजारों को नष्ट भ्रष्ट करना, धातुओं का मारना अर्थात् भस्म बनाना, अपनी स्त्री के व्यभिचार द्वारा धन प्राप्त कर निर्वाह करना, अभिचार कर्म करना अर्थात् प्रयोग आदि करके किसी को मोहित करना वा मार डालना।

इन्धनार्थं मशुष्काणां द्रुमाणामवपातनम्।
आत्मार्थं च क्रियारम्भो निन्दितान्नादनं तथा ॥६४॥

(६४) ईन्धनार्थ हरे वृक्ष को काटना, देवता व पितरों का अतिरिक्त केवल अपने ही हेतु भोजन बनाना, और वर्जित वस्तुओं को भक्षण करना वा कार्य में लाना।

अनाहिताग्निता स्तेयमृणानामनपक्रिया ।
असच्छास्त्राधिगमनं कौशीलव्यस्य च क्रिया ॥६५॥

(६५) सामर्थ्य व अधिकार होते हुए अग्निहोत्र को परित्याग करना, चाँदी आदि का चुराना, वेद व धर्मशास्त्र के विरुद्ध जो ग्रन्थ व शास्त्र हैं उनको सीखना व पढ़ना, गाना, बजाना, तीनों ऋणों अर्थात् देव, पितृ, ऋषि का परिशोध न करना।

धान्यकुप्यपशुस्तेयंमद्यपस्त्रीनिषेवणम्।
स्त्रीशूद्रविट्क्षत्रवधो नास्तिक्यं चोपपातकम् ॥६६॥

(६६) धान्य, ताँबा, लोहा आदि, पशु का चुराना, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य की मद्य पीने वाली स्त्री से रति करना, स्त्री व शूद्र व वैश्य व क्षत्रिय इनका वध करना, नास्तिकता अर्थात् ईश्वर वेद व कर्मों के फल को वृथा बतलाना, यह प्रत्येक उपपातक कहलाते हैं।

ब्राह्मणस्य रुजः कृत्वा घ्रातिरघ्रेयमद्ययोः।
जैह्म्यं च मैथुनं पुंसि जातिभ्रंशकरं स्मृतम् ॥६७॥

(६७) ब्राह्मण को शारीरिक दण्ड देना अर्थात् उसके पाँव हाथ आदि काटना, दुर्गन्धित वस्तु जो सूंघने योग्य नहीं है यथा लहसुन, प्याज, मल मूत्र और शराब (मद्य) को सूंघना कुटिलता (धोखेबाजी) मैथुन (व्यभिचार) इन कर्मों से जाति भ्रष्ट हो जाती है।

खराश्वोष्ट्रमृगेभानामजाविकवधस्तथा।
संकरीकरणं ज्ञेयं मीनाहिमहिषस्य च ॥ ६८ ॥

(६८) खर (गधा), घोड़ा, ऊँट, हाथी, भेड़ बकरी आदि पशुओं का वध करना और इनके अतिरिक्त मछली, साँप, भैंस का वध करना संकरीकरण कहलाता है।

निन्दितेभ्यो धनादानं वाणिज्यं शूद्र सेवनम्।
अपात्रीकरणं ज्ञेयमसत्यस्य च भाषणम् ॥ ६९ ॥

(६९) निन्दित व घृणित मनुष्यों का दान लेना, वाणिज्य करना, शूद्र की सेवा करना, असत्य भाषण करना, यह सब अपात्रीकरण कहलाते है।

कृमिकीटवयोहत्या मद्यानुगतभोजनम्।
फलैधः कुसुमस्तेयमधैर्यं च मलावहम् ॥ ७० ॥

(७०) कृम व कीट की हिंसा करना, मद्य (शराब मिश्रित कृतान्न का भोजन करना, फल फूल लकड़ी आदि वस्तुओं का चुराना और साहस व धैर्य न धारण करना यह सब मलावह अर्थात् मैल के ढोने वाले कहलाते हैं।

एतान्येनांसि सर्वाणि यथोक्तानि पृथक्पृथक्।
यैर्यैर्व्रतैरपोह्यन्ते तानि सम्यङ्निबोधत ॥ ७१ ॥

(७१) यह सब पाप पृथक् २ कह यह सब पाप जिस जिस व्रत के करने से निवृत (दूर) होते हैं उन व्रतों को कहते हैं।

(७६) ॐ ब्राह्मण के हेतु व गौरक्षा के हेतु शीघ्र ही अपने प्राण तक निछावर कर दे। इसी प्रकार गऊ ब्राह्मण की रक्षा में प्राण देने से ब्रह्महत्या के पाप से मुक्त हो जाता है।

त्रिवारं प्रतिरोद्धा वा सर्वस्वमवजित्य वा।
विप्रस्य तन्निमित्ते वा प्राणलाभे विमुच्यते ॥८०॥

(८०)ॐकोई मनुष्य ब्राह्मण का सारा धन चुरा कर ले जाता है उसको लाने के अर्थ अपने बलानुसार प्राणों का लोभ त्याग प्रयत्न करे और तीन बार युद्ध करे और ब्राह्मण के चोरी गये हुये धन को ला भी न सके तो ब्रह्महत्या से मुक्त होता है अथवा धन जाने से दुखी ब्राह्मण चोर को युद्ध करके प्राण दे देने पर उद्यत हो तो जो धन चोरी गया है उसके तुल्य धन देकर उसके प्राण की रक्षा करे तो भी ब्रह्महत्या से छूटता है।

एवं दृढव्रतो नित्यं ब्रह्मचारी समाहितः।
समाप्ते द्वादशे वर्षे ब्रह्महत्यां व्यपोहति ॥ ८१ ॥

(८१) उस रीति से सदैव व्रत करने वाला, निडर होकर ब्रह्मचर्य करने वाला बारह वर्ष के पूर्ण होने पर ब्रह्महत्या से छूटता है।

ॐजब ब्रह्महत्या करने वाला ब्राह्मण के रक्षार्थ अपने प्राण देगा तो उसके पाप का फल भोग हो चुका क्योंकि ब्राह्मण के मारने के स्थान पर स्वयं प्राण दे दिये और उसके वध के स्थान पर रक्षा के होने के कारण हो जाने से मानसिक तथा शारीरिक शुद्धि होगयी
ॐयद्यपि ७६ वें श्लोक में भी गऊ और ब्राह्मर पर प्राण निछावर कर देना ब्रह्महत्या का प्रायश्चित्त बतलाया गया है। परन्तु वहाँ उनकी प्राणद्वारा रक्षा करना बताया था यहाँ आर्थिक हानि की पूर्ति से उनकी रक्षा करना ब्रह्महत्या का प्रायश्चित्त बतलाया गया है।

शिष्ट्वा वा भूमिदेवानां नरदेवसमागमे ।
स्वमेनाऽवभृथस्नातो हयमेधे विमुच्यते ॥ ८२ ।

(८२) * अथवा ब्रह्म हत्यारा ब्राह्मण अश्वमेध यज्ञ के अन्त में स्नान करने के समय राजा के समीप जाकर ब्रह्महत्या को प्रकट करके उसके साथ स्नान करे तो ब्रह्महत्या से छूटता है। प्रायश्चित स्व मन्त्र है किसी का अंग है।

धर्मस्य ब्राह्मणो मूलमग्रं राजन्य उच्यते ।
तस्मात्समागमे तेषामेनो विख्याप्य शुद्ध्यति । ८३ ।

(८३) क्योंकि जीवात्मा का धर्म ज्ञान है और उसकी रक्षा विद्या और वेद विद्या के द्वारा हो सकती है और जो वस्तु स्थित रक्खे वही उसका धर्म कहलाता है अतः आत्मा को स्थित रखने वाली विद्या है और विद्या का आधार होने के कारण ब्राह्मण धर्म का मूल है और बलात्कार से धर्म की रक्षा करने वाला क्षत्रिय भी धर्म मूल का एक अंग है अतएव दोनों के सम्मुख अपने पाप को स्पष्ट वर्णन करने से शुद्ध होता है।

ब्राह्मणः संभवेनैव देवानामपि दैवतम् ।
प्रमाणं चैव लोकस्य ब्रह्मात्रैव हि कारणम् ।८४।

(८४) ब्राह्मण अपनी उत्पत्ति ही से देवताओं का देवता है उसका उपदेश सबके मानने योग्य है इसमें वेद ही कारण है और उपदेश का मूल वेद ही है।

---

* उपरोक्त श्लोकों में यद्यपि ब्राह्मणों के लाभ सम्बन्धी विषय का वर्णन पाकर लोग उनको क्षेपक (सम्मिलित किये हुये) कहते हैं परन्तु जिस प्रकार शरीर के प्रत्येक अंग का कष्ट नेत्र की रक्षा के हेतु मनुष्य सहन करता है उसी प्रकार गुण कर्म से ब्राह्मण मानने की दशा में यह तर्क व्यर्थ ही सिद्ध होता है।

तेषां वेदविदो ब्रूयुस्त्रयोऽप्येनः सुनिष्कृतिम् ।
सा तेषां पावनाय स्यात्पवित्रा विदुषां हि वाक् ।८५।

(८५) वेदज्ञाता तीन ब्राह्मण जो प्रायश्चित कहें वही पवित्र है । क्योंकि वेदपाठी ब्राह्मण की वाणी ही पवित्र है ।

अतोऽन्यतममास्थाय विधिं विप्रः समाहितः ।
ब्रह्महत्याकृतं पापं व्यपोहत्यात्मवत्तया ॥८६॥

(८६) उपरोक्त प्रायश्चित्तों में से एक भी करे और ब्रह्म को जाने तो ब्रह्महत्या से छूटता है ।

हत्वा गर्भमविज्ञातमेतदेव व्रतं चरेत् ।
राजन्यवैश्यौ चेजानावात्रेयीमेव च स्त्रियम् ॥८७॥

(८७) ब्राह्मणों में ब्राह्मण द्वारा स्थापित गर्भ के पतन में भी यही व्रत है । यज्ञ करते हुये क्षत्रिय व वैश्य व ब्राह्मण की रजस्वला स्त्री इनमें से किसी एक के मारने में भी पूर्वोक्त व्रतों में से किसी एक व्रत को करे ।

उक्त्वा चैवानृतं साक्ष्ये प्रतिरुध्य गुरुं तथा ।
अपहृत्य च निःक्षेपं कृत्वा च स्त्रीसुहृद्वधम् ॥८८॥

(८८) साक्षी होकर मिथ्या भाषण करने में, गुरु पर मिथ्या दोषारोपण करने में, ब्राह्मण व क्षत्रिय का सोना आदि धरोहर के अपहरण करने में, अग्निहोत्री ब्राह्मण की स्त्री के वध करने में, सुहृद (मित्र) की हत्या करने में ब्रह्महत्या का व्रत करना चाहिये ।

इयं विशुद्धिरुदिता प्रमाप्याऽकामतो द्विजम् ।
कामतो ब्राह्मणवधे निष्कृतिर्न विधीयते ॥८९॥

(८९) जो बारह वर्ष का प्रायश्चित्त कहा है वह अनिच्छा से ब्राह्मण को हनन करने में जानना और इच्छा से ब्राह्मण की हत्या करने में ब्रह्महत्या से छुटकारा नहीं है अर्थात प्रायश्चित्त नहीं है वरन् उसका दुगुना है।

सुरां पीत्वा द्विजो मोहादग्निवर्णां सुरां पिबेत् ।
तया स काये निर्दग्धे मुच्यते किल्बिषात्ततः ॥९०॥

(९०) ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य आदि मोहवश सुरा (शराब) पान कर ले तो वह अग्नि के वर्ण (रङ्ग) की सुरा को प्रायश्चित्तार्थ पीवे अर्थात् अग्नि से तृप्त (जलते हुए) निम्नोक्त पदार्थों को भोजन करे जिससे प्राणान्त (इस शरीर का नाश) होकर पापों से छूट जावे।

गोमूत्रमग्निवर्णं वा पिबेदुदकमेव वा।
पयो घृतं वाऽमरणाद्गोशकृद्रसमेव वा ॥९१॥

(९१) गो मूत्र वा जल, वा गो दुग्ध वा गो घृत वा गऊ के गोबर का रस इनमें से किसी एक को अग्नि वर्ण करके पीवे और उससे प्राणान्त हो जावे तो शुद्ध होता है।

कणान्वा भक्षयेदब्दं पिण्याकं वा सकृन्निशि ।
सुरापानापनुत्यर्थं वालवासा जटी ध्वजी ॥९२॥

(९२) गऊ आदि के बालों के वस्त्र बनाकर पहिरे व जटा धारण करके सुरापात्र का चिन्ह अंकित कर चावल का कण (कन) वा तिल की खली इनमें से किसी एक को एक वर्ष पर्यन्त रात्रि में एक बार भोजन करे तो सुरापान के पाप से छूटे। यह प्रायश्चित्त अज्ञानता से सुरापान कर लेने में जानना।

सुरा वै मलमन्नानां पाप्मा च मलमुच्यते ।
तस्माद्ब्राह्मणराजन्यौ वैश्यश्च न सुरां पिबेत् ॥९३॥

(९३) अन्न के बिगड़े हुये मैल को सुर कहते हैं और निर्मल परन्तु दुर्गन्धियुक्त सुरा अन्न को सड़ाने ही से बनती है इससे ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य कभी सुरा (शराब) पान न करें।

गौडी पैष्टी च माध्वी च विज्ञेया त्रिविधा सुरा ।
यथैवैका तथा सर्वा न पातव्या द्विजोत्तमैः ॥९४॥

(९४) गौड़ी, माध्वी, पैष्टी तीन प्रकार की सुरा हैं (अर्थात् गुड़ व मधु व पिसान से बनायी जाती हैं) जैसी एक वैसी तीनों हैं इससे उत्तम द्विज सुरा न पीवे।

यक्षरक्षःपिशाचान्नं मद्यं मांसं सुरासवम् ।
तद्ब्राह्मणेन नात्तव्यं देवानामश्नता हविः ॥ ९५ ॥

(९५) ❀ मांस, सुरा, आसव यह सब यक्ष राक्षस और पिशाचों का भक्ष्य है अर्थात् इनके भक्षण करने वाले राक्षसादि हैं। इससे देवताओं के यज्ञ के योग्य भोजन भक्षण करने वाला ब्राह्मण इनका कभी न पीवे।

अमेध्ये वा पतेन्मत्तो वैदिकं वाप्युदाहरेत् ।
अकार्यमन्यत्कुर्याद्वा ब्राह्मणो मदमोहितः । ९६ ।

(९६) ब्राह्मण सुरापन कर मोहवश अपवित्रता में वेदमन्त्रों का उच्चारण करेगा और न करने योग्य कार्य करेगा इससे ब्राह्मण सुरापन कदापि न करे।

यस्य कायगतं ब्रह्म मद्येनाप्लाव्यते सकृत् ।
तस्य व्यापैति ब्राह्मण्यं शूद्रत्वं च स गच्छति ।९७।

❀ मनुजी ने माँस व सुरा (शराब) को राक्षसों का भक्ष्य बतलाया है अतः जहाँ इनका मण्डन (समर्थन) होगा वह राक्षसों का मिलाया हुआ होगा।

(६७) जिस ब्राह्मण का हृदय स्थित वेद एक बार भी सुरापान से डूबेगा उस ब्राह्मण का ब्रह्म तेज नष्ट हो जावेगा और वह ब्राह्मण शूद्र भाव को प्राप्त होगा।

एषा विचित्राभिहिता सुरापानस्य निष्कृतिः।
अत ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि सुवर्णस्तेयनिष्कृतिम् ॥९८॥

(९८) यह विचित्र प्रायश्चित सुरापान का कहा अब * सोना चुराने का प्रायश्चित कहते हैं।

सुवर्णस्तेयकृद्विप्रो राजानमभिगम्य तु।
स्वकर्म ख्यापयन्ब्रूयान्मां भवाननुशास्त्विति ॥९९॥

(९९) ब्राह्मण सोना चुराकर राजा के सपीम जाकर कहे कि मैं सोना चुराने वाला हू आप मुझे दण्ड देवें।

गृहीत्वा मुसलं राजा सकृद्धन्यात्तु तं स्वयम्।
वधेन शुद्ध्यति स्तेनो ब्राह्मणस्तपसैव तु ॥१००॥

(१००) राजा स्वयं मूसल ग्रहण करके एक बार उसको मारे चोरी करने वाला वध करने से अथवा वध करने के समान मारपीट से शुद्ध होता है क्योंकि ब्राह्मण को शारीरिक दण्ड नहीं है इससे भृगुजी कहते हैं कि ब्राह्मण तप द्वारा ही पवित्र होता है।

तपसापनुनुत्सुस्तु सुवर्णस्तेयजं मलम्।
चीरवासा द्विजोऽरण्ये चरेद्ब्रह्महणो व्रतम् ॥१०१॥

(१०१) तप द्वारा सोना चुराने के पाप को निवारण करने की इच्छा करने वाला, चीर-वस्त्र--(अर्थात् वस्त्र का टुकड़ा) धारण

* सोना चुराना इस हेतु पाप बतलाया है कि इसकी चिन्ता से प्रायः लोभी लोगों के प्राण तक चले जाते हैं।

करे वन में जाकर उस व्रत को करे जिसके करने से ब्रह्महत्या से छुटकारा होता है अर्थात् सोना चुराना महाहत्या के समान है।

एतैर्व्रतैरपोहेत पापं स्तेयकृतं द्विजः ।
गुरुस्त्रीगमनीयं तु व्रतैरेभिरपानुदेत् ॥ १०२ ॥

(१०२) ब्राह्मण इन व्रतों को करके चोरी के पाप से छुटकारा पावे। यदि किसी ने गुरुपत्नी वा माता से रमण (रति, भोग) किया हो तो ऐसे महापापी के हेतु आगे लिखा हुआ प्रायश्चित्त करना उचित है।

गुरुतल्प्यभिभाष्यैनस्तप्ते स्वप्यादयोमये ।
सूर्मीं ज्वलन्तीं स्वाश्लिष्येन्मृत्युना स विशुद्ध्यति।१०३।

(१०३) गुरुपत्नी—वा माता से भोग करने वाला अपने पाप को कहकर तप्त लोहे की शय्या पर सोवे अथवा लोहे की स्त्री बनाकर अग्नि में उसे तप्त करके उसका गाढ़ालिंगन करे (अर्थात् उससे लिपट जावे)।

स्वयं वा शिश्नवृषणावुत्कृत्याधाय चाञ्जलौ ।
नैर्ऋतीं दिशमातिष्ठेदानिपातादजिह्मगः ॥ १०४ ॥

(१०४) ® अथवा अपनी मूत्रेन्द्रिय (लिङ्ग) को अण्डकोष (फोता) सहित काटकर अपने हाथों को अञ्जली में रखकर नैऋत्य दिशा (दक्षिण पूर्व के कोण को चला जावे) जब तक कि मृत्यु न हो जाये।

® यद्यपि मनुजी का प्रायश्चित्त विधान अत्यन्त कठिन प्रतीत होता है परन्तु ऐसे पापों के निवारण करने के हेतु दूसरा कोई उपाय ही नहीं है।

खट्वाङ्गी चीरवासा च श्मश्रुलो विजने वने ।
प्राजापत्यं चरेत्कृच्छ्रमब्दमेकं समाहित ॥१०५॥

(१०५) अथवा खाट का एक अङ्ग हाथ में लिये हुए वसन चीर धारण किये हुये नख व केश बाल न कटा कर चिन्ता रहित होकर निर्जन वन में एक वर्ष पर्यन्त प्रजापत्य यज्ञ करै यह प्रायश्चित्त अज्ञानता से अपनी स्त्री जानकर माता से भोग करने में जानना चाहिये।

चान्द्रायणं वा त्रीन्मासानभ्यस्येन्नियतेन्द्रियः ।
हविष्येण यवाग्वा वां गुरुतल्पापनुत्तये ॥१०६॥

(१०६) वा जितेन्द्रिय होकर वा जौ की लपसी खाकर गुरुपत्नी से भोग करने के पाप को निवारण करने के हेतु तीन मास पर्यन्त चन्द्रायण व्रत करे ।

एतैर्व्रतैरपोहेयुर्महापातकिनो मलम् ।
उपपातकिनस्त्वेवमेभिर्नानाविधैर्व्रतैः ॥१०७॥

(१०७) महापातकी लोग इन व्रतों से अपने पाप को निवारण करें और उपपातकी लोग निम्नोक्त व्रत द्वारा अपने पाप से मुक्ति लाभ करे ।

उपपातकसंयुक्तो गोघ्नो मासं यवान्पिबेत् ।
कृतवापो वसेद्गोष्ठे चर्मणा तेन संवृतः ॥१०८॥

(१०८) उपपातकी गऊ के वध करने वाला एक मास पर्यन्त जौ के सत्तु पीवै नख लोम केश को न मुंड़वा कर गऊका चर्म (चमड़ा) धारण करके गोशाला (गऊ के रहने का स्थान) में निवास करे ।

चतुर्थकालमश्नीयादक्षारलवणं मितम् ।
गोमूत्रेणाचरेत्स्नानं द्वौ मासौ नियतेन्द्रियः ॥१०९॥

(१०९) एक दिन व्रत करके दूसरे दिन पहली वार अन्न भोजन करे जो इस प्रकार लवणमात्र त्याग व्रत करते हुये दो मास पर्यन्त गोमूत्र से स्नान करे।

दिवानुगच्छेद्गास्तास्तु तिष्ठन्नूर्ध्वं रजः पिबेत् ।
शुश्रूषित्वा नमस्कृत्य रात्रौ वीरासनं वसेत् ॥ ११०॥

(११०) दिन में गऊ के पीछे चले, खड़ा होकर गऊ के खुर से उड़ती हुई धूल को पीव, सेवा करता हुआ नमस्कार करके रात्रि में वीरासन से रहे।

तिष्ठन्तीष्वनुतिष्ठेत्तु व्रजन्तीष्वप्यनुव्रजेत् ।
आसीनासु तथासीनो नियतो वीतमत्सरः ॥ १११ ॥

(१११) गऊ खड़ी हो तो आप भी ईर्ष्या रहित हो कर जितेन्द्रिय हो खड़ा रहे, गऊ चले तो आप भी उसके पीछे चले, बैठे तो आप भी बैठे।

आतुरामभिशस्तां वा चौरव्याघ्रादिभिर्भयैः ।
पतितां पङ्कलग्नां वा सर्वोपायैर्विमोचयेत् ॥११२॥

(११२) जो गऊ आतुर (रोगी) हो और चोर व व्याघ्रादि (सिंहादि) के भयभीत हो वा गिर पड़ी हो वा कीच में फस गई हो उसको सब प्रयत्नों द्वारा यथा सम्भव सामर्थ्य भर छुड़ावे।

उष्णे वर्षति शीते वा मारुते वाति वा भृशम् ।
न कुर्वीतात्मनस्त्राणं गोरकृत्वा तु शक्तितः ॥११३॥

(११३) गर्मी, वर्षा, जाड़ा, आंधी में यथाशक्ति गऊ की रक्षा किये बिना अपनी रक्षा न करे।

आत्मनो यदि वान्येषां गृह क्षेत्रेऽथवा खले ।
भक्षयन्ती न कथयेत्पिवन्तं चैव वत्सकम् ॥११४॥

(११४) अपने वा अन्य के गृह में वा खलिहान वा खेतमें चरती हुई गऊ को न कहे और बछड़े को दूध पिलाती हो तो भी न कहे।

अनेन विधिना यस्तु गोघ्नो गामनुगच्छति ।
स गोहत्याकृतं पाप त्रिभिर्मासैर्व्यपोहति ॥ ११५ ॥

(११५) गोवध (हत्या) करने वाला पुरुष इस विधि गऊ के पीछे चले तो तीन मास में गो हत्या से मुक्त हो जाता है अर्थात् गोहत्या से छुटकारा पा जाता है।

वृषभैकादशा गाश्च दद्यात्सुचरितव्रतः ।
अविद्यमाने सर्वस्वं वेदविद्भ्यो निवेदयेत् ॥११६॥

(११६) उत्तम विधि से व्रत करके एक बैल और दस गऊ देवे यदि इतना न हो सके तो वेदपाठी ब्राह्मण को सब धन देवे।

एतदेव व्रत कुर्युरुपपातकिनो द्विजाः ।
अवकीर्णिवर्ज्यंशुद्ध्यर्थं चान्द्रायणमथापि वा ॥११७॥

(११७) अवकीर्ण व्रत जो आगे कहेंगे उसको त्याग कर ब्राह्मण क्षत्रिय व वैश्य उपपातक होने पर इसी व्रत को करें अथवा चान्द्रायण व्रत करे।

अवकीर्णी तु काणेन गर्दभेन चतुष्पथे ।
पाकयज्ञविधानेन यजेत निर्ऋतिं निशि ॥ ११८ ॥

(११८) चौक (चौराहे) में पवित्र यज्ञ की विधि से यज्ञ करके और काने गधे पर चढ़कर नैर्ऋत्य कोण की ओर जावे और पूजा करे।

हुत्वाग्नौ विधिवद्धोमानन्ततश्च समेत्य चा।
वातेन्द्रगुरुवह्नीनां जुहुयात्सर्पिषाहुतीः ॥११९॥

(११९) अग्नि में यथा विधि "अनन्त सचेति" इस मंत्र से वायु इन्द्र, गुरु व अग्नि में हवन करे।

कामतो रेतसः सेकं व्रतस्थस्य द्विजन्मनः।
अतिक्रमं व्रतस्याहुर्धर्मज्ञा ब्रह्मवादिनः ॥१२०॥

(१२०) यदि ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य तीनों वर्ण व्रत की दशा में स्वेच्छा के वीर्यपतन करें तो उसका व्रत खण्डित हो गया इस पर धर्मज्ञाता लोग एक मत है।

मारुतं पुरुहूतं च गुरुं पावकमेव च।
चतुरो व्रतिनोऽभ्येति ब्राह्मं तेजोऽवकीर्णिनः ॥१२१॥

(१२१) ब्रह्मचर्य की अवस्था में वीर्यपतन करने वाले का ब्रह्मतेज वायु पुरुहूत गुरु व अग्नि के समीप चला जाता है अर्थात् इनमें लीन (मिल) हो जाता है और उससे पृथक् हो जाता है।

एतस्मिन्नेनसि प्राप्ते वसित्वा गर्दभाजिनम्।
सप्तागारांश्चरेद्भैक्षं स्वकर्म परिकीर्तयन ॥१२२॥

(१२२) इस पाप से शुद्ध होने हेतु गधे का चमड़ा धारण कर सात घरों से माँगकर खाये और अपना कर्म करता रहे।

तेभ्यो लब्धेन भैक्षेण वर्तयन्नेककालिकम्।
उपस्पृशंस्त्रिषवणं त्वब्देन स विशुद्ध्यति ॥१२३॥

(१२३) उस भिक्षा को एक बार भोजन करता हुआ व प्रात दोपहर सायङ्काल में स्नान करता हुआ जीवन व्यतीत करे तो एक वर्ष में पवित्र हो।

जातिभ्रंशकरं कर्म कृत्वान्यतममिच्छया ।
चरेत्सांतपनं कृच्छ्रं प्राजापत्यमनिच्छया ॥१२४॥

(१२४)+ जातिच्युत करने वाले कर्मों से किसी एक कर्म को स्वेच्छा से करे तो सांतपन नामी कृच्छ्रव्रत को करे।

संकरापात्रकृत्यासु मासं शोधनमैन्दवम् ।
मलिनीकरणीयेषु तप्तः स्याद्यावकैस्त्र्यहम् ॥१२५॥

(१२५) संकरीकरण, और अपात्रीकरण कर्मों म से किसी एक कर्म को स्वेच्छा से करने में एक मास पर्यन्त चान्द्रायण व्रत करे और मलिनी करण कर्मों में से किसी एक कर्म को स्वेच्छा पूर्वक करने में तीन दिन यवागू का भोजन करे।

तुरीयो ब्रह्महत्यायाः क्षत्रियस्य वधः स्मृतः ।
वैश्येऽष्टमांशो वृत्तस्थे शूद्रे ज्ञेयस्तु षोडशः ॥१२६॥

(१२६) उपरोक्त प्रायश्चित्त का जो ब्रह्महत्या के हेतु बतलाया है उसका चतुर्थांश क्षत्रिय की हत्या करने में करे और वैश्य के वध करने की दशा में अठवां भाग और शूद्र की हत्या करने की दशा में सोलहवां भाग जानना।

अकामतस्तु राजन्यं विनिपात्य द्विजोत्तमः।
वृषभैकसहस्रा गा दद्यात्सुचरितव्रतः ॥१२७।

(१२७)❀ जब कोई ब्राह्मण अनिच्छा से व अज्ञानतासेकिसी

+ श्लोक १२२ से १२४ तक के प्रायश्चित्तकेवल पाप करके अनादर से दिन व्यतीत करने और पाप से दुःख भोगने के अर्थ हैं जिससे दूसरों को पाप से घृणा हो।

+ कतिपय मनुष्यों को शङ्का होगी कि प्रत्येक प्रायश्चित्त में ब्राह्मण को भी दान देना लिखा है इसे ब्राह्मणों ने

क्षत्रिय का वध कर डाले तो एक सहस्र गाय और एक बैल प्रायश्चित्तार्थ दूसरे ब्राह्मण को दे।

त्र्यब्दं चरेद्वा नियतो जटी ब्राह्मणो व्रतम्।
वसन्दूरतरे ग्रामाद्वृक्षमूलनिकेतनः ॥ १२८ ॥

(११८) अथवा यथाविधि सिर पर जटा रखाये गाव से बहुत अति दूर किसी वृक्ष की जड़ में निवास कर तीन वर्ष पर्यन्त ब्रह्महत्या वाले प्रायश्चित्त को करे।

एतदेव चरेदब्दं प्रायश्चित्तं द्विजोत्तमः।
प्रमाप्य वैश्यं वृत्तस्थं दद्याच्चैकशतं गवाम् ॥१२९॥

(१२९) ब्राह्मण वैश्य की हत्या करके एक वर्ष पर्यन्त ब्रह्महत्या के प्रायश्चित्त में व्यतीत करता हुआ व्रत करे अथवा एक सौ गऊ दान करे।

एतदेव व्रतं कृत्स्नं षण्मासान् शूद्रहा चरेत्।
वृषभैकादशा वापि दद्याद्विप्राय गाः सिताः ॥१३०॥

(१३०) ब्राह्मण शूद्र के वध करने में छः मास पर्यन्त ब्रह्महत्या के प्रायश्चित्त को करे और खेत बैल और दस गऊ ब्राह्मण को देवे यह भी अज्ञानता से वध करने में जानता इन सब व्रतों के करने में कपाल ध्वजा को त्याग देना चाहिये।

मार्जारनकुलौ हत्वा चाषं मण्डूकमेव च।
श्वगोधोलूककाकांश्च शूद्रहत्याव्रतं चरेत् ॥१३१॥

(१३१) बिल्ली, नेवला, नीलकण्ठा, मेंढक, कुत्ता, गोह, उल्लू कौआ इनमें से किसी एक की हिंसा करके शूद्र हत्या का प्रायश्चित्त करे अर्थात् उनकी हिंसा शूद्र की हत्या के समान समझे।

किया है परन्तु शङ्का निर्मूल है क्योंकि प्रत्येक रोग की औषधि मुख द्वारा खाते हैं।

पयः पिबेत्त्रिरात्रं वा योजनं वाऽध्वनो व्रजेत् ।
उपस्पृशेत्स्रवन्त्यां वा सूक्तं वाब्दैवतं जपेत् ॥१३२॥

(१३२) अथवा तीन रात्रि दूध पीवे और यदि अशक्त हो तो तीन रात्रि पर्यन्त चार कोस चले, यह भी न हो सके तो तीन रात्रि नदी में स्नान करे, यह भी न हो सके तो आपोहिष्ठा नाम वाले सूक्त का जप कर यह प्रायश्चित अज्ञानता से वध करने का है ।

अग्निं कार्ष्णायसीं दद्यात्सर्पं हत्वा द्विजोत्तमः ।
पलालभारकं षण्ढे सैसकं चैकमाषकम् ॥१३३॥

(१३३) सांप को मारे तो लोहे का दण्ड जिसकी वस्तु उत्तम हो ब्राह्मण को देवे और नपुन्सक की हत्या करे तो एक बोझ पलाल को और एक माशा सीसा इन दोनों को देवे ।

घृतकुम्भं वराहे तु तिलद्रोणं तु तित्तिरौ ।
शुके द्विहायनं वत्सं क्रौञ्चं हत्वा त्रिहायनम् ॥१३४॥

(१३४)+ सुअर की हिंसा करने में एक घी का घड़ा और तीतर के वध करने में एक द्रोण तिल और सुआ की हिंसा करने में दो वर्ष का बछड़ा ।

हत्वा हंसं बलाकां च बकं बर्हिणमेव च ।
वानरं श्येनभासौ च स्पर्शयेद्ब्राह्मणाय गाम् ॥१३५॥

(१३५) हंस, बलाका, बगुला, मोर, बन्दर, श्येन, बाज)

+ कतिपय सज्जन इन प्रायश्चित्तों पर तर्क करना आरम्भ करेंगे परन्तु नियम व उपनियम है जो राजा के वस में होते हैं उनमें तर्क से काम नहीं चलता। बुद्धि सम्बन्धी तर्क केवल तत्वज्ञान तथा धर्म के सम्बन्ध में लाभदायक होता है ।

भास इन सब से किसी एक का वध करने पर ब्राह्मण को गऊ देवे।

वासो दद्यादूयं हत्वा पञ्च नीलान्वृषान्गजम् ।
अजमेषावनड्वाहं खरं हत्वैकहायनम् ॥१३६॥

(१३६) घोड़ा वध करके वस्त्र देवे, हाथी की हिंसा करके पाँच बैल ब्राह्मण को देवे, बकरा भेड़ा इनमें से किसी की हत्या करके एक बैल देवे, गधे का वध करके एक वर्ष का बछड़ा देवे।

क्रव्यादस्तु मृगान्हत्वा धेनुं दद्यात्पयस्विनीम् ।
अक्रव्यादान्वत्सतरीमुष्ट्रं हत्वा तु कृष्णलम् ॥१३७॥

(१३७) गीदड़ आदि कच्चे माँस भक्षी पशुओं का वध करके दुग्ध देती हुई गऊ देवे और हिरण आदि कच्चा मांस न खाने वाले पशुओं की हिंसा करके बछिया देवे और ऊँट की हत्या करके एक रत्ती सोना देवे।

जीनकार्मुकवस्तावीन्पृथग्दद्याद्विशुद्धये ।
चतुर्णामपि वर्णानां नारीहत्वानवस्थिताः ॥१३८॥

(१३८) १-ब्राह्मण, २-क्षत्रिय, ३-वैश्य, ४-शूद्र चारों वर्णों की व्यभिचारिणी स्त्री की हत्या में यथाक्रम १—चकरा, भेड़ा, २—धनुष, चर्म पट को देवे।

दानेन वधनिर्णेकं सर्पानामशक्नुवन् ।
एकैकशश्चरेत्कृच्छ्रं द्विजः पापापनुत्तये ॥१३९॥

(१३९) दान द्वारा सब पापों के निवारण करने में असमर्थ हो तो द्विजन्मा एक २ के वध करनेमें एक २ कृच्छ्र व्रत करे।

अस्थिमतां तु सत्त्वानां सहस्रस्य प्रमापणे।

पूर्णे चानस्यनस्थ्नां तु शूद्रहत्याव्रतं चरेत् ॥१४०॥

(१४०) हड्डी रखने वाले सहस्र जीवधारी और गाड़ी भर बिना हड्डी वाले जीवधारियों की हिंसा करने में शूद्र हत्या का प्रायश्चित्त करे।

किंचिद् व तु विप्राय दद्यादस्थिमतां वधे।

अनस्थ्नां चैव हिंसायां प्राणायामेन शुद्धयति ॥१४१॥

(१४१) हाड़ वाले प्राणी के हिंसा करने में ब्राह्मण को कुछ देवे और वे हड्डी वाले प्राणियों की हत्या करनेमें प्राणायामकरे

फलदानां तु वृक्षाणां छेदने जप्यमृक्शतम्।

गुल्मवल्लीलतानां च पुष्पितानां चवीरुधाम्॥१४२॥

(१४२) फल देने वाला वृक्ष अर्थात् आम आदि गुल्म वल्ली अर्थात् गुर्चलता व पुष्पित लड़ा इनमें से एक एक के तोड़ने और उखाड़ने में गायत्री आदि ऋचा सौ बार जाप करे।

अन्नाद्यजानां सत्त्वानां रसजानां च सर्वशः

फलपुष्पोद्भवानां च घृतप्राशो विशोधनम् ॥१४३॥

(१४३) प्रत्येक प्रकार के अन्न, गुड़ आदि रस व फल व फूल इन सब में से उत्पन्न हुये जीवों की हत्या करने में घृत नामी व्रत से शुद्ध होता है।

कृष्टजानामोषधीनां जातानां च स्वयं वने।

वृथालम्भेऽनुगच्छेद्गां दिनमेकं पयोव्रतः ॥१४४॥

(१४४) गेहूँ आदि अन्न जो जोतने से उत्पन्न होता है और औषधियां जो वन में स्वयमेव उत्पन्न होती है उनको निष्प्रयोजन उखाड़ने में एक दिन दूध पीकर रहे और गऊ के पीछे चले

एतैर्व्रतैरपोह्यं स्यादेनो हिंसासमुद्भवम् ।
ज्ञानाज्ञानकृतं कृत्स्नं शृणुतानाद्यभक्षणे ॥१४५॥

(१४५) ज्ञान में व अज्ञान में प्राणियों की हिंसा की इस पाप को इन व्रतों के द्वारा निवृत्त करने चाहिये और अभक्ष्य भक्षण करने मे प्रायश्चित्त कहते हैं।

अज्ञानाद्वारुणीं पीत्वा संस्कारेणैव शुद्ध्यति ।
मतिपूर्वमनिर्देश्यं प्राणान्तिकमिति स्थितः ॥१४६॥

(१४६) अज्ञानता से गौड़ी व माधवी नाम सुरापान करे तो दूसरे सस्कार से पवित्र होता है और जान कर पीवे तो प्राणान्त से पवित्र होता है यह शास्त्राज्ञा है।

अपः सुराभाजनस्था मद्यभाण्डस्थितास्तथा ।
पञ्चरात्रं पिबेत्पीत्वा शङ्खपुष्पीश्रितः पयः ॥१४७॥

(१४७) पैष्ठी तथा मद्य नाम सुरापात्र में रखा हुआ पानी पीने मे शखपुष्पी नाम औषधि उष्ण दूध के साथ तीन रात्रि तक पीवे।

स्पृष्ट्वा दत्त्वा च मदिरां विधिवत्प्रतिगृह्य च ।
शूद्रोच्छिष्टाश्च पीत्वापः कुशवारि पिबेत्त्र्यहम् ॥१४८॥

(१४८) सुरा को छूकर, देकर लेकर और शूद्र के उच्छिष्ट (जूठे) जल को पीकर कुश से पके हुये जल को तीन दिन पर्यन्त पीवे।

ब्राह्मणस्तु सुरापस्य गन्धमाघ्राय सोमपः ।
प्राणानप्सु त्रिरायम्य घृतं प्राश्य विशुद्ध्यति॥१४९॥

(१४९) सोम नाम यज्ञ करने वाला ब्राह्मण यदि सुरापान

घाले की गन्ध को सूँघे तो जल में तीन प्राणायम करके घी का
ोजन करने से शुद्ध होता है।

अज्ञानात्प्राश्य विण्मूत्रं सुरासंस्पृष्टमेव च।
पुनः संस्कारमर्हन्ति त्रयो वर्णा द्विजातयः ॥ १५० ॥

(१५०) ※ जो वस्तु मूत्र, विष्ठा और सुरा से छू गयी हो
नमें से किसी एक को अज्ञानता से भोजन करे तो ब्राह्मण क्षत्रिय
ैश्य तीनों पुनः संस्कार के योग्य होते हैं।

वपनं मेखलादण्डौ भैक्षचर्याव्रतानि च।
निवर्तन्ते द्विजातीनां पुनः संस्कार कर्मणि ॥ १५१ ॥

(१५१) दूसरे संस्कार में मुण्डन व मेखला व दण्ड व भिक्षा
ादि नहीं होने चाहिये।

अभोज्यानां तु भुक्त्वान्नं स्त्रीशूद्रोच्छिष्टमेव च।
जग्ध्वामांसमभक्ष्यं च सप्तरात्रं यवान्पिबेत् ॥ १५२ ॥

(१५२) जिनका अन्न खाना उचित नहीं उनका अन्न व शूद्र
ौर स्त्री का उच्छिष्ट अन्न, तथा मांस जो सर्वथा अभक्ष्य है
नमें से किसी एक को भोजन करने में जौ के सत्तू सात दिन
क पीवे।

शुक्तानि च कषायांश्च पीत्वा मेध्यानपि द्विजः।
तावद्भवत्यप्रयतो यावत्तन्न व्रजत्यधः ॥ १५३ ॥

※ १५० वें श्लोक में सुरा से छुई हुई वस्तु के भक्षण करने
दूसरा सम्कार करना बतलाया है जो लोग मांस और
मदिरा को निर्दोष बतलाते हैं वह ध्यान दें कि वह क्षेपक के
या नहीं।

(१५३) + शुक्त और कषाय वस्तु यदि पवित्र हो हो तो भी उनको तबतक शुद्ध नहीं होता जबतक कि वह पचते नहीं हैं।

विड्वराहखरोष्ट्राणां गोमायोः कपिकाकयोः ।
प्राश्य मूत्रपुरीषाणि द्विजश्चान्द्रायणं चरेत् ॥१५४॥

(१५४) गाँव का सुअर, गदहा ऊँट, कौवा, सियार इनका मूत्र और विष्ठा भोजन करने में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य चान्द्रायण व्रत करें।

शुष्काणि भुक्त्वा मांसानि भौमानि कवकानि च ।
अज्ञातं चैव सुनात्थमेतदेव व्रतं चरेत् ॥ १५५ ॥

(१५५) सूखा मांस और भूमि से उत्पन्न कुकुर मुत्ता आदि और जब ज्ञान न हो कि भक्षण योग्य है या नहीं उसको खाकर उपरोक्त व्रत करें।

क्रव्यादसूकरोष्ट्राणां कुक्कुटानां च भक्षणे ।
नरकाकखराणां च तप्तकृच्छ्रं विशोधनम् ॥ १५६ ॥

(१५६) कच्चा माँस भक्षण करने वाले सिंह आदि, गाँवका सूअर, ऊँट मुर्गी मनुष्य, कौवा, गदहा इनमें से एक के माँस भक्षण करने से पतित कृच्छ्रव्रत करे।

मासिकान्नं तु योऽश्नीयादसमावर्तको द्विजः ।
सत्रीण्यहान्युपवसेदेकाहं चोदके वसेत् ॥ १५७ ॥

(१५७) जो ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य श्राद्ध का अन्न अर्थात् वृद्ध और ऋषि की सेवार्थ रक्खा हुआ अन्न स्वयं भक्षण करे वह एक मास पर्यन्त जल में रहे।

+ शुक्त उसको कहते हैं स्वयमेव मीठा हो और अधिक दिवस व्यतीत हो जाने के कारण या पानी में रहने के कारण खट्टा हो जावे।

ब्रह्मचारी तु योऽश्नीयान्मधु मांसं कथंचन।
स कृत्वा प्राकृतं कृच्छ्रं व्रतशेषं समापयेत् ॥ १५८॥

(१५८) + वैदिक धर्म के अनुसार चलने वाला ब्रह्मचारी अज्ञानता से सुरा पान या मांस भक्षण करे तो प्राजापत्य कृच्छ्र व्रत को करे और शेष व्रतों को भी प्रायश्चित्त में बतलाते हैं।

विडालकाकाखूच्छिष्टं जग्ध्वाश्वनकुलस्य च।
केशकीटावपन्नं च पिबेद्ब्रह्मसुवर्चलाम् ॥ १५६ ॥

(१५६) विडाल, कौआ, मूसा, कुत्ता, नेवला इनमें से किसी एक से मिश्रित वस्तु को भोजन करने सुवर्चला नाम औषधि से क्वाथ किये हुये जल को पिवे।

अभोज्यमन्नं नात्तव्यमात्मनः शुद्धिमिच्छता।
अज्ञानभुक्त तूत्तार्यं शोध्यं वाऽप्याशु शोधनैः ॥१६०॥

(१६०) अपने को शुद्ध रखने का इच्छुक मनुष्य अभक्ष्य भोजन भक्षण न करे और अज्ञानता से भोजन किया हो तो वमन (कै) करे यह भी न हो सके तो शीघ्र प्रायश्चित्त करके अपनी आत्मा को शुद्ध करे।

एषोऽनाद्यादनस्योक्तो व्रतानां विविधो विधिः।
स्तेयदोषापहर्तॄणां व्रतानां श्रूयतां विधिः ॥१६१ ॥

(१६१) अभक्ष्य पदार्थ के भोजन करने में यह प्रायश्चित्त कहा अब चोरी के पाप के प्रायश्चित को कहते हैं।

× मनुजी ने प्रत्येक कथन पर माँस, मदिरा, चोरी, झूठ आदि को पाप बतलाया है और यहाँ भी ब्रह्मचारी अर्थात् वेदानुसार कर्म करने वाले को माँस मदिरा का निषेध और प्रायश्चित्त बतलाया है।

धान्यान्नधनचौर्याणि कृत्वा कामाद्द्विजोत्तमः ।
स्वजातीयगृहादेव कृच्छ्राब्देन विशुद्ध्यति ॥ १६२ ॥

(१६२) ब्राह्मण ब्राह्मण के घर से अनिच्छा से अन्न चुराकर शुद्धि के अर्थ एक वर्ष पर्यन्त कृच्छ व्रत को करे परन्तु देश, धन और वस्तु का परिणाम, देश दशा, स्वामी की दशा आदि को देखकर अधिक भी जानना इसी प्रकार जो भविष्य में कहेंगे उनमें भी जानना ।

मनुष्याणां तु हरणे स्त्रीणां क्षेत्रगृहस्य च ।
कूपवापीजलानां च शुद्धिश्चान्द्रायणं स्मृतम् ॥१६३॥

(१६३) + मनुष्य, बालक वा स्त्री के अपहरण में, और घर, खेत बावली, कुआं आदि को छल से छीनने की दशा में चन्द्रायण व्रत करे ।

द्रव्याणामल्पसाराणां स्तेयं कृत्वान्यवेश्मतः ।
चरेत्सांतपनं कृच्छ्रं तन्निर्यात्यात्मशुद्धये ॥१ ६४ ॥

(१६४) अल्प मूल्य और थोड़े अर्थ की वस्तु के चुराने में सान्तपन कृच्छ व्रत करे और चोरी किया हुआ पदार्थ उसके स्वामी को देवे यह बात सब चोरी के प्रायश्चित्त में जानना ।

भक्ष्यभोज्यापहरणे यानशय्यासनस्य च ।
पुष्पमूलफलानां च पञ्चगव्यं विशोधनम् ॥१६५॥

(१६५) चबेना आदि भात, सवारी, शय्या आसन, फूल, मूल, फल इनमें से किसी एक के चुराने में पञ्चगव्य को पीवे अर्थात् गऊ का दूध, घी, गोबर, मूत्र और दही पीवे ।

+ कुआँ बावली और खेत आदि के चुराने से तात्पर्य बलको बलात् अपहरण करने से है।

तृणकाष्ठद्रुमाणां च शुष्कान्नस्य गुडस्य च ।
चैलचर्मामिषाणां च त्रिरात्रं स्यादभोजनम् ।१६६।

(१६६) तृण, काष्ठ, सूखा वृक्ष, अन्न गुड़, वस्त्र, चमड़ा मांस इसमें से किसी एक के चुराने में तीन दिन पर्यन्त व्रत (उपवास) करना चाहिये।

मणिमुक्ताप्रवालानां ताम्रस्य रजतस्य च ।
अयःकांस्योपलानां च द्वादशाहं कणान्नता ।१६७।

(१६७) मणि, मुक्ता, मूँगा, ताँबा, लोहा, रुपार, चाँदी, कांस, पत्थर, इनमें से किसी एक के चुराने में बारह दिन पर्यन्त चावल के कणों को खाकर निर्वाह करे।

कार्पासकीटजोर्णानां द्विशफैकशफस्य च ।
पक्षिगन्धौषधीनां च रज्ज्वाश्चैव त्र्यहं पयः ।१६८।

(१६८) कपास, रेशम, तथा ऊन से बने वस्त्र, एक खुर वाले पशु, पक्षी सुगन्धि (इत्र), औषधि इनमें से किसी एक के चुराने में तीन दिन पर्यन्त दूध पीवे (यहाँ सब वस्तु चुराने में) एकरूप प्रायश्चित्त कहा, इसी प्रकार चोरी में जहाँ पर एकरूप प्रायश्चित्त है वहां पर जानना चाहिये।

एतैर्व्रतैरपोहेत पापं स्तेयकृतं द्विजः ।
अगम्यागमनीयं तु व्रतैरभिरपानुदेत् ।१६६।

(१६६) इन व्रतों के द्वारा चोरी के पाप से मुक्त होवे और जो स्त्री भोग करने के योग्य नहीं है उससे रमण (भोग) करने में जो पाप है उसको निम्नोक्त व्रत द्वारा दूर करे।

गुरुतल्पव्रतं कुर्याद्रेतः सिक्त्वा स्वयोनिषु ।
सख्युः पुत्रस्य च स्त्रीषु कुमारीष्वन्त्यजासु च ।१७०।

(१७०) प्रत्येक सम्बन्धी, मित्र और पुत्र की स्त्री, कुँवारी और चाण्डाली इनमें से किसी १ से अज्ञानता से रति करने में उस प्रायश्चित्त को करे जो गुरुपत्नी से भोग करने में होता है।

पैतृष्वसेयीं भगिनीं स्वस्त्रीयां मातुरेव च।
मातुश्च भ्रातुस्तनयां गत्वा चान्द्रायणं चरेत् ।।१७१।

(१७१) + मौसी की पुत्री, फूफी की पुत्री, मामा की पुत्री, जो अपनी भगिनी है इनमें से किसी १ के साथ भोग करने में चान्द्रायण व्रत करे। परन्तु यह अज्ञानता वश १ वार दूसरे पुरुष से रमण करे तब जानना क्योंकि प्रायश्चित्त थोड़ा है इससे कहते हैं

एतास्तिस्रस्तु भार्यार्थे नोपयच्छेत्तु बुद्धिमान्।
ज्ञातित्वेनानुपेयास्ताः पतति ह्युपयन्नधः ॥१७२॥

(१७२) बुद्धिमान् पुरुष इन तीनों के साथ विवाह करके भोजन करे क्यों कि वह सम्बन्धी होने से रमण करने योग्य नहीं है उनमे रति करने में नरक में जाता है।

अमानुषीषु पुरुषं उदक्यायामयोनिषु।
रेतः सिक्त्वा जले चैव कृच्छ्रं सांतपनं चरेत् ॥१७३॥

(१७३) मनुष्य के अतिरिक्त किसी और प्राणी से भोग करने का रजस्वला स्त्री से भोग करने या जल में वी डालने सान्तपन कृच्छ्र व्रत को प्रायश्चित्तार्थ धारण करे।

मैथुनं तु समासेव्य पुंसि योषिति वा द्विज
गोयानेऽप्सु दिवा चैव सवासाः स्नानमाचरेत् ।१७४।

+ १७० वें और १७१ वें श्लोकों में जो प्रायश्चित्त कहा है वह अज्ञानता में रति करने की दशा में कहा है।

(१७४) + ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य यदि गाड़ी में चढ़कर वा जल में घुस कर व दिन के समय स्त्री से भोग करे तो वस्त्रों सहित स्नान करे।

चाण्डालान्त्यस्त्रियो गत्वा भुक्त्वा च प्रतिगृह्य च।
पतत्यज्ञानतो विप्रो ज्ञानात्साम्यं तु गच्छति ॥१७५॥

(१७५) ब्राह्मण अज्ञानता से चाण्डाली और अन्त्यज (म्लेच्छ) की स्त्री से दान लेकर पतित होता है और जान कर भोग करने में चाण्डाल व म्लेच्छ हो जाता है।

विप्रदुष्टां स्त्रियं भर्ता निरुन्ध्यादेकवेश्मनि।
यत्पुंसः परदारेषु तच्चैनां चारयेद्व्रतम् ॥१७६॥

(१७६) जिस स्त्री ने पर पुरुष में चित्त लगाया और उसे पति एक घर में अवरुद्ध (बन्द) करके रक्खे और जो व्रत पुरुष को पर स्त्री रमण में कहा है वह व्रत स्त्री को करावे।

सा चेत्पुनः प्रदुष्येत्तु सदृशेनोपयन्त्रिता।
कृच्छ्रं चान्द्रायणं चैव तदस्याः पावनं स्मृतम् ।१७७।

(१७७) जो स्त्री अपने स्वजाति पुरुष से एकवार भोग करके अपराधी हुई और उसका प्रायश्चित्त करके फिर अपने स्वजाति पुरुष से रमण करे तो वह स्त्री प्राजापत्य तथा चान्द्रायण व्रत करे

यत्करोत्येकरात्रेण वृषलीसेवनाद्द्विजः।
तद्भैक्ष्यभुग्जपन्नित्यं त्रिभिर्वर्षैर्व्यपोहति ॥१७८॥

+ १७४ वें श्लोक में लोंडेवाजी और दिन के भोग को एक समान बतलाने से यह श्लोक सम्मिलित किया हुआ प्रतीत होता है क्योंकि लौंडेवाजी के समान दूसरा कोई पाप नहीं उसको दिन के भोग के तुल्य बतलाना मनुजी ऐसे ऋषि का कार्य नहीं।

(१७८) ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य यदि शूद्रों की स्त्री से एक रात रमण करके जो पाप करते हैं तो उसकी निवृत्ति के अभिप्राय से तीन वर्ष पर्यन्त भिक्षावृत्ति से निर्वाह करते हुये जप करना चाहिये क्योंकि इससे धर्म की बड़ी हानि करते हैं ।

एषापापकृतामुक्ता चतुर्णामपि निष्कृतिः ।

पतितः संप्रयुक्तानामिमाः शृणुत निष्कृतीः ।१७९।

(१७९) चारों वर्णों के पाप का यह प्रायश्चित्त कहा अब पतितों से संसर्ग व व्यवहार करने के प्रायश्चित्त को सुनो ।

संवत्सरेण पतति पतितेन सहाचरन् ।

याजनाध्यापनाद्योनान्न तु यानासनाशनात् ।१८०।

(१८०) पतित लोगों के साथ जो कोई एक वर्ष पर्यन्त एक सवारी व एक आसन पर बैठे वा एक संग भोजन करे तो उसी के तुल्य होता है और पतितों को यज्ञ करावे वा जनेऊ कराके सावित्री (गायत्री) सुनादे वा विवाहादि सम्बन्ध करे तो शीघ्र उसी तुल्य होता है ।

यो येन पतितेनैषां संसर्गं याति मानवः ।

स तस्यैव व्रतं कुर्यात्तत्संसर्गविशुद्धये ।१८१।

(१८१) जैसे पापी से व्यवहार किया जावे वैसा ही प्रायश्चित्त करने से उससे शुद्ध होता है अर्थात् पापी से व्यवहार से स्वयं पापी हो जाता है ।

पतितस्योदकं कार्यं सपिण्डैर्बान्धवैर्बहिः ।

निन्दितेऽहनि सायाह्ने ज्ञात्यृत्विग्गुरुसन्निधौ ।१८२।

(१८२) × पतित मनुष्य यदि अपना सम्बन्धी हो, वा अपने

×पतित से अभिप्राय यह है कि जो वर्णाश्रमधर्म से पृथक्हो

कुल का हो, उसको गुरु और यज्ञ कराने वाले ऋत्विज के सन्मुख सन्ध्या समय नित्य दिन में जल देवे।

दासी घटमपां पूर्णं पर्यस्येत्प्रेतवत्पदा।
अहोरात्रमुपासीरन्नशौच बान्धवैः सह ॥१८३॥

(१८३) दासी जल पूरित घट को दक्षिण दिशा को मुख करके खड़े होकर पॉव से ढुलका दे, और सपिण्डी जन बान्धवों सहित एक दिन उपवास करें।

निवर्तेरंश्च तस्मात्तु संभाषणसहासने।
दायाद्यस्य प्रदानं च यात्रा चैव हि लौकिकी ।१८४।

(१८४) पतित मनुष्य से सम्भाषण करना तथा एक आसन पर बैठना व उसको पैतृक धन का भाग देना, व सांसारिक व्यवहार करना अनुचित है।

ज्येष्ठता च निवर्तेत ज्येष्ठावाप्यं च यद्धनम्।
ज्येष्ठांशं प्राप्नुयाच्चास्य यवीयान्गुणतोऽधिकः ।१८५।

(१८५) ॐ यदि अनुज (छोटा भाई) ज्येष्ट भ्राता से अधिक गुणवान तथा शीलवान् हो तो वह ज्येष्ट भ्राता के भाग को पावे

प्रायश्चित्ते तु चरिते पूर्णकुम्भमपां नवम्।
तेनैव सार्धं प्रास्येयुः स्नात्वा पुण्ये जलाशये ।१८६।

(१८६) जब पतित का प्रायश्चित्त किया जावे अर्थात् ईसाई या मुसलमान बने हुए को शुद्ध किया जावे तो कुटुम्बी लोगों को

गया हो जैसे कोई ईसाई व मुसलमान, जैनी वद्धपारसी आदि होजावे तो वैदिक संस्कारों से पृथक हो जाने से पवि हो जाता है

ॐ १८५ व श्लोक का यहाँ कोई सम्बन्ध नहीं प्रतीत होता है ऐसा ज्ञात होता है कि यह मूल से यहां पर लिखा गया है।

चाहिये कि उसको शुद्ध जल से स्नान कराकर जल के घड़े को उसके साथ व्यवहार में लावें।

स त्वप्सु तं घटं प्रास्य प्रविश्य भवनंस्वकम् ।
सर्वाणि ज्ञातिकार्याणि यथापूर्वं समाचरेत् ॥१८७॥

(१८७) और वह पतित उस घड़े के जल को डाल कर अपने घर में चला जावे और अपने वर्ण के सब कर्मों को पूर्ववत यथाविधि करे।

एतदेव विधिं कुर्याद्योषित्सु पतितास्वपि ।
वस्त्रान्न पानं देयं तु वसेयुश्च गृहान्तिके ॥१८८॥

(१८८) पतित स्त्री के लिये भी यही नियम है और पतित स्त्री को घर के सामने निवास स्थान और अन्न जल व वस्त्र देना चाहिये।

एनस्विभिरनिर्णिक्तैर्नार्थं किंचित्सहाचरेत् ।
कृतनिर्णेजनांश्चैव न जुगुप्सेत कर्हिचित् ॥१८९॥

(१८९) प्रायश्चित्त किये बिना पापियों के साथ किसी प्रकार का वर्ताव न करे और जब प्रायश्चित्त करें तब उनकी निन्दा वा उनसे घृणा भी न करें।

बालघ्नांश्च कृतघ्नांश्च विशुद्धानपि धर्मतः ।
शरणागतहन्तृंश्च स्त्रीहन्तृंश्च न संवसेत् ॥१९०॥

(१९०) बालहत्या करने वाला, कृतघ्न, शरणागत को हनन करने वाला तथा स्त्री को मारने वालों के साथ प्रायश्चित्त होने पर भी व्यवहार न करे।

येषां द्विजानां सावित्री नानूच्येत यथाविधि ।
तांश्चारयित्वा त्रीन्कृच्छ्रान्यथाविध्यपनाययेत् ॥

(१६१) जिस ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य का वेदारम्भ संस्कार अनियमित विधि से हुआ है। उसको तीन कृच्छ्र व्रत कराके यथाविधि फिर जनेऊ करावे।

प्रायश्चित्तं चिकीर्षन्ति विकर्मस्थास्तु ये द्विजाः।
ब्राह्मणा च परित्यक्तास्तेषामप्येतदादिशेत् ॥१६२॥

(१६२) प्रतिकूल कर्म अर्थात् शूद्रकी सेवा करनेवाला और वेद पाठन करने वाला ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, प्रायश्चित्त करना चाहें तो उनको भी तीन कृच्छ्र व्रत का उपदेश करना चाहिये।

यद्गर्हितेनार्चयन्ति कर्मणा ब्राह्मणा धनम्।
तस्योत्सर्गेण शुद्ध्यन्ति जप्येन तपसैव च ॥१६३॥

(१६३) जो ब्राह्मण घृणित कर्मों द्वारा जो धन सञ्चयकरते हैं वह उस धन का परित्याग करके, गायत्री का जप करने और तप करने से शुद्ध होते हैं।

जपित्वा त्रीणि सावित्र्याः सहस्राणि समाहितः।
मासं गोष्ठे पयः पीत्वा मुच्यतेऽसत्प्रतिग्रहात्॥१६४॥

(१६४) ब्राह्मण निश्चिन्त होकर एक मास पर्यंत सदा तीन सहस्र गायत्री का जप करता हुआ गोशाला में निवास कर केवल दूधपान करने से निकृष्ट धन दान ग्रहण करने के पाप से छुटकारा पाता है।

उपवासकृशं तं तु गोव्रजात्पुनरागतम्।
प्रणतं प्रति पृच्छेयुः साम्यं सौम्येच्छसीतिकिम्॥१६५॥

(१६५) व्रतधारी व गोशाला से कृशाङ्ग हुये ब्राह्मण से सज्जन पुरुष पूछें कि हे ब्राह्मण! क्या हम सबके समान होने की इच्छा करते हो।

चाहिये कि उसको शुद्ध जल से स्नान कराकर जल के घड़े को उसके साथ व्यवहार में लावें।

स त्वप्सु तं घटं प्रास्य प्रविश्य भवनंस्वकम्।
सर्वाणि ज्ञातिकार्याणि यथापूर्वं समाचरेत् ॥१८७॥

(१८७) और वह पतित उस घड़े के जल को डाल कर अपने घर में चला जावे और अपने वर्ण के सब कर्मों को पूर्ववत यथाविधि करे।

एतदेव विधिं कुर्याद्योषित्सु पतितास्वपि।
वस्त्रान्न पानं देयं तु वसेयुश्च गृहान्तिके ॥१८८॥

(१८८) पतित स्त्री के लिये भी यही नियम है और पतित स्त्री को घर के सामने निवास स्थान और अन्न जल व वस्त्र देना चाहिये।

एनस्विभिरनिर्णिक्तैर्नार्थं किंचित्सहाचरेत्।
कृतनिर्णेजनांश्चैव न जुगुप्सेत कर्हिचित् ॥१८९॥

(१८९) प्रायश्चित्त किये बिना पापियों के साथ किसी प्रकार का वर्ताव न करे और जब प्रायश्चित्त करें तब उनकी निन्दा वा उनसे घृणा भी न करें।

बालघ्नांश्च कृतघ्नांश्च विशुद्धानपि धर्मतः।
शरणागतहन्तॄंश्च स्त्रीहन्तॄंश्च न संवसेत् ॥१९०॥

(१९०) बालहत्या करने वाला, कृतघ्न, शरणागत को हनन करने वाला तथा स्त्री को मारने वालों के साथ प्रायश्चित्त होने पर भी व्यवहार न करे।

येषां द्विजानां सावित्री नानूच्येत यथाविधि।
तांश्चारयित्वा त्रीन्कृच्छ्रान्यथाविध्युपनाययेत् ॥१९१॥

(१६१) जिस ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य का वेदारम्भ संस्कार अनियमित विधि से हुआ है। उसको तीन कृच्छ्र व्रत कराके यथाविधि फिर जनेऊ करावे।

प्रायश्चित्तं चिकीर्षन्ति विकर्मस्थास्तु ये द्विजाः।
ब्रह्मणा च परित्यक्तास्तेषामप्येतदादिशेत् ॥१६२॥

(१६२) प्रतिकूल कर्म अर्थात् शूद्रकी सेवा करनेवाला और वेद पाठन करने वाला ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, प्रायश्चित्त करना चाहें तो उनको भी तीन कृच्छ्र व्रत का उपदेश करना चाहिये।

यद्गर्हितेनार्जयन्ति कर्मणा ब्राह्मणा धनम्।
तस्योत्सर्गेण शुद्ध्यन्ति जप्येन तपसैव च ॥१६३॥

(१६३) जो ब्राह्मण घृणित कर्मों द्वारा जो धन सञ्चयकरते हैं वह उस धन का परित्याग करके, गायत्री का जप करने और तप करने से शुद्ध होते हैं।

जपित्वा त्रीणि सावित्र्याः सहस्राणि समाहितः।
मासं गोष्ठे पयः पीत्वा मुच्यतेऽसत्प्रतिग्रहात्॥१६४॥

(१६४) ब्राह्मण निश्चिन्त होकर एक मास पर्यंत सदा तीन सहस्र गायत्री का जप करता हुआ गोशाला में निवास कर केवल दूधपान करने से निकृष्ट धन दान ग्रहण करने के पाप से छुटकारा पाता है।

उपवासकृशं तं तु गोव्रजात्पुनरागतम्।
प्रणतं प्रति पृच्छेयुः साम्यं सौम्येच्छसीतिकिम्॥१६५॥

(१६५) व्रतधारी व गोशाला से कृशाङ्ग हुये ब्राह्मण से सज्जन पुरुष पूछें कि हे ब्राह्मण! क्या हम सबके समान होने की इच्छा करते हो।

सत्यमुक्त्वा तु विप्रेषु विकिरेद्यवसं गवाम् ।
गोभिः प्रवर्तिते तीर्थे कुर्युस्तस्य परिग्रहम् ॥१९६॥

(१९६) तब वह ब्राह्मण कहे कि भविष्य में अग्राह्य धन दान को ग्रहण न करेंगे सत्य कहते हैं ऐसा कहकर गऊ के भोजनार्थ घास देवे उसकी दी हुई घास को गऊ भोजन करे तब सज्जन लोग उसको परिग्रहण करें।

व्रात्यानां याजनं कृत्वा परेषामन्त्यकर्म च ।
अभिचारमहीनं च त्रिभिः कृच्छ्रैर्व्यपोहति ॥१९७॥

(१९८) यदि × व्रात्य लोगों को यज्ञ करावे और पिता व गुरु का जीव छोड़कर जिनका दाह करना अनुचित है उसको करके अभिचार अर्थात् मन्त्र विद्या द्वारा किसी को मारने अथवा पागल करने का प्रयत्न करके जब तक तीन कृच्छ्र व्रत करे तब तक शुद्ध नहीं होता।

शरणागतं परित्यज्य वेदं विप्लाव्य च द्विजः ।
सम्वत्सरे यवाहारस्तत्पापमपसेधति ॥१९८॥

(१९८) जो मनुष्य शरणागत को सहायता देकर उसको पृथक कर देता है या ऐसे मनुष्य को जिसके गुणहीन होने से वेद पढ़ने का ❀ अधिकारी नहीं है, वेद पढ़ाता है वह इस पाप के प्रायश्चित में एक वर्ष पर्यन्त जौ का भोजन करे।

× व्रात्य उसको कहते हैं कि जिसके संस्कार समय पर न हुये हों अधिकार उत्पन्न संस्कार और वेदारम्भ संस्कार असमय पर होने से पतित सावित्री या व्रात्य हो जाता है।

❀ वेदपाठ से वञ्चित पुरुष वह है कि जिनको व्याकरणादि शास्त्रों का ज्ञान न हो अथवा जो दुराचारी हों।

श्वसृगालखरैर्दष्टो ग्राम्यैः क्रव्याद्भिरेव च ।
नराश्वोष्ट्रवराहैश्च प्राणायामेन शुद्ध्यति ।१९९।

(१९९) कुत्ता, सियार, मनुष्य, गदहा, घोड़ा सुअर गाँव के रहने वाले विलार आदि इनमें से किसी एक से काटा हुआ मनुष्य प्राणायाम से शुद्ध होता है।

षष्ठान्नकालता मासं संहिताजप एव वा ।
होमाश्च सकला नित्यमपाङ्क्त्यानां विशोधनम् ।२००।

(२००) जो ब्राह्मण मास भक्षी तथा जो ब्रह्मणों की सगत में रहने के योग्य नहीं दोनों पापी एक मास पर्यन्त दो दिन उपवास करके तीसरे दिन सध्या को भोजन करें और वेद पाठ करें इससे शुद्ध होते हैं।

उष्ट्रयानं समारुह्य खरयानं तु कामतः ।
स्नात्वा तु विप्रो दिग्वासाः प्राणायामेन शुद्ध्यति।२०१।

(२०१) ऊंटगाड़ी व गदहे वाली गाड़ी में चढ़कर अथवा नग्न स्नान करके जबतक प्राणायाम न करे तबतक शुद्ध नहीं होता।

विनाद्भिरप्सु वाप्यार्तः शरीरं सन्निवेश्य च ।
सचैलो बहिराप्लुत्य गामालभ्य विशुद्ध्यति ।२०२।

(२०२) दुखी पुरुष पानी बिना विष्टा व मूत्र करें व जल ही में मूत्र वा विष्टा त्यागे तो गाव से बाहर जाकर नदी आदि में वस्त्रों सहित स्नान करके गऊ को छूकर शुद्ध होता है।

वेदोदितानां नित्यानां कर्मणां समतिक्रमे ।
स्नातकव्रतलोपे च प्रायश्चित्तमभोजनम् ।।२०३।।

(२०३) वेदोक्त निजकर्म में और ब्रह्मचर्य व्रत के भङ्ग हो जाने में एक दिन उपवास करें।

हुंकारं ब्राह्मणस्योक्त्वा त्वंकारं च गरीयसः ।
स्नात्वाऽनश्नन्नहः शेषमभिवाद्य प्रसादयेत् ॥२०४॥

(२०४) ब्राह्मण को "हूँ" ऐसा कहकर और वृद्ध लोगों को "तुम" ऐसा कहकर स्नान करे और उनको प्रसन्न करके प्राणायाम करके एक दिन उपवास करना चाहिये।

ताडयित्वा तृणेनापि कण्ठे वाबध्य वाससा ।
विवादे वा विनिर्जित्य प्रणिपत्य प्रसादयेत् ॥२०५॥

(२०५) यदि ब्राह्मण को तृण से भी भय देवा हो वा विवाद में जीता हुआ ऐसी दशा में गले में आँचल डालकर प्रणाम करके प्रसन्न करना चाहिये।

अवगूर्य त्वब्दशतं सहस्रमभिहत्य च ।
जिघांसया ब्राह्मणस्य नरकं प्रतिपद्यते ॥२०६॥

(२०६) ×ब्राह्मण के वध को शस्त्र उठाये पर वध न करे तो भी सौ वर्ष पर्यंत नरक में रहता है।

शोणितं यावतः पांसून्संगृह्णाति महीतले ।
तावन्त्यब्दसहस्राणि तत्कर्ता नरके वसेत् ॥२०७॥

(२०७) ब्राह्मण वध से उसका रक्तपात होकर पृथिवी के जितने कणों को भिगोता है उतने ही सहस्र वर्ष तक हत्यारा नरक में रहता है।

अवगूर्य चरेत्कृच्छ्रमतिकृच्छ्रं निपातने ।
कृच्छ्रातिकृच्छ्रौ कुर्वीत विप्रस्योत्पाद्य शोणितम्॥२०८॥

×शस्त्र उठावे परन्तु वध न करे तो यह पाप मन से हो चुका है अतएव इसकी शुद्धि करनी चाहिये।

(२०८) ब्राह्मण के वधार्थ शस्त्र उठाकर कृच्छ्र व्रतको करे और वध करने में अविकृच्छ् व्रत को करे तथा रक्तपात करने में कृच्छ् और अतिकृच्छ् दोनों व्रतों को करे।

अनुक्तनिष्कृतीनां तु पापनामपनुत्तये।
शक्ति चावेक्ष्य पापं च प्रायश्चित्तं प्रकल्पयेत्॥२०९॥

(२०९) जिस पाप का प्रायश्चित न लिखा गया हो उस पाप को निष्कृत करने के हेतु पापी की सामर्थ्य व दशा तथा पाप के छोटे बड़े होने का विचार करके उसका प्रायश्चित्त नियत करना चाहिये।

यैरभ्युपायैरेनांसि मानवो व्यपकर्षति।
तान्वोऽभ्युपायान्वक्ष्यामि देवर्षिपितृसेवितान् ॥२१०॥

(२१०) विद्वान् ऋषि और पितरों ने जो यत्न पुरुषों को पाप से छुटकारा पाने के बतलाये हैं तथा जिनके द्वारा मनुष्य पापों से छुटकारा पा जाते हैं हम उनको वर्णन करते हैं।

त्र्यहं प्रातस्त्र्यहं सायं त्र्यहमद्यादयाचितम्।
त्र्यहं परं च नाश्नीयात्प्राजापत्यं चरन्द्विजः ॥२११॥

+प्रायश्चित् विधि में सदा विद्वान् लोग कार्य करते हैं अतः बहुत से ऐसे कार्य हैं जो अधर्म हैं। परन्तु जिसका वर्णन नहीं आया उनके प्रायश्चित्तार्थ मनुजी ने २०९ वें श्लोक में विद्वानों की व्यवस्था को रक्खा।

जब तक इस प्रकार के व्रत होते थे तब तक लोगों को पाप से भय था और आपत्ति समय पर सहनशीलता की अति सामर्थ्य होती थी। कतिपय मनुष्य इन ही को दुख या आपत्ति समझते हैं परन्तु पाप का फल दुख ही होता है।

(२११) प्राजापत्य व्रत करता हुआ तीन दिन प्रातःकाल भोजन करे तत्पश्चात् तीन दिन सन्ध्या समय भोजन करे, फिर तीन दिन अयाचन जो प्राप्त हो उसे भोजन करे तदनन्तर तीन दिन उपवास करे।

गोमूत्रं गोमयं चीरं दधि सर्पिः कुशोदकम् ।
एकरात्रोपवासश्च कृच्छ्रं सांतपनं स्मृतम् ॥२१२॥

(२१२) गो मूत्र, गोबर, घी, दूध, दही, जल, कुशा सहित इन सबको एकत्र कर एक दिन पीवे और दूसरे दिन उपवास करे यह सान्तपन कृच्छ्र कहाता है और जब उपरोक्त वस्तुओं को एक-एक दिन में एक वस्तु का भोजन करे और सातवें-सातवें दिन उपवास करे यह महासान्तपन कृच्छ्र कहाता है।

एकैकं ग्रासमश्नीयात्त्र्यहाणि त्रीणि पूर्ववत् ।
त्र्यहं चोपवसेदन्त्यमतिकृच्छ्रं चरन्द्विजः ॥२१३॥

(२१३) अतिकृच्छ्र व्रत करता हुआ एक दिन प्रातःकाल एक ग्रास भोजन करे तथा एक दिन सायंकाल एक ग्रास भोजन करे तथा एक दिन अयाचन जो प्राप्त होवे उसका एक ग्रास भोजन करे फिर तीन दिन उपवास करे।

तप्तकृच्छ्रं चरन्विप्रो जलचीरघृतानिलान् ।
प्रतित्र्यहं पिवेदुष्णान्सकृत्स्नायी समाहितः ॥२१४॥

(२१४) कृच्छ्र व्रत करता हुआ निश्चिन्त (चिन्ता रहित) होकर करके ऊष्ण जल व दूध व घी व वायु चारों में से एक-एक को पवित एक-एक तीन-तीन दिन पीवे।

यतात्मनोऽप्रमत्तस्य द्वादशाहमभोजनम् ।
पराको नाम कृच्छ्रोऽयं सर्वपापापनोदनः ॥२१५॥

(२१५) चित्त को स्थिर रखकर तथा जितेन्द्रय होकर १२ दिन पर्यन्त यह व्रत करने से सब पापों से छुटकारा पा जाता है।

एकैकं ह्रासयेत्पिण्डं कृष्णे शुक्ले च वर्धयेत् ।
उपस्पृशंस्त्रिषवणमेतच्चान्द्रायणं व्रतम् ॥२१६॥

(२१६) चान्द्रायण व्रत उसको कहते हैं कि जब चन्द्र घटने लगे नित्य एक ग्रास (न्यून) करता जावे और जब चन्द्र बढ़ने लगे तो नित्य एक ग्रास बढ़ाता जावे। जैसे कृष्ण पक्ष की एकम (पड़वा) को १४ ग्रास खावे तो कृष्ण पक्ष की पन्द्रस को एक ग्रास भी न खावे अर्थात् उपवास करे और शुक्लपक्ष में बढ़ाते हुए पौर्णमासी को पन्द्रह ग्रास खावे।

एतमेव विधिं कृत्स्नमाचरेद्यवमध्यमे ।
शुक्लपक्षादिनियतश्चरंश्चान्द्रायणं व्रतम् ॥२१७॥

(२१७) यदि शुक्लपक्ष की पड़वा से यह व्रत आरम्भ किया जावे अर्थात् एक ग्रास से आरम्भ करे तो पूर्णमासी को पन्द्रह पूरे करे और कृष्ण पक्ष में घटाता जावे तो यह व्रत चन्द्रायण कहलाता है।

अष्टावष्टौ समश्नीयात्पिण्डान्मध्यन्दिने स्थिते ।
नियतात्मा हविष्याशी यतिचान्द्रायणं चरन् ॥२१८॥

(२१८) यदि हवन योग्य द्रव्य के आठ ग्रास दो पहर के समय दिन में एक बार एक मास पर्यन्त खाने चाहिये और जितेन्द्रिय होकर रहे तो यह यति चान्द्रायण कहलाता है।

चतुरः प्रातरश्नीयात्पिण्डान्विप्रः समाहितः ।
चतुरोऽस्तमिते सूर्ये शिशुचान्द्रायणं स्मृतम् ॥२१९॥

(२१९) चार ग्रास प्रातःकाल सूर्योदय समय खावे जावें और चार ग्रास सायंकाल को सूर्यास्त में भोजन किये जावें और

शेष दिन में कुछ न खाया जावे तो यह चान्द्रायण व्रत कहलाता है।

यथाकथञ्चित्पिण्डानां तिस्रोऽशीतीः समाहितः।
मासेनाश्नन्हविष्यस्य चन्द्रस्यैति सलोकताम् ॥२२०॥

(२२०) किसी प्रकार निश्चन्त होकर एक मास में हविष्य के २४० ग्रास भोजन करे तो चन्द्रलोक में जावे।

एतद्रुद्रास्तथादित्या वसवश्चाचरन्व्रतम्।
सर्वाकुशलमोक्षाय मरुतश्च महर्षिभिः ॥ २२१ ॥

(२२१) इस व्रत का रुद्र, आदित्य व सब लोगों ने आचरण कहा है और सब ऋषियों ने भी सब प्रकार के दुःखों से निवृत्त होने के अर्थ इसे ग्रहण किया है।

महाव्याहृतिभिर्होमः कर्तव्यः स्वयमन्वहम्।
अहिंसासत्यमक्रोधमार्जवं च समाचरेत् ॥ २२२ ॥

(२२२) आप नित्य महाव्याहृत से हवन करना, जीव हिंसा न करना, सत्य बोलना, क्रोध न करना, विनीत रहना इन सबको ग्रहण करे।

त्रिरह्नस्त्रिर्निशायां च सवासा जलमाविशेत्।
स्त्रीशूद्रपतितांश्चैव नाभिभाषेत कर्हिचित् ॥ २२३ ॥

(२२३) तीन बार दिन में और तीन बार रात्रि में वस्त्रों सहित स्नान करे और व्रतधारी, स्त्री व शूद्र व पतित लोगों से कदापि सम्भाषण न करें।

स्थानासनाभ्यां विहरेदशक्तोऽधः शयीत वा।
ब्रह्मचारी व्रती च स्याद्गुरुदेवद्विजार्चकः ॥ २२४ ॥

(२२४) रात्रि में और दिन में खड़ा रहे या बैठा रहे, शयन

न करे, सामर्थ्य न हो तो भूमि में शयन करे, ब्रह्मचारी रहे अर्थात् स्त्री रमण न करे मूँज की मेखला और पलास का दण्ड धारण करे।

सावित्रीं च जपेन्नित्यं पवित्राणि च शक्तितः।
सर्वेष्वेव व्रतेष्वेवं प्रायश्चित्तार्थमादृतः ॥ २२५ ॥

(२२५) +गायत्री और ईश्वरोपासना के शुद्ध करने वाले मन्त्रों का यथाशक्ति जाप करे, यह बात प्रायश्चित्त के हेतु प्रत्येक व्रत में आवश्यक है।

एतैर्द्विजातयः शोध्या व्रतैराविष्कृतैनसः।
अनाविष्कृतपापांस्तु मन्त्रैर्होमैश्च शोधयेत् ॥२२६॥

(२२६) ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य इन व्रतों से अपने किये हुये पापों को दूर करें और जो पाप गुप्त है उनको मन्त्र व हवन करके दूर करें।

ख्यापनेनानुतापेन तपसाऽध्ययनेन च।
पापकृन्मुच्यते पापात्तथा दानेन चापदि ॥ २२७ ॥

(२२७) पाप को प्रकट करना, पश्चात्ताप करना (पछताना), तप करना, वेद पाठ करना, इनके द्वारा पापी अपने पाप से मुक्त हो जाता है। आपत्तिकाल में दान करके पाप से छुटकारा पाता है।

यथा यथा नरोऽधर्मं स्वयं कृत्वानुभाषते।
तथा तथा त्वचेवाहिस्तेनाऽधर्मेण मुच्यते ॥ २२८ ॥

+ इसमें शुद्ध करने वाले मन्त्र से अभिप्राय उन मन्त्रों से है जिनमें बुद्धि की शुद्धि और पाप कर्मों से बचकर शुभ कर्म करने का उपदेश दिया गया है।

(२२८) ॐ जैसे केचल से साँप छूटता है उसी प्रकार प्रकट पापों को जैसे-जैसे कहता है वैसे-वैसे मनुष्य पाप से छुटकारा पाता है।

यथा यथा मनस्तस्य दुष्कृतं कर्म गर्हति ।
तथा तथा शरीरं तत्तेनाधर्मेण मुच्यते ॥ २२९ ॥

(२२९) पापी मनुष्य का मन जैसे-जैसे दुष्कर्म की भर्त्सना करता है वैसे-वैसे उसका शरीर उस अधर्म से छूटता है।

कृत्वा पापं हि संतप्य तस्मात्पापात्प्रमुच्यते ।
नैवं कुर्यात् पुनरिति निवृत्त्या पूयते तु सः ॥ २३० ॥

(२३०) पाप करके सन्ताप करे तो उस पाप से छूटता है । मैं फिर ऐसा न करूँगा ऐसी प्रतिज्ञा करके वह पापी शुद्ध होता है

एवं संचिन्त्य मनसा प्रेत्यकर्मफलोदयम् ।
मनोवाङ् मूर्त्तिभिर्नित्यं शुभं कर्म समाचरेत् ॥२३१॥

(२३१) इसी प्रकार आगामी जन्म में मिलने वाले कर्म फलों को मन में ध्यान करके मनसा वाचा शरीर से दुष्कर्मों को परित्याग कर शुभ कर्मों को करे।

अज्ञानाद्यदि वा ज्ञानात्कृत्वा कर्म विगर्हितम् ।
तस्माद्विमुक्तिमन्विच्छन्द्वितीयं न समाचरेत् ॥२३२॥

(२३२) ज्ञान से अथवा अज्ञानतासे दुष्कर्म करके उस कम से छुटकारा पाने की अभिलाषा करता हुआ दूसरी वार कुकर्म न करे और यदि दूसरी वार कुकर्म करे तो दुगुना प्रायश्चित्त करे।

ॐ क्योंकि पाप करने से संसार में अपयश होता है और चित्त क्लेशित होता है इससे वह कष्ट उस पाप का फल हो जाता है और जीव पा के दूसरे फल से बच जाता है।

यस्मिन्कर्मण्यस्य कृते मनसः स्यादलाघवम् ।
तस्मिंस्तावत्तपः कुर्याद्यावत्तुष्टिकरं भवेत् ॥ २३३ ॥

(२३३) जिस प्रायश्चित्त के करने से पापी के मनको संतोष हो तो उस प्रायश्चित्त को फिर करे जब तक चित्त को सन्तोष न हो तब तक प्रायश्चित्त करता रहे।

तपोमूलमिदं सर्वं दैवमानुषकं सुखम् ।
तपोमध्यं बुधैः प्रोक्तं तपोऽन्तं वेददर्शिभिः ॥२३४॥

(२३४) देवता और मनुष्य इन दोनों के सुख का मूल मध्य और अन्त तप ही है इसका वेद के देखने वालों अर्थात् वेद पारगामियों ने कहा है।

ब्राह्मणस्य तपो ज्ञानं तपः क्षत्रस्य रक्षणम् ।
वैश्यस्य तु तपो वार्ता तपः शूद्रस्य सेवनम् ॥२३५॥

(२३५) ब्राह्मण का तप ब्रह्मज्ञान है, क्षत्रिय का तप संसार की रक्षा करना है, वैश्य का तप कृषि इत्यादि है, और शूद्र का तप सेवा है।

ऋषयः संयतात्मानः फलमूलानिलाशनाः ।
तपसैव प्रपश्यन्ति त्रैलोक्यं सचराचरम् ॥२३६॥

(२३६) ऋषिगण जितेन्द्रिय होकर फल, मूल, वायु इनमें से किसी एक का भोजन करते हुए सचराचर त्रैलोक्य (चल अचल तीनों लोक) तप ही से देखते हैं।

औषधान्यगदो विद्या दैवी च विविधा स्थितिः ।
तपसैव प्रसिद्ध्यन्ति तपस्तेषां हि साधनम् ॥ २३७ ॥

(२३७) औषधि व अन्य आरोग्यता की विद्या अर्थात् ब्राह्मण धर्म रूप दैवी विद्या, वेदार्थ ज्ञान, वेद पाठ करना और

विविध प्रकार के ज्ञान व विद्या व स्वर्गवास यह सब तप ही से सिद्ध होते हैं।

यद्दुस्तरं यद्दुरापं यद्दुर्गं यच्च दुष्करम्।
सर्वन्तु तपसा साध्यं तपो हि दुरतिक्रमम् ॥२३८॥

(२३८) जिसका तरना दुस्तर (कठिन) है, जिसका मिलना दुष्कर है, तथा जिसका ज्ञान लाभ करना दुष्कर है, वह तप के द्वारा प्राप्त हो सकती है। दुष्कर (कठिन) कार्यों के पूर्ण करने का मुख्य कारण तप ही है।

महापातकिनश्चैव शेषाश्चाकार्यकारिणः।
तपसैव सुतप्तेन मुच्यन्ते किल्बिषात्ततः ॥ २३९॥

(२३९) बड़े बड़े महापापी और दुष्कर्मों के करने वाले जितने पापी हैं वह सब तप ही के द्वारा शुद्ध हो सकते हैं।

कीटश्चाहिपतङ्गाश्च पशवश्च वयांसि च।
स्थावराणि च भूतानि दिवं यान्ति तपोबलात्॥२४०॥

(२४०) * बड़े बड़े साँप, कीट, पतंग पशु पक्षी, चर, प्राणी यह सब तप ही के बल से स्वर्ग में जाते हैं।

यत्किञ्चिदेनः कुर्वन्ति मनोवाङ्मूर्तिभिर्जनाः।
तत्सर्वं निर्दहन्त्याशु तपसैव तपोधनाः ॥२४१॥

(२४१) मन, वाणी, शरीर से जो कुछ पाप होता है वह सब तप ही से नाश होता है।

---

*२४०वें श्लोक में बतलाया है कि नीच योनियों में जाने वाला जीव तप के बल से दशा अर्थात् स्वर्ग को पाता है यहाँ यह भी ज्ञात होता है कि वैश्य देवता हो सकते हैं।

तपसैव विशुद्धस्य ब्राह्मणस्य दिवौकसः ।
इज्याश्च प्रतिगृह्णन्ति कामान्संवर्धयन्ति च ॥२४२॥

(२४२) यज्ञ तप से पवित्र (शुद्ध) ब्राह्मण की दी हुई हविष्य को देवता लेते हैं और उनकी इच्छित पदार्थों की वृद्धि करते हैं।

प्रजापतिरिदं शास्त्रं तपसैवासृजत्प्रभुः ।
तथैव वेदानृषयस्तपसा प्रतिपेदिरे ॥२४३॥

(२४३) प्रजापति हिरण्यगर्भ ने इस शास्त्र को तप ही से उत्पन्न किया और इसको ऋषि लोगों ने तप ही से पाया।

इत्येतत्तपसो देवा महाभाग्यं प्रचक्षते ।
सर्वस्यास्य प्रपश्यन्तस्तपसः पुण्यमुत्तमम् ॥२४४॥

(२४४) सब प्राणियों को तप ही से दुर्लभ जन्म हो होता है इसे देखते हुए देवता लोग तप को सब की मूल जान कर तप का महात्मा कहते हैं।

वेदाभ्यासोऽन्वहं शक्त्या महायज्ञक्रिया क्षमा ।
नाशयन्त्याशु पापानि महापातकजान्यपि ॥२४५॥

(२४५) रात्रि दिन वेद का पढ़ना, बलानुसार महायज्ञादि शुभ कर्मों को करना बड़े २ पापों को भी शीघ्र (अल्प समय में) ही शुद्ध कर सकता है।

यथैधस्तेजसा वह्निः प्राप्तं निर्दहति क्षणात् ।
तथा ज्ञानाग्निना पापं सर्वं दहति वेदवित् ॥२४६॥

(२४६) जिस प्रकार प्रज्वलित अग्नि काठ को शीघ्र ही भस्म सात कर देती है उसी प्रकार वेद जानने वाले ज्ञानरूपी अग्नि से सब पाप को जलाता है।

इत्येतदेनसामुक्तं प्रायश्चित्तं यथाविधि ।
तत्‍ ऊर्ध्वं रहस्यानां प्रायश्चित्तं निबोधत ।२४७।।

(२४७) जो पाप साधारण मनुष्यों पर प्रकट होगये या जिनको अपने का ज्ञान है उनका प्रायश्चित्त तो कह दिया अब गुप्त पापों का व अज्ञात पापों का प्रायश्चित्त कहते हैं।

सव्याहृतिप्रणवकाः प्राणायामास्तु षोडश ।
अपि भ्रूणहणं मासात्पुनन्त्यहरहः कृताः ॥२४८॥

(२४८) प्रणव (ओंकार) और व्याहृतियों के साथ गायत्री मन्त्र का जप करना और सोलह बार नित्य प्राणायाम करना ऐसे सब पापों को जो अज्ञात हो दूर कर देता है।

कौत्सं जप्त्वाप इत्येतद्वासिष्ठं च प्रतीत्यृचम् ।
माहित्रं शुद्धवत्यश्च सुरापोऽपि विशुध्यति ।२४९॥

(२४९) जिस सूक्त पर कौत्स ऋषि ने भाषा की है और जिस सूक्त पर वसिष्ट ऋषि ने अर्थ लिखा है, और माहित्री सूक्त व शुद्धवत्य सूक्त का पाठ करने और अर्थ विचारने से सुरापान करने वाला भी शुद्ध हो जाता है।

सकृज्जप्त्वास्यवामीयं शिवसंकल्पमेव च ।
अपहृत्य सुवर्णं तु क्षणाद्भवति निर्मलः ॥ २५०॥

(२५०) * एक मास पर्यन्त नित्य एक बार अस्यवामी को और शिव संकल्प को कि जो यजुर्वेद में जप करे तो ब्राह्मण का सोना चोर पवित्र होता है।

---

* २४९ वें श्लोकों के सूक्त ऋग्वेद के हैं और २५० वें श्लोक में जिन मन्त्रों का वर्णन है वह यजुर्वेद के हैं।

हविष्यन्तीयमभ्यस्य नतमंह इतीति च ।
जपित्वा पौरुषं सूक्तं मुच्यते गुरुतल्पगः ॥२५१॥

(२५१) हविष्यन्ति आदि उन्नीस ऋचा और नतमंह हो दुरित ऋचा, और सहस्र शीर्षा जो पुरुष सूक्त नाम वेदका भाग प्रसिद्ध है उसको सोलह बार नित्य एक मास पर्यन्त जप करें तो माता से रमण करने के पाप से छुटकारा पाता है।

एनसां स्थूलसूक्ष्माणां चिकीर्षन्नपनोदनम् ।
अवेत्यृचं जपेदब्द यत्किंचेदमितीति वा ॥२५२॥

(२५२) अपैव हेलो वर्ण यह ऋचा, यत्किंचेदम वरुणदेव व जल यह ऋचा इनको एक वर्ष पर्यन्त एक बार जप करे तो छोटे बड़े पापों को दूर करता है।

प्रतिगृह्याप्रतिग्राह्यं भुक्त्वा चान्नं विगर्हितम् ।
जपंस्तरत्समन्दीयं पूयते मानवस्त्र्यहात् ॥२५३॥

(२५३) अग्राह्य पदार्थो को ग्रहण करके व निन्द्य पदार्थों को भोजन करके तरत्समन्दी चार ऋचा को तीन दिन जप करें।

सोमारौद्रं तु बह्वेना मासमभ्यस्य शुध्यति ।
स्रवन्त्यामाचरन्स्नानमर्यम्णामिति च तृचम्॥२५४॥

(२५४) सोमारौद्रं आदि चार चार ऋचा और अर्यम्ण आदि तीन ऋचा इनमें से एक २ को एक बार एक मास पर्यन्त नदी आदि में स्नान करके जप करे तो बहुत पापों से छूट जाता है।

अब्दार्धमिन्द्र मित्येतदेनस्वी सप्तकं जपेत् ।
अप्रशस्तं तु कृत्वाप्सु मासमासीत भैक्षभुक् ॥२५५॥

(२५५) इन्द्रआदि सात ऋचाओंको छःमास पर्यन्तजापकरेतो

सब पापों से छूटता है। जल में मूत्र व विष्ठा करने वाला मनुष्य एक मास पर्यन्त भिक्षा याचन कर भोजन करे।

मन्त्रैः शाकलहोमीयैरब्दं हुत्वा घृतं द्विजः।
सुगुर्वप्यपहन्त्येनो जप्त्वा वा नम इत्यृचम् ॥२५६॥

(२५६) देव कृरिण्य आदि शाकल हवन मन्त्रों से एक वर्ष पर्यंत घी का हवन करे। अथवा इन्द्र इस ऋचा को एक वर्ष पर्यंत जप करे तो ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य के महापातक दूर हों।

महापातकसंयुक्तोऽनुगच्छेद्गाः समाहितः।
अभ्यस्याब्दं पावमानीर्भैक्षाहारो विशुद्ध्यति ॥२५७॥

(२५७) +ब्रह्महत्या आदि पापों में से किसी एक पाप से संयुक्त हो तो चिन्तारहित होकर गऊ का अनुगामी बने और भिक्षा मांगकर भोजन करे और जितेन्द्रिय होकर एक वर्ष पर्यंत नित्य पावमानी ऋचा को जप करे तो शुद्ध होता है।

अरण्ये वा त्रिरभ्यस्य प्रयतो वेदसंहिताम्।
मुच्यते पातकैः सर्वैः पराकैः शोधितस्त्रिभिः ॥२५८॥

(२५८) वन में चिन्तारहित होकर वेद संहिता को तीन वार अभ्यास करे और तीन वार पराक व्रत करे तो सब पापों से छुटकारा पाता है।

+२५४ से २५७ श्लोक तक जिन ऋचाओं का वर्णन है सब ऋग्वेद संहिता आदि के मन्त्र हैं जिसके जपने से मनुष्य को उसके अर्थों का कुछ न कुछ विचार हो जाता है जिससे वह उन पापों से छूट जाता है और ज्ञान हो जाने से भोग योग्य कर्मों का भी दुःख न्यून (अल्प) प्रतीत होता है और दुःख न प्रतीत होने से मानो वह पाप भी छूट जाते हैं।

त्र्यहं तूपवसेद्युक्तं स्त्रिरह्नोऽभ्युपयन्नपः ।
मुच्यते पातकैः सर्वैस्त्रिर्जपित्वाऽघमर्षणम् ॥२५६॥

(२५६) जितेन्द्रिय होकर नित्य प्रात दोपहर सायं को स्नान करके जल में तीन बार ऋतंच सत्यम् इस अघमर्षण सूक्त को जप करे तो सब पापों से छूट जाता है।

यथाश्वमेधः क्रतुराट् सर्वपापापनोदनम्ः ।
तथाऽघमर्षणं सूक्तं सर्वपापापनोदनम् ॥२६०॥

(२६०) जिस प्रकार सब यज्ञों का राजा अश्वमेध यज्ञ सब पापों को हरता है वैसे ही अघमर्षण सूक्त सब पापों को दूर करता है।

हत्वा लोकानपीमांस्त्रीनश्नन्नपि यतस्ततः ।
ऋग्वेदं धारयन्विप्रो नैनः प्राप्नोति किंचन॥२६१॥

(२६१) तीनों लोक को हनन करके और जहाँ तहाँ भोजन करके ऋग्वेद को धारण करे तो किसी पाप को नहीं पाता है।

ऋक्संहिता त्रिरभ्यस्य यजुषां वा समाहितः ।
साम्नां वा सरहस्यानां सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥२६२॥

(२६२)*चिन्ता रहित होकर ऋग्वेद, यजुर्वेद,सामवेद को

---

* २५८ से २६२ श्लोकों में मनुजी वेदों के पाठ के महात्म्य को बतलाते हैं परन्तु मूर्ख अर्थात् शूद्र को वेदों के पाठ का अधिकार नहीं और जो व्याकरण आदि शास्त्रों का ज्ञाता तीन चार वेदों का पाठ करेगा उसको अवश्य ही वेदों का अर्थ यथा सम्भव ज्ञात हो जावेगा जब विद्या पूर्ण व विश्वस्यनीय होयगी तब उस पर आचरण करना अवश्यम्भावी है अतएव जो वेदपाठ करेगा वह अवश्य ही ज्ञानी होकर पापों से छूट जावेगा यह मनुजी का मत है।

संहिता में से एक २ संहिता को तीन वार प्रयत्न सहित पाठ करके सब पापों से छूटता है।

यथा महाहृदं प्राप्य क्षिप्तं लोष्टं विनश्यति।
तथा दुश्चरितं सर्वं वेदे त्रिवृति मज्जति ॥२६३॥

(२६३) जैसे अथाह जल में मिट्टी का ढेला डाला तो शीघ्र ही नाश हो जाता है इसी प्रकार सब पाप तीनों वेद के पाठ करने से डूब जाते हैं।

ऋचो यजूंषि चान्यानि सामानि विविधानि च।
एष ज्ञेयस्त्रिवृद्वेदो यो वेदैनं स वेदवित् ॥ २६४ ॥

(२६४) ऋग्, यजुर, साम इन तीनों वेदों के मन्त्र ब्राह्मण सहित तीन प्रकार का वेद जानना चाहिये जो उसको जानता है वही वेद ज्ञाता है।

आद्यं यत्त्र्यक्षरं ब्रह्मत्रयी यस्मिन्प्रतिष्ठिता।
स गुह्योऽन्यस्त्रिवृद्वेदो यस्तं वेद स वेदवित् ॥२६५॥

(२६५) सब वेदों के आदि तीन अक्षर वाला सब वेद का सार और सब वेदों को अपने बीच स्थिर करने वाला जो प्रणव है उसका ज्ञाता (जानने वाला) वेद ज्ञाता है।

मनुजी के धर्म शास्त्र भृगुजी की संहिता का ग्यारहवां अध्याय समाप्त हुआ।

——※——

द्वादशोऽध्यायः ।

चातुर्वर्ण्यस्य कृत्स्नोऽयमुक्तो धर्मस्त्वयाऽनघ ।
कर्मणा फलनिर्वृत्तिं शंस नस्तावतः पराम् ॥१॥

(१) ऋषियों ने भृगुजी से कहा कि हे पाप मुक्त भृगुजी आपने यथा विधि चारों वर्णों के धर्मों को वर्णन कर दिया और अब पुण्य पाप के फल को वर्णन कर दीजिये।

स तानुवाच धर्मात्मा महर्षीन्मानवो भृगुः ।
अस्य सर्वस्य शृणुत कर्मयोगस्य निर्णयम् ॥२॥

(२) मनु धर्मशास्त्र के लिखने वाले धर्मात्मा भृगु ने उनसे कहा कि हे ऋषियों सब कर्मों के द्वारा योग अर्थात् सम्बन्ध को हम वर्णन करते हैं।

शुभाशुभफलं कर्म मनोवाग्देहसंभवम् ।
कर्मजा गतयो नृणामुत्तमोऽधममध्यमाः ॥ ३॥

(३) मन वाणी देह से जो शुभा शुभ कर्म उत्पन्न होता है इससे मनुष्यों की उत्तम, मध्यम, अधम गति उत्पन्न होती है।

तस्येह त्रिविधस्यापि त्र्यधिष्ठानस्य देहिनः ।
दशलक्षणयुक्तस्य मनो विद्यात्प्रवर्तकम् ॥ ४ ॥

(४) आगे जो दस लक्षण कहेंगे उससे संयुक्त पुरुष शरीर स्वामी का मन जो मन वाणी देह से उत्तम, मध्यम, अधम कर्म में लिप्त करने वाला है उसको जानो।

परद्रव्येष्वभिध्यानं मनसाऽनिष्टचिन्तनम् ।
वितथाभिनिवेशश्च त्रिविधं कर्म मानसम् ॥ ५ ॥

(५) दूसरे के द्रव्य में ध्यान, मन से अनिष्ट चिन्ता नास्तिकता यह तीन प्रकार के मानस कर्म हैं अर्थात् मन से उत्पन्न होने वाले हैं।

पारुष्यमनृतं चैव पैशून्यं चापि सर्वशः।
असंबद्धप्रलापश्च वाङ्मयं स्याच्चतुर्विधम् ॥६॥

(६) पारुष्य वचन कहा (कटुभाषण) मिथ्या भाषण करना, आत्मा के विरुद्ध कहना, और लोगों की चुगली और अनादर करना, असम्बद्ध बकवास करना यह चार वाणी के दोष हैं।

अदत्तानामुपादानं हिंसा चैवाविधानतः।
परदारोपसेवा च शारीरं त्रिविधं स्मृतम् ॥७॥

(७) छलसे किसी वस्तु का लेना, जीव हिंसा करना, पर स्त्री रमण करना, यह तीन देह (शरीर) से उत्पन्न होने वाले पाप हैं

मानसं मनसैवायमुपभुङ्क्ते शुभाशुभम्।
वाचाऽवाचा कृतं कर्म कायेनैव च कायिकम् ॥८॥

(८) जिससे कहे हुये पाप के फल से अचर जीव अर्थात् वृक्षों में रहने वाला, मन से किये हुए कर्म का मानसिक, और वाणी से कहे कर्म का फल वाणी से, और शरीर से किये हुये कर्म का फल शारीरिक दण्ड होता है जिस प्रकार पाप करता है उसी प्रकार फल मिलता है।

शरीरजैः कर्मदोषैर्याति स्थावरतां नरः।
वाचिकैः पक्षिमृगतां मानसैरन्त्यजातिताम् ॥९॥

(९) वाणी द्वारा किये पाप से पक्षी और पशु, तथा चित्त से किये हुये पाप से चाण्डालादि होता है।

वाग्दण्डोऽथ मनोदण्डः कायदण्डस्तथैव च ।
यस्यैते निहिता बुद्धौ त्रिदण्डीति स उच्यते ॥१०॥

(१०) जिसके वाणी मन देह सब क्रमानुसार स्वेच्छाचारी वाणी और नास्तिकता वर्जित व्यवहार को परित्याग करने वाले हैं वही त्रिदण्डी कहलाते हैं।

त्रिदण्डमेतन्निक्षिप्य सर्वभूतेषु मानवः ।
कामक्रोधौ तु संयम्य ततः सिद्धिं नियच्छति ॥११॥

(११) सब प्राणियों में इन तीनों दण्ड को (अर्थात् मन, वाणी, देह) के दण्ड को स्थिर करके काम व क्रोध को जीतकर सिद्धि को प्राप्त करता है।

योऽस्यात्मनः कारयिता तं क्षेत्रज्ञं प्रचक्षते ।
यः करोति तु कर्माणि स भूतात्मोच्यते बुधैः ॥१२॥

(१२) देह को कर्म में प्रवृत्त कराने वाला क्षेत्रज्ञ कहलाता है और जो करता है वह भूतात्मा अर्थात् देह कहलाता है यह बात पण्डित लोग कहते हैं।

जीवसंज्ञोऽन्तरात्मान्यः सहजः सर्वदेहिनाम् ।
येन वेदयते सर्वं सुखं दुःखं च जन्मसु ॥१३॥

(१३) सब देह धारियों के शरीर में रहने वाले जीव को अन्तरात्मा कहते हैं वह उससे जिसका महत्व अर्थात् मन कहते हैं सर्वथा पृथक् है। क्योंकि मन तो सुख दुःख को भोगने वाला है और जीवात्मा उस व्यवहार का ज्ञाता है परन्तु वह स्वरूप से दुःखी सुखी नहीं होता वरन् अज्ञान से मन इन्द्रियों में आत्म बुद्धि करके सुख दुःख को भोगता है।

तावुभौ भूतसंपृक्तौ महान्क्षेत्रज्ञ एव च ।
उच्चावचेषु भूतेषु स्थितं त व्याप्यतिष्ठतः ॥१४॥

(१४) महान तत्व व क्षेत्रज्ञ यह तीनों पृथ्वी आदि पंच महाभूतों करके ऊँच नीच योनि में परमात्मा को पकड़ कर (आश्रय) रहते हैं।

असंख्या मूर्तं यस्तस्य निष्पतन्ति शरीरतः ।
उच्चावचानि भूतानि सततं चेष्टयन्ति याः ॥ १५ ॥

(१५) ॐ परमात्मा के शरीर अर्थात् प्रकृति से असंख्य मूर्त कर्म के कारण ऊँच नीच दशा में उत्पन्न होते हैं।

पञ्चभ्य एव मात्राभ्यः प्रेत्य दुष्कृतिनां नृणाम् ।
शरीरं यातार्थीयनमन्यदुत्पद्यते ध्रुवम् ॥१६ ॥

(१६) दूसरे जन्म मे पापियों के दुख भोग करने के हेतु पृथ्वी आदि पंचतत्व के अंशों (भागों) से दूसरा शरीर लिङ्ग नाम पृथक् होता है।

तेनानुभूयता यामीः शरीरेणेह यातनाः ।
तास्वेव भूतमात्रासु प्रलीयन्ते विभागशः ॥ १७ ॥

(१७) उस शरीर से यमराज की असह्य यातना को सहन करके अर्थात् दुःख भोग कर यह शरीर अपने मूल में विलीन हो जाता है अर्थात् पृथ्वी आदि पंचतत्व से जो भाग पृथक हुआ था वह पंचतत्वों में मिल जाता है।

ॐ १५वें श्लोक में विराट् अर्थात् सारे ब्रह्माण्ड को एक पुरुष मान कर और प्रकृति को उसका शरीर बतला कर एक अलङ्कार बनाकर शरीरों की उत्पत्ति दिखलाई है।

सोऽनुभूयासुखोदर्कान्दोषान्विषयसङ्गजान् ।
व्यपेतकल्मषोऽभ्येति तावेवोभौ महौजसौ ॥ १८ ॥

(१८) लिङ्ग शरीर (महत् शरीर) में रहने वाला अवि जीव वासना के कारण से उत्पन्न हुये पापों को भोग कर और पापों से पृथक् होकर महापराक्रमी महान् और परमात्मा दोनों को शरण लेता है ।

तौ धर्मं पश्यतस्तस्य पापं चातन्द्रितौ सह ।
याभ्यां प्राप्नोति संपृक्तः प्रेत्येह च सुखासुखम् ॥१९॥

(१९) यह मन और जीवात्मा दोनों एकत्र होकर धर्म और अधर्म के फल को इस जन्म और दूसरे जन्म में पाते हैं और जो सचित कर्म अर्थात प्राचीन एकत्रित कर्म के कारण शरीर धारण करते हैं ।

यद्याचरति धर्मं स प्रायशोऽधर्ममल्पशः ।
तैरेव चावृतो भूतैः स्वर्गे सुखमुपाश्नुते ॥२०॥

(२०) जब जीव महान् (बहुत) धर्म करता है और अल्प पाप करता है तब परलोक (अर्थात् दूसरे जन्म) में सुख को पाता है और इसके हेतु उत्तम शरीर में जन्म पाता है ।

यदि तु प्रायशोऽधर्मं सेवते धर्ममल्पशः ।
तैर्भूतैः स परित्यक्तो यामीः प्राप्नोति यातनाः ॥२१॥

(२१) जब अति पाप करता है और अल्प धर्म करता है तब परलोक में दुःख पाता है ।

यामीस्ता यातनाः प्राप्य स जीवो वीतकल्मषः ।
तान्येव पञ्चभूतानि पुनरप्येति भागशः ॥ २२ ॥

(२२) यमराज की यातना को भोग कर पाप से पृथक होकर फिर जहाँ से लिंग नाम शरीर उत्पन्न हुआ है उसी में (अर्थात् पंचभूतों में) फिर अंशों से मिल जाता है।

एता दृष्ट्वास्य जीवस्य गतिः स्वेनैव चेतसा ।
धर्मतोऽधर्मतश्चैव धर्मे दध्यात्सदा मनः ॥२३ ॥

(२३) अपनी बुद्धि से जीव की दशा को देखकर और ध्यान पूर्वक उसके इस फल को विचार कर नित्य अपनी इन्द्रिय और मन को स्थिर रक्खे अर्थात् पाप से बचकर धर्म करता रहे।

सत्त्वं रजस्तमश्चैव त्रीन्विद्यादात्मनो गुणान् ।
यैर्व्याप्येमान्स्थितो भावान्महान्सर्वानशेषतः ॥२४॥

(२४) सत्, रज, तम यह तीनों प्रकृति के गुण उसके कार्य महत्त्व अर्थात् मन में रहते हैं और गुण सारे संसार में व्याप्त हो रहे हैं।

यो यदैषां गुणो देहे साकल्येनातिरिच्यते ।
स तदा तद्गुणप्रायं तं करोति शरीरिणम् ॥२५॥

(२५) इन तीनों गुणों में से जो गुण जिस शरीर में अधिक होता है उस शरीर को उसी गुण वाला कहा जाता है। यद्यपि उस शरीर में दूसरे गुण भी कुछ न कुछ अंश में वर्तमान रहते हैं तो भी एक गुण की अधिकता से उसी गुण के कार्य होते हैं।

सत्त्वं ज्ञानं तमोऽज्ञानं रागद्वेषौ रजः स्मृतम् ।
एतद्व्याप्तिमदेतेषां सर्वभूताश्रितं वपुः ॥२६॥

(२६) सत् ज्ञान है, तम अज्ञान है, राग (अर्थात् इच्छित

वस्तु की अभिलाषा) और द्वेष (अर्थात् अनिच्छित वस्तु से घृणा) यह दोनों रज हैं संसार इन तीनों गुणों से सारा घिरा हुआ (व्याप्त) है।

तत्र यत्प्रीतिसंयुक्तं किंचिदात्मनि लक्षयेत्।
प्रशान्तमिव शुद्धाभं सत्त्वं तदुपधारयेत् ॥२७॥

(२७) जब आत्मा में प्रेम के चिन्ह पाये जावें और इच्छा आदि के न होने से शान्ति दृष्टिगोचर हो और चित्त में शुद्धिका विचार हो तो उस समय सतोगुणी बलवान जानना चाहिये।

यत्तु दुःखसमायुक्तमप्रीतिकरमात्मनः।
तद्रजो प्रतिमं विद्यात्सततं हारि देहिनाम् ॥ २८ ॥

(२८) जब आत्मा को दुखी और विवाद का इच्छुक देखे तब रजोगुणी प्रधान समझे और रजोगुण सब प्राणियों को अति शीघ्र हानि पहुँचाने वाला और परित्याग योग्य है।

यत्तु स्यान्मोहसंयुक्तमव्यक्तं विषयात्मकम्।
अप्रतर्क्यमविज्ञेयं तमस्तदुपधारयेत् ॥२९॥

(२९)* जब आत्मा को मोह संयुक्त और विषय वासना में लिप्त देखे तब तमोगुण प्रधान जाने वह तमोगुण अतर्क्य (तर्क के योग्य नहीं) और जानने के योग्य नहीं है।

त्रयाणामपि चैतेषां गुणानां यः फलोदयः।
अग्र्यो मध्यो जघन्यश्च तं प्रवक्ष्याम्यशेषतः ॥३०॥

(३०) इन तीनों गुणों का फल उत्तम, मध्यम, अधम है उसका हमने वर्णन किया।

---

* २४ से २९ वें श्लोक में आत्म से महतत्व अर्थात् मन से अभिप्राय है जीवात्मा से नहीं।

वेदाभ्यासस्तपो ज्ञानं शौचमिन्द्रियनिग्रहः ।
धर्मक्रियात्मचिन्ता च सात्त्विकं गुणलक्षणम् ॥३१॥

(३१) वेद पढना तप, ज्ञान, शुचिता (पवित्रता) इन्द्रिय-निग्रह (जितेन्द्रिय होना) धर्म कर्म अर्थात् वेदशास्त्रानुसार कार्य करना, आत्मचिन्तन, सतोगुण के चिन्ह हैं।

आरम्भरुचिताऽधैर्यमसत्कार्यपरिग्रहः ।
विषयोपसेवा चाजस्रं राजसं गुणलक्षणम् ॥३२॥

(३२) कार्यारम्भ करने की इच्छा, धैर्य न होना, असत् कार्यों में सलग्नता और इनको परिग्रहण करना, विषयों का सेवन करना यह सब रजोगुण के चिन्ह हैं।

लोभः स्वप्नोऽधृतिः क्रौर्यं नास्तिक्यं भिन्नवृत्तिता ।
याचिष्णुता प्रमादश्च तामसं गुणलक्षणम् ॥३३॥

(३३) लोभ, स्वप्न, स्थिर चित्त न होना, क्रूरता(निर्दयता) नास्तिकता, भविष्य जन्म पर अविश्वास, सदाचार से घृणा, याचना करने का स्वभाव,अहङ्कार यह सब तमोगुण के चिन्ह हैं।

त्रयाणामपि चैतेषां गुणानां त्रिषु तिष्ठताम् ।
इदं सामासिकं ज्ञेयं क्रमशो गुणलक्षणम् ॥३४॥

(३४) तीनों गुणों के भूत भविष्य व वर्तमान में रहने की दशा में जो फल और चिन्ह हैं वह प्रत्येक मनुष्य के हेतु जानने योग्य है। अर्थात् किस गुण के क्या फल हैं और भविष्य में उसका परिणाम क्या होगा, पूर्व में किस प्रकार हुआ है और वर्तमान समय में इस गुण वालों की क्या दशा है।

यत्कर्म कृत्वा कुर्वंश्च करिष्यंश्चैव लज्जति ।
तज्ज्ञेयं विदुषा सर्वं तामसं गुणलक्षणम् ॥३५॥

(३५) जिस कार्य के करते समय तथा करने के पश्चात् और करने की इच्छा के प्रकट करने में लज्जा प्रतीत हो उसको पण्डित लोग तमोगुण का चिन्ह कहते हैं।

येनास्मिन्कर्मणा लोके ख्यातिमिच्छति पुष्कलाम् ।
न च शोचत्यसंपत्तौ तद्विज्ञेयं तु राजसम् ॥३६॥

(३६) जिस कार्य के करने से इस लोक में बड़ा यश प्राप्ति की इच्छा करता है और निर्धन होने का किंचित सोच नहीं करता उस कार्य को रजोगुण का चिन्ह समझें।

यत्सर्वेणेच्छति ज्ञातुं यन्न लज्जति चाचरन् ।
येन तुष्यति चात्मास्य तत्सत्वगुणलक्षणम् ॥३७॥

(३७) जिस कर्म को करते हुए लज्जा नहीं होती और जिस कर्म को करके पुरुष की आत्मा आनन्दित और तृप्त होती है उस कर्म को सतोगुण का लक्षण जाने।

तमसो लक्षणं कामो रजसस्त्वर्थ उच्यते ।
सत्त्वस्य लक्षणं धर्मः श्रैष्ठ्यमेषां यथोत्तरम् ॥३८॥

(३८ तमोगुण का लक्षण काम (अर्थात् सांसारिक वस्तुओं की इच्छा व भोग) है, रजोगुण का लक्षण अर्थ है, सतोगुण का लक्षण धर्म इन तीनों में अन्त का अर्थात् सतोगुण श्रेष्ठ है।

येन यस्तु गुणेनैषां संसारान्प्रतिपद्यते ।
तान्समासेन वक्ष्यामि सर्वस्यास्य यथाक्रमम् ॥३९॥

(३९) जिस गुण के कारण जीव जिस दशा को प्राप्त होता है उस सारे संसार की दशा संक्षेप में वर्णन करूँगा।

देवत्वं सात्विका यान्ति मनुष्यत्वं च राजसा।
तिर्यक्त्वं तामसा नित्यमित्येषा त्रिविधा गतिः ॥४०॥

(४०) सतोगुणी देवभाव को, रजोगुणी मनुष्य भाव को, तमोगुणी पशु व पक्षी के भाव को प्राप्त होते हैं। यह तीन प्रकार की गति है।

त्रिविधा त्रिविधैषा तु विज्ञेया गौणिकी गतिः।
अधमा मध्यमाग्र्या च कर्मविद्या विशेषतः ॥४१॥

(४१) सतोगुण आदि से जो तीन प्रकार की दशा वर्णन की गई है वह भी इन तीनों गुणों को न्यूनता वा अधिकता से, उत्तम, मध्यम, नीच तीन प्रकार का है। और इनमें देशकाल का अन्तर भी एक कारण है।

स्थावराः कृमिकीटाश्च मत्स्याः सर्पाः सकच्छपाः।
पशवश्च मृगाश्चैव जघन्या तामसी गतिः ॥ ४२ ॥

(४२) स्थावर (वृक्षों में रहने वाले) कृमि (कीड़े) जो मिल नहीं सकते हैं, कीट, मछली, साँप, पशु, कछुवा, हिरन, इन सब गतों को तामसी जघन्य (नीच) जानना।

हस्तिनश्च तुरङ्गाश्च शूद्रा म्लेच्छाश्च गर्हिताः।
सिंहा व्याघ्रा वराहाश्च मध्यमा तामसी गतिः ॥४३॥

(४३) हाथी, घोड़ा, सुअर, ❋ म्लेच्छ, सिंह, बाघ, शूद्र इन सब गतों को तामसी (तमोगुण की) मध्यम गति जानना।

चारणाश्च सुपर्णाश्च पुरुषाश्चैव दाम्भिकाः।
रक्षांसि च पिशाचाश्च तामसीषूत्तमा गतिः ॥४४॥

❋ म्लेच्छ उसे कहते हैं जो निकृष्ट पदार्थों का इच्छुक हो, व मांस, मदिरा, व्यभिचार का इच्छुक हो।

(४४) भाट, छली व कपटी मनुष्य, राक्षस, पिशाच इन सबको तामसी उत्तम गति जानना।

भल्ला मल्ला नटाश्चैव पुरुषाःशस्त्रवृत्तयः।

द्यूतपानप्रसक्ताश्च जघन्या राजसी गतिः ॥४५॥

(४५) (दशम अध्याय में कहे हुए) भल्ल मल्ल और नट तथा शस्त्र से आजीविका वाले मनुष्य और जुआ तथा मद्यपान में आसक्त पुरुष यह रजोगुण का निकृष्ट गति है।

राजानः क्षत्रियाश्चैव राज्ञां चैव पुरोहिताः।

वादयुद्धप्रधानाश्च मध्यमा राजसी गतिः ॥४६॥

(४६) राजा लोग तथा क्षत्रिय और राजा के पुरोहित और वाद वा झगड़ा करने वाले यह मध्यम राजस गति है।

गन्धर्वा गुह्यका यक्षा विबुधाऽनुचराश्च ये।

तथैवाप्सरसः सर्वा राजसीषूत्तमा गतिः ॥४७॥

(४७) गन्धर्व (गाने वाला और बजाने वाला) गुह्यक, यक्ष अप्सरा (अर्थात् सुन्दर गौरयायें गाने नाचने वालीं) विद्याधर (शिल्पकार) सब रजोगुण की उत्तम गति का लक्षण जानना।

तापसा यतयो विप्रा ये च वैमानिका गणाः।

नक्षत्राणि च दैत्याश्च प्रथमा सात्त्विकी गतिः ॥४८॥

(४८) तापस (तप करने वाले) संयमी, व्रती ब्राह्मण और विमान पर चढ़कर घूमने वाले, नक्षत्र, दैत्य (आचरणहीन विद्वान) वरन् प्रतिकूल आचरणी यह सब सतोगुण की नीच गतियां हैं।

राक्षस वह है जो हिंसा और विग्रह का प्रेमी हो।

+पिशाच उसे कहते हैं जो निर्दयता और क्रोध के कारण शुभाशुभ की पहिचान न रखता हो।

यज्वान ऋषयो देवा वेदा ज्योतींषि वत्सराः ।
पितरश्चैव साध्यांश्च द्वितीय सात्त्विकी गतिः ॥४६॥

(४६) यज्ञकर्ता ऋषि, देवता, वेदज्ञाता, ज्योतिषी पत्रा बनाने वाले वत्सर अर्थात् रक्षा करने वाले पितर, साधना करने वाले यह सब सतोगुणी की मध्यम गति में है।

ब्रह्मा विश्वसृजो धर्मो महानऽव्यक्तमेव च ।
उत्तमां सात्विकीमेतां गतिमाहुर्मनीषिणः ॥ ५० ॥

(५०) चारों वेदों का ज्ञाता, सृष्ट्युत्पत्ति करने वाला ईश्वरीय कर्म, महान् अव्यक्त निराकार परमात्मा यह सब सतोगुण की उत्तम गति में हैं।

एष सर्वः समुद्दिष्टस्त्रिप्रकारस्य कर्मणः ।
त्रिविधस्त्रिविधः कृत्स्नः संसारः सार्वभौतिकः ॥५१॥

(५१) मन, वाणी, देह, तीनों कर्म के साधन से अर्थात् इन तीनों के द्वारा कर्म होते हैं इनके भेद से तीन प्रकार के कर्म सत, रज, तम नाम वाले हुए फिर उत्तम, मध्यम, नीच के विभाग से प्रत्येक की तीन गति हुई जिनका योग नौ होता है। सारा संसार पंचभूत से उत्पन्न है उसको तीन में दिखाने के हेतु कहा इससे जो कहने से रह गया वह गति भी दूसरी पुस्तक से देखने के योग्य है।

इन्द्रियाणां प्रसङ्गेन धर्मस्यासेवनेन च ।
पापान्संयान्ति संसारानविद्वांसो नराधमः ॥५२॥

(५२) इन्द्रियों की वासना (प्रसंग) में पड़-कर धार्मिक कर्म न करने से तथा पाप कर्मों को करता हुआ विद्या से रहित मनुष्य नीच गति को पाता है।

यां यां योनिं तु जीवेऽयं येन येनेह कर्मणा ।
क्रमशो याति लोकेऽस्मिंस्तत्तत्सर्वं निबोधत ॥५३॥

(५३) इस लोक में यथाक्रम जीव जिस २ कर्म के करने से जिस २ गति में हो जाता है इसको संक्षेप से वर्णन करते हैं।

बहून्वर्षगणान्घोरान्नरकान्प्राप्य तत्क्षयात् ।
संसारान्प्रतिपद्यन्ते महापातकिनस्त्विमान् ॥ ५४॥

(५४) बहुत वर्ष पर्यन्त घोर नरक के भोग करने से पापों से छुटकारा पाकर और अगामी पातक से महापापी मनुष्य संसार में जन्म पाते हैं।

श्वशूकरखरोष्ट्राणां गोजाविमृगपक्षिणाम् ।
चाण्डालपुक्कसानाँ च ब्रह्महा योनिमृच्छति ॥५५॥

(५५) कुत्ता, सुअर गदहा, ऊँट, गाऊ, बकरा, भेड़ा, हिरण पक्षी, चाण्डाल, पुक्कस इनकी योनि में ब्रह्महत्या करने वाला जाता है अर्थात इनका जन्म पाता है।

कृमिकीटपतंगानां विड्भुजां चैव पक्षिणाम् ।
हिंस्राणां चैव सत्त्वानां सुरापो ब्राह्मणो व्रजेत् ॥५६॥

(५६) कृमि, कीट, पतङ्ग, विष्ठा भक्षण करने वाले पक्षी का स्वभाव रखने वाले सिंह आदि इनकी योनि में सुरापान करने वाला ब्राह्मण जाता है।

लूताहिसरठानां च तिरश्चां चाम्बुचारिणाम् ।
हिंस्राणां च पिशाचानां स्तेनो विप्रः सहस्रशः ॥५७॥

(५७) मकड़ी, साँप, गिरि, गेट, जल जीव टेढ़े चलने वाला पिशाच हिंसा करने की प्रकृति रखने वाले जीव इनकी योनि में सोना चुराने वाला ब्राह्मण सहस्रों बार जाता है।

तृणगुल्मलतानां च क्रव्यानां दंष्ट्रिणामपि ।
क्रूरकर्मकृतां चैव शतशो गुरुतल्पगः ॥ ५८ ॥

(५८) + तृण, गुल्म, लता में रहने वाले कीड़े, कच्चा माँस भक्षी गीध आदि क्रूर कर्म करने का जिनका स्वभाव है। सिंह, बाघ आदि इनका योनि में माता से रमण करने वाला सैकड़ों बार जन्मता है।

हिंस्रा भवन्ति क्रव्यादाः कृमयोऽभक्ष्यभक्षिणः ।
परस्परादिनः स्तेनाः प्रेतान्त्यस्त्रीनिषेविणः ॥५६॥

(५६) जीव हिंसा की प्रकृति रखने वाला जो है वह कच्चे माँस भक्षण करने वाले (बिलार आदि) होते हैं। अखाद्य पदार्थों को भक्षण करने वाले छोटे कृमि (कीड़े) होते हैं। महापातकों के अतिरिक्त जो चोर है वह परस्पर माँस भक्षी होते हैं अर्थात् वह उसके माँस को भक्षण करता है और दूसरा उसके मांस को भक्षण करता है चाण्डाल की स्त्री से सम्भोग करने वाला प्रेत होता है।

संयोगं पतितैर्गत्वा परस्यैव च योषितम् ।
अपहृत्य च विप्रस्वं भवति ब्रह्मराक्षसः ॥ ६० ॥

(६०) पतितों से मैत्री आदि संसर्ग करना, पर स्त्री गमन, ब्राह्मण का सोना चुराना इनमें से कोई एक कर्म करके ब्रह्म राक्षस होता है।

+ ५८ वें श्लोक में जिस प्रकार के मांसाहारी प्राणी हैं। उसी प्रकार घास सरकण्डे में रहने वाले जीव जानना चाहिये क्योंकि जीव जड़ पदार्थों में कहीं नहीं जाता वरन् जीवधारी को भी शरीर कहते हैं यहाँ अर्थ प्राप्त के ऐसा विचार करना चाहिये

मणिमुक्ताप्रवालानि हृत्वा लोभेन मानवः ।
विविधानि च रत्नानि जायते हेमकर्तृषु ॥६१॥

(६१) लोभ से मणि मुक्ता (मोती), प्रवाल (मूँगा) इत्यादि विविध प्रकार के जो रत्न हैं उनको चुराने से हेमकर्त्ता (सुनार) होता है।

धान्यं हृत्वा भवत्याखुः कांस्यं हंसो जलं प्लवः ।
मधु दंशः पयः काको रसं श्वा नकुलो घृतम् ॥६२॥

(६२) धान्य के चुराने से चूहा, काँसा के चुराने से हंस, जल के चुराने से प्लव नाम प्राणी, शहद के चुराने से वन की मक्खी, दूध चुराने से कौवा, रस के चुराने से कुत्ता, घी के चुराने से नेवला होता है।

मांसं गृध्रो वपां मद्गुस्तैलं तैलपकः खगः ।
चीरीवाकस्तु लवणं बलाका शकुनिर्दधि ॥६३॥

(६३) १-मांस, २-चरबी, ३-तेल, ४-निमक, ५-दही, चुराने से क्रमानुसार १-गृद्ध, २-पानी के ऊपर रहने वाले पक्षी, ३-तैलपक पक्षी, ४-झींगुर, ५-बलाका पक्षी होता है।

कौशेयं तित्तिरिर्हृत्वा क्षौमं हृत्वा तु दर्दुरः ।
कार्पासतान्तवं क्रौञ्चो गोधा गां वाग्गुदो गुडम्॥६४॥

(६४) १-कीड़ों के पेट से निकाला हुआ कपड़ा (रेशम आदि), २—तीसी की छाल से बना हुआ वस्त्र, ३—घासके सूत का वस्त्र, ४-गऊ व ५-गुड़ इनके चुराने से यथाक्रम १-तीतरो पक्षी, २—मेंढक, ३-क्रौंच, ४-गोह, गोवरा पक्षी होता है।

छुच्छुन्दरिः शुभान्गन्धान्पत्रशाकं तु वर्हिणः
श्वावित्कृतान्न विविधमकृतान्नं तु शल्यकः ॥६५॥

(६५) १–मशक आदि, २–वथुआ, आदि, ३–भात, ४–सत्तू आदि जो गेहूँ इनके चुराने से क्रमानुसार १–छछून्दर, २–मोठ ३–श्वाविद, ४–साही होता है।

वको भवति हृत्वाग्निं गृहकारी ह्युपस्करम्।
रक्तानि हृत्वा वासांसि जायते जीवजीवकः॥ ६६॥

(६६) + १—अग्नि, २—सूप, ३—मूसल आदि गृह की आवश्यकीय वस्तु, लाल वस्त्र इनके चुराने से यथाक्रम बगुला विल्ली, चकोर होता है।

वृको मृगेभं व्याघ्रोऽश्वं फलमूलं तु मर्कटः।
स्त्रीमृक्षः स्तोकको वारि यानान्युष्ट्रः पशूनजः ॥६७॥

(६७) मृग, हाथी, इन दोनों में से किसी के चुराने से बगला होता है, घोड़ा के चुराने से बाघ होता है, फल फूल इन दोनों में से किसी एक के चुराने से बन्दर होता है, स्त्री के चुराने से रीछ होता है, पीने के योग्य जल को चुराने से पपीहा नाम पक्षी होता है, सवारियों को चुराकर ऊँट होता है, पशुओं को चुराकर चकरा होता है,।

यद्वा तद्वा परद्रव्यमपहृत्य बलान्नरः।
अवश्यं याति तिर्यक्त्वं जग्ध्वा चैवाहुतं हविः ॥६८॥

+ ६२वें श्लोक से ६६वें श्लोक तक का विषय स्पष्ट रीति से आगामी जन्म में सम्बन्ध रखने वाला है और परोक्ष वश का फैलाने वाला भी यहां तक नहीं हो सकता है अतएव यह श्लोक भी प्रमाण मानना चाहिये।

(६८) दूसरे का धन चुराने से वा बलात् अपहरण करने से अवश्य ही पृथ्वी पर पेट के बल चलने वाला होगा, और हवन की सामग्री भूल कर भी खा लेने से भी यही दशा होती है।

स्त्रियोऽप्येतेन कल्पेन हृत्वादोषमवाप्नुयुः।
एतेषामेव जन्तूनां भार्यात्वमुपयान्ति ताः ॥६९॥

(६९) स्त्री भी उपरोक्त पाप कर्मों के करने से उपरोक्त प्राणियों की स्त्री होती है।

स्वेभ्यः स्वेभ्यस्तु कर्मभ्यश्च्युत वर्णाह्यनापदि।
पापान्संसृत्य संसारान्प्रेष्यतां यान्ति शत्रुषु ॥७०॥

(७०) विपत्ति समय के अतिरिक्त साधारण समय में अपने कर्मों के त्याग देने से चार निकृष्ट शरीरों में जन्म लेता है और शत्रुओं के सेवक होते हैं।

वान्ताश्युल्कामुखः प्रेतो विप्रो धर्मात्स्वकाच्च्युतः।
अमेध्यकुणपाशी च क्षत्रियः कटपूतनः ॥७१॥

(७१) अपने धर्म से पृथक ब्राह्मण वमन (कै) की हुई वस्तु को भक्षण करने वाला उल्का मुख नाम + प्रेत होता है, और अपने धर्म से पृथक क्षत्रिय मल मूत्र खाने वाला कटपूतन नाम प्रेत होता है।

+ प्रेत शब्द के अर्थ शरीर त्याग कर दूसरे जन्म में जानेके है जैसे कि न्यायदर्शन में महात्मा गौतम जी ने शरह की रीति से लिखा अतः जहाँ प्रेत का शब्द आवे वहा यही अर्थ समझना चाहिये

मैत्राक्षज्योतिकः प्रेतो वैश्यो भवति पूयभुक् ।
चैलाशक भवेत् शूद्रो यो वै धर्मात्स्वकच्युतः ॥७२॥

(७२) जो वैश्य आपद समय में अपने धर्म से पृथक होता है और पीप अर्थात् गांहेत रक्त को खाने वाला मैत्राक्ष ज्योति नाम प्रेम होता है, शूद्र अपने धर्म को त्याग देने से चैलाशक नाम कीड़ों का भक्षण करने वाला प्रेत होता है।

यथा यथा निषेवन्ते विषयान्विषयात्मकाः ।
तथा तथा कुशलता तेषां तेषूपजायते ॥ ७३ ॥

(७३) * विषयों में आत्मा को लगाने वाला मनुष्य जिस २ प्रकार विषयों का सेवन करता है उस उस प्रकार विषयों में कुशल होता है।

तेऽभ्यासात्कर्मणां तेषां पापानामल्पबुद्धयः
संप्राप्नुवन्ति दुःखानि तासु तास्विह योनिषु ॥७४॥

(७४) पाप कर्मों के अभ्यस्त होकर उन्हीं शरीरों में बहुत बार के दुखों को भोगते हैं वह सब निर्बुद्धि है।

तामिस्रादिषु चोग्रेषु नरकेषु विवर्तनम् ।
असिपत्रवनादीनि बन्धनच्छेदनानि च ॥७५॥

---

* ७३ वें श्लोक में जो विषयों में कुशल होना लिखा है उसके अर्थ विषयों में आसक्त होने के हैं और उसके साधन के सामान पर अधिकार प्राप्त कर लेना परन्तु विषय से सुखाशा न रखनी चाहिये। विषय की इच्छा यद्यपि विषय साधन जुटाने में चतुर है परन्तु वास्तव में बुद्धिहीन हो जाता है क्योंकि बुद्धि स्वतन्त्रता चाहती है और विषयेच्छा परतन्त्र बनाती है।

(७५) तामिस्र नाम मूर्खता से व्याप्त जो अर्थात् अति दुःख देने वाला नरक में जिसका वर्णन अध्याय ४के ८८ तथा९० श्लोकों में किया है जिसमें शरीर अंगों आदि का. बांधना आदि दुःखों में दुख पाते हैं।

विविधाश्चैव संपीडाः काकोलूकैश्च भक्षणम् ।
करम्भवालुकातापान्कुम्भीपाकांश्च दारुणान् ।।७६ ।।

(७६) और विविध प्रकार के शोक व दुःख को प्राप्त करते हैं कौवा, व उल्लू पक्षी उनको भक्षण करते हैं, उष्ण (गर्म) वालू की उष्णता को प्राप्त होते हैं, अत्यन्त भीषण कुम्भी पाक नाम नरक के दुख भोगा करते हैं।

संभवाश्च वियोनीषु दुःखप्रायासु नित्यशः ।
शीतातपाभिघातांश्च विविधानि भयानि च ।।७७।।

(७७) सदैव अति दुख वाली गर्हित (दूषित) नालियों में उत्पत्ति, शीत, तप, (गर्मी) से दुख और विविध प्रकार के भय पाते हैं।

असकृद्गर्भवासेषु वासं जन्म च दारुणम् ।
बन्धनानि च कष्टानि परप्रेष्यत्वमेव च ।।७८।।

(७८) बारम्बार माता के गर्भ से उत्पन्न होने के क्लेश को उठाना, प्रायः बन्धन अर्थात् बन्द होना और दुःख का होना और दूसरों की सेवकाई का बोझ उठाते हैं।

बन्धुप्रियवियोगांश्च संवासं चैव दुर्जनैः ।
द्रव्यार्जनं च नाशं च मित्रामित्रस्य चार्जनम् ।।७९।।

(७९) बान्धवों तथा प्रिय लोगों से वियोग,दुर्जनों का संसर्ग

च सहन सहन तथा ॐ धन का सचित होना तदनन्तर उसका लोप (नाश) हो जाना, मित्र शत्रु का मिलना इन सब को पाते हैं।

जरां चैवाप्रतीकारां व्याधिभिश्चोपपीडनम्।
क्लेशांश्च विविधांस्तांस्तान्मृत्युमेव च दुर्जनम् ॥८०॥

(८०) अप्रतीकार (औषधि न होने वाली) व्याधि व जरा (बुढापा) से दुख व विविध प्रकार (नाना भाँति) के कष्ट उठाने के उपरान्त मृत्यु इन सब को पाते हैं।

तादृशेन तु भावेन यद्यत्कर्म निषेवते।
तादृशेन शरीरेण तत्तत्फलमुपाश्नुते ॥८१॥

(८१) जो जिस विचार से किसी काम को करता है वह उसी प्रकार का शरीर धारण करके उस कर्म के फल को भोग करता है अर्थात् जो धर्म के विचार से उपकार वा भलाई करते हैं वह धर्म का फल भोगते और जो यश के विचार से भलाई करते हैं वह यश प्राप्त करते हैं। अथवा यह समझ कर कि सतोगुणी कर्मों के करने से सतोगुणी शरीर को व रजोगुणी कर्मों से रजोगुणी शरीर को तथा तमोगुणी कर्म करने से तमोगुणी शरीर को प्राप्त करते हैं।

एव सर्वः समुद्दिष्टः कर्मणां वः फलोदयः।
नैः श्रेयसकरं कर्म विप्रस्येदं निबोधत ॥८२॥

ॐ धन संचय होकर नाश हो जाना एक बड़ा भारी क्लेश है और धन किसी के पास भी तीन पीढ़ी (पुस्त) से अधिक नहीं ठहरता अतएव इससे पूरा दु ख है तथा आत्माको कुछ लाभ नहीं हो सकता अत लक्ष्मी की अभिलाषा करने वालों को धर्म के कार्यों में लगना चाहिये।

(६८) सत् रज, तम इन तीनों गुणों से उत्पन्न जो शब्द स्पर्श, रूप, रस, गन्ध है वह सब वेद ही से उत्पन्न हुए हैं।

विभर्ति सर्वभूतानि वेदशास्त्रं सनातनम् ।
तस्मादेतत्परं मन्ये यज्जन्तोरस्य साधनम् ॥६६॥

(६६) सदैव सब जीवों का धारण करने वाला जो वेद शास्त्र है वही मनुष्य का श्रेष्ठ पुरुषार्थ है इस बात को मैं मानता हूँ।

सैनापत्यं च राज्यं च दण्डनेतृत्वमेव च ।
सर्वलोकाधिपत्यं च वेदशास्त्रविदर्हति ॥१००॥

(१००) सेनापति (अर्थात् सिपहसालार) का कार्य राज्य दण्ड विधान सब लोगों का आधिपत्य विधान वेद शास्त्र ज्ञाता उत्तम और उचित रूप से स्थित कर सकता है।

यथा जातबलो वह्निर्दहत्यार्द्रानपि द्रुमान् ।
तथा दहति वेदज्ञः कर्मजं दोषमात्मनः ॥१०१॥

(१०१) जिस प्रकार प्रचण्ड अग्नि हरे वृक्ष को भस्म कर देती है उसी प्रकार वेद ज्ञाता अपने कर्म से उत्पन्न हुए दोष को भस्म कर देता है।

वेदशास्त्रार्थतत्वज्ञो यत्र यत्राश्रमे वसन ।
इहैव लोके तिष्ठन्स ब्रह्मभूयाय कल्पते ॥१०२॥

(१०२) वेद तथा शास्त्र के अर्थ को सत्योचित रीति पर समझने वाला चाहे जिस आश्रम में हो वह मोक्ष के योग्य होता है।

अज्ञेभ्यो ग्रन्थिनः श्रेष्ठा ग्रन्थिभ्यो धारिणो वराः ।
धारिभ्यो ज्ञानिनः श्रेष्ठा ज्ञानिभ्यो व्यवसायिनः॥१०३॥

(१०३) जो कुछ नहीं जानता उससे एक ग्रन्थ पढ़ने वाला उत्तम है और उससे वह श्रेष्ठ है जो कि पढ़े हुए को नहीं भूलता उससे पढ़े हुए के अर्थ को जानने वाला उत्तम है उससे वेदोक्त कर्म करने वाला श्रेष्ठ है।

तपो विद्या च विप्रस्य निःश्रेयसकरं परम्।

तपसा किल्बिषं हन्ति विद्ययाऽमृतमश्नुते ॥१०४॥

(१०४) ॐ तप (अपना धर्म) विद्या (ब्रह्मज्ञान) यह दोनों ब्राह्मण के मोक्ष का श्रेष्ठ उपाय है क्योंकि तप से पाप का नाश करता है और विद्या से मोक्ष पाता है।

प्रत्यक्षं चानुमानं च शास्त्रं च विविधागमम्।

त्रयं सुविदितं कार्यं धर्मशुद्धिमभीप्सता ॥१०५॥

(१०५) धर्म के सिद्धान्त को जानने के इच्छुक मनुष्य प्रत्यक्ष अनुमान, विविध प्रकार का शब्द शास्त्रों में कहा हुआ इन तीनों प्रमाण को भली भाँति जाने।

आर्षं धर्मोपदेशं च वेदशास्त्राऽविरोधिना।

यस्तर्केणानुसंधत्ते स धर्मं वेद नेतरः ॥१०६॥

(१०६) वेद और स्मृति इन दोनों को उत्तम तर्क से जो प्राप्त करता है अर्थात उनके सत्यार्थ को जानता है वही धर्म ज्ञाता है दूसरा नहीं।

ॐ सब वेद तथा शास्त्रों का सार यह है कि प्रकृति के विषयों से दुःख उत्पन्न होता है और परमात्मा के योग से सुख उत्पन्न होता है जितना प्राकृति विषयों का अधिक भोग होगा उतना ही बन्धन बढ़ता जावेगा और उसके दुःख भी बढ़ता जावेगा और जितना विषयों से पृथक् रह कर ईश्वरोपासना में लगेगा उतना ही दुःखों से बच कर शान्ति लाभ करेगा।

नैःश्रेयसमिदं कर्म यथादितमशेषतः ।

मानवस्यास्य शास्त्रस्य रहस्यमुपदिश्यते ॥१०७॥

(१०७) भृगुजी कहते हैं कि हमने मुक्ति प्राप्त करने के अर्थ वर्णाश्रम और प्रत्येक धर्म को बतलाया अब इसके उपरान्त शास्त्र के गुप्त रहस्य को बतलाते हैं।

अनाम्नातेषु धर्मेषु कथं स्यादिति चेद्भवेत् ।

य शिष्टा ब्राह्मणा ब्रू युः स धर्मःस्यादशङ्कितः॥१०८॥

(१०८) + जो धर्म वेद शास्त्र में सचेप रीति पर हो और उसकी व्याख्या इस धर्म शास्त्र से ज्ञात न हो तो जिस प्रकार परमात्मा ब्राह्मण व्यवस्था दे उनको संशय त्याग कर धर्म समझना

धर्मेणाधिगतो यस्तु वेदः सपरिबृंहणः ।

ते शिष्टा ब्राह्मणा ज्ञे याः श्रुतिप्रत्यक्षहेतवः ॥१०९॥

(१०९) जो मनुष्य धर्मानुसार चारों वेदों का अध्ययन करता है वही श्रेष्ठ ब्राह्मण कहलाता है।

दशावरा वा परिषद्यं धर्मं परिकल्पयेत् ।

त्र्यवरा वापि वृत्तस्था तं धर्मं न विचालयेत् ॥११०॥

(११०) दश के ऊपर अथवा तीन ऊपर के ब्राह्मणों का जो समूह है वह श्रेष्ठ कहलाता है वह जिस धर्म को कहे वही करना चाहिये।

+ धर्म की व्यवस्था देने के हेतु सदैव विद्वान् ब्राह्मण को अधिकार दिया परन्तु यहाँ पर गुण कर्म से ब्राह्मण लेने चाहिये उत्पत्ति से नहीं जिसको मनुजी ने स्पष्ट रीति से दिखला दिया है अतएव दो वर्ण व्यवस्था से भी धर्म के संशयों का निवारण हो सकता है।

त्रैविद्यो हेतुकस्तर्की नैरुक्तो धर्मपाठकः ।
त्रयश्चाश्रमिणः पूर्वे परिषत्स्याद्दशावरा ॥ १११॥

(१११) तीनों वेद की एक शाखा को पढने वाला श्रुति स्मृति के अनुकूल शास्त्र वाला, मीमांसा शास्त्रोक्त इन सब का ज्ञाता ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ, दश से ऊपर ही वह परिषद कहलाता है।

ऋग्वेदविद्यजुर्विच्च सामवेदविदेव च ।
त्र्यवरा परिषज्ज्ञेया धर्मसंशयनिर्णये ॥११२॥

(११२) ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद इन तीनों संहिताओं को अर्थ सहित पढने वाले और उनका अर्थ व व्याख्या जानने वाले तीन ब्राह्मण धर्म के संशय का निवारण करें।

एकोऽपि वेदविद्धर्मं यं व्यवस्येद्द्विजोत्तमः ।
स विज्ञेयः परोधर्मो नाऽज्ञानामुदितोऽयुतैः ॥११३॥

(११३) वेद ज्ञाता और उसके रहस्य ज्ञान प्राप्त एक ब्राह्मण भी धर्म बतलावे वह धर्म समझना चाहिये और मूर्ख लोग यदि लाख भी हों तो उनका कहना धर्म नहीं।

अव्रतानाममन्त्राणां जातिमात्रोपजीविनाम् ।
सहस्रशः समेतानां परिषत्त्वं न विद्यते ॥११४॥

(११४) जिन्होंने ब्रह्मचर्यादि व्रतों को न किया और न वेद शास्त्रों को अर्थ सहित पढ़ा हो जो केवल जाति मात्र से जीविका प्राप्त करता हो ऐसा सहस्रों के मिलने से परिषद् अर्थात् व्यवस्थापक सभा नहीं कहलाती।

(८२) मैंने यह सब सारे कर्मों के फल को वर्णन किया तदनन्तर अब ब्राह्मण के मोक्ष देने वाले कर्म को वर्णन करता हूँ।

वेदाभ्यासस्तपोज्ञानमिन्द्रियाणां च संयमः ।
अहिंसा गुरुसेवा च निःश्रेयसकरं परम् ॥८३॥

(८३) वेद पाठ, जप, ज्ञान इन्द्रियनिग्रह, अहिंसा (किसी जीव को न मारना) गुरु की सेवा शुश्रूषा करना यह सब कर्म बड़े कल्याणकारी हैं।

सर्वेषामपि चैतेषां शुभानामिह कर्मणाम् ।
किञ्चिच्छ्रेयस्करतरं कर्मोक्तं पुरुषं प्रति ॥८४॥

(८४) इन सब शुभ कर्मों में से प्रत्येक कर्म मनुष्यों की मोक्ष के हेतु अत्यन्त कल्याण करने वाले हैं।

सर्वेषामपि चैतेषामात्मज्ञानं परं स्मृतम् ।
तद्ध्यग्र्यं सर्वविद्यानां प्राप्यते ह्यमृतं ततः ॥८५॥

(८५) * सब कर्मों में आत्मज्ञान श्रेष्ठ समझना चाहिये क्योंकि यह सब से उत्तम विद्या है और अविद्या का नाश करती है और जिससे अमृत अर्थात् मुक्ति प्राप्त होती है।

षण्णामेषां तु सर्वेषां कर्मणां प्रेत्य चेह च ।
श्रेयस्करतरं ज्ञेयं सर्वदा कर्म वैदिकम् ॥ ८६ ॥

(८६) प्रथम कहे हुये छः कर्मों में वेदानुसार कर्म अर्थात् आत्म

---

* अर्थात् सात्विक व राजस व तामस भाव से स्नान, दान, योग आदि करे तो अति सतोगुण रखने व अति रजोगुण रखने वाला व अति तमोगुण रखने वाला शरीर पाकर इस मत के द्वारा से स्नान दान, योगकर्म के फल को भोग करता है।

ज्ञान सब से श्रेष्ठ है और इससे संसार में सुख और मृत्यु के उपरान्त मुक्ति लाभ होता है।

वैदिके कर्मयोगे तु सर्वाण्येतान्यशेषतः।
अन्तर्भवन्ति क्रमशस्तस्मिंस्तस्मिन्क्रियाविधौ ॥८७॥

(८७) इस वेदिक ज्ञान अर्थात् ब्रह्म के साथ लोक में यह सब वेदाभ्यास आदि समाप्त हो जाते हैं अर्थात् जब ब्रह्मोपासना प्राप्त हुई तब कुछ साधन शेष नहीं रहता।

सुखाभ्युदयिकं चैव नैःश्रेयसिकमेव च।
प्रवृत्तं च निवृत्तं च द्विविधं कर्म वेदिकम् ॥८८॥

(८८) वैदिक कर्म दो प्रकार का है एक निवृत और दूसरा प्रवृत्ति अर्थात् दुष्कर्मों से पृथक् रहना पूर्ति है और शुभ कर्मों का करना प्रवृत्ति है वा यह कि जिन कर्मों का फल संसार में प्राप्त होता है, जो शरीर कारण है वह कर्म प्रवृत्ति कहलाते हैं और जो ब्रह्मज्ञान के कर्म मुक्ति लाभ करने के हेतु किये जाते हैं, जिसमें आकाश आदि के द्वारा से संसार के सब कर्मों से निवृत्ति अर्थात् प्रथकता होती है वह निवृत् कहलाते हैं और उनका फल इन्द्रियों के भोगों से प्रथक् रखने वाली मुक्ति होती है।

इह चामुत्र वा काम्यं प्रवृत्तं कर्म कीर्त्यते।
निष्कामं ज्ञानपूर्वं तु निवृत्तमुपदिश्यते ॥८९॥

(८९) इस लोक और परलोक में मनवांछित फल प्राप्त करने के अभिप्राय से जो कर्म है वह प्रवृत्ति कहलाता है और ज्ञानपूर्वक जो कर्म है वह निवृत्ति कहलाता है।

प्रवृत्तं कर्म संसेव्य देवानामेति साम्यताम् ।
निवृत्तं सेवमानस्तु भूतान्यत्येति पञ्च वै ॥९०॥

(९०) प्रवृत्ति कर्म करने से देवताओं के समान होता है और निवृत्त कर्म करने से पृथिवी आदि पञ्चभूतों को विजय करता है अर्थात् पञ्चभूतों से जन्म होता है इनको विजय करने से फिर जन्म नहीं होता।

सर्वभूतेषु चात्मानं सर्वभूतानि चात्मनि ।
समं पश्यन्नात्मयाजी स्वाराज्यमधिगच्छति ॥९१॥

(९१) सब जीवों में आत्मा को और आत्मा में सब जीवों को समान दृष्टि रखने वाला और परमात्मा की उपासना करने वाला ब्रह्मास्पद को पाता है।

यथोक्तान्यपि कर्माणि परिहाय द्विजोत्तमः ।
आत्मज्ञाने शमे च स्याद्वेदाभ्यासे च यत्नवान् ॥९२॥

(९२) ब्राह्मण अर्थात् ब्रह्मज्ञानी अग्निहोत्र आदि कर्मों को त्याग करके ब्रह्म ध्यान इन्द्रियों को जीतना प्रणव उपनिषद् आदि वेदभ्यास इन सब में प्रयत्न करे।

एतद्धि जन्मसाफल्यं ब्राह्मणस्य विशेषतः ।
प्राप्यैतत्कृतकृत्यो हि द्विजो भवति नान्यथा ॥९३॥

(९३) ब्राह्मण क्षत्रिय, वैश्य के जन्म को सुफल करने वाले आत्मज्ञान तथा वेदाभ्यास कर्म हैं। परन्तु ब्राह्मण तो अधिक इस हेतु इस कर्म को प्राप्त कर कृतकृत्य होता है अर्थात् करने योग्य कार्यों को कर चुकता है।

पितृदेवमनुष्याणां वेदश्चक्षुः सनातनम् ।
अशक्यं चाप्रमेयं च वेदशास्त्रमिति स्थितिः ॥९४॥

(९४) वेद सदा पितृ व देवता व मनुष्यों के नेत्र हैं । वेद व शास्त्र दोनों संशय के योग्य नहीं हैं और न तर्क करने के योग्य हैं ये शास्त्र की मर्यादा है ।

या वेदबाह्याः स्मृतयो याश्च काश्च कुदृष्टयः ।
सर्वास्ता निष्फलाः प्रेत्य तमोनिष्ठा हि ताःस्मृता ॥९५॥

(९५) जो स्मृति वेद के विरुद्ध हैं जिनको स्वार्थियों ने बनाया है वह सब तमोगुण से भरे हुये हैं और निष्फल है ।

उत्पद्यन्ते च्यवन्ते च यान्यतोऽन्यानि कानिचित् ।
तान्यर्वाक्कालिकतया निष्फलान्यनृतानि च ॥९६॥

(९६) आप लोगों की बनायी सब पुस्तकें नाशवान हैं यह सब समय के साथ परिवर्तन शील हैं क्योंकि मूर्खता से भरे हुये हैं केवल वेद अनुकूल पुस्तक ही नित्य है क्योंकि उनका मूल वेद नित्य है ।

चातुर्वर्ण्यं त्रयो लोकाश्चत्वारश्चाश्रमाः पृथक् ।
भूतं भव्यं भविष्य च सर्वं वेदात्प्रसिध्यति ॥९७॥

(९७) चारों वर्ण तीनों लोक, पृथक पृथक, चारों आश्रम भूत भविष्य वर्तमान जो कुछ कर्म हैं वह सब वेद ही से प्रसिद्ध होता है ।

शब्दः स्पर्शश्च रूपं च रसो गन्धश्च पञ्चमः ।
वेदादेव प्रसूयन्ते प्रसूतिगुणकर्मतः ॥९८॥

यं वदन्ति तमोभूता मूर्खा धर्ममद्विदः ।
तत्पापं शतधा भूत्वा तद्वक्तृननुगच्छति ॥११५॥

(११५) जो धर्म के न जानने वाले तमोगुण में पड़े हुये अर्थात् लोभी व क्रोधी पाप को प्रायश्चित बतलाते हैं वह पाप हजार गुना होकर व्यवस्था देने वालों के गले पड़ता है ।

एतद्वोऽभिहितं सर्वं निःश्रेयसकरं परम् ।
अस्मादप्रच्युतो विप्रः प्राप्नोति परमां गतिम् ॥११६॥

(११६) भृगुजी कहते हैं कि हे ऋषियो आपसे मोक्ष देने वाला धर्म का स्पष्ट वर्णन किया जो ब्राह्मण इस धर्म से पृथक न हो वह मोक्ष की पदवी पावा है ।

एवं स भगवानदेवो लोकानां हितकाम्यया ।
धर्मस्य परमं गुह्यं ममेदं सर्वमुक्तवान् ॥११७॥

(११७) +इस प्रकार विद्वानों के राजा मनु ने सबारोपकारार्थ यह सब धर्म के गुप्त रहस्य मुझसे वर्णन किये थे जो मैंने तुमसे वर्णन किये हैं ।

सर्वमात्मनि संपश्येत्सच्चाऽसच्च समाहितः ।
सर्वं ह्यात्मनि संपश्यन्नाऽधर्मे कुरुते मनः ॥११८॥

(११८) शान्ति से बैठकर सब संसार के कार्य और कारण पदार्थों को परमात्मा के आधीन समझे और ईश्वराधीन प्रत्येक वस्तु के समझने से मन अधर्म नहीं कर सकता ।

+ इस श्लोक से स्पष्ट प्रतीत होता है कि यह स्मृति भृगु संहिता है मनुस्मृति नहीं ।

आत्मैव देवताः सर्वाः सर्वमात्मन्यवस्थितम् ।
आत्मा हि जनयत्येषां कर्मयोगं शरीरिणाम् ॥११९॥

(११९) सब देवता आत्मा मे हैं और सब पदार्थ आत्मा मे स्थिर है और परमात्मा ही जीवों के कर्मों के अनुसार उन सब शरीरों को उत्पन्न करता है।

खं सन्निवेशयेत्खेषु चेष्टनस्पर्शनेऽनिलम् ।
पंक्तिदृष्ट्योःपरं तेजः स्नेहोऽपो गां च मूर्तिषु॥१२०॥

(१२०) अभ्यन्तर आकाश में जो मनुष्य के भीतर है वाह्य आकाश को और त्वचा की स्पर्श शक्ति में वायु को अभ्यन्तर तेज व प्रकाश में वाह्य तेज व प्रकाश का, अभ्यन्तर जल में वाह्य जल को, शरीर के भूमि सम्बन्धी भाग में वाह्य प्रतियों को लीन करके अर्थात् समाधि करके संसार को अपने भीतर ध्यान करें।

मनसीन्दुं दिशः श्रोत्रेक्रान्ते विष्णुं वले हरम् ।
वाच्यग्निं मित्रमुत्सर्गे प्रजने च प्रजापतिम् ॥१२१॥

(१२१) मन में चन्द्रमा का, श्रोत्रेन्द्रिय में दिशा को, पादेन्द्रिय में विष्णु को, वल में हर को, वाक् इन्द्रिय में अग्नि को, वायु इन्द्रिय में मित्र देवता को, लिंग इन्द्रिय में प्रजापति को लीन करे।

प्रशासितारं सर्वेषामणीयांसमणोरपि ।
रुक्माभं स्वप्नधीगम्यं विद्यात्तं पुरुषं परम् ॥१२२॥

(१२२) सब पर आज्ञा करने वाला छोटे से भी छोटा सोने के तुल्य प्रकाशवान् स्वप्न बुद्धि के समान ज्ञान करके ग्रहण करने के योग्य जो पुरुष है उसको पुरुषोत्तम (सबसे बड़ा) जानो ।

एतमेके वदन्त्यग्निं मनुमन्ये प्रजापतिम् ।
इन्द्रमेके परे प्राणमपरे ब्रह्म शाश्वतम् ॥ १२३ ॥

(१२३) इस पुरुष को कोई- मनु, कोई अग्नि, कोई प्रजापति, कोई इन्द्र, कोई प्राण और कोई अविनाशी ब्रह्म कहते हैं ।

एष सर्वाणि भूतानि पञ्चभिर्व्याप्य मूर्त्तिभिः ।
जन्मवृद्धिक्षयैर्नित्यं संसारयति चक्रवत् ॥ १२४ ॥

(१२४) यह आत्मा पञ्च भूतों और उसी मूर्तियों में व्यापक होकर जगत् को मनुजी उत्पत्ति और नाश को चक्रवत् कहते हैं ।

एवं यः सर्वभूतेषु पश्यत्यात्मानमात्मना ।
स सर्वसमतामेत्य ब्रह्माभ्येति परं पदम् ॥ १२५ ॥

(१२५) जो मनुष्य इस विधि से सब प्राणियों में आत्मा को व्यापक देखकर सबको अपनी आत्माके तुल्य समझता है वह समदर्शी होकर ब्रह्मानन्द को पाता है ।

इत्येतन्मानवं शास्त्रं भृगुप्रोक्तं पठन्द्विजः ।
भवत्याचारवान्नित्यं यथेष्टां प्राप्नुयाद्गतिम् ॥१२६॥

(१२६) इस मनु ने धर्म शास्त्र को जो कि भृगुजी ने कहा है जो ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य पढ़ता है और तदनुसार कार्य करता है वह अभिलाषित गति को प्राप्त करता है ।

मनुजी के धर्म शास्त्र भृगुजी की संहिता का बारहवाँ अध्याय समाप्त हुआ ।

—०—

॥ समाप्तम् ॥

मुद्रक—हरीहर इलैक्ट्रिक मशीन प्रेस, मथुरा ।